।। श्रीश्रीकृष्णचैतन्य–नित्यानन्दौ जयतः ।।

श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु–प्रिय पार्षद

श्रीप्रबोधानन्द सरस्वतीपाद विरचित

सम्पूर्ण

श्रीवृन्दावनमहिमामृतम्

(सत्रह शतक)

एवम्

श्रीसरस्वतीपाद का विस्तृत जीवन चरित्र

• सम्पादक •

व्रजविभूति श्रीश्यामदास

श्रीश्यामलाल हकीम

श्रीहरिनाम संकीर्तन मण्डल, श्रीवृन्दावन

प्रकाशक :
श्रीहरिनाम संकीर्तन मण्डल
हरिनाम पथ, लोई बाजार, श्रीवृन्दावन

संस्करण :
छठा, श्रीराधाष्टमी, सन् २००६

न्योछावर : २५० रु.

मुद्रण–संयोजन : श्रीहरिनाम प्रेस, बागबुन्देला, श्रीवृन्दावन–२८११२१
फोन : ०५६५–२४४२४१५, २४४३४१५
www.harinampress.com

श्रीहरि

दो–शब्द

आनन्दकन्द श्रीश्रीगौरश्याम–युगल के स्वरूपभूत मधुर–लीलास्थल चिन्मयधाम श्रीवृन्दावन की असीम अनुकम्पा से भगवत् श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु के प्रियपार्षद श्रीप्रबोधानन्द सरस्वतीपाद विरचित श्रीश्रीवृन्दावन–महिमामृतम् का छठा संस्करण श्रीधामनिष्ठ रसिकों के करकमलों में सादर सहर्ष समर्पित है।

इस अनुपम ग्रन्थरत्न की परमास्वाद्य विषय–वस्तु इसके नाम से सम्यक् प्रकाशित हो रही है। श्रीसरस्वतीपाद के जीवन–चरित्र के अन्तर्गत विशेष रूप से इसका परिचय प्राप्त किया जा सकता है।

ऐसा सुना जाता है कि श्रीसरस्वतीपाद ने एक सौ शतकों की रचना की थी। लेकिन केवल सत्रह ही शतक प्राप्त होते हैं, जो आपके रसास्वादन हेतु प्रस्तुत हैं।

ग्रन्थ में श्रीसरस्वतीपाद का जीवन–चरित्र भी संलग्न है। उनकी ग्रन्थावली के विषय में प्रकट समस्त संशयों का सप्रमाण समाधान किया गया है।

श्रीवृन्दावन–निष्ठ भागवतजन इस संकलन से आनन्दित होंगे। श्रीसरस्वतीपाद की अन्यान्य रचनाएं भी मूल–अनुवाद–टीकाओं सहित प्रकाशित हो चुकी हैं–उपलब्ध हैं।

त्रुटिविच्युति की क्षमा प्रार्थना के साथ–

वैष्णवपदरजाभिलाषी

श्यामलाल हकीम

दि. २५.०६.२००५

श्रीवृन्दावन

श्रीहरिः

प्राक्कथन

सुधी पाठकजन,

सादर प्रणाम ! जय श्रीराधे ! श्रीवृन्दावन महिमामृत के समस्त सत्रहों शतकों का यह संग्रह आपके करकमलों में प्रस्तुत करते हुए हर्ष हो रहा है।

पूर्व में यह ग्रन्थ अनेक भागों में था–सभी भागों के कई–कई संस्करण हो चुके हैं। अनेक भागों में होने के कारण कभी कोई भाग, कभी कोई भाग अनुपलब्ध हो जाता है– अतः सम्पूर्ण ग्रन्थ उपलब्ध न हो पाता था, अतः उस समस्या से उबरने के लिये अब यह सम्पूर्ण ग्रन्थ एक ही भाग में प्रकाशित किया गया है, जिससे सर्व समय सम्पूर्ण की उपलब्धि सुनिश्चित हो सके।

श्रीवृन्दावन महिमामृत के रचयिता श्री प्रबोधानन्द सरस्वती पाद की रचनाओं के विषय में कुछ भ्रम व्याप्त हैं। उनके जीवन चरित्र में सप्रमाण उन भ्रमों का निवारण करके प्रस्तुत करने से इस ग्रन्थ की उपयोगिता और भी बढ़ गयी है।

जीवन चरित्र के कुछ अंशों की भाषा कुछ खरी–खरी सी प्रतीत होती है। उसका कारण है अन्य साहित्यकारों द्वारा तथ्यों को तोड़–मरोड़ कर प्रस्तुत करने की प्रतिक्रिया स्वरूप वैसी ही भाषा में उनका जवाब दिया गया है।

दैन्य की दृष्टि से यद्यपि यह अनुचित सा प्रतीत होता है–लेकिन दैन्य स्वविषय में तो स्वीकार्य है, लेकिन जहां अपने इष्ट, अपने श्री गुरुदेव, अपने साहित्य पर आक्षेप हो रहा हो तो उस समय दैन्य की अपेक्षा शठे–शाठ्यं समाचरेत् वाली नीति ही शास्त्र सम्मत है। शास्त्र कहता है कि –इष्ट गुरु निन्दा को कदापि सहन न करे, उसका प्रतिवाद

करे— यदि शक्ति न हो तो वहाँ से उठकर चला जावे। अतः पाठकगण पूर्वपक्ष को दृष्टि में रखते हुए वस्तुस्थिति से अवगत होगें— ऐसा मेरा नम्र निवेदन है।

शताधिक ग्रन्थों के सम्पादक हमारे पूज्य पिताश्री नौ नवम्बर सन् दो हजार पांच, श्री गोपाष्टमी के पुण्य दिवस को लीला में प्रविष्ट हो गये। उनके जीवन के कुछ प्रमुख तथ्यों को दिग्दर्शित कराते हुए उनका संक्षिप्त परिचय इस ग्रन्थ में प्रकाशित किया गया है। साथ ही श्री श्यामदास जी द्वारा प्रकाशित भक्ति साहित्य की सूची भी ग्रन्थ में प्रकाशित की गयी है, जिससे आपको समस्त ग्रन्थों का परिचय प्राप्त हो सके।

इस संस्करण में कुछ आकर्षक चित्रावली का भी समावेश किया है, जिससे पाठकों को दर्शनों का आनन्द भी सहज प्राप्त होगा।

त्रुटि—विच्युति की क्षमा प्रार्थना एवम सन्त—सज्जनों के श्री चरणों में पुनः पुनः प्रणाम सहित,

दासाभास

डॉ गिरिराजकृष्ण नांगिया

एम. ए., पी—एच.डी., साहित्यरत्न

जहाँ मन रहता है
वहीं व्यक्ति की
अवस्थिति मानी जाती है
अतः यदि
शरीर कहीं अन्यत्र भी रहे
और मन
श्रीवृन्दावन में रहे
तो
यह भी एक प्रकार से
श्रीवृन्दावन-वास ही है

परमाभिवन्दनीय श्रीगौरांग–भगवत् प्रिय–पार्षद

परिव्राजकाचार्य
श्रीप्रबोधानन्द सरस्वतीपाद

का

जीवन-चरित्र

श्रीप्रबोधानन्द सरस्वतीपाद का जन्म एक श्रेष्ठ विशिष्ट ब्राह्मण–कुल में हुआ। इनके पिता–पितामह आन्ध्र प्रदेश के रहने वाले थे, जो श्रीसम्प्रदायी वैष्णव थे। उस समय केवल श्रीरंगक्षेत्र ही श्रीवैष्णव–सेवित तीर्थ था। अपने गांव में भजनोचित सुविधा न देखकर वे रंग–क्षेत्र (मैसूर प्रदेश) में कावेरी नदी के किनारे बेलंगुरी गांव में सपरिवार निवास करने लगे थे। श्रीसरस्वतीपाद के दो भ्राता और भी थे। ज्येष्ठ भ्राता का नाम श्रीवैंकटभट्ट तथा मध्यम भ्राता का नाम श्रीत्रिमल्ल भट्ट था। ये भट्ट–परिवार श्रीलक्ष्मीनारायण का अनन्य उपासक था। श्रीवैंकट भट्ट, यतीन्द्र श्रीनृसिंहदेव के कृपापात्र थे और सुविख्यात् विद्वान् एवं सर्वशास्त्र–तत्त्वज्ञ थे।

जब श्रीमन्महाप्रभु तीर्थ–यात्रा के छल से प्रेमभक्ति का वितरण करते हुए दक्षिण देश में पधारे, तब श्रीवैंकटभट्टजी ने उन्हें अपने घर पर चातुर्मास्य बिताने की आग्रह–पूर्वक प्रार्थना की। श्रीमन्महाप्रभु के अलौकिक ऐश्वर्य–माधुर्य को देखकर श्रीभट्ट जान गए कि ये तो स्वयं श्रीकृष्ण हैं। प्रसंगवश श्रीमन्महाप्रभु के श्रीमुख से भगवान् श्रीब्रजेन्द्रनन्दन और श्रीव्रजगोपियों का वैकुण्ठाधिपति श्रीनारायण तथा श्रीलक्ष्मी से अत्यधिक उत्कर्ष जानकर श्रीभट्टजी श्रीकृष्ण–प्रेमरंग में ही रंग गए। यहां तक कि समस्त भट्ट–परिवार श्रीमन्महाप्रभु के पदाश्रित हो गया। श्रीगोपालभट्ट, श्रीवैंकटभट्टजी के सुपुत्र हैं, जो श्रीमन्महाप्रभु–चरणानुयायी षड्गोस्वामिपाद में एक सुविख्यात गोस्वामी हैं।

श्रीप्रबोधानन्द सरस्वतीपाद बाल्यकाल में सुतीक्ष्ण प्रतिभाशाली थे। अल्पवयस में ही ये अनेक शास्त्रों का अध्ययन कर सुप्रसिद्ध विद्वान् हो गए। संसार की असारता का कटु अनुभव कर गृहस्थाश्रम में प्रवेश किये बिना इन्होंने

तीव्र वैराग्यपूर्वक संन्यास ग्रहण कर लिया। इनके संन्यासाश्रम का नाम था—श्रीप्रकाशानन्द। ये गृह—सम्पत्ति को त्यागकर तीर्थयात्रा के लिए चल दिए। भारतवर्ष के समस्त तीर्थों में पर्यटन करते हुए काशी में आए। ये केवल कौपीन धारण करते, पृथ्वी पर शयन एवं जीवन—रक्षा के निमित्त नाम मात्र आहार करते थे। ये निशिदिन वेदचर्चा एवं शास्त्र—चर्चा में ही संलग्न रहते। इनकी असाधारण विद्वत्ता, शास्त्र—तत्त्वज्ञता तथा वैराग्य की पराकाष्ठा देख—सुनकर देश—देशान्तर से असंख्य विद्यार्थी इनके निकट आकर पदाश्रित हो विद्या—लाभ करने लगे। वेदान्त, तर्क, सांख्य, वैशेषिक, न्याय, मीमांसा, पुराण—इतिहास तथा अलंकार, काव्य नाटकादि सिद्धान्त—विषय में इनकी विद्वत्तापूर्ण व्याख्या सुनकर काशी—वासी समस्त संन्यासी—समाज इनके गुणों पर मुग्ध हो गया। थोड़े ही समय में "सरस्वती" पद प्राप्त कर ये जगत्—विख्यात् हो गए। काशी में श्रीबिन्दुमाधव हरि—मन्दिर के निकट इनका मठ था।

उन दिनों में जो व्यक्ति संन्यास ग्रहण करते थे, वे प्रायः श्रीमत् शंकराचार्यपाद के ही मतावलम्बी हुआ करते थे एवं मायावाद—मूलक वेदान्त—भाष्य ही उनका नित्य—पाठ होता था। कोई व्यक्ति संन्यास लेकर वैष्णव—धर्मानुष्ठान भी कर सकता है—भक्ति—पथ का पथिक भी हो सकता है—ऐसी धारणा उस समय नहीं थी। श्रीप्रकाशानन्द सरस्वतीपाद भी मायावाद या अद्वैतवाद के प्रधान आचार्य थे और दस हजार शिष्यों के साथ काशी में मायावाद—मूलक वेदान्तभाष्य का प्रचार—प्रसार करते हुए निवास करते थे।

इधर कलियुगपावनावतार—श्रीमन्महाप्रभु श्रीकृष्णचैतन्यदेव मायावादी, कर्मनिष्ठ कुतार्किक, पाषण्डी व्यक्तियों को भक्तिविहीन देखकर, विशेषतः उनके द्वारा किए हुए कृष्णनिन्दा—अपराध को अपरिशोध्य जानकर चिन्तित हो उठे। उन्होंने तात्कालिक धारणा के अनुसार सांसारिक सुख—सम्पत्ति, जननी, नव—विवाहिता किशोरी धर्म—पत्नी—समस्त का परित्याग कर दिया और कपट—संन्यास ग्रहण कर लिया। विशेषतः इसलिए कि मायावादी कुतार्किक आदि समस्त भक्ति—विरोधी—तत्त्व अपनी धारणानुसार संन्यास—आश्रम से प्रभावित होकर उनकी नति—प्रणतिपूर्वक कृष्ण—निन्दा के अपराध से विरत हो सकेंगे।

इस प्रकार वे स्वयं भक्ति–रस का आस्वादन करते हुए, आनुषंगिक भाव से जगत्–जीवों को प्रेम–वन्या में सराबोर करते हुए नीलाचल पधार चुके थे।

नीलाचल में राजा प्रतापरुद्र की प्रेरणा से श्रीवासुदेव सार्वभौम भट्टाचार्य निवास करते थे, जो श्रीप्रकाशानन्द सरस्वती के समान अद्वितीय विद्वान्, सर्वशास्त्र–निष्णात एवं सर्वप्रधान नैयायिक थे। भारत के समस्त देशों से अनेक वेदान्तिक दण्डी संन्यासी उनके पास आकर वेदान्त भाष्य का अध्ययन किया करते थे। उन्होंने जब सर्वप्रथम श्रीमन्महाप्रभु के प्रेम–जनित अलौकिक सात्त्विक–भावों को देखा, उनके आजानुलम्बित, त्रिभुवन–मनोहर सुन्दर गौरवर्ण प्रकाण्ड ज्योतिर्मय श्रीविग्रह के दर्शन किए तो वे चमत्कृत हो उठे। तदनन्तर जब श्रीमन्महाप्रभु के श्रीमुख से श्रीशंकराचार्यपाद–कृत–मायावाद मूलक वेदान्तभाष्य का खण्डन एवं भाष्य के प्रकृत अर्थों और व्याख्या का श्रवण किया, तब उनका विद्याभिमान चूर्ण–चूर्ण हो गया। श्रीमन्महाप्रभु के असमोर्ध्व ऐश्वर्य–माधुर्य–पूर्ण षड्भुज–स्वरूप के दर्शन कर श्रीसार्वभौम ने प्रभु के चरणों में आत्म–समर्पण कर दिया एवं परम कृतार्थ हो गए।

श्रीवासुदेव सार्वभौम, एक संन्यासी–श्रीकृष्णचैतन्य के पदाश्रित हो गया है, उसके साथ प्रेमोन्मत्त होकर नाचता–गाता है, उसे स्वयं–भगवान् श्रीकृष्ण मानने लगा है–यह बात काशी में श्रीसरस्वतीपाद ने जब सुनी तो वे अत्यन्त चकित हो उठे और सोचने लगे–"यह कैसा संन्यासी ? नाचता–गाता है ! अवश्य कोई इन्द्रजाली प्रतीत होता है, जिसने सार्वभौम को भी मूर्ख बना डाला है।" श्रीसार्वभौम के प्रति भी श्रीसरस्वतीपाद की घृणा उत्पन्न हो गई, चाहे पहले दोनों एक दूसरे से अच्छी तरह परिचित थे।

धीरे–धीरे श्रीसरस्वतीपाद के कानों में यह बात भी आ पहुँची कि उनके पूर्वाश्रम के भ्राता श्रीवैंकटभट्ट तथा श्रीत्रिमल्ल भट्ट, यहाँ तक कि उनका समस्त भट्ट–परिवार उसी श्रीकृष्ण–चैतन्य–संन्यासी के पदाश्रित हो चुका है एवं श्रीवैकुण्ठनाथ की उपासना छोड़कर श्रीकृष्ण के रंग में रंग गया है। विशेषतः उनका भ्रातुष्पुत्र–श्रीगोपाल भट्ट, जो अतिशय प्रतिभाशाली था, जिसको वे अवश्य निर्विशेष ब्रह्मानुसन्धान–ज्ञानमार्ग में दीक्षित करना चाहते थे, उसने भी श्रीकृष्णचैतन्य के चरणों में आत्मसमर्पण कर दिया है–यह बात जानकर ये

अति दुःखित हुए और अपने को अपमानित मानकर सोचने लगे–"उस चैतन्य–संन्यासी में ऐसा कौन सा गुण है, मुझसे भी अधिक उसमें क्या तत्त्वज्ञता है, जो उसने मेरे परिवार पर भी अपनी मोहिनी डाल दी है ?"

यह बात ठीक है कि श्रीसरस्वतीपाद उस समय भारतवर्ष के अद्वितीय प्रकाण्ड विद्वान् थे, त्याग–वैराग्य की पराकाष्ठा को प्राप्त कर मायावादी निखिल संन्यासियों के गुरुपद पर प्रतिष्ठित थे, किन्तु मान–अपमान, ईर्ष्या–मात्सर्य, राग–द्वेष आदि विकार क्या परम विद्वत्ता प्राप्त करने से या वैराग्य की पराकाष्ठा पर पहुँच कर समाप्त हो जाते हैं ? क्या संन्यास लेकर मायावाद के कुचक्र में पड़कर –'अहं ब्रह्मास्मि' मैं ब्रह्म हूँ, तू ब्रह्म है, सब कुछ ब्रह्म है"–ऐसी रट लगाने से कोई व्यक्ति भगवान् की दैवी–गुणमयी मायाशक्ति के बन्धन से छुटकारा पा सकता है ?–कभी नहीं। प्रेमभक्तिपूर्वक सच्चिदानन्दघन–विग्रह परात्पर–ब्रह्म सर्वशक्ति–सम्पन्न शरणागत–प्रतिपाल श्रीब्रजेन्द्रनन्दन के चरणारविन्द की शरणागति के बिना–भक्ति साधनानुष्ठान के बिना कभी भी जीव माया के इन द्वन्द्वों से मुक्त नहीं हो सकता।

अब तो श्रीसरस्वतीपाद और भी खीज उठे और मायावाद के स्थापनपूर्वक भक्ति–अनुष्ठानों की निन्दा करने लगे। वे कहा करते–"भक्ति तो भावुकों या स्त्रियों का धर्म है। पुरुष होकर रोना, नाचना–गाना ! इससे तो मर जाना अच्छा है। अज्ञानी और दुर्बलचित्त लोगों ने एक भगवान् की कल्पना कर रखी है। जीव तो स्वयं ब्रह्म है। सर्व जगत् ब्रह्म है–परिदृश्यमान जगत् सब मिथ्या है, इसका कुछ अस्तित्व ही नहीं है। जीव ब्रह्मैक्य ज्ञान ही जीव का साध्य है"–इत्यादि।

दूसरी ओर श्रीमन्महाप्रभु एवं उनके पदाश्रित पार्षदों के द्वारा चारों ओर प्रेमभक्ति की एक प्रचण्ड–वेग–वन्या उमड़ रही थी, जो पात्र–अपात्र, दुर्जन–सज्जन, स्त्री–पुरुष, बालक–वृद्ध, ब्राह्मण–चाण्डाल, पशु–पक्षी, स्थावर–जंगम–समस्त जगत् को प्लावित करती हुई बढ़ी आ रही थी। किन्तु एक काशी नगरी बच रही थी, जहाँ मायावाद का बोलबाला था एवं भक्ति विरोधी तत्त्वों का केन्द्र बनी हुई थी।

श्रीसरस्वतीपाद अपनी भावनाओं का संवरण नहीं कर सके और एक दिन श्रीमन्महाप्रभु पर अपना शासन जमाने के लिए उन्होंने एक पत्र पर निम्नलिखित श्लोक लिखकर एक यात्री के हाथों नीलाचल में प्रभु के पास भेज दिया–

यत्रास्ते मणिकर्णिका मलहरा स्वर्दीर्घिका दीर्घिका
रत्नन्तारक मोक्षदं तनुभृते शम्भूः स्वयं यच्छति ।
एतदतत्त्वतद्भुतधामतः सुरपुरो निर्वाणमार्गस्थितं,
मूढोऽन्यत्र मरीचिकासु पशुवत् प्रत्याशया धावति ।।

"जहाँ मणिकर्णिका एवं मन्दाकिनी दीर्घिका विद्यमान है, तथा जिस स्थान पर स्वयं श्रीमहादेव तारक मोक्षप्रद देवताओं से भी उत्तम पद–निर्वाण–रत्न–मुक्तिपद को प्रदान करते हैं। किन्तु, पशु जैसे मरुस्थल में भागते रहते हैं, उसी प्रकार मूर्ख व्यक्ति ही उस स्थान को छोड़कर अन्यत्र भागता फिरता है।"

श्रीमन्महाप्रभु ने श्रीसरस्वतीपाद का नाम सुनकर उस पत्र को आदर–पूर्वक ले लिया, किन्तु श्लोक पढ़कर हर्ष नहीं हुआ। श्रीसरस्वतीपाद के सम्मान निमित्त श्रीमहाप्रभु ने उसी यात्री के हाथ उत्तर–स्वरूप में निम्नलिखित श्लोक लिखकर भेज दिया–

घर्माम्भोमणिकर्णिका भगवतः पादाम्बुभागीरथी,
काशीनां पति वर्द्धमेव भजते श्रीविश्वनाथ स्वयं ।
एतस्यैवहि नाम शम्भुनगरे निस्तारकं तारकं,
तस्मात् कृष्णपदांबुजं भज सखे श्रीपाद ! निर्वाणदम् ।।

"हे सखे ! मणिकर्णिका श्रीभगवान् का स्वेद–जल है और श्रीगंगा उनके चरणों का जल–चरणामृत है। काशीपति श्रीविश्वनाथ स्वयं श्रीगंगा–जल को मस्तक पर धारण करके श्रीभगवान् का भजन करते हैं। इसीलिए ही काशी का नाम निस्तार–तारक कहा गया है। अतः श्रीपाद ! श्रीकृष्ण के मुक्ति–प्रदाता चरण–कमलों का ही भजन कीजिए।"

श्रीसरस्वतीपाद से और तो कुछ उत्तर देते न बन पाया श्रीमन्महाप्रभु श्रीजगन्नाथजी का प्रसाद नित्य ग्रहण करते थे—इसी बात पर ही आपत्ति उठाकर पुनः एक श्लोक लिख कर प्रभु के पास भिजवा दिया, वह श्लोक था—

विश्वामित्र–पराशर प्रभृतयो वाताम्बु–पर्णाशिन्,
एते स्त्रीमुखपंकजं सुललितं दृष्टैव मोहं गताः ।
शाल्यन्नं सघृतं पयोदधियुतं ये भुञ्जते मानवा–
स्तेषामिन्द्रियनिग्रहो यदि भवद्विन्दुस्तरेत्सागरम् ।।

"विश्वामित्र, पराशर आदि मुनिगण जो केवल वायु, जल एवं पत्ते इत्यादि खाने वाले थे, वे भी स्त्री के मनोहर मुख–कमल को देखकर मोहित हो गए थे, तब जो लोग घृत–दधि दूधयुक्त शाल्य–अन्न का भोजन करते हैं, वे यदि इन्द्रियों पर निग्रह कर लें, तो चटक पक्षी भी समुद्र को लांघ सकता है; अर्थात् चटक पक्षी के लिए जिस प्रकार समुद्र का लांघना असम्भव है, उसी प्रकार घृत–दधि–दुग्धयुक्त स्निग्ध पदार्थों को भोजन करने वाले व्यक्ति के लिए भी इन्द्रियों पर काबू पाना असम्भव है।"

इस श्लोक को पढ़कर श्रीमन्महाप्रभु ने इसे निष्प्रयोजन जानकर कुछ भी उत्तर नहीं दिया। किन्तु प्रभु–भक्तों से न रहा गया और उन्होंने प्रभु से गोपन करके इसका उत्तर श्रीसरस्वतीपाद को इस प्रकार लिख भेजा—

सिंहोबली द्विरदशूकरमांस भोगी संवत्सरेण कुरुते रतिमेकबारम् ।
पारावत स्तृणशिलाकणमात्र–भोगी कामीभवेदनु दिनं, वद कोऽत्र हेतुः ? ।।

बलवान सिंह हाथी–शूकर आदि के मांस का भक्षण करता है, किन्तु वर्ष में एक बार ही रति करता है, परन्तु कपोत तृण–शिलाकणों को खाकर भी प्रतिदिन रति करता है। कहिए, इसका क्या कारण ?

इस उत्तर को पाकर श्रीसरस्वतीपाद निरुत्तर हो गए और मन ही मन अति लज्जित हुए। श्रीप्रकाशानन्द के इस प्रकार के पत्र को देखकर श्रीसार्वभौमपाद अति क्रोधित हुए और श्रीमहाप्रभु से अनुमति लेकर काशी में आकर इनको समझाना चाहा, किन्तु प्रभु ने उस समय निषेध कर दिया।

संवत् १५७० में श्रीमहाप्रभु सर्वत्र प्रेम–वन्या प्रवाहित करते हुए झारिखण्ड के मार्ग से श्रीवृन्दावन की यात्रा करते समय काशी में पधारे। श्रीतपन मिश्र एवं

श्रीचन्द्रशेखर, जो पहले ही से गौरगत–प्राण थे, काशी में निवास कर रहे थे। प्रभु की इच्छा न थी, तो भी इन दोनों भक्तों के आग्रहवश प्रभु ने काशी में कुछ दिन निवास किया। काशी में एक महाराष्ट्रीय ब्राह्मण रहता था, जो हर प्रकार से सम्पन्न व्यक्ति था। श्रीसरस्वतीपाद के चरणों में उसकी अटूट श्रद्धा थी। किन्तु जब उसने श्रीमन्महाप्रभु के दर्शन किए, वह प्रभु का ही हो गया। श्रीसरस्वतीपाद एक दिन जब शिष्यों को वेदान्त पढ़ा रहे थे, उसी सभा में उस ब्राह्मण ने आकर उनके सामने श्रीमहाप्रभु के रूप–माधुर्य एवं नामसंकीर्तन तथा अश्रु–पुलकादि अलौकिक भाव–विकारों का वर्णन किया। श्रीसरस्वतीपाद उपहास कर प्रभु की निन्दा करते हुए बोले–'हां! हां ! मैंने भी सुना है–चैतन्य नाम का भावुक संन्यासी है। वह तो हीन सम्प्रदाय का संन्यासी है, महा इन्द्रजाली है, मूर्ख है, उसे तो अपने धर्म का भी ज्ञान नहीं। देश–देशान्तर नाचता फिरता है। इसी ने ही तो सार्वभौम को भी पागल बना डाला है। किन्तु काशी में इसकी भाव–कालिमा नहीं बिकेगी।"

इस प्रकार प्रभु की निन्दा सुनकर उस ब्राह्मण को अति दुःख हुआ और वहाँ से उठकर वह श्रीमहाप्रभु के निकट चला आया। श्रीमहाप्रभु को सब वृत्तान्त कह सुनाया। फिर उसने पूछा–"प्रभु ! श्रीप्रकाशानन्द आपके नाम से पहले भी परिचित है और मैंने भी आप का नाम उसके सामने कई बार लिया, किन्तु बड़ा आश्चर्य है, कि वह आपका पूरा नाम भी उच्चारण न कर सका–केवल "चैतन्य" "चैतन्य" ही कह सका। इसका क्या कारण है?" यह सुनकर श्रीमहाप्रभु मुसकराकर बोले–

प्रभु कहे–मायावादी कृष्ण–अपराधी ।
"ब्रह्म, आत्मा, चैतन्य" कहे निरवधि ।।
अतएव तार मुखे ना आइसे "कृष्णनाम" ।
कृष्णनाम, कृष्णस्वरूप–दुइ तो समान ।।

(श्रीचैतन्यचरितामृत २–१७–१२५, १२६)

"जो मायावादी है, वह श्रीकृष्ण के प्रति अपराध करता है। 'ब्रह्म, आत्मा, चैतन्य' बस इतना ही वह सदा उच्चारण करता है। श्रीकृष्णस्वरूप तथा

श्रीकृष्णनाम अभिन्न हैं। कृष्ण–अपराधी होने से उसका श्रीकृष्णनाम के प्रति भी अपराध होता है, अतः उसकी जिह्वा पर श्रीकृष्णनाम नहीं आता है।"–इस प्रकार प्रभु ने ब्राह्मण के प्रति नाम एवं नामी के अभिन्नत्व को स्थापन करते हुए नाम का भी स्वयं प्रकाशत्व वर्णन किया। श्रीमन्महाप्रभु कुछ दिन काशी में निवास कर श्रीवृन्दावन की ओर चल दिए।

श्रीसरस्वतीपाद ने जब यह सुना कि महाप्रभु काशी से चले गए हैं, तो वे अति प्रसन्न हुए एवं कहने लगे–"मैंने जो कहा था, वही सत्य हुआ। वह चैतन्य डर के मारे मेरे निकट ही नहीं आ सका। मेरा विश्वास है कि फिर काशी में आयेगा ही नहीं।" यदि कोई श्रीमहाप्रभु के लौट आने का उन्हें सम्वाद देता तो वे कह उठते–"आयेगा तो क्या होगा ? मेरे निकट नहीं आ सकता। तुम लोग भी उसके पास मत जाना–वह बड़ा शक्तिशाली है, तुम्हें मुग्ध कर लेगा। जो उसके मत का पालन करेगा, उसका लोक–परलोक सब नष्ट हो जायगा।" इस प्रकार श्रीसरस्वतीपाद एवं उनके अनुयायी श्रीमहाप्रभु की घोर निन्दा करते। इस निन्दा को सुनकर गौर–भक्तों के प्राण रो उठते।

श्रीमन्महाप्रभु नीलाचल लौटते समय फिर काशी में पधारे एवं श्रीतपन मिश्र के घर निवास किया। समय पाकर श्रीतपनमिश्र, श्रीचन्द्रशेखर आदि भक्तगण अपना दुःख प्रभु को निवेदन करने लगे–"हे प्रभो ! और कब तक हम आपकी निन्दा सुनेंगे? अब हम से नहीं रहा जाता। समस्त संन्यासी आप की निन्दा करते हैं। हे भगवन्! हमारे ह्रदय विदीर्ण होते हैं, कृपा कर उनका उद्धार कीजिए।" किन्तु प्रभु यह सब सुनकर हँस देते, कुछ नहीं बोलते।

वह महाराष्ट्रीय ब्राह्मण भी व्याकुल था कि किसी प्रकार श्रीप्रकाशानन्द श्रीमहाप्रभु के अनुगत हो जाये। वह सोचने लगा–"प्रकाशानन्द सरल–चित्त साधु है, महाप्रभु की निन्दा करता है, इसका केवल कारण यही है कि उसने प्रभु के दर्शन कभी नहीं किए हैं। हां ! यदि एक बार भी किसी प्रकार इस गौर–कृष्ण की रूप छटा देख सके तो सरस्वती की समस्त कुमति नष्ट हो जाये।" इस प्रकार चिन्तित होकर प्रभु–भक्तों से मिलकर उसने एक परामर्श किया कि वह श्रीप्रकाशानन्द को शिष्यों सहित अपने घर पर निमन्त्रण देगा एवं

फिर प्रभु को भी अनुरोध पूर्वक वहां पदारोपण की प्रार्थना करेगा। सर्व सम्मति से उस ब्राह्मण ने उसी प्रकार किया एवं तदर्थ विशाल आयोजन किया। तत्पश्चात् सभी प्रभु–भक्त मिलकर श्रीमहाप्रभु के निकट आये एवं उस ब्राह्मण ने प्रभु के चरण पकड़ कर प्रार्थना की–"हे प्रभो ! हम जानते हैं कि आप संन्यासी समाज में गमन नहीं करते, किन्तु आपको मेरा घर पवित्र करना ही होगा।" प्रभु सर्वज्ञ हैं, भक्तों के मन की जान गए कि ये सब संन्यासी समुदाय का उद्धार चाहते हैं। प्रभु ने हँसते हुए कहा– "जैसे आपकी अभिरुचि।"–यह सुनकर सबने आनन्दपूर्वक हरि–ध्वनि की।

श्रीसरस्वतीपाद ने एवं सब संन्यासी समुदाय ने भी यह बात सुनी कि श्रीकृष्णचैतन्य भी निमन्त्रण में आयेंगे। अन्यान्य संन्यासीगण तो कौतूहलाक्रान्त हो उठे, किन्तु श्रीप्रकाशानन्द सम्भवतः कुछ चिन्तालीन हो गये–"वह चैतन्य जिनकी मैंने अनेक बार निन्दा की, क्या वह आज दस हजार संन्यासी–समाज में अपनी इच्छा से आएगा? इसमें कुछ मर्म है!! क्या यह सार्वभौम की तरह मुझे भी मुग्ध कर लेगा ?"

निर्धारित समय पर संन्यासीगण सभा में आ गए एवं महाप्रभु की प्रतीक्षा करने लगे। आज वे देखेंगे, जिसको लोग स्वयं भगवान् मानकर पूजा करते हैं–वह संन्यासी कैसा है? उसी समय श्रीमन्महाप्रभु भी श्रीतपनमिश्र, श्रीचन्द्रशेखर, श्रीसनातन एवं श्रीपरमानन्द के साथ धीरे–धीरे नाम जप करते–करते वहां आ पहुँचे। महाज्योतिर्मय कोटि सूर्यप्रभ आजानुलम्बित विशाल विग्रह, प्रसन्नवदन, उन्नत ललाट, कमल के समान नेत्र, अति मन्थर गति से श्रीमहाप्रभु को आते देख सब संन्यासीगण आकृष्ट हो आसन छोड़कर उठ खड़े हुए। श्रीमन्महाप्रभु ने सबको नमस्कार किया। प्रभु ने पाद प्रक्षालन किया एवं उसी स्थान पर ही अपना ऐश्वर्य प्रकाश करते हुए बैठ गए। श्रीप्रभु के श्रीमुख का दर्शन करते ही श्रीसरस्वतीपाद की चिरकालीन शत्रुता उसी क्षण विलुप्तप्राय हो गई। प्रभु के ऐश्वर्य को देखकर वे अपने को स्थिर न रख सके, उठकर सम्मान पूर्वक प्रभु को बुलाने लगे–

श्रीसरस्वतीपाद ने कहा–"श्रीपाद ! यहाँ आइये ! सभा में ही आइये !! वहाँ अपवित्र स्थान पर क्यों बैठ रहे हो? हम से आपको किस बात का दुःख है?"

श्रीमहाप्रभु बोले—"मैंने तो हीन (भारती) सम्प्रदाय में संन्यास ग्रहण किया है, आप उत्तम सम्प्रदाय के संन्यासी हैं। मैं आपकी सभा में बैठने योग्य नहीं हूँ।"

यह सुनकर श्रीसरस्वतीपाद प्रभु के पास आए और उनका हाथ पकड़ कर उन्हें श्रद्धा—सम्मानपूर्वक सभा में ले आए।

श्रीसरस्वतीपाद ने पूछा—आपका नाम श्रीकृष्ण—चैतन्य है ? श्रीकेशव भारती के शिष्य हो ? आप धन्य हो। आप तो सम्प्रदायी संन्यासी हैं—आप यहां काशी में रहते हैं। हमसे दूर—दूर रहने का क्या कारण ? संन्यासी होकर नृत्य—गान एवं भावुकों के साथ संकीर्तन करते फिरते हो—ऐसा क्यों ? संन्यासी का धर्म तो ध्यान एवं वेदान्त पाठ करना है। आप सामान्य मनुष्य नहीं हो। प्रभाव में तो साक्षात् श्रीनारायण के समान जान पड़ते हो—फिर ऐसा हीन आचरण क्यों ?"

श्रीमहाप्रभु ने कहा—"सुनो श्रीपाद ! सब कहता हूँ—" आप जानते हैं; मैं मूर्ख हूँ और ऐसा ही जानकर मेरे गुरुदेव ने मेरे लिए वेदान्तपाठ का अधिकार नहीं समझा। इसलिए उन्होंने मुझे कृष्णमन्त्र ही सदा जपने की आज्ञा दी; और कहा—'चैतन्य ! श्रीकृष्ण—मन्त्र से तेरा संसार—मोचन होगा एवं श्रीकृष्णनाम से ही श्रीकृष्णचरण प्राप्ति होगी।' उन्होंने यह भी बतलाया कि—"कलिकाल में श्रीकृष्णनाम को छोड़कर और कोई भी धर्म नहीं है। सब मन्त्रों का सार श्रीकृष्णनाम ही है—सब शास्त्रों का मर्म श्रीकृष्णनाम ही है। सरस्वतीपाद ! श्रीगुरुदेव ने मुझे एक श्लोक की भी शिक्षा दी जिसे मैंने बड़ी कठिनाई से कण्ठस्थ किया। वह भी आपको सुनाता हूँ—

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम् ।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा ।।

"कलियुग में केवल हरिनाम ही गति है और गति नहीं है, केवल हरिनाम ही गति है, और गति नहीं है, केवल हरिनाम ही गति है और गति नहीं है।"

श्रीमहाप्रभु ने फिर कहा—"मैं श्रीगुरुदेव की आज्ञा पाकर अनुक्षण नाम जपने लगा। जपते—जपते मेरा मन उन्मत्त हो उठा। मैं मदोन्मत्त की भांति कभी

रोने, कभी हँसने, कभी नाचने–गाने लगा। मैं चिन्ता करने लगा कि क्या मैं सचमुच पागल हो गया हूँ ? अधीर होकर गुरुचरणों में निवेदन किया–हे गुरुदेव ! आपने यह कैसा मन्त्र दिया है ? इसकी कैसी शक्ति है ? जपते–जपते इस मन्त्र ने मुझे पागल कर दिया है। सुनिए, श्रीसरस्वतीपाद ! मेरे गुरुदेव मेरी बात सुनकर हँस पड़े और कहने लगे–

कृष्ण–नाम महामन्त्र एइ त स्वभाव ।
जेई जपे, तार कृष्णे उपजये भाव ।।
कृष्ण विषयक प्रेमा परम पुरुषार्थ ।
जार आगे तृण तुल्य चारि पुरुषार्थ ।।

(श्रीचैतन्यचरितामृत १–७–८०, ८१)

"वत्स ! श्रीकृष्णनाम का स्वभाव है कि जो भी श्रीकृष्णनाम का संकीर्त्तन करता है, उसके चित्त में श्रीकृष्ण–प्रेम का आविर्भाव होता है। श्रीकृष्ण–विषयक प्रेम ही जीव का परम पुरुषार्थ है, जिसको प्राप्त कर लेने पर धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष ये चारों पुरुषार्थ भी तृण के समान नितान्त तुच्छ प्रतीयमान होते हैं।

श्रीगुरुदेव ने यह भी कहा कि "गौरांग ! ब्रह्मानन्द जिस प्रेमानन्दामृत–सिन्धु के एक बिन्दु के समान भी नहीं है, वह श्रीकृष्णनाम का मुख्य फल "प्रेम" तुम्हें प्राप्त हुआ है, अतः आज मैं भी कृतार्थ हो गया हूँ।"

"सरस्वतीपाद ! श्रीमद्भागवत के सार इस श्लोक को भी श्रीगुरुदेव ने सुनाया–

एवं व्रतः स्वप्रियनामकीर्त्या जातानुरागो द्रुतचित्त उच्चैः ।
हसत्यथो रोदिति रौति गायत्युन्मादवन्नृत्यति लोकबाह्यः ।।

(श्री भा० ११–२–४०)

इस प्रकार जो नियम से भक्ति–अंगों का अनुष्ठान करता है, स्वीय प्रिय श्रीहरिनाम का संकीर्त्तन करते–करते उसके हृदय में प्रेम उदय हो आता है एवं वह मानापमान विषय में अवधान–शून्य होकर उन्मत्त व्यक्ति की भांति उच्चस्वर से कभी हँसने, कभी चीत्कार करने, कभी रोने कभी गाने और कभी नृत्य करने लगता है।"

अतएव श्रीपाद ! श्रीगुरुदेव के वाक्यों में दृढ़ विश्वासपूर्वक मैं निरन्तर श्रीकृष्णनाम संकीर्त्तन करता हूँ एवं वही श्रीकृष्णनाम ही मुझे कभी नृत्य कराता, कभी गान कराता है। मैं अपनी इच्छा से नहीं नाचता–गाता हूँ।"

सरस्वतीपाद ने जब अपने प्रश्नों का उत्तर क्रमशः प्रभु की मधुर वाणी से सुना तो उनका चित्त कुछ कुछ आकृष्ट होने लगा। फिर भी अभिमान पूर्वक सोचने लगे–"यह युवक महान् व्यक्ति है, अति मधुरभाषी है, सुबोध है किन्तु हां ! यदि कुछ दिन मेरे पास रहे तो एक अपूर्व विभूति बन सकता है। श्रीकृष्णप्रेम इसे प्राप्त हुआ है–सो तो ठीक है, किन्तु वेदान्त के प्रति इसकी रुचि नहीं है, यह महान् दोष है।"

यह विचार कर सरस्वतीपाद बोले–"चैतन्य ! तुमने जो कहा, सब सत्य है। किसी भाग्यवान को ही प्रेम की प्राप्ति होती है। श्रीकृष्णनाम–संकीर्तन से हमें सन्तोष है, किन्तु तुम वेदान्त क्यों नहीं पढ़ते–सुनते हो ?

यह सुनकर श्रीमहाप्रभु बोले–"श्रीपाद ! जो आप पूछते हैं यदि मैं उसका उत्तर न दूं तो अपराध होगा और यदि कुछ कहूँ तो आप दुःख मान बैठेंगे ? हां ! यदि आप दुःख न मानें तो कुछ निवेदन करूँ।"

श्रीसरस्वतीपाद बोले–"ओहो ! यह आप क्या कहते हैं ? आपकी वचन–माधुरी से, आपकी रूपमाधुरी से तो हमारे श्रवण एवं नेत्र अमृतवत् शीतल हो रहे हैं–आप तो साक्षात् नारायण के समान दीखते हैं। आप स्वच्छन्द होकर कहिये–दुःख कैसा ?"

श्रीमहाप्रभु बोले–"सरस्वतीपाद ! वेदान्त–सूत्र ईश्वर के वचन हैं, श्रीनारायण ने जिन्हें श्रीव्यासरूप से कहा है। भ्रम, प्रमाद, विप्रलिप्सा एवं करणापाटव–ये सब दोष ईश्वर के वचनों में नहीं होते। उपनिषत् के प्रमाणों से समर्थित जिस तत्त्व को सूत्र कहता है, उसका अर्थ मुख्या–वृत्ति में करने से ही उसके परममहत्त्व एवं स्वयं प्रमाणता की रक्षा होती है। किन्तु श्रीपादशंकराचार्य ने गौणी वृत्ति से ही सूत्रों का भाष्य किया है, उससे वेदान्त सूत्रों की स्वयं–प्रमाणता नहीं रहती एवं उसके श्रवण करने से ब्रह्म–जीव के सेव्य–सेवकत्व भाव की हानि होती है। अतः वह भक्ति–विरोधी भाष्य है। किन्तु श्रीपाद !

उनका भी दोष नहीं है, उन्होंने भी ईश्वर–इच्छा से ऐसा किया है, यह मैं जानता हूँ–

इस प्रकार श्रीमन्महाप्रभु ने उस सभा में कई एक वेदान्त सूत्रों की मुख्या–वृत्ति के अर्थानुकूल आलोचना कर उस भाष्य को दूषित प्रमाणित किया। श्रीकृष्ण–तत्त्व, जीव–तत्त्व, सम्बन्ध–तत्त्व, अभिधेय–तत्त्व एवं पंचम् पुरुषार्थ–प्रेमतत्त्व आदि ज्ञातव्य तत्त्वों का रहस्य प्रभु ने प्रकट किया। इस प्रकार अश्रुतपूर्व व्याख्या प्रभु के मुख से सुनकर समस्त संन्यासी समुदाय चमत्कृत हो उठा। सरस्वतीपाद की भी मनोवृत्ति बदल गई। श्रीमहाप्रभु के चरणों के प्रति प्रबल श्रद्धा–वन्या उमड़ उठी एवं क्रोध, ईर्ष्या, द्वेष मात्सर्यादि एक साथ बहकर जाने कहाँ जा पड़े, मानो सरस्वतीपाद का पुनर्जन्म हुआ। भक्ति के माधुर्य, साध्य के आकर्षकत्व एवं जीव के जीवत्व का क्या स्वरूप है–जब इस रहस्य को उन्होंने रसराज–महाभावस्वरूप श्रीगौरसुन्दर की मधुर वाणी में सर्वप्रथम सुना तो उनके मन में महाप्रभु के प्रति प्रगाढ़ ममता एवं महान श्रद्धा का उदय हो आया। श्रीमहाप्रभु की पहले अन्याय एवं अज्ञतापूर्वक जो अशेष निन्दा की थी, उससे उनका मन अनुतापानल में दग्ध होने लगा।

श्रीसरस्वतीपाद ने हाथ जोड़कर प्रार्थना की–"हे गौरांग ! आपने जो मधुर वचनामृत– धारा वर्षा की है, उससे हमारे शुष्क हृदय–प्रांगण प्रफुल्लित हो उठे हैं। आपने जो कहा है, वह समस्त सत्य है, परम सत्य है। हमने आपके स्वरूप को न जानकर आपकी बहुत निन्दा की है, आप तो साक्षात् वेदमूर्ति श्रीनारायण स्वरूप हैं, हे गौरकृष्ण! आप हमारे अपराधों को क्षमा कीजिए।"

यह सुनकर समस्त सभा आनन्द से उल्लसित हो उठी, "हरि बोल" "हरि बोल" की उच्च ध्वनि से आकाश–वातास गूंज उठा। गौरभक्तों के आनन्द का तो कहना ही क्या ? समस्त काशी श्रीहरिनाम से मुखरित हो उठी। तत्पश्चात् श्रीमहाप्रभु को मध्य में विराजमान कर समस्त संन्यासी समुदाय ने भोजन किया एवं श्रीमहाप्रभु भक्तों सहित अपने वासस्थान पर पधारे। संन्यासी समाज में श्रीमहाप्रभु ने जो अपूर्व तत्त्व–व्याख्या की, समस्त काशी में एवं विशेषत: संन्यासियों में यत्र–तत्र उस विषय की विषद् आलोचना होने लगी। सरस्वतीपाद

के प्रधान प्रधान शिष्य कहने लगे कि श्रीकृष्णचैतन्य के मुख–कमल से ही हमने वेदों के प्रकृत तात्पर्य को सर्वप्रथम जाना है। सरस्वतीपाद ने कहा–"श्रीशंकराचार्य का उद्देश्य अद्वैतमत स्थापन करना था। उसी संकल्प को लेकर उन्होंने सूत्रों का यह विकृत अर्थ किया है। वस्तुत: भगवान् श्रीकृष्णचैतन्य के मुख से प्रकृत अर्थों को सुनकर अब हमारे लिए कुछ भी जानने योग्य बाकी नहीं रहा है।"

सरस्वतीपाद का वज्र के समान हृदय द्रवीभूत हो गया एवं वे भक्तिजात एक अनिर्वचनीय नवीन सुखसिन्धु में निमग्न हो गये। निशिदिन उनके नेत्रों में, हृदय में, जागते–सोते में, खाते–पीते में भगवान् श्रीकृष्णचैतन्य ही घूमने लगे। अपनी इस अवस्था का चित्र उन्होंने अपने इस श्लोक में खींचा है–

सान्द्रानन्दोज्ज्वलनवरसप्रेमपीयूषसिन्धो:
कोटिं वर्षन् किमपि करुणास्निग्धनेत्रञ्चलेन ।
कोऽयं देव: कनककदलीगर्भगौरांगयष्टि–
श्चेतोऽकस्मान्मम निजपदे गाढ़मुप्त चकार ।।

(श्रीचैतन्यचन्द्रामृत ६१)

"जिसके अंग सुवर्ण कदलीवत् गौरकांति विशिष्ट हैं, जो करुणारस निषिक्त कजरारे नेत्रों से महान् उज्ज्वल रसमय प्रेमामृत–सिन्धु की राशि बरसा रहे हैं, ये देव कौन हैं? मेरे चित्त को क्यों अपने चरणारविन्दों में दृढ़ता पूर्वक आकर्षण कर रहे हैं ?

एक दिन श्रीमन्महाप्रभु श्रीबिन्दुमाधव–हरि के दर्शन के लिए मन्दिर में पधारे वहाँ श्रीमूर्ति का सौन्दर्य–माधुर्य आस्वादन कर श्रीमहाप्रभु प्रेमाविष्ट होकर नृत्य करने लगे। श्रीचन्द्रशेखर, श्रीतपन, श्रीपरमानन्द एवं श्रीसनातनपाद भी श्रीहरिनाम संकीर्त्तन करने लगे–

हरि हरये नम: कृष्ण यादवाय नम: ।
गोपाल गोविन्द राम श्रीमधुसूदन ।।

फिर क्या था ? चारों ओर असंख्य दर्शनियों की, 'हरि–हरि' ध्वनि से आनन्द कोलाहल मच गया। निकटवर्ती सरस्वतीपाद के मठ में भी नाम ध्वनि ने अपूर्व आकर्षणपूर्वक प्रवेश किया। जगत्मान्य विज्ञानी, परम विरक्त, कौपीनधारी

संन्यासी–शिरोमणि सरस्वतीपाद अधीर हो उठे, और दण्ड कमण्डल छोड़ कर मन्दिर की ओर दौड़े–मानो श्रीवृन्दावन के मञ्जुल निकुञ्जों में श्रीरासबिहारी की मदनमनहारी मुरली ने गोपांगनाओं का आह्वान किया हो। त्रिभुवनमोहन उस नृत्यपरायण श्रीराधाकृष्णमिलित श्रीगौरविग्रह की असमोर्ध्व माधुरी का दर्शन कर सरस्वतीपाद अपने को सम्भाल न सके। सबके साथ–साथ "हरि हरि" ध्वनि करने लगे। कम्प, स्वरभंग, प्रस्वेद, वैवर्ण्य, हर्ष–दैन्य–चापल्यादि संचारी विकार भी उनके शरीर पर उदय होने लगे। कुछ समय पश्चात् श्रीमन्महाप्रभु को बाह्य हुआ और उन्होंने ज्यों ही सरस्वतीपाद को नमस्कार की, तत्क्षण श्रीसरस्वतीपाद ने प्रभु के चरणयुगल पकड़ लिए।

श्रीमहाप्रभु बोले–"ओहो ! श्रीपाद ! आप तो जगद्गुरु हैं, परमपूज्य हैं। यह आप क्या करते हैं ? मैं तो आपके दासानुदास के तुल्य भी नहीं हूँ। परम श्रेष्ठ होकर मुझ हीनाचार–मूर्ख की वन्दना ? ठीक है ! आप मायातीत ब्रह्म हैं और आपको "सर्वखल्विदं ब्रह्म"–ही यद्यपि भासता है, तो भी लोक–संग्रहार्थ ऐसा करना आपको उचित नहीं है।"

यह सुनकर श्रीसरस्वतीपाद के नेत्रों से अजस्र अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी, वे विनीत–मस्तक, अवरुद्ध–वाणी एवं अत्यंत दैन्यपूर्वक कहने लगे–"प्रभो ! कृपा कीजिए, अब और अधिक मुझे लज्जित न करिए। भगवन् ! मैंने आपका महान् अपराध किया है। "चैतन्य की भाव–कालिमा काशी में नहीं बिकेगी" यह कहकर मैं स्वयं कलंकित हो चुका हूँ। पतितपावन ! करुणामय !! आप स्वयं भगवान् हो। आपके चरणों को छोड़कर मेरे अपराधों के शोधन का और क्या उपाय है ? आपके श्रीचरणकमल ही सर्व अमंगलों के नाशक एवं समस्त मंगलों के स्रोत हैं। मैं आपकी शरण हूँ।"

श्रीमहाप्रभु ने कहा–"विष्णु ! विष्णु !! सरस्वतीपाद ! मैं तो क्षुद्रजीव हूँ। जीव को भगवान् मानना, यही तो अपराधों का मूल है।"

सरस्वतीपाद ने कहा–"हे गौरांग ! आप निस्सन्देह साक्षात् स्वयं–भगवान् हो।" यद्यपि जीवों की शिक्षा के लिए आप अपने को भगवद्–भक्त मानते हो, तथापि आप मेरे परम इष्ट हैं। हे पावन ! आपके चरणों में मेरी भक्ति बनी रहे। मैं आपको कोटि–कोटि प्रणाम करता हूं।"

श्रीमन्महाप्रभु ने सरस्वतीपाद को उठाकर आलिंगन किया और कहा– "श्रीपाद ! वेदान्त–सूत्र भगवान् श्रीवेदव्यास रचित है एवं श्रीवेदव्यास रचित श्रीमद्भागवत ही वेदान्त सूत्रों का अपौरुषेय भाष्य है। भगवान् एवं जीव में सेव्य–सेवक सम्बन्ध है। भगवत्–भक्ति ही अभिधेय है। प्रेम ही प्रयोजन है। भगवान् प्रेम के ही वशीभूत हैं। कलियुग में प्रेम–प्राप्ति का एकमात्र साधन श्रीहरिनाम संकीर्तन है।"

इस प्रकार अनेक शिक्षा प्राप्त कर सरस्वतीपाद परमकृतार्थ हो गए। श्रीमहाप्रभु हरि– ध्वनि पूर्वक अपने वासस्थान पर चले आए।

श्रीसरस्वतीपाद का जीवन पलट गया। कल वे शुष्क मायावादी–संन्यासी थे, आज वे हो गए–परमोन्मत्त श्रीकृष्ण–प्रेमी। कुछ दिन पहले जो ब्रह्म–स्वरूप स्वाधीनपुरुष बनते थे, अब वे प्रेमभिखारिन अबलावत् कृष्ण–विरह में कातर होकर कभी रोने लगते, कभी "हा गौरकृष्ण" "हा गौरकृष्ण" कहकर नृत्य करने लगते और कहा करते–(श्रीचैतन्यचन्द्रामृत ६०)–

निष्ठां प्राप्ता व्यवहृतिततिर्लौकिकी वैदिकी वा
या वा लज्जा प्रहसनसमुद्गाननाट्योत्सवेषु ।।
ये वाभूवन्नहह सहजप्राणदेहार्थधर्म्मा ।
गौरश्चौरः सकलमहरत् कोऽपि मे तीव्रवीर्यः ।।

"अतिशय बलवान किसी गौरवर्ण चोर ने आकर मेरे निष्ठाप्राप्त लौकिकी एवं वैदिकी व्यवहार समूह एवं प्रहसन–उच्चस्वर संकीर्तन–नाट्यादि विषयक लज्जा तथा प्राण एवं देह के स्वाभाविक धर्म–ये समस्त हरण कर लिए हैं।"

श्रीमन्महाप्रभु ने जब काशी से नीलाचल जाने का निश्चय किया तब श्रीसरस्वतीपाद ने रात के समय महाप्रभु के निकट जाकर प्रार्थना की कि उन्हें भी महाप्रभु अपने साथ नीलाचल चलने की आज्ञा दें, कारण कि उनका विरह उनसे सहन नहीं हो सकेगा।" श्रीमन्महाप्रभु ने उन्हें अनेक प्रकार प्रबोध दिया और श्रीवृन्दावन जाने की आज्ञा की। श्रीसरस्वतीपाद के आर्द्र होने पर श्रीमन्महाप्रभु ने उन्हें विश्वास दिलाया कि जब भी वे महाप्रभु को स्मरण करेंगे, महाप्रभु उन्हें दर्शन देंगे।

श्रीसरस्वतीपाद ने कहा—"प्रभो ! आपके प्रबोध से मैं अति आनन्दित एवं कृतार्थ हुआ हूँ।"

श्रीमहाप्रभु ने आशीर्वाद दिया कि —यह आनन्द आपका प्रतिक्षण वर्द्धित हो और आज से आपका नाम भी हम "प्रबोधानन्द" रखते हैं।

श्रीलालदास कृत बंगला भक्तमाल में जैसे वर्णित है—

प्रकाशानन्द सरस्वती नाम तार छिल ।
प्रभुई प्रबोधानन्द बलिया राखिल ।।

जिस समय श्रीमहाप्रभु नीलाचल की ओर बढ़े, ये भी उसी समय (सम्वत् १५७१–७२ में) श्रीवृन्दावन की ओर चल दिए। उस समय श्रीवृन्दावन एक अगम्य निर्जन वन था। समस्त लीला स्थान गुप्त पड़े थे। श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु की आज्ञा से सम्वत् १५६५–६६ में श्रीलोकनाथ गोस्वामी, श्रीभूगर्भ गोस्वामी एवं श्रीसुबुद्धिराय, ये तीन महापुरुष ही क्रमशः श्रीवृन्दावन में आ चुके थे। सं० १५७१–७२ में श्रीप्रबोधानन्द सरस्वती भी श्रीवृन्दावन में आ पहुँचे। तत्पश्चात् श्रीरूपगोस्वामीपाद, श्रीसनातन गोस्वामीपाद तथा श्रीगोपालभट्ट गोस्वामीपाद भी श्रीमन्महाप्रभु की आज्ञा से श्रीवृन्दावन में पधारे एवं श्रीवृन्दावन के समस्त लीलास्थानों के जीर्णोद्धार करने के गौरव को श्रीगौड़ीय वैष्णववृन्द ने ही प्राप्त किया। इन सबके बाद ही अन्यान्य सम्प्रदायाचार्यों ने श्रीवृन्दावन को अपना निवास क्षेत्र चयन किया।

अपने भ्रातुष्पुत्र श्रीगोपालभट्ट गोस्वामी को यहां मिलकर श्रीसरस्वतीपाद अतीव हर्षित हुए। श्रीसरस्वतीपाद ने भक्तिजात प्रेममहासिन्धु में निमग्न होकर रसराज–महाभावस्वरूप श्रीश्रीगौरसुन्दर के, अनन्त सौन्दर्य–माधुर्यमय लीलाबिहारी श्रीश्रीराधामाधव के तथा परमोज्ज्वलरसात्मक लीलास्थल श्रीधामवृन्दावन के जिस अद्भुत चमत्कारी चिन्मय सौन्दर्य– माधुर्य का आस्वादन किया, उसे आनन्दान्दोलित एवं प्रेमतरंगायित हृदयोद्‌गारों के द्वारा अपनी विभिन्न रचनाओं के रूप में रसिक समाज को प्रदान किया है।

ग्रन्थावलि —

१. *श्रीचैतन्यचन्द्रामृत*—यह स्तोत्रकाव्य है जिसमें १४३ श्लोक हैं। श्रीआनन्दी ने (सं० १७८०) में इसकी रसिकास्वादिनी टीका रचना प्रकाशित

की। इसमें श्रीसरस्वतीपाद की एकान्त गौर–भक्ति और निष्ठा का प्राधान्य है और साथ–साथ राधादास्य–निष्ठा का अद्‌भुत चित्रण है। राधाचरणनख–ज्योति के हृदय में उदित होने की प्रार्थना उन्होंने अनेक स्थानों पर प्रकाशित की है। राधा–दास्य निष्ठा के साथ वृन्दावनधामनिष्ठा का भी निरूपण किया है।

२. *श्रीवृन्दावनमहिमामृतम् (वृन्दावन–शतक)*–इस ग्रंथरत्न की श्रीसरस्वतीपाद ने एक सौ शतकों में रचना की–यह बात प्रसिद्ध है, किन्तु केवल सतरह शतक ही प्राप्त हो सके हैं। श्रीसरस्वतीपाद के हृदय में श्रीराधा–भाव–द्युति सुवलित श्रीकृष्णचैतन्यदेव की अनुकम्पा से श्रीवृन्दावन के लोकातीत सौन्दर्य–माधुर्य की स्फूर्त्ति हुई। उसके फलस्वरूप उन्होंने इसका संकलन किया। इसका भाषा–माधुर्य, वर्णन–सौन्दर्य, वस्तु–वैभव एवं कल्पना–गौरव संस्कृत–भाण्डार का एक निरुपम रत्न है। समस्त साधकों का निरतिशय कल्याण करने वाली सिद्ध हुई है उनकी यह रचना। वृन्दावन–रसोपासना, राधारसोपासना तथा युगल किशोर–कुञ्जकेलि–रसोपासना का सुदृढ़ स्तम्भ है यह श्रीवृन्दावनमहिमामृत। श्रीवृन्दावनीय स्थावर–जंगमात्मक जितनी वस्तुएँ हैं उनके प्रति सम्मान–ज्ञापन, चिदानन्द–वृन्दावन के स्वरूप का साक्षात्कार, व्रजजन–सेवा, व्रज–वासनिष्ठा, वासफल, गुरुतत्व, आत्म–तत्व, राधाकृष्ण–तत्त्व तथा गोपी–मञ्जरी–तत्त्व आदि की ही सर्वत्र इस रचना में आलोचना की गई है। वह अति प्रगाढ़ है, भावैकगम्य है, श्रीगौरांगकृपालभ्य एवं अनुरागैक–संवेद्य है।

यही कारण है कि इस रचना ने सार्वजनीन ग्रन्थ का स्थान प्राप्त कर लिया है। समस्त सम्प्रदाय इससे अपनी उपासना–शैली, व्रजवासनिष्ठा को दृढ़ करते हैं। अतः सम्प्रदाय–सीमातीत है यह अपूर्व रचना।

इस रचना में श्रीविश्वनाथ चक्रवर्तिपाद के श्रीकृष्णभावनामृत तथा श्रीमद्‌रूपगोस्वामिपाद के श्रीनिकुंजरहस्यस्तव की तरह सम्प्रयोग–सम्भोग वर्णना में ही श्रीसरस्वतीपाद का जितना अधिक आवेश दिखाई देता है, उतना लीला–विलास में नहीं। इसी प्रकार उनका हदवत् लीला में ही अधिक झुकाव है।

रागानुगा–मार्ग भजनानुकूल रुचि जिन साधकों में अभी उदित नहीं हो पाई, उन साधकों को वैधी सम्वलित भाव से भजन करने का निर्देश श्रीजीवगोस्वामिपाद ने किया है। किन्तु जिनमें रागानुगीय–भजन की रुचि उत्पन्न हो चुकी है, वे कैसा, क्या भजन करें, उसका उन्नत–उज्ज्वल आदर्श ज्वलन्त अक्षरों में प्रदर्शित किया है श्रीसरस्वतीपाद ने इस रचना में।

३. *श्रीराधारससुधानिधि*–यह एक स्तोत्र काव्य है। श्रीवृन्दावन के दिव्यातिदिव्य सौन्दर्य–माधुर्यमय स्वरूप के स्फुरित होते ही श्रीसरस्वतीपाद का जो प्रकृत स्वरूप है, वह उच्छलित हो उठा अर्थात् व्रज–लीला में ये श्रीतुंगविद्या हैं। उस स्वरूप की स्फूर्त्ति में ये अपने प्राणधन श्रीश्रीराधाकृष्ण की उपासना में तल्लीन हो गए। वस्तुतः श्रीगौरांगदेव की कृपा से नाम–माधुरी, प्रेम माधुरी तथा वृन्दावन रस–माधुरी में प्रवेशाधिकार प्राप्त हो सकता है। उस अधिकार को तो ये पहले ही प्राप्त कर चुके थे। अतः इनमें परम रसचमत्कार–माधुर्य–सीमा राधातत्त्व की भी स्फूर्त्ति जाग उठी। जिसके फलस्वरूप इन्होंने राधातत्त्व को लावण्यसार, कृष्णसुखैकसार, कारुण्यसार, माधुर्यसार, वैदग्धिसार, रतिकेलिविलाससार तथा अखिल सारात्सार अनुभव कर श्रीराधाजी की लीलाखेलन–चातुरी, वचन–चातुरी, कुंज अभिसार–चातुरी तथा नवनवायमान क्रीड़ा–कला–चातुरी आदि का अद्‌भुत वर्णन इस रचना में किया। श्रीरूपगोस्वामि विरचित श्रीउज्ज्वलनीलमणि वर्णित लक्षणों के अनुसार श्रीराधाजी कभी अभिसारिका हैं (श्लोक सं० २०, २१, ३२, १५२), कभी प्रेमवैचित्यापन्ना हैं (श्लोक ४७, १२८) कभी उत्कण्ठिता (३८) और कभी खण्डिता (२३१) हैं–इन सब रूपों का निरूपण मिलता है इस रचना में।

श्रीउज्ज्वलनीलमणि में व्रजलीला में श्रीतुंगविद्या का स्वभाव वर्णित है–दक्षिणा प्रखरा नायिका, माननिर्बन्धासहा, नायक–भेद्या तथा लघु–प्रखरा। अतः श्रीप्रियाप्रीतम के विच्छेदाभास होने पर भी यह अन्दर–बाहर जल उठती हैं। इसलिए इस रचना में कहीं भी मान का इन्होंने उल्लेख नहीं किया है। केवल श्लोक सं० १७० में मान का संकेत मिलता है।

श्रीवृन्दावनमहिमामृत (१५/७४/७६) की तरह इस रचना (६५ से ६७) में भी श्रीराधानाम–महिमा, राधादास्य–निष्ठा, युगलकेलि विलास आदि का निरूपण किया गया है।

यहाँ यह विषय आलोचनीय है कि उक्त रचना–'श्रीराधारससुधानिधि' के दो रूप प्राप्त होते हैं। एक रूप तो श्रीप्रबोधानन्द सरस्वतीपाद विरचित है, जिसमें सर्वप्रथम भारतीय प्राचीन परम्परानुसार नमस्कारात्मक मंगलाचरण का इस प्रकार उल्लेख है–

निन्दन्तं पुलकोत्करेण विकसन्नीपप्रसूनच्छबि
प्रोर्ध्वीकृत्य भुजद्वयं हरिहरीत्युच्चैर्वदन्तं मुहुः ।
नृत्यन्तं द्रुतमश्रुनिर्झरचयैः सि चन्तमुर्वीतलं
गायन्तंनजपार्षदैः परिवृतं श्रीगौरचन्द्रं नुमः ।। १ ।।

"प्रेमपुलकित स्वकीय विग्रह–सुषमा द्वारा प्रफुल्लित कदम्ब की शोभा को निन्दित करने वाली स्वर्णदण्डवत् दोनों भुजाओं को बारम्बार ऊँचा उठाते हुए, नृत्यपूर्वक उच्चस्वर में श्रीहरि–ध्वनि करते समय प्रेमाश्रुओं से पृथ्वी को परिसिंचन करने वाले, संकीर्तनकारी–पार्षदों से परिवृत श्रीगौरचन्द्र श्रीकृष्णचैतन्यदेव को मैं नमस्कार करता हूँ।"

और अन्त में ग्रन्थकार ने अपना परिचय इस प्रकार दिया है–

स जयति गौरपयोधिर्मायावादार्कतापसन्तप्तम् ।
हृन्नभ उदाशीतलयद् यो राधारससुधानिधिना ।।२६२।।

"उस गौर–सिन्धु की जय हो, जिन्होंने मेरे मायावाद रूपी सूर्य से सन्तप्त हृदयाकाश को "श्रीराधारससुधानिधि" के द्वारा सुशीतल किया है।"

इस रूप के अर्थात् श्रीश्रीगौरांग प्रियपार्षद श्रीप्रबोधानंद सरस्वतिपाद–विरचित श्रीराधारससुधानिधि के अनेक संकलन बंगला भाषा में मूल, अनुवाद एवं संस्कृतटीकाओं सहित चिरमुद्रित प्राप्त होते हैं। श्रीमधुसूदनदास अधिकारी "श्रीवैष्णव संगिनी, कार्यालय एलारी जिला हुगली ने बंगला अक्षरों में इसे अनुवाद सहित लगभग १०० वर्ष पहले मुद्रित कराया था। उन्होंने भी इस रूप की प्राचीन हस्तलिखित श्रीराधारससुधानिधि जयपुर के श्रीगोविन्द पुस्तकागार में विद्यमान होने का उल्लेख किया है। सोशल एण्ड कल्चरल एजूकेशन

डवलपमेण्ट ऑफ कल्चरल एण्ड ऐस्थेटिक एजूकेशन की पञ्चवर्षीय योजना (Second five Year Plan-Social and cultural Education Development of cultural & Aesthetic Education) के अन्तर्गत भारत सरकार की सहायता से प्रकाशित श्रीश्रीगौड़ीय वैष्णव अभिधान के रचयिता श्रीहरिदासजी ने भी इस बात की पुष्टि की है। इसी रूप की श्रीराधारससुधानिधि का 'आस्वादनी-टीका' सहित प्रकाशन श्रीप्रमोदगोपाल भक्तिशास्त्री द्वारा भी कराया गया है तथा श्रीपुरी गोस्वामिपाद द्वारा सम्पादित भी यह छापी जा चुकी है। दूसरे रूप की प्रति भी जयपुर श्रीगोविन्द ग्रन्थागार में ही विद्यमान बताई जाती है, जिस पर श्रीहितहरिवंश गोस्वामिपाद विरचित अंकित है। इस रूप के संकलन भी कई महानुभावों द्वारा प्रकाशित किए जा चुके हैं किन्तु इन संकलनों में नमस्कारात्मक मंगलाचरण का पहला श्लोक तथा ग्रन्थ रचयिता के परिचय देने वाला अन्तिम श्लोक नहीं है। इसमें २७२ की बजाय २७० श्लोक ही हैं। उन दो श्लोकों को छोड़कर दोनों रूपों के सब श्लोक अक्षरशः एक हैं। उनमें कहीं भी ग्रन्थकार का परिचय नहीं मिलता।

दूसरे रूप के संकलनों में इस रचना के नाम में परस्पर मतभेद है। रसकुलिया के टीकाकार ने इस रचना का नाम 'श्रीराधारससुधानिधिस्तव' स्वीकार किया है। दूसरे तीन संकलनों में (जो लेखक के देखने में आए हैं) सबने मुखपृष्ठ पर "श्रीराधासुधानिधि" तथा अन्दर कहीं "श्रीराधासुधानिधि" और कहीं "श्रीराधारससुधानिधि" नाम का उल्लेख किया है। उन्होंने रस-शब्द निकाल डाला है।

एक सम्पादक ने तो रस-शब्द को इस रचना के नाम में जोड़ने के लिए गौड़ीय वैष्णवों को दोषी ठहराया है। जब कि वह इस रचना को श्रीहितहरिवंश रचित प्रमाणित करने के लिए मि० ग्राउस (MR.GROWSE) की मथुरा (MATHURA) नामक पुस्तक की पंक्तियां उद्धृत करता है-जिसमें मि० ग्राउस ने स्पष्टतः रस-शब्द का उल्लेख किया है-The Stotra-Kavya, named Radha Rasa-Sudha nidhi.

दोनों रूपों के सम्पादकों ने इस रचना का २७१ वां श्लोक अपने अपने संकलनों में स्वीकार किया एवं प्रकाशित भी किया है। उसमें ग्रन्थकार ने स्वयं

इस रचना का नाम स्पष्ट किया है—

अद्भुतानन्द लोभश्चेन्नाम्ना "रससुधानिधिः" ।
स्तवोयं कर्णकलशैर्गृहीत्वा पीयतां बुधाः ।।२७१।।

हे बुद्धिमान जनो ! यदि आपके हृदय में अद्भुत–आनन्द आस्वादन करने का लोभ है तो इस (राधा) रससुधानिधि स्तव का कानरूपी कलशों से ग्रहण कर पान कीजिए।

श्रीहितसुधासार के मतानुसार भी इस रचना का नाम 'श्रीराधारससुधानिधि' प्रमाणित हो रहा है। षाण्मासिक कृत श्रीमद् "राधारससुधानिधिः"। अतः इस प्रकार का दोष कि "रस"–शब्द इस रचना के नाम में गौड़ीय वैष्णव अब जोड़ने लगे हैं, बिल्कुल निराधार है। अत्यन्त आश्चर्य की बात यह कि अब हित हरिवंशी भी अब इस में 'रस'–शब्द जोड़ने का दोष वहन करने लगे हैं। उन्होंने देखा बीसों संकलन हिन्दी में श्रीराधासुधानिधि के छप चुके हैं और उनकी कपट कलाई उघर गयी है, तो 'रस' शब्द जोड़कर रंग बदलने लगे हैं।

श्रीहितहरिवंश गोस्वामिपाद के अनुयायी इस रचना को श्रीहितहरिवंश–रचित होने के पक्ष में केवल मि० ग्राउस की पंक्तियों का प्रमाण उपस्थित करते हैं, जो एक बाह्य प्रमाण है।

किन्तु गौड़ीयवैष्णव इस रचना को श्रीप्रबोधानन्द सरस्वती–रचित होने के पक्ष में अनेक आधार और आभ्यन्तरीण प्रमाण उपस्थित करते हैं जो बाह्यप्रमाणों से प्रबल माने जाते हैं—

१. श्रीगोविन्दग्रन्थागार, जयपुर में प्राचीनतम हस्तलिखित श्रीराधारस–सुधानिधि की वह प्रति विद्यमान है जिस पर श्रीकृष्णचैतन्य–प्रियपार्षद श्रीप्रबोधानन्द सरस्वतिपाद विरचित अंकित है।

२. इस रचना की भाव–भाषा–शैली, शब्द–विन्यास, श्रीप्रबोधानन्द सरस्वतिपाद की अन्यान्य रचनाओं—श्रीवृन्दावन महिमामृतम्,श्रीसंगीतमाधव, श्रीचैतन्यचन्द्रामृत आदि के साथ पूर्ण सादृश्य रखती है, वर्णन–शैली बिल्कुल मिलती–जुलती है यहां तक कि श्रीराधारस–सुधानिधि में प्रयुक्त शब्द हू–बहू श्रीवृन्दावनमहिमामृत एवं श्रीसंगीतमाधव में पाए जाते हैं। यथा—सान्द्रकृपैकसिन्धु,

सुधारसौघं, महामधुरांगभंगि, नखचन्द्रच्छटौघया अमर्यादकृपा–सिन्धोः, इत्यादि।

३. श्रीप्रबोधानन्द सरस्वतिपाद व्रजलीला में श्रीतुंगविद्या सखी थे–

तुंगविद्या व्रजे यासीत् सर्वशास्त्रे विशारदा ।
सा प्रबोधानन्द यतिगौरोद्‌गान सरस्वती ।।

इनका स्वभाव दक्षिण–प्रखरा, माननिर्बन्धासहा तथा नायकभेद्या वर्णन किया गया है। ठीक इसी स्वभाव के अनुसार श्रीराधारससुधानिधि का स्तवगान है–यह काव्य–भाव ज्ञाताओं का अभिमत है।

४. श्रीहितहरिवंश गोस्वामिपाद का कविरूप से केवल हिन्दी–साहित्य में अमर–स्थान है। संस्कृत काव्य में उनकी कोई भी रचना नहीं है। "यमुनाष्टक" के विषय में भी अन्वेषकों का मत है वह किसी पुष्टिमार्गीय आचार्यपाद का रचित है। श्रीराधारससुधानिधि जैसे स्तव का रचयिता कभी हिन्दी–काव्य में रुचि नहीं रख सकता। जबकि श्रीहितहरिवंश रचित दोनों रचनाएँ–चतुरासी तथा स्फुटवाणी हिन्दी–काव्य में ही प्रसिद्ध हैं।

५. इस रचना में कहीं भी "हितहरिवंश" नाम की छाप या उल्लेख नहीं है जब कि उनकी दूसरी रचनाओं में चतुरासी तथा स्फुटवाणी के एक–एक पद में "श्रीहितहरिवंश" नाम की छाप है, यहां तक कि दो पंक्तियों के दोहे में भी उन्होंने अपनी छाप दी है।

६. श्रीराधारससुधानिधि में कहीं भी श्रीहितहरिवंश गोस्वामिपाद के आराध्यदेव श्रीनवरंगीलाल तथा श्रीराधाबल्लभजी का नामोल्लेख नहीं है।

७. श्रीराधाबल्लभीय–वैष्णवों का कहना है कि आचार्यपाद की हस्तलिखित चतुराशी, स्फुटवाणी यहां तक कि उनके द्वारा अपने पुत्रों को लिखे हुए दो पत्रों की भी प्रतियां सुरक्षित हैं। परन्तु किसी ने भी आज तक श्रीराधारससुधानिधि की उनके द्वारा हस्तलिखित प्रति सुरक्षित होने का उल्लेख नहीं किया।

८. श्रीप्रबोधानन्दसरस्वतिपाद की अन्यान्य रचनाओं की तरह श्रीराधारससुधानिधि में भी दैन्य, प्रार्थना, माहात्म्य, सेवाभिलाष वर्णित है। किन्तु श्रीहितहरिवंश गोस्वामिपाद की रचनाओं में इन भावों के विपरीत लीला–दर्शन, उल्लास एवं आशीर्वाद वचनों तक का भी उल्लेख है–

"जय श्रीहित हरिवंश करहु दिन दोऊ अचल बिहार" चतुरासी–५६ उनमें प्रणय–कोप भरे वचनों का भी प्रयोग दीखता है–

"अपनी बात मोसौं कहिरी भामिनी औंगी–मौंगी रहत गरब की माती" चतुरासी–१५

९. गौड़ीय अन्वेषकों का मत है कि मि० ग्राउस पर अनुचित दबाव डालकर इस रचना के विषय में श्रीहितहरिवंश रचित सम्बन्धी पंक्तियां लिखाई गई हों ऐसा सम्भव है। क्योंकि आज भी ऐसा देखने में आता है कि जहां विश्वविद्यालयों में श्रीराधाबल्लभीय अधिकारी उच्चपदस्थ हैं, वे गाइड के रूप में वैष्णव–दर्शन या वैष्णव आचार्यों के विषय में शोध करने वाले पी.–एच.डी. के शोधकर्त्ताओं को किसी न किसी प्रसंग में श्रीराधारस–सुधानिधि श्लोक का उल्लेख कराकर उसे श्रीहितहरिवंश रचित लिखने पर मजबूर करते हैं। शोधकर्त्ताओं को ऐसा करना पड़ता है।

१०. श्रीराधारससुधानिधि का पाठ अथवा कथा–व्याख्या जिस अद्भुत रसमयीशैली से अब भी श्रीगौड़ीय आचार्य करते हैं, अथवा जितना लीला–चिन्तन रस–परिवेशन वे कर सकते हैं, और कोई भी नहीं कर सकता। श्रीराधाबल्लभीय आचार्यपाद भी श्रीमद् अद्वैतप्रभु–वंशज प्रभुपाद श्रीआनन्दगोपाल गोस्वामी नवद्वीप निवासी द्वारा इसका पाठ श्रवण करते रहे हैं।

११. श्रीभक्तमाल की प्रसिद्ध भक्तिरस बोधिनीटीका ३६५ में वर्णित है कि–

आये घर त्यागि, राग बढ्यो प्रिया–प्रीतम सौं,
विप्र बड़ भाग हरि आज्ञा दई जानियै ।
मेरी उभै सुता, ब्याह देतौ लेवो नाम मेरो,
इनको जो वंस सो प्रसंस जग मानियै ।।

श्रीहितहरिवंशजी अपनी स्त्री रुक्मिणीजी के गर्भ से पैदा हुए दो पुत्र और एक कन्या के उत्तरदायित्व से मुक्त होकर अर्थात् उनका विवाहादि करके घर–बार को त्यागकर ३१ वर्ष की उम्र में वृन्दावन की ओर रवाना हुए। उनके हृदय में–श्रीराधा–कृष्ण का अनुराग बढ़ गया था, किन्तु उस समय एक बड़

भागी ब्राह्मण को स्वप्न हुआ कि अपनी दोनों लड़कियों कृष्णदासी और मनोहरदासी का विवाह श्रीहितहरिवंशजी से श्रीभगवान् का नाम लेकर कर दो। ऐसा ही हुआ श्रीहितहरिवंश जी ने उन दोनों के साथ विवाह कर लिया और उससे जो सन्तानें हुई वे जगत् में प्रसिद्ध हुईं।

३१ वर्ष के बाद तो उनके हृदय में श्रीराधा–कृष्ण का अनुराग उदय हुआ। जिससे वे श्रीवृन्दावन की ओर अग्रसर हुए, फिर छः मास के जब वे थे तो इन्होंने श्रीराधारससुधा–निधि की रचना की–ऐसा प्रचार करना वस्तुतः आश्चर्यजनक है। द्वितीयतः यदि कोई छोटा बालक प्राक्तन संस्कारवश कोई स्तवगान करे तो यह आवश्यक नहीं कि वह उस स्तव का रचयिता भी हो।

१२. श्रीराधारससुधानिधि में प्रयुक्त प्रेमोल्लासैकसीमा, परमरस–चमत्कारैकसीमा, सौन्दर्यैकसीमा, नववयोरूपलावण्यसीमा, लीलामाधुर्य–सीमा, निजजन–परमोदार्यवात्सल्यसीमा, सौख्यसीमा, कलाकेलिमाधुर्यसीमा तथा शुद्धप्रेमविलासवैभवनिधिः, कैशोरशोभानिधि वैदग्धी– मधुरांगभंगिमनिधि, लावण्य–सम्पन्निधि महारसनिधि, कन्दर्पलीलानिधि, सौन्दर्यैक–सुधानिधि, एवं मधुपतेः सर्वस्वभूतोनिधि–इस प्रकार का जो शब्द–विन्यास है वह श्रीप्रबोधानन्द सरस्वतिपाद की प्रत्येक रचना में दीखता है, हितचतुरासी तथा स्फुटवाणी में कहीं भी नहीं दीखता–ऐसी भाव–भाषा का आभास तक भी नहीं दीखता।

इस प्रकार की अनेक युक्तियां तथा आभ्यन्तरीण प्रमाणों द्वारा गौड़ीयवैष्णव इसे श्रीप्रबोधानन्द सरस्वति की ही रचना सिद्ध करते हैं।

गौड़ीय वैष्णवों ने इस रचना को राधाबल्लभीय–वैष्णवों द्वारा श्रीहितहरिवंश–रचित प्रकाशित–प्रचारित करने पर आज तक क्यों कोई आपत्ति नहीं उठाई ?–इस प्रश्न का भी उपयुक्त उत्तर वे देते हैं–

'चिड़ी चोंच भरि ले गई नदी न घट्यो नीर'

गौड़ीय साहित्य का बहुत बड़ा भण्डार है जो अन्य किसी भी सम्प्रदाय के पास नहीं है। इस जैसी असंख्य रचनाएँ उनके पास हैं। अकेले श्रीसरस्वतीपाद की ही ६ रचनाएँ हैं। उनमें से यदि एक रचना में किसी वैष्णवसमाज को अपनी रसोपासना की भित्ती मिलती है और वह इसको एकमात्र अपनी उपासना का आधार मानकर श्रीराधाकृष्ण–लीला रस का आस्वादन करता है तो आपत्ति

कैसी और क्यों ? इससे बड़ी सार्थकता श्रीसरस्वतिपाद की रचना की और क्या हो सकती है?

विशेषत: गौड़ीयवैष्णवों का यह भी कहना है कि श्रीसरस्वतिपाद ने स्वयं ही अपनी इस राधादास्यैकनिष्ठापरक रचना को श्रीहितहरिवंश जी को उनके मनोवांछित अवदान रूप में प्रदान किया था।

इस प्रकार दो मत हैं इस रचना के सम्बन्ध में। किन्तु लेखक का यह मन्तव्य है कि यह परम आस्वादनीय रसमय निधि है। श्रीश्रीकृष्णोपासक सिद्ध–साधकों के लिए यह जीवनमूरि तुल्य है।

४. *संगीतमाधव*–श्रीसरस्वतिपाद की यह गीतकाव्य रचना है। इसमें १६ सर्ग हैं एवं अनेक संगीत। इनकी अन्यान्य रचनाओं की तरह इसमें भी 'मान' का कहीं वर्णन नहीं है। बल्कि श्रीराधाजी अधिकतर कृष्णविरह में विधुरा दिखाई गई हैं। इसमें रासलीला का अति स्वाभाविक वर्णन है। श्रीसरस्वतीपाद (तुंगविद्या) का दक्षिणा–नायिका स्वभाव इस रचना में भी सर्वत्र अभिव्यक्त हो रहा है। श्रीजयदेवकवि की मधुर–कोमल–कान्त पदावलि का अनुसरण होने से इसमें गौड़ीय वैष्णवों की साधनोपासना का उपयुक्त सम्भार है।

५. *आश्चर्यरासप्रबन्ध*–श्रीमद्भागवत–वर्णित रासलीला के आधार पर इस ग्रन्थ की रचना होने पर भी इसमें यथेष्ट विलक्षणता और अद्भुतत्व है। अत: यह 'आश्चर्यरास–प्रबन्ध' नाम से विख्यात है। अपनी अन्यान्य रचनाओं में श्रीसरस्वतिपाद प्रेमोन्मत्त हो उठने के कारण धारावाहिक–लीला या अपना विषय वर्णन नहीं कर पाए, परन्तु इस रचना में उन्होंने सम्पूर्ण धारा को अक्षुण्ण रखा है।

६. *श्रुति–स्तुति–व्याख्या*–श्रीमद्भागवत (१०/८७) में वर्णित वेद–स्तुति की संस्कृत में विस्तृत व्याख्या है इस रचना में। इसमें श्रुतिरूपा गोपी तथा नित्य शुद्ध भावमयी गोपियों के बोधन प्रकार दो भावों में व्यक्त किये गये हैं।

७. *कामबीज व कामगायत्री व्याख्यान*– श्रीसरस्वतिपाद ने इस रचना में कामगायत्री के प्रति अक्षर की व्याख्या दी है। श्रीकृष्णस्वरूप कामगायत्री के किस अक्षर में उनका कौन सा अंग लक्षित हुआ है, वह भी इसमें अभिधानानुसार

व्यक्त किया गया है।

८. *श्रीगीतगोविन्द–व्याख्यान*–इसमें गौड़ीयवैष्णवाचार्य रसिक अनन्य श्रीजयदेव–रचित श्रीगीतगोविन्द की अद्‌भुत व्याख्या है श्रीसरस्वतिपाद कृत। इसकी प्राचीन प्रति भी श्रीगोविन्द ग्रन्थागार में विद्यमान है। इस टीका के भाषा–माधुर्य, व्याख्यान–कौशल तथा रसनिष्कासन में सरस्वतिपाद का प्रचुरतर आवेश लक्ष्य करने योग्य है।

९. *श्रीगौरसुधाकर–चित्राष्टक*–इसमें श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु की अद्‌भुत महिमा– माधुरी का गान किया गया है।

इस प्रकार अनेक रचनायें श्रीप्रबोधानन्द सरस्वतीपाद की उपलब्ध हैं। इन रचनाओं का अध्ययन कर हम इस रहस्य का भी अनुभव करते हैं कि उन्होंने अपनी विविध रचनाओं में एकान्त–निष्ठा का निरूपण किया है। श्रीचैतन्यचन्द्रामृत में गौर–निष्ठा का, श्रीराधारस–सुधानिधि में राधादास्य–निष्ठा का, श्रीवृन्दावनमहिमामृत में वृन्दावनधाम–निष्ठा का तथा श्रीसंगीतमाधव में राधाकृष्ण–केलिविलास चिन्तन–निष्ठा का अभूतपूर्व एवं अद्‌भुत वर्णन किया है।

किन्तु इस रहस्य को न समझ सकने वाले कुछ एक लोगों की बुद्धि भ्रान्त हो उठी है। वे श्रीचैतन्यचन्द्रामृत, आश्चर्यरासप्रबन्ध, श्रुति–स्तुति व्याख्या आदि रचनाओं के कर्त्ता श्रीप्रबोधानन्द सरस्वती को पृथक् सिद्ध करने में लगे हैं और श्रीवृन्दावनमहिमामृत तथा श्रीसंगीतमाधव आदि के रचयिता श्रीप्रबोधानन्दसरस्वतीपाद को पृथक् सिद्ध करने में। श्रीचैतन्यचन्द्रामृत आदि के रचयिता श्रीप्रबोधानन्दसरस्वती को तो वे श्रीकृष्णचैतन्य का कृपापात्र कहने लगे हैं और श्रीवृन्दावनमहिमामृत तथा संगीतमाधवादि के रचयिता श्रीप्रबोधानन्द सरस्वती को श्रीहितहरिवंश जी का कृपापात्र बताने लगे हैं। यह उनकी एक नई सूझ है जो वर्ष १९७७ में ही उनकी भ्रान्तबुद्धि में उभर कर आई है।

वस्तुतः जिन लोगों को चिन्मय अद्वयतत्त्व परमानन्द रस वस्तु श्रीकृष्ण का स्वरूप ज्ञान नहीं है, उनके शक्ति, धाम एवं परिकरों के तत्त्व में किञ्चित् भी प्रवेश नहीं है, उनकी बुद्धि में इस प्रकार के उपद्रव उठ खड़े होना स्वाभाविक

है। श्रुति–स्मृति–पुराण–इतिहास अपौरुषेय प्रस्थानत्रयी के प्रति जो नास्तिक हैं, विशेषतः निगम–कल्पतरोर्गलित–फल रस–निधि श्रीमद्भागवत वर्णित भागवत धर्मों के विपरीत आचरण करने वाले हैं, उनके पक्ष में विभिन्न निष्ठान्तर्गत वैचित्रीमय रस का स्वरूप या रसोपासना तो बहुत दूर की वस्तु है–रस का शाब्दिक ज्ञान भी उन्हें प्राप्त होना असम्भव है। वह कूपमण्डुक की तरह अपनी मनोकल्पित धारणाओं में सीमित रहकर उपासना के किसी एक अंश रूपी हल्दी की गांठ लेकर अपने को पंसारी भी मान सकते हैं।

सच्चिदानन्दमय परब्रह्म स्वयं–भगवान् व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण परतत्त्व–वस्तु हैं, महाभावस्वरूपा उनकी ह्लादिनी शक्ति श्रीराधा उनसे अभिन्न–तत्त्व है। राधाभाव–द्युति–सुवलित श्रीगौरांग तो स्वयं श्रीकृष्ण हैं ही। उनका क्रीड़ास्थल चिन्मय–धाम श्रीवृन्दावन उनकी स्वरूप शक्ति संधिनी की परिणति है–इन सिद्धान्तों का जिसे ज्ञान है, वह गौर–निष्ठा, कृष्ण–निष्ठा, राधा–निष्ठा अथवा धाम–निष्ठा में एक ही तत्त्व का अनुभव एवं साक्षात्कार कर सकता है। श्रीसरस्वतिपाद ने स्वयं ही उपर्युक्त भ्रान्ति की निवृत्ति श्रीचैतन्य–चन्द्रामृत में अपने शब्दों में इस प्रकार की है–

यथा यथा गौरपदारविन्दे विन्देत भक्तिं कृतपुण्यराशिः ।
तथा तथोत्सर्पति हृद्यकस्मात् राधापदाम्भोजसुधाम्बुराशिः ।।८७।।

पुण्यात्मा व्यक्ति ज्यों ही श्रीगौरांग महाप्रभु के चरणारविन्द की भक्ति प्राप्त करते हैं, तभी ही उनके हृदय में श्रीराधाचरण–कमलों की प्रेमसुधा अपने आप ही उदित हो उठती है।

प्रेमा नामाद्भुतार्थः श्रवणपथगतः कस्य नाम्नां महिम्नः
को वेत्ता कस्य वृन्दावनविपिन महामाधुरीषु प्रवेशः ।
को वा जानाति राधां परमरस चमत्कारमाधुर्यसीमा-
मेकश्चैतन्यचन्द्रः परमकरुणया सर्वमाविश्चकार ।।१३०।।

प्रेम ही अद्भुत परम पुरुषार्थ है–यह बात पहले किसने कानों से सुनी थी? श्रीनाम की कैसी महिमा है–कौन जानता था यह। श्रीवृन्दावन की महामाधुरी में किसका प्रवेश था? श्रीराधा परम रसचमत्कारमाधुर्य की सीमा

हैं—इस रहस्य का किसे ज्ञान था—इन सब रहस्यों का एकमात्र श्रीकृष्णचैतन्यदेव ने परम कृपालुतावश उद्घाटन किया है।

श्रीवृन्दावनरस की विशुद्ध प्रेमभक्ति सम्पत्ति को प्रदान करने के लिये स्वयं श्रीव्रजेन्द्रनन्दन ही श्रीशचीनन्दन के रूप में अवतीर्ण हुये। इनके आविर्भाव से पहले इन रहस्यों को कौन जानता था ? अतः श्रीमन्महाप्रभु श्रीकृष्णचैतन्यदेव की कृपा से ही श्रीसरस्वतीपाद में राधातत्त्व, कृष्णतत्त्व, तत्केलिविलासतत्त्व एवं धामतत्त्व आदि परम साध्य स्वरूपों का यथार्थ स्फुरण हो उठा। अतः इन विभिन्न निष्ठापूर्ण रचनाओं को देखकर पृथक्–पृथक् रचयिताओं की बात सोचना तत्त्व–अनभिज्ञता है' मात्सर्य है।

पूज्यपाद श्री नाभा जी कृत श्रीभक्तमाल तथा उसकी प्राचीनतम एवं सर्व सम्प्रदाय–सम्मत टीका भक्तिरसबोधिनी (कवित्त सं० ६१२) में श्रीसरस्वतिपाद के विषय में अति स्पष्ट उल्लेख है, जो समस्त भ्रम–सन्देह को नष्ट कर देता है—

श्रीप्रबोधानन्द बड़े रसिक आनन्द-कन्द,
श्रीचैतन्यचन्द्रजू के पारषद प्यारे हैं ।
राधाकृष्ण-कुञ्जकेलि, निपट नवेलि कही,
झेलि रस-रूप दोऊ किये दृग-तारे हैं ।
वृन्दावन-वास को हुलास लै प्रकाश कियौ,
दियौ सुखसिन्धु कर्म-धर्म सब टारे हैं ।
ताही सुनि-सुनि कोटि-कोटि जन रंग पायौ,
विपिन सुहायौ, बसे तन-मन वारे हैं ।।

श्रीप्रबोधानन्द सरस्वतिपाद महान रसिक थे। रस–रसोपासना के वेत्ता थे और भगवदानन्द में सदा मग्न रहते थे। श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु जी के प्रिय पार्षद थे—परम गौरनिष्ठ थे। इन्होंने श्रीश्रीराधाकृष्ण की ऐसी निपट–नवीन कुञ्जकेलि का वर्णन किया कि इनसे पहले (श्रीगौरांग कृपा के बिना) उसका कोई अनुमान ही नहीं कर सका था। इस पंक्ति से श्रीराधारससुधानिधि अभिप्रेत है—ऐसा शोधकर्ताओं का मत है।

श्रीसरस्वतिपाद ने श्रीवृन्दावन-वास की निष्ठा तथा हुलास एवं धाम उपासना का अद्भुत प्रकाश किया वैष्णव जगत् में। वह प्रकाश मूर्तिमान श्रीवृन्दावनमहिमामृत ही है। समस्त वैष्णव सम्प्रदायें इस तथ्य को स्वीकार करती हैं। अन्यान्य सम्प्रदायी धाम-रसिक वाणीकारों ने भी इनकी इस रचना के श्लोकों का अक्षरशः अनुवाद करके आस्वादन किया है। श्रीसरस्वतिपाद ने श्रीवृन्दावन में वास कर जैसा कि उनके जीवन-चरित्र से स्पष्ट है, समस्त कर्म-धर्मों को केवल स्वयं ही त्याग नहीं किया, केवल स्वयं तन-मन इस परमपावन भूमि पर न्यौछावर नहीं कर दिये, बल्कि उनकी वाणी का अनुसरण कर असंख्य साधक-सिद्ध एवं आचार्यवर्गों ने भी इस श्रीवृन्दावन की रज में सर्वस्व न्यौछावर कर दिया, आज भी करते हैं और करते रहेंगे।

आज यदि कोई यह कहता है कि "श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु के प्रिय पार्षद श्रीप्रबोधानन्द सरस्वतिपाद श्रीवृन्दावन में आये ही नहीं थे," इसे एक अनर्गल बकवाद के सिवा और क्या कहा जा सकता है ? हालांकि समस्त इतिहासकारों ने 'समस्त सम्प्रदायों के महानुभावों ने स्पष्ट उद्घोष किया है कि उपर्युक्त रचनाओं का प्रणेता एक ही है और वे हैं श्रीकृष्णचैतन्यदेव के प्रिय-पार्षद श्रीप्रबोधानन्द सरस्वतिपाद।

इतने विशाल एवं ज्वलन्त ऐतिहासिक आलोक में भी यदि किसी को न तो श्रीसरस्वतिपाद का जीवनवृत ज्ञात हो पाया है और न उनकी रचनाओं का ज्ञान, तो फिर उसका कोई दोष भी नहीं मानना चाहिये, क्योंकि श्रीभगवान् की इस सृष्टि में कुछ ऐसे भी प्राणी हैं, जिन्हें प्रचण्ड सूर्य के अति ज्वलन्त आलोक में भी अंधेरा ही अंधेरा दीखता है।

वस्तुतः श्रीसरस्वतिपाद की श्रीश्रीराधाकृष्ण निपट-नवेली कुञ्जकेलि वर्णना तथा श्रीवृन्दावन-रसोपासना निष्ठाशैली को देखकर कौन ऐसा रसिक होगा जो उन्हें आत्मसात न करना चाहेगा ? क्योंकि उनकी रचनायें रसोपासना की मूल भित्ति हैं। श्रीवृन्दावन- महिमामृत में ही रसोपासना के सिद्ध मन्त्र "राधा" नाम का उल्लेख है (६/१३,१५/७३ आदि), राधादास्यनिष्ठा (५/२६, ६/८७, ६/६२ आदि में), राधाचरण निष्ठा (६/१७, ६/२४ से ३३, १३/१००

आदि में) स्पष्ट निरूपण हैं। श्रीसंगीतमाधव में राधादास्यनिष्ठा (८८) राधाचरणकमल निष्ठा (६८) बल्कि सम्पूर्ण रचना ही केलिविलास से भरपूर है, जैसे श्रीराधारससुधानिधि में राधानाम महिमा, राधादास्य तथा श्रीराधाकृष्ण–केलिविलास का अद्‌भुत वर्णन है– इन रचनाओं को अपनाए बिना रसिकों की रसोपासना का आखिर आधार क्या रह जाता है ?

इसी लोभ में ही यह भूमिका एक दो अ–पूर्व विद्वान तैयार कर रहे हैं कि श्रीप्रबोधानन्द सरस्वती श्रीहितहरिवंश जी के शिष्य हैं और वही इन रचनाओं के रचयिता हैं। अर्द्धकुक्कुटिन्यायवत् उनकी दूसरी रचनाओं को त्याग कर एक दूसरे श्रीप्रबोधानन्द सरस्वती की कल्पना कर रहे हैं।

आज तक श्रीराधारससुधानिधि को श्रीहितहरिवंशगोस्वामि रचित कहने वाले जितने भी सुधी सम्पादक एवं प्रकाशक हुये हैं, उनमें किसी ने भी इस बात को कहने का साहस नहीं किया कि श्रीप्रबोधानन्द सरस्वतिपाद श्रीहितहरिवंश जी के शिष्य थे। अतः आज के एक दो व्यक्तियों की यह कल्पना सम्भवतः गौड़ीय वैष्णवों के चिर प्रकाशित बंगला साहित्य पर आधारित मान्यताओं के विरुद्ध एक प्रतिक्रिया भी हो सकती है–अन्वेषक ऐसा अनुमान करते हैं।

श्रीगौड़ीय वैष्णवों का यह भी एक मत है कि श्रीसरस्वतिपाद ने स्वयं ही श्रीहितहरिवंश जी को श्रीराधा जी की साक्षात् असीम अनुकम्पा प्राप्त करने के बाद अपनी यह रचना "श्रीराधारससुधानिधि" आस्वादन के लिये प्रदान की थी। उससे पूर्व वे श्रीश्रीराधाकृष्णनिष्ठ होते हुये भी कृष्णनिष्ठ प्रधान थे–

क्योंकि श्रीहित चतुरासी में गौड़ीय–लीलाचिन्तनानुसार श्रीराधाकुण्ड–मिलन लीलह तथा निशान्त लीलाओं का स्पष्ट वर्णन मिलता है परकीया भाव मान तथा अभिसार का भी वर्णन मिलता है। विशेषतः गौड़ीय वैष्णवों के आराध्य देव श्रीराधारमण श्रीगौरश्याम आदि नामों का ही उल्लेख मिलता है, सबसे बड़ा आश्चर्य यह भी दीखता है कि श्रीहितचतुरासी में एक बार भी 'श्रीराधावल्लभ' नाम का उल्लेख नहीं है।

श्रीहितहरिवंश जी अपने पुत्र को जो पत्र लिखते थे उसमें बार–बार 'कृष्ण सुमिरन–वांचनौ' ऐसा ही उल्लेख करते थे।

श्रीस्फुटवाणी में भी उनकी श्रीकृष्ण–निष्ठा का स्पष्ट दर्शन होता है–

"अष्टम राहु चतुर्थ दिवामणि तौ हरिवंश करत न शंक ।
जौ पै कृष्णचरण मन अर्पित तो करि हैं कहा नवग्रह रंक ।।सवैया–१
'गोविन्द छाड़ि भ्रमत दशों दिश'–सवैया–२
"सुहरिपद भजु न विलम्ब कर"–छन्द–३
"कृष्ण भजन नह नीके"–सं० ४
"सकहि तो सब परपंच तजि कृष्ण कृष्ण गोविन्द कहि" छन्द–७
"तात भैया मेरी सौं कृष्णगुण संचु"–सं०–८

इन सब वचनों को देखकर गौड़ीयवैष्णव अपने इस मत की पुष्टि करते हैं कि श्रीहितहरिवंशजी पहले कृष्ण–निष्ठा–प्रधान थे। उन्होंने अपनी चतुरासी को 'कृष्णरसामृतसार' कहकर वर्णन किया है। इस विषय में वे श्रीमन्माध्व–मतमार्तण्ड श्रीहरिराम जी व्यास का पद भी प्रमाण रूप में प्रस्तुत करते हैं कि श्रीप्रबोधानन्द सरस्वतिपाद से इस रचना को पाकर उनकी राधानिष्ठा अथवा राधारसोपासना उन्नत हो उठी–

प्रबोधानन्द से कवि थोरे ।
जिन श्रीराधाबल्लभ की लीला में सब रस घोरे ।
केवल प्रेमविलास आस करि भवबन्धन दृढ़ तोरे ।
सहज माधुरी वचननि रसिक अनन्यन के चित चोरे ।[१]

श्रीप्रबोधानन्द सरस्वतिपाद जैसे कवि बहुत कम हैं अर्थात् विभिन्न निष्ठाओं की चरम सीमा–परक रचनाएँ इनका ही केवल वैशिष्ट्य है। और फिर इनके काव्य में जो शब्द–विन्यास, भाषा–शैली, वर्णन–सौन्दर्य भरा है वह और किसी भी कवि के काव्य में नहीं है। अतः इन जैसे कवि कोई विरले हैं। सबसे बड़ी विशेषता इनकी यह है कि इन्होंने श्रीराधावल्लभ जी की लीला में समस्त रस घोले हैं, अर्थात् श्रीराधावल्लभीय लीलाचिन्तन में–उपासना में राधानाम माधुर्यरस, राधादास्य–रस, राधाचरणकैंकर्यरस, कुञ्जकेलि–विलासरस, वृन्दावनवास निष्ठारस इत्यादि जितने भी रस हैं वे श्रीप्रबोधानन्द सरस्वति–पाद का अवदान है। इन्होंने ही समस्त रसों को घोलकर उनकी लीला को सरस

बना दिया है ! श्रीराधाकृपा रूपी प्रेमविलास के हुलास में समस्त कर्त्तव्य–अकर्त्तव्य, गुरु–अपराध, वैष्णवस्मृति उल्लंघन जनित ग्लानि आदि जितने भी बन्धनों की आशंका थी इन्होंने तोड़ डाली। विशेषत : अपनी सहज– मधुरवाणी के द्वारा रसिक अनन्यन के चित्त चुरा लिए थे। निष्पक्ष अन्वेषकों का मत है कि श्रीप्रबोधानन्द की 'सहज मधुरवाणी'–शब्द से श्रीराधारस सुधानिधि तथा 'रसिक–अनन्य' शब्द से श्रीहितहरिवंश जी ही अभिप्रेत हो सकते हैं।

सम्भवतः इन समस्त कारणोंवश श्रीप्रबोधानन्द सरस्वतिपाद को श्रीहितहरिवंशजी का शिष्य बताने की भूमिका बांधी जा रही है। पहले भी ऐसी एक भ्रान्ति श्रीहरिराम जी व्यास के सम्बन्ध में फैलाई जा चुकी है कि वे श्रीहितहरिवंशजी के शिष्य थे। वस्तुतः श्रीहितहरिवंशजी सम्वत् १५६० में श्रीवृन्दावन पधारे थे और १६०६ संवत् में आपका निकुञ्जगमन हुआ। और श्रीहरिराम जी व्यास ओरछा से सम्वत् १६१२ में ही वृन्दावन पधारे थे, जबकि श्रीहितहरिवंश जी को निकुंज पधारे तीन वर्ष हो चुके थे। श्रीहरिराम व्यास जी ने अपने पिताजी से ही दीक्षा–शिक्षा प्राप्त की थी। जो श्रीमन्माध्व सम्प्रदाय के वैष्णव थे। ऐसा लगता है जिन सन्तों ने, महानुभावों ने श्रीहितहरिवंश जी के प्रति अपनी रसभीनी भावनाएं प्रकट कीं, कुछ सहयोग किया, उन्हीं सबको ही ऐसे लोग श्रीहितहरिवंश जी का शिष्य बनाने में अपनी बुद्धि लड़ाने लगे हैं।

इन लोगों की भ्रान्त बुद्धि केवल अन्यान्य सम्प्रदायाचार्यों के विषय में काम कर रही हो, ऐसा नहीं है बल्कि अपनी सम्प्रदाय के भी स्वरूप को वे अति आश्चर्यजनक एवं अशास्त्रीय रूप में उपस्थित कर रहे हैं, जिसका अनुमान भी कोई वैष्णव, सनातन धर्मावलम्बी नहीं कर सकता। उसे कभी भी श्रीहितहरिवंश जी का अनुमोदित मत नहीं माना जा सकता, केवल उनकी व्यक्तिगत निकृष्ट धारणाओं पर ही वह आधारित दीखता है।

वे लिखते हैं–

१. उनका उपास्य न निर्गुण है न सगुण। किन्तु नित्य किशोर–दम्पत्ति है, जिसका नित्य विवाहोत्सव सम्पादित होता रहता है।

२. उनका उपास्य समस्त महत्–पुरुषों (भक्तों) व्रज परिकरों, व्रजलीला, गोविन्दप्रिय श्रीनन्द–यशोदा, श्रीकीर्ति–वृषभानु, सुबल–सुबाहु, व्रजगोपियों से

यहाँ तक कि प्रकट–अप्रकट श्रीवृन्दावन–धाम से सम्बन्ध रहित है, अलक्ष्य है।

३. उनका उपास्य न तुलसी का राम है न कबीर का निराकार, न सूरदास का नन्दनन्दन है। वह श्रीसूरदास के "बूझत श्याम कौन तू गौरी"–ऐसे–ऐसे व्रजलीला सम्बन्धी मधुर वाक्यों का भी मजाक उड़ाने का साहस करते हैं।

४. उनके उपास्य का नाम 'राधा–कृष्ण' भी नहीं है, उन जैसा रूप भी नहीं है। उनकी उपास्य–दम्पत्ति का किञ्चित् सादृश्य होने से उनके आचार्यवर को मजबूरन उसका नाम 'राधा–कृष्ण' मानना पड़ा है। श्रीनन्दनन्दन तथा श्रीवृषभानुनन्दिनी उस उपास्य–दम्पत्ति का नाम तो असंगत है। क्योंकि यदि वे श्रीनन्दनन्दन–वृषभानुकिशोरी को उपास्य मान लें तो उनकी उपासना सगुण हो जाती है।

५. श्रीराधा–कृष्ण की जोड़ी को वे द्वापरान्तकाल में प्रकट होने वाली मानते हैं ! सदैव प्रकट रहने वाला नहीं। भूत, भविष्य एवं वर्तमान काल में वह जोड़ी नहीं रहती, अतः उनकी वह उपास्य नहीं है।

६. उनका उपास्य षट्–भगपूर्ण भगवान् भी नहीं है। क्योंकि भगवान् में अनन्तता होती है किन्तु प्रेम का उपासक तो एक रूप का आराधक होता है। अतः उनकी प्रेमोपासना में भगवान् का कोई स्थान नहीं है।

७. नन्दनन्दन श्रीकृष्ण में अन्य अवतारों से अधिक माधुर्य तो है, परन्तु उनका रूप पूर्ण माधुर्य का अधिष्ठान नहीं है।

८. श्रीकृष्ण में पूर्ण एवं अशेष रूपसे प्रेमाधीनता वे नहीं देखते। वे कहते हैं–क्योंकि यदि श्रीकृष्ण में पूर्ण प्रेमाधीनता होती तो वे रास में एक गोपी को कन्धे पर चढ़ा लेते, बिलखती हुई न छोड़ जाते। यशोदा को मुख में ब्रह्माण्ड दिखाना, गिरिराज उठाना असुर–वध तथा महारास में अनन्त रूपों में आविर्भूत होना यह सिद्ध करता है कि श्रीकृष्ण में पूर्ण–माधुर्य का सन्निवेश नहीं है।

९. श्रीकृष्णरूप लोक–वेद की सीमाओं में आबद्ध है। अवतरित होने के कारण वह नित्य नहीं है।

१०. श्रीकृष्ण की निखिलरस–आस्वादनीयता एवं अनन्तता उनका एक दूषण है।

११. श्रीगोलोकबिहारी उनकी उपासना के अनुपयुक्त सिद्ध हुआ है।

१२. जैसे सुमेरु पर्वत का परिचय देने के लिए स्वर्णराशि को माध्यम बनाना पड़ता है, उसी प्रकार उनके आचार्यचरण को श्रीनन्दनन्दन वृषभानुनन्दिनी को माध्यम बनाकर अपनी उपास्य जोड़ी का परिचय देना पड़ा और इस अनर्थ के कारण परवर्ती रसिकों ने रस का रूप बिगाड़ डाला–इस प्रकार वे और भी अनेक कल्पित धारणाओं का उल्लेख कर अपने श्रीआचार्यपाद का स्वरूप भी नहीं जान पाये हैं। हितचतुरासी एवं स्फुटवाणी में श्रीनन्दनन्दन, श्रीवृषभानुनन्दिनी, व्रजगोपाल, वृन्दावन ललितादि समस्त का नाम उल्लेख है एवं उनके उपास्य के साथ उनके पूर्ण नित्य सम्बन्ध प्रमाणित हो रहे हैं।

इन समस्त निराधार कल्पनाओं का मूल आधार या कारण है 'श्रीराधारस–सुधानिधि' पर नवीन टीका करने का दुस्साहस, जिसको वे स्वयं भी स्वीकार कर अपने को अपराधी मानते हैं। किन्तु अतिशय दुःख का विषय है कि ऐसी नवीनता किस काम की, जो कटुता, महान अपराध साम्प्रदायिक संकीर्णता, साहित्य–कुरूपता विशेषतः अशेष–विशेष रसनिधि में विष का सम्मिश्रण करे। आज के युग की मांग है स्वस्थ–साहित्य, समीचीन तथ्यों का परिवेशन तथा साम्प्रदायिक संकीर्णता रहित वैष्णवधर्मों का प्रचार–प्रसार। इन बातों का पालन करने से ही वैष्णवाचार्यों की प्रतिष्ठा, आत्मोद्धार तथा राष्ट्र एवं समाज का भला हो सकता है, अन्यथा नहीं।

सारांश यह है कि–

१. श्रीप्रबोधानन्द सरस्वतिपाद एक ही व्यक्ति हैं जिनकी पूर्वोल्लिखित विभिन्न रचनाएं हैं और वे कलियुग–पावनावतार श्रीकृष्णचैतन्य प्रभु के ही कृपापात्र थे।

२. वे श्रीमहाप्रभु की कृपा प्राप्त कर श्रीधामवृन्दावन में आकर निवास करने लगे और सब रचनाएं उनकी श्रीवृन्दावन में ही रचित हैं।

३. समस्त सम्प्रदायों के सुधी साहित्यकारों ने, समस्त भक्तमाल के संस्करणों में उन्हें श्रीकृष्णचैतन्यदेव का ही प्रिय–पार्षद स्वीकार किया है, कहीं भी दो मत नहीं हैं।

४. श्रीसरस्वतिपाद की समाधि आज पर्यन्त श्रीगौड़ीय वैष्णवों द्वारा सेवित एवं सुरक्षित है।

५. श्रीसरस्वतिपाद का तिरोभाव महोत्सव सदा से श्रीगौड़ीय वैष्णव ही मनाते चले आ रहे हैं।

६. श्रीहितहरिवंश सम्प्रदाय में आज तक कोई भी सरस्वती, पुरी–आदि उपाधियुक्त संन्यासी शिष्य नहीं हुआ, जबकि श्रीगौड़ीय सम्प्रदाय में सरस्वती, पुरी, तीर्थ आदि सब का समावेश है।

७. श्रीवृन्दावनमहिमामृत तथा श्रीसंगीतमाधव आदि रचनाओं के समस्त संस्करण केवल गौड़ीय–वैष्णवों द्वारा प्रकाशित एवं प्रचारित हुए हैं और श्रीराधारस–सुधानिधि के भी बंगला संस्करण सहज उपलब्ध हैं। वर्तमान में हिन्दी भाषा में सटीक कई संस्करण छप चुके हैं।

अतः किसी भी दृष्टिकोण से गवेषणापूर्ण आलोचना क्यों न की जाए श्रीसरस्वतीपाद श्रीकृष्णचैतन्यदेव के ही कृपापात्र हैं और यह समस्त रचनाएं उन्हीं एक ही महानुभाव की हैं।

यहां यह भी उल्लेखनीय है कि कुछ लोगों ने यह पेशा बना लिया है कि वे किसी महानुभाव की रचना को किसी अन्य के नाम हस्तलिपि रूप में तैयार कर लेते हैं और उसमें कुछ श्लोकादि जो रचयिता से सम्बन्धित हैं निकाल देते हैं और अपने मतलब के बढ़ा देते हैं और तीन–तीन चार–चार सौ वर्ष पहले की तारीख–संवत् डाल कर रख देते हैं। समय आने पर उन हस्तलिखित प्रतियों के प्रमाण उल्लेखकर जनसाधारण की आंखों में धूल झोंकते हैं। अपना उल्लू सीधा करने के लिए अनेक चरित्र भी पद्य–गद्य में रचकर लिपियाँ तैयार कर लेते हैं। अतः ऐसे प्रमाण निराधार एवं कल्पित ही होते हैं। विश्वस्त सूत्रों से पता लगा है कि एक बाबा अभी दो वर्ष तक बरसाना में रहकर यही दुष्कर्म सम्पन्न करके आये हैं। भगवान् जाने कब और किस समय कैसा उत्पात वे खड़ा करेगें ?

अन्त में गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदाय के महामण्डलेश्वर श्रीयुत श्रीरामदास जी शास्त्री के वचन पुनः याद दिलाते हुए लेखक की श्रीगौड़ीय वैष्णवों के

चरणों में विनम्र प्रार्थना है कि उन्हें अपने साहित्य तथा साहित्यकारों के दस्युओं से सावधान रहना परम आवश्यक है, वरना जिनके पास कोई उपासना का आधार नहीं, जिनका कोई शास्त्र सम्मत सिद्धान्त नहीं, भक्ति–साहित्य नहीं, साहित्यकार भी नहीं, वे आप के अनुपम साहित्य–भण्डार को देखकर हर प्रकार के दाँव–पेच लड़ाकर अपहरण करने की ताक में हैं।

इन शब्दों के साथ सुधी पाठकों से क्षमा याचना करते हुए श्रीसरस्वतीपाद की प्रस्तुत रचना श्रीवृन्दावनमहिमामृत के पांचवें संस्करण के रसास्वादन की विनम्र प्रार्थना करता हूँ।

वैष्णवपदरजाभिलाषी

श्रीवृन्दावन

श्रीश्यामदास

(श्रीश्यामलाल हकीम)

।। श्रीहरि ।।

व्रजविभूति श्रीश्यामदास

'श्रीश्यामलाल हकीम'

प्राक्कथन

सन्त भगवद्–शक्ति का ही एक स्वरूप होते हैं। सन्तों का हृदय कोमल होता है। जैसे जल का सहज स्वभाव हर–एक को शीतलता प्रदान करना होता है, वैसे ही सन्तों का सहज स्वभाव होता है–दुःखी एवं सन्तप्त जीवों पर करुणा करके उनके दुःखों को, उनके संकटों को दूर करने का मार्ग बताकर उन्हें कल्याणकारी मार्ग पर अग्रसर करना। यदि किसी जीव में यह गुण है तो वह किसी भी वेश में हो, वह सन्त है और किसी सन्तवेशधारी में यह गुण–लक्षण नहीं है, तो वह सन्त नहीं है–यह परम सत्य है।

सन्त इस संसार में, इस पृथ्वी पर जीवों का कल्याण करने आते हैं और जीवन मृत्यु से परे होते हुए भी निश्चित समय पर अपने इस भौतिक शरीर का त्याग कर प्रयाण कर जाते हैं। लेकिन अमर हो जाते हैं – उनके आचरण, उनकी शिक्षा और विशेषकर उनके द्वारा साक्षात् किये गये अनुभव और उनके उपदेश, जिनका अनुसरण करके जीवमात्र अपने कल्याण का पथ प्रशस्त करता है। वेद, उपनिषद्, पुराण, महापुराण अथवा अन्य जितने भी श्रीमद्भगवद्गीता, श्रीमद्भागवत, श्रीरामायण आदि ग्रन्थ आज हमारे समक्ष हैं–वे सब निश्चित ही किन्हीं न किन्हीं सन्त–महापुरुषों के वचनामृत ही हैं, जिनके द्वारा जीवमात्र का यथायोग्य कल्याण हो रहा है।

परिचय

नाम–श्रीश्यामलाल हकीम (श्रीश्यामदास), जन्म–3 फरवरी सन् 1921, जन्मस्थान– डेरागाजीखान (अधुना पाकिस्तान में), वर्ण– क्षत्रिय। उपजाति–अरोड़ा (नांगिया), भाषाज्ञान– हिन्दी, उर्दू, अंग्रेजी, बंगला, संस्कृत, फारसी। व्यवसाय– हकीम हाजिक की डिग्री प्राप्त करने के बाद अपने पैतृक सेवा–व्यवसाय यूनानी चिकित्सक के रूप में अपने पिता के साथ अपने जन्म नगर में चिकित्सा कार्य किया एवं ख्याति प्राप्त की। आप उस चिकित्सक परिवार से हैं, जिसमें रोगी के मूत्र या रोगी के कपड़े को देखकर ही रोग का निदान किया जाता था।

आज से एक शताब्दी पूर्व तत्कालीन पंजाब प्रान्त के नगर डेरागाजीखान में स्वामी श्री इन्द्रभानुजी (श्रीललित लड़ैतीजी) के नाम से एक भक्त कवि हुए हैं, जो भक्ति–ज्ञान–वैराग्य के साक्षात् मूर्तिमन्त एवं परमसिद्ध सन्त थे। श्रीचैतन्य सम्प्रदाय के व्रजभाषी–कवियों में उनका नाम पर्याप्त आदर एवं सम्मान के साथ लिया जाता है। आपने श्रीराधा–दासी भाव में अनेक पद्यात्मक रचनाऐं कीं। आपके लीलापरक ग्रन्थ श्रीकिशोरी–करुणाकटाक्ष, श्रीदम्पतिविलास एवं श्रीरासपञ्चाध्यायी आपकी ब्रजनिष्ठा, श्रीराधाकृष्णदास्य एवं काव्य–प्रतिभा के परिचायक हैं। आपके जीवन–काल में अनेक लोगों ने आपके भक्ति–चमत्कार ,सरल स्वभाव, विनम्रता एवं सहिष्णुता का साक्षात् दर्शन किया है।

आपके ही वंश में राय साहब श्रीरघुनाथदास जी हकीम एक व्रजनिष्ठ परमभक्त थे, श्रीरघुनाथदास जी एवं माता सीता देवी के घर में सन् १९२१ में जन्मे एकमात्र सुपुत्र हैं श्रीश्यामलाल जी हकीम 'श्रीश्यामदास'। श्रीधाम वृन्दावन से आपके परिवार का पुराना सम्बन्ध था और आना–जाना था। आपके मन में भी श्रीधाम वृन्दावन के दर्शन और निवास की लालसा बाल्यकाल से थी। अतः समय पाकर आप श्रीवृन्दावन चले आते। यहाँ रहकर आप प्रिया–प्रीतम की लीलाओं का आस्वादन करते और महत्पुरुषों से कथा–श्रवण कर भजन की शिक्षा ग्रहण करते।

चिकित्सा के क्षेत्र में ख्याति प्राप्त करने के साथ–साथ धार्मिक आचरण एवं धार्मिक गतिविधियों में भी आप विशेष रुचि रखते थे। वहाँ होने वाले परस्पर दैनिक सत्संग, संकीर्तन एवं प्रवचन में आप सदैव प्रमुख रूप से भूमिका निर्वाह करते थे। प्रवचन भी करते थे।

दीक्षा

श्रीचैतन्य सम्प्रदाय की महान् विभूति श्रीमन्नित्यानन्द–प्रभुवंशावतंस शृंगारवटस्थ परमभागवत पूज्यचरण श्रीदेवकीनन्दनजी गोस्वामी महाराज से कृपाशक्ति–दीक्षा प्राप्त कर श्रीचैतन्य–सिद्धान्त साहित्य का आपको परिचय हुआ तो आप चमत्कृत हो उठे। श्रीगुरुदेव एवं विद्वद्‌जन की कृपा प्राप्त कर आपने श्रीचैतन्यानुयायी गोस्वामिगण के साहित्य का गहन अध्ययन–आस्वादन कर उसे हिन्दी भाषा–भाषी साधकों के हित उपलब्ध कराने का बीड़ा उठाया। कलियुग में जबकि असत्य आचरण, दूषित वातावरण, भयंकर असभ्य, संस्कृति–नाशक टेलीविजन कार्यक्रमों का बोलबाला है, ऐसे में सच्चे सन्तों तक पहुँचना बहुत मुश्किल है–अतः सत्‌शास्त्र–सन्तवचनामृत ही जीवमात्र का सहज कल्याण करने का एक मात्र अनुकूल साधन है।

दीक्षा ग्रहण के तुरन्त पश्चात् श्रीगुरुकृपा से आपमें कवित्व शक्ति जाग्रत हो उठी और श्रीप्रियाप्रियतम की प्रेरणा से आप श्रीभगवन्नाम–गुण–लीलापरक काव्य रचनाएँ करने लगे। श्रीभक्तभाव संग्रह नामक ग्रन्थ में 'ललितविहारिणि', 'श्याम' एवं 'श्यामदास' उपनाम से आपकी बहुत सी रचनाएँ प्रकाशित हुई हैं।

परिवार

धार्मिक परिवेश में रहते हुए आपने अपने गृहस्थ के दायित्वों को भी अच्छी प्रकार से निर्वाह किया। आपके तीन पुत्र थे–सबसे बड़े सुपुत्र को आपने दिल्ली से चिकित्सक की डिग्री दिलायी और उन्हें एक सफल चिकित्सक के रूप में स्थापित किया। दैवयोग से सन् 2002 से वे भी

हमारे मध्य नहीं रहे। शेष दोनों पुत्रों को उच्च शिक्षा दिलाकर श्रीहरिनाम प्रेस में स्थापित किया। अपनी पुत्रियों को भी उच्च कुल में विवाहित कर अपने दायित्वों का निर्वाह किया। इस समय अनेक दौहित्र–पौत्रादिकों से भरा पूरा आपका विशाल परिवार है। सभी धनधान्य, सम्पत्ति से परिपूर्ण हैं और भगवद्भक्ति में यथाशक्ति संलग्न हैं।

आपके जन्म से लेकर आज तक अनेक चमत्कारिक घटनाओं एवं संस्मरणों का एक विशाल प्रसंग है, जिन्हें संकलित किया जा रहा है। प्रभु कृपा रही तो शीघ्र ही ग्रन्थ रूप में इसे प्रकाशित किया जाएगा।

सन् १९४७ में जब भारत विभाजित हुआ तो आपका परिवार श्रीधाम वृन्दावन आ गया। पिता की वयसाधिक्य के कारण परिवार के समस्त दायित्व आप पर ही थे। कठिन परिश्रम से समस्त परिवार का पालन करते हुए आप वृन्दावन में रहने लगे। और 'चल मन वृन्दावन चल रहिए' की आपकी साधना यहाँ पूर्ण हुई।

आप सपरिवार वृन्दावन आकर बस गये और लोई बाजार में दुकान लेकर चिकित्सा कार्य प्रारम्भ किया। प्रारम्भ में सामान्य रोगी तो आता ही नहीं था, प्रायः ऐसे रोगी आते थे, जिन्हें सब ओर से निराश होकर जवाब मिल जाता था। ईश्वर में विश्वास और निष्ठा से यूनानी पद्धति से ऐसे मरणासन्न रोगियों की चिकित्सा कर अनेक रोगियों को स्वस्थ कर नगर एवं आसपास के क्षेत्र में 'खानदानी' के नाम से सुविख्यात चिकित्सक के रूप में ख्याति एवं सम्मान अर्जित किया। प्रारम्भ में ब्राह्मण, वैष्णव एवं हरिजन को निःशुल्क दवा दिया करते थे। प्रातः सायं १०० से १५० रोगी प्रतिदिन की हाजिरी रहती थी। दोपहर में खाली समय मिलने पर ग्रन्थों का अध्ययन, आस्वादन एवं सम्पादन में अपना समय सार्थक करते थे। बंगला साहित्य को पढ़कर आप सदैव चमत्कृत होते रहे। अध्ययन एवं साहित्य में रुचि एवं सत्संग–कथा–प्रवचन में लगातार लगे रहने एवं सन्तों के संग में सदैव रहने से विशेषतः श्रीगुरुदेव की अन्तिम अवस्था में शारीरिक सेवा करने के कारण इनमें दिव्य शक्ति पुंजीभूत होती रही।

वृन्दावन में इनके युवा सुपुत्र एवं युवा पत्नी की असामयिक गोलोक–प्राप्ति एवं अन्य भीषण विपत्तियों के कारण इनके परिवारीजनों ने इन्हें वृन्दावन छोड़कर अन्य नगर में बसने की सलाह दी। लेकिन वृन्दावन में अगाध निष्ठा के कारण वृन्दावन छोड़कर जाना तो दूर अपने परिवारी–रिश्तेदारों को प्रारब्ध एवं इन सब घटनाओं की दार्शनिक पृष्ठभूमि समझा कर अपनी साधना सेवा में संलग्न रहे।

ब्रजनिष्ठा – ग्रन्थ सम्पादन

धार्मिक एवं ब्रजनिष्ठापूर्ण परिवार होने के कारण आपका व्रज–वृन्दावन से सदैव ही सम्बन्ध तो रहता ही था। विभाजन से पूर्व भी आप प्रायः अपने श्रीगुरुस्थान शृंगारवट में आया–जाया करते थे एवं अनेक समय तक वृन्दावन में निवास कर सन्तों का संग करते हुए भजन की शिक्षा प्राप्त करते थे। वृन्दावन आने जाने से व्रजभाषा एवं संस्कृत भाषा पर आपका सम्यक् अधिकार हो गया। व्यवसाय से हकीम होने के कारण आपका अधिकार उर्दू, फारसी एवं अंग्रेजी और हिन्दी एवं व्रजभाषा आदि भाषाओं पर पहले से ही था। इसी क्रम में आपने संस्कृत एवं बंगला भाषा में प्रकाशित गौड़ीय–गोस्वामिग्रन्थों का अध्ययन किया। उस समय यह ग्रन्थ केवल बंगला लिपि में संस्कृत–बंगला भाषा में उपलब्ध थे। आपके मनस् में यह प्रेरणा हुई कि ये ग्रन्थरत्न यदि हिन्दी में उपलब्ध और प्रकाशित होते तो हिन्दी–भाषा–भाषी साधक–भक्त भी इसका अध्ययन सुगमता से कर पाते। आपने भगवत् कृपा का सम्बल लेकर निश्चय किया कि इस कार्य को वे करेंगे और तब से 'श्रीश्यामदास' की लेखनी का प्रवाह आरम्भ हुआ जो आज पर्यन्त नहीं रुका।

आपने बंगला भाषा में उपलब्ध गोस्वामिग्रन्थों का हिन्दी में अनुवाद और सम्पादन प्रारम्भ किया उन पर अपनी टीकाएँ भी लिखीं जो श्रीहरिनाम संकीर्तन मण्डल और व्रजगौरव प्रकाशन वृन्दावन द्वारा प्रकाशित होने लगे। प्रभु प्रेरणा से धीरे–धीरे छोटे–बड़े लगभग 100 ग्रन्थों का सम्पादन एवं उनके प्रकाशन की व्यवस्था हुई। यह निश्चित ही एक महत् कार्य है जो श्रीश्यामदास जी द्वारा लगभग 60 वर्षों से अनवरत

किया जा रहा था। अधिकतर सभी ग्रन्थों के 2–3 या 4 बार तक पुनर्मुद्रण हो चुके हैं। समय के अनुसार आधुनिकतम पद्धति से मुद्रित ग्रन्थ सुरुचिपूर्ण साज–सज्जा से युक्त हैं, जिनके दर्शन मात्र से पाठक का अध्ययन की ओर सहज आकर्षण हो जाता है।

बंगला भाषा : श्रीचैतन्य साहित्य

श्रीराधाकृष्ण मिलित विग्रह महाप्रभु श्रीचैतन्य का अवतार बंगाल में हुआ था। उनके अनुयायी समस्त गोस्वामिवृन्द प्रायः बंगाल प्रान्त के ही थे। इसी कारण श्रीचैतन्यसम्प्रदाय का जो भी सिद्धान्त व साहित्य है–वह सभी बंगला व संस्कृत भाषा में ही है– उसकी लिपि बंगला ही है। उस बंगला साहित्य का हिन्दी में प्रस्तुतिकरण, उन पर हिन्दी टीकाओं से ही हिन्दी भाषी समाज आज उसका लाभ ले रहा है। आज भी श्रीचैतन्यचरितामृत आदि ऐसे अनेक ग्रन्थ हैं जो भारत ही नहीं पूरे विश्व में हिन्दी भाषा में श्रीश्यामदास जी द्वारा ही उपलब्ध कराये गये हैं। उनकी यह देन हिन्दी चैतन्य साहित्य में स्वर्णाक्षरों में अंकित करने योग्य है।

आज यदि उसे हिन्दी में उपलब्ध न कराया गया होता तो हिन्दी समाज एक बहुत बड़े आनन्द एवं कल्याणकारी निधि से वंचित ही रह गया होता। कहना न होगा कि इतना बड़ा दुर्लभ कार्य प्रभुकृपा से अकेले एक व्यक्ति ने ही किया। इस सत्कार्य में अनेक सहयोगी सदैव उनसे जुड़ते रहे। आज भी देश–विदेश के कोने–कोने से सन्त हृदय सज्जन येन–केन–प्रकारेण इस सत्शास्त्र के संरक्षण एवं प्रकाशन यज्ञ में अपना योगदान कर रहे हैं।

लुप्त हो जाने वाले लगभग 100 छोटे–बड़े ग्रन्थों का संरक्षण, प्रकाशन, प्रबन्धन, जन साधारण के लिए इन सत्शास्त्र रूपी सन्त–वचनामृत की उपलब्धि कोई सामान्य–छोटा या सरल कार्य नहीं है। लेकिन प्रभु–गुरु–प्रदत्त दिव्य कृपा–प्रेरणा–शक्ति एवं सन्त सज्जन पुरुषों के यथायोग्य योगदान से ही यह सब संभव हो सका है।

'ग्रन्थ प्रभु के विग्रह हैं' – इनकी सेवा प्रभु की साक्षात् सेवा है। सत्शास्त्र की सेवा साक्षात् स्थायी सन्त–सेवा है। जिस प्रकार भोजन पेट की खुराक है–उसी प्रकार ग्रन्थ आत्मा की खुराक हैं। इनका अध्ययन सदैव के लिए दिव्य आनन्द की अनुभूति प्रदान करता है।

श्रीहरिनाम प्रेस की स्थापना

उस समय वृन्दावन में प्रेसें नहीं के बराबर थीं। आपने मन ही मन निर्णय कर लिया कि अब अगला ग्रन्थ अपनी ही प्रेस में छापूँगा। और यह सोचकर कि मैं चिकित्सा–कार्य करता रहूँगा और प्रेस में मेरे ग्रन्थ छपते रहेंगें, आपने सन् 1969 में श्रीहरिनाम प्रेस की स्थापना की। और हुआ भी यही कि 2–3 वर्ष तक आप चिकित्सा करते रहे और प्रेस में अपने ही ग्रन्थ छपते रहे। बाद में प्रेसों के अभाव, अव्यवस्था के कारण दूसरे ग्रन्थों का मुद्रण–कार्य भी होने लगा। आपके ग्रन्थों के मुद्रण के साथ–साथ अन्य मुद्रण कार्य भी चलते रहे, और श्रीहरिनाम प्रेस ने अपनी एक अलग पहचान स्थापित की। सन् 1978–79 में प्रेस का कार्य अपने पुत्रद्वय डॉ. गिरिराजकृष्ण एवं डॉ. भागवतकृष्ण नांगिया को धीरे–धीरे सौंपते हुए आपने व्यावसायिक व्यस्तता से विदा ली।

मासिक पत्र श्रीहरिनाम

सन्तवचनामृत स्वरूप इन ग्रन्थों के साथ–साथ सन् 1969 से आज तक अनवरत रूप से 'श्रीहरिनाम' नामक मासिक–पत्र का प्रकाशन भी किया जा रहा है–यह पत्रिका व्यावहारिक रूप से लागत से भी कम मूल्य पर देश–विदेश के हजारों पाठकों को घर बैठे प्रेषित की जाती है। देश के अनेक विद्वानों को यह पत्रिका निःशुल्क प्रेषित की जाती है। विद्वान् सज्जनों में 'श्रीहरिनाम' का अपना एक विशेष आदर एवं स्नेह है।

इस मासिक पत्र में ब्रजभक्ति, वैष्णव दर्शन आदि विषयों पर मनीषियों के निबन्ध प्रकाशित किये जाते हैं। ब्रज में आयोजित होने वाले विशेष समारोहों के समाचार व सूचनाएँ इसमें प्रकाशित की जाती हैं। प्रत्येक अंक में उस मास में आने वाले व्रत एवं उत्सवों की सूची रहती है।

पत्रिका की विषय वस्तु अत्यधिक गंभीर, सिद्वान्त एवं शास्त्र प्रतिपादित होती है। इधर–उधर के मिर्च मसाले का उसमें कोई स्थान नहीं हैं। और सबसे बड़ी बात यह है कि 1969 से आज तक जितने भी अंक प्रकाशित हुए उनमें से एक भी अंक विलम्ब से प्रकाशित नहीं हुआ। इसके प्रमुख सम्पादक श्रीश्यामदास ही थे। सहायक सम्पादक श्री गणेशदास चुघ, डॉ गिरिराजकृष्ण व डॉ भागवतकृष्ण हैं। यह पत्र समाचार पत्रों के निबन्धक से पंजीकृत है।

ग्रन्थ प्रकाशन कोष का उपक्रम

अपने जन्म स्थान डेरागाजीखान् में प्रतिवर्ष एक श्रीहरिनाम सम्मेलन का आयोजन आप करते थे। जब विभाजन हुआ तो आक्रान्ताओं के भय से उस वर्ष वह सम्मेलन नहीं हुआ– लेकिन उस सम्मेलन के निमित्त कुछ धनराशि एकत्र हो चुकी थी, वह धनराशि सम्मेलन के कैशियर श्रीदेवीदासजी कथूरिया ने विभाजन के पश्चात् आपके बहुत न–नुकर करने पर भी आपको दे दी। वह राशि आपके पास काफी समय तक सुरक्षित रही– समस्या थी कि इस धर्मराशि का क्या किया जाय ? एक सन्त की प्रेरणा से उस राशि से सर्वप्रथम 'श्रीमद्वैष्णव सिद्वान्त रत्न संग्रह' ग्रन्थ का प्रकाशन करके उस राशि को ग्रन्थ सेवा में निवेशित किया गया।

निःशुल्क ग्रन्थ वितरण की सन्तों द्वारा मनाही करने पर उसकी कीमत रखी गयी– परिणाम फिर वही कि वह राशि बढ़कर पुनः एकत्र हो गयी। और यहीं से ग्रन्थ प्रकाशन के एक पृथक् कोष की स्थापना हो गयी। ग्रन्थ विक्रय राशि से अगला ग्रन्थ, आगामी की बिक्री से आगामी ग्रन्थ प्रकाशित होते गये और आज पर्यंत होते जा रहे हैं।

ग्रन्थ विक्रय राशि

पर्याप्त ग्रन्थ प्रकाशन कोष एवं स्टॉक होने पर भी यह कोष अपर्याप्त ही रहता है। क्योंकि नवीन प्रकाशन हेतु एक विपुल राशि एक साथ चाहिये होती है। ब्रिकी तो 1–1 ग्रन्थ की होती है। अतः सामंजस्य में व्यवधान बना रहता है। ग्रन्थ विक्रय द्वारा प्राप्त होने वाली राशि से न

किसी का व्यवसाय चलता है, न यह राशि किसी की आजीविका का साधन है, न कोई वेतन दिया या लिया जाता है, न कोई किराया, बिजली और व्यवस्था सम्बन्धी व्यय किया जाता है। **ग्रन्थ विक्रय से प्राप्त होने वाली राशि का एक–एक पैसा पुनः केवल ग्रन्थ प्रकाशन में ही व्यय किया जाता है।** यही कारण है कि आज छोटे–बड़े एवं विशाल ग्रन्थ हर समय पाठकों हेतु उपलब्ध हैं और भविष्य में भी होते रहेंगे। यह सब प्रभु–गुरु–वैष्णववृन्दकी कृपा का साक्षात् फल है जिसके परिणामस्वरूप श्रीमहाप्रभुजी के साहित्य का प्रसार–प्रचार अबाध गति से हो रहा है। प्रतिवर्ष आय व्यय विवरण एवं एकाउण्ट्स तैयार होते हैं। सभी कार्य श्रीश्यामदास जी के परिवारीजनों एवं अनुचरों द्वारा सेवा भाव से किये जाते हैं।

श्रीहरिनाम संकीर्तन सम्मेलन

सन् 1956 से 1984 तक लगातार 25 वर्षों तक प्रतिवर्ष होली के अवसर पर आपने विशाल श्रीहरिनाम संकीर्तन सम्मेलन का आयोजन स्थानीय बसन्तीबाई धर्मशाला में किया, जिसमें देश एवं ब्रज के सुप्रसिद्ध विद्वानों के प्रवचन, स्वामी श्रीरामस्वरूपजी की मण्डली की रासलीला एवं स्वामी श्रीहरिगोविन्द जी की मण्डली की श्रीगौरांग लीला का त्रिदिवसीय भव्य आयोजन होता था। अन्तिम दिन विशाल शोभायात्रा से यह उत्सव समाप्त होता था। यही एक मात्र ऐसा उत्सव था जो वृन्दावन में होली के अवसर पर होता था, बाद में ऐसे उत्सव अनेक होने लगे और ऐसे उत्सवों का व्यवसायीकरण हो जाने के कारण यह सम्मेलन 1985 से स्थगित कर दिया गया।

श्रीगिरिराज कृपा

एक बार आपके मन में इच्छा हुई कि घर में पूजित श्रीप्रिया–प्रियतम एवं गोपालजी के श्रीविग्रहों के साथ–साथ श्रीगोविन्द 'श्रीगिरिराज' रूप में विराजित हों और मैं उनकी सेवा–पूजा करूँ। श्रीगिरिराज शिला खण्ड

की निज मंदिर में सेवापूजा का सामान्यतः सन्तों द्वारा निषेध है। श्रीगिरिराज–निजधाम छोड़कर कहीं नहीं जाते–ऐसी मान्यता है।

आप शीघ्र ही तत्कालीन सन्तप्रवर पं. श्रीगयाप्रसादजी के पास गोवर्धन गये और अपनी भावना प्रकट की। पूज्य पंडित जी आपकी सेवा भावना निष्ठा से परिचित थे। तुरन्त उन्होंने कागज के दो छोटे टुकड़े लिये। एक पर लिखा–'यहीं विराजौ'। दूसरे पर लिखा 'आज्ञा होय तौ चलौ श्रीवृन्दावन।' दोनों कागज पुड़िया बनाकर अपने एक सेवक को दिये और कहा कि 'श्रीगिरिराज के समक्ष इन दोनों पुर्जों को डालकर किसी व्रजवासी बालक से एक पुर्जा उठवाकर ले आओ।' शीघ्र ही सेवक कागज का एक टुकड़ा ले आया। उस पर लिखा था 'आज्ञा होय तौ चलौ श्रीवृन्दावन।' भक्त एवं भगवान् दोनों की साक्षात् स्वीकृति से आगामी दिन ब्राह्ममुहूर्त्त में श्रीगिरिराजजी को स्वगृह में पधराया गया – सात्विक अभिषेक उत्सवादि से प्रभु प्रतिष्ठित हुए – जो आज पर्यन्त पूजित व सेवित हैं।

सन्त–सज्जन–सत्कृपा

प्रारम्भ से ही संतों से सत्संग, भगवच्चर्चा, आदि की आपमें विशेष रुचि थी। भागवत निवास के बाबा श्रीकृपासिंधुदासजी, श्रीतीनकौड़ीमहाराज, गो. श्रीरासविहारीलालजी, गो. श्रीविजयकृष्णजी, श्रीअखण्डानन्द सरस्वतीजी, श्री गो. नृसिंहवल्लभ जी, श्रीनित्यानंदजी भट्ट, श्रीरामदासजी शास्त्री, श्रीबिन्दुजी महाराज, श्रीकृष्णदासबाबा कुसुमसरोवर, स्वामी श्रीभक्तिहृदय बनमहाराज, जैसे अनेक सन्त एवं विद्वानों की आप पर सदैव स्नेहपूर्ण कृपा रही। गो. श्रीअतुलकृष्ण जी, गो. श्रीपुरुषोत्तम जी, श्रीअच्युतलालजी भट्ट, धर्मरत्न श्री स्वामी गोपालशरण देवाचार्यजी, स्वामी श्रीसत्यानंद जी, श्रीश्रीवत्सजी गोस्वामी, श्रीचैतन्य गोस्वामी, श्रीवैरागीबाबा, श्रीचन्द्रशेखरदास बाबा जी आदि से समय समय पर भगवत् चर्चा आदि का क्रम बना रहता था इनके अतिरिक्त प्रायः प्रतिदिन अनेक वैष्णव–जिज्ञासु भक्त–सज्जन भगवत् चर्चा हेतु आते रहते थे।

व्रजविभूति सम्मान

हर्ष एवं गौरव का विषय है कि मथुरा एवं ब्रज की प्राचीन संस्था ब्रज कला केन्द्र द्वारा आपकी विशाल साहित्य सेवा का मूल्यांकन करते हुए सन् 2004 में श्रीकृष्ण जन्मभूमि के विशाल सभागार में आपको ब्रज विभूति सम्मान से अलंकृत किया गया। यह सम्मान ब्रज कला केन्द्र द्वारा दिये जाने वाले सम्मानों में सर्वोच्च स्थान रखता है। इसके अतिरिक्त वृन्दावन की अनेक सामाजिक धार्मिक संस्थाओं द्वारा समय–समय पर आपका सम्मान किया गया। आकाशवाणी के मथुरा–वृन्दावन केन्द्र से आपकी अनेकों ब्रजवार्ताएँ एवं कार्यक्रम समय–समय पर प्रसारित होते रहे हैं।

विविध

इस्कॉन के संस्थापक स्वामी ए. सी. भक्तिवेदान्त प्रभुपाद से आपका मित्र भाव था। श्री राधादामोदर में निवास करते समय जब उन्होंने अपने प्रथम ग्रन्थ श्रीमद्भागवत का प्रकाशन करवाया, तब आपने उनका पूर्ण सहयोग किया एवं इस ग्रन्थ के विक्रय, प्रसार–प्रचार में सर्वाधिक योगदान दिया। वृन्दावन में श्रीकृष्णबलराम मंदिर की स्थापना के सन्दर्भ में प्रायः प्रभुपाद से आपकी चर्चा व सम्बन्ध रहा। मंदिर की स्थापना के समय आयोजित विशाल समारोह का मंच संचालन श्रीश्यामदास जी ने किया था। वृन्दावन शोध संस्थान की हाथरस धर्मशाला में स्थापना में आपका विशेष योगदान रहा। आज तक आप शोध संस्थान के आजीवन सदस्य थे एवं बहुत समय तक आप संस्थान के संयुक्त सचिव रहे। आपने सपरिवार पुरी, नवद्वीप, मायापुर आदि भारत के प्रमुख तीर्थों के तीर्थाटन के अतिरिक्त 40 दिवसीय पैदल ब्रज चौरासी कोस यात्रा कर जीवन धन्य किया।

श्रीमन्नित्यानंदप्रभु कृपा–करुणा

जैसा कि पूर्व में वर्णित है श्रीश्यामदासजी की जन्मतिथि ईवसीय सननुसार ३ फरवरी सन् १९२१ है। पुराने पंचांग में जब यह तिथि देखी गयी तो यह तिथि है – माघशुक्ला एकादशी। इस तिथि के ठीक एक

दिन बाद माघ शुक्ला त्रयोदशी को श्रीमन्नित्यानन्द प्रभुपाद की जयन्ती तिथि होती है। श्रीनित्यानन्द जयंती तिथि के आस–पास जन्म लेने वाले व्रजविभूति 'श्रीश्यामदास' जी की श्रीनित्यानन्द–परिवार में दीक्षा, यज्ञोपवीत, मुण्डन आदि संस्कार हुए। जीवन पर्यन्त श्रीनिताई चांद की करुणा कृपा बरसती रही। न जाने कबसे आजीवन श्रीनित्यानन्द प्रभु के सिद्ध स्थान श्रीशृंगारवट के ही एक मकान में रहे। आपके ज्येष्ठ पुत्र का नाम भी आपने रखा – नित्यानन्द। आपके तीनों सुपुत्र भी श्रीनित्यानन्द परिवार में ही दीक्षित हैं और यह भी श्रीमन्नित्यानन्द प्रभु की कृपा का ही साक्षात् फल है कि इस शरीर की अन्तिम श्वांस भी आपने श्रीनित्यानन्द प्रभु के सिद्ध स्थान श्री शृंगारवट से लायी हुई व्रजरज पर ली और अपना पार्थिव शरीर श्रीशृंगारवट की व्रजरज को समर्पित किया। धन्य है निताई चांद तेरी अपार करुणा। सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाय तो आपका सम्पूर्ण जीवन–चक्र 'श्रीनित्यानन्द प्रभुपाद' की करुणामयी कृपा से ओत–प्रोत रहा।

श्रीश्यामदास जी से जब उनकी विपुल सेवा की चर्चा की जाती तो इसका श्रेय सदैव वे गुरुशास्त्र कृपा एवं श्री श्रीनिताई–गौर की दिव्य शक्ति को ही देते थे। वह कहते थे कि 'मैं तो उनके हाथ की कठपुतली हूँ, जैसा वे मुझे नचा रहे हैं, वैसा ही मैं नाच रहा हूँ। 'नाचेंगे हम तो नटवर जैसा हमें नचा लें।'

लीलाप्रवेश

सन् 1985 से व्यवहार–व्यवसाय सभी लौकिक कार्यों से अनासक्त होकर आप बाग–बुन्देला स्थित अपने निवास पर ही एक छोटे से कमरे में अपने सात्विक साधनयुक्त कार्यालय में मुख्य रूप से साहित्य सेवा एवं श्रीविग्रह ठाकुर सेवा में विधिवत् व्यस्त रहते थे। लगभग ८५ वर्ष की आयु में भी अति सक्रिय जीवन यापन करने वाले श्रीश्यामदासजी की कभी अस्तव्यस्त न होने वाली दिनचर्या अचानक थोड़ी अव्यवस्थित हो गयी थी।

धनतेरस दिनांक ३० अक्टूबर २००५ को उन्हें अत्यधिक ठंड लगी। जाँच में मलेरिया पाया गया और उचित चिकित्सा दी गयी। दीपावली

वाले दिन लगभग स्वस्थ हो गये। अपने अधिकारी एवं कर्मचारियों को दीपावली की शुभकामनाऐं दीं आशीष दिया। दूसरे दिन अन्नकूट महोत्सव का आयोजन था, जो घर में ही प्रतिवर्ष की भांति इस वर्ष भी मनाया गया। लगभग ३ घंटे कैसियो बजाते हुए सस्वर संकीर्तन किया। प्रसाद पाया। रात्रि को बेचैन हुए और स्वास्थ्य बिगड़ता गया।

नगर के प्रसिद्ध फिजीशियन एवं सर्जन चिकित्सकों के साथ–साथ उनके पौत्र डॉ. नीलकृष्ण ने घर पर ही एक अच्छे अस्पताल से अधिक सेवा–निष्ठाभाव से चिकित्सा सेवाऐं प्रदान कीं। स्वास्थ्य में गिरावट होती रही। दिनांक ५ नवम्बर दोपहर को शान्त भाव में विश्राम कर रहे थे, उन्हें देखने आये अपने एक मित्र से मैंने कहा कि सो रहे हैं। ५–६ मिनट बाद बोले, "मैं सो नहीं रहा हूँ, तुम्हारे पास कलम–कागज है – मैं बोलता हूँ – लिखो तो" – उन्होंने पद रचना की और उसे मैंने लिपिबद्ध किया। रात्रि में शैया पर ही वृन्दावन दिग्दर्शिका का विमोचन किया। उसके पश्चात् ६, ७, ८ नवम्बर को लगभग शांत रहे जैसे लीला–चिन्तन में एकाग्रचित्त हों। ९ नवम्बर २००५ को सायं ४ बजे शरीर के संकेत को देखते हुए सारी कृत्रिम नलियां हटा दी गयीं और परिवारीजनों ने भगवन्नाम संकीर्तन प्रारंभ किया।

४ से ७ बजे तक उच्च संकीर्तन चलता रहा। उस समय शरीर लगभग समाप्त हो गया। चित्त तो पहले से ही शांत था। केवल शांत श्वास चलते रहे। धीरे–धीरे संकीर्तन चलता रहा। दूर–पास से आपके सभी बेटियाँ–दामाद, पुत्र–बहुएँ, नाती–पोते लगभग ३०–३५ परिवारी–जन उनके समीप उपस्थित थे। रात्रि लगभग ११–२० पर उनके श्वास की गति धीमी हो गयी, उन्हें श्रृंगारवट से लायी हुई ब्रजरज बिछाकर उनके निजीकक्ष में भूमि पर लिटाया गया। गंगाजल से शरीर शुद्धि की गयी। उनके अंगों पर वैष्णव–पद्धति अनुसार 'द्वादश तिलक' लगाया गया। अति उच्चस्वर से 'महामन्त्र' का संकीर्तन, निताई गौर हरिबोल, जय श्रीराधे की नाम ध्वनि १२ बजे तक चली। रात्रि लगभग ११–५० पर उन्होंने अन्तिम श्वांस ली और गोपाष्टमी के दिन ९ नवम्बर २००५ को

प्रियाप्रियतम की निकुंजलीला में प्रविष्ट हो गये। अक्षय नवमी, १० नवम्बर २००५ को श्रीधाम वृन्दावन में यमुनातट पर उनका पार्थिव शरीर अग्नि को समर्पित कर दिया गया।

उनके श्रीचरणों में हमारी एवं आपकी सच्ची श्रद्धांजलि यही है कि हम एवं आप धर्म–प्रचार हेतु उनके ग्रन्थ प्रकाशन के क्रम को अबाध गति से संचालित रखें एवं श्रीहरिनाम मासिक पत्र का प्रकाशन नियमित रूप से चलता रहे। हमारा दृढ़ विश्वास है कि ऐसा ही होगा।

सन्त–सज्जन–गुरु–गोविन्द की कृपा से गौड़ीयदर्शन में पी-एच. डी. की उपाधि प्राप्त उनके पुत्रद्वय डॉ. गिरिराजकृष्ण एवं डॉ. भागवतकृष्ण, उनके साहित्य–सेवा कार्य को वर्तमान में संचालित कर रहे हैं, इस विश्वास के साथ कि गुरु–शास्त्र–सज्जन–संतजनकृपा से ही ग्रन्थ–सेवा प्रचार–प्रसार संभव है।

श्रीश्यामदासजी द्वारा दिनांक ५ नवम्बर २००५ को रचित अन्तिम पद

पार्थ सारथि परम निस्वार्थी, किन्तु स्वार्थी जमाने में।
अपनौ सेवा कार्य तुच्छन से निकाल लेत, आप रहे मस्त बंसी बजाने में।
विकट आपदा कष्ट सब टाले, निजी स्वारथ बनाने में।
जागत जागत निद्रा भागी, देह क्रिया भई भंग।
सेवा सिमरन, सिमरन छूट्यौ, छूट्यौ ग्रन्थन कौ संग।
'श्यामदास' प्रारब्ध की महिमा, निज विपाक कौ रंग।

जय श्रीराधे

सम्पर्क

डॉ. गिरिराजकृष्ण - 09837021415
डॉ. भागवतकृष्ण - 09837031415

• श्रीश्यामदास जी का भक्ति साहित्य •

७००रु. • श्रीचैतन्यचरितामृत MCC001

(कविराज श्रीकृष्णदास गोस्वामी रचित) महाप्रभु श्रीकृष्णचैतन्य देव का जीवन–वृत्त एवं चैतन्य–सम्प्रदाय का सिद्धान्त–दर्शन शास्त्र (आदि–मध्य–अन्त्य तीनों खण्ड)

४००रु. • श्रीचैतन्य भागवत MCB001

(श्रीवृन्दावन दास रचित महाप्रभु श्रीचैतन्यदेव की लीलाओं का सरस वर्णन, तीनों खण्ड, मूल अनुवाद व टीका सहित)

६०रु. • महाप्रभु श्रीगौरांग (सचित्र) MMG001

श्रीमन्महाप्रभु श्रीचैतन्य की आविर्भाव–पंचशताब्दी पर प्रकाशित स्मारिका, अनेक विद्वानों के सारगर्भित लेख तथा प्राचीन अनुपलब्ध चित्र और गौर–संस्मरण

१००रु. • श्रीचैतन्यप्रेमसागर MCP001

महाप्रभु श्रीचैतन्य की सम्पूर्ण लीला कथा सरल भाषा में

५०रु. • श्रीचैतन्यप्रेमसागर (तृतीय खण्ड)

केवल दूसरा खण्ड पृथक् उपलब्ध है।

१०रु. • श्रीचैतन्य चन्द्रामृत MCC002

श्री प्रबोधानन्द सरस्वतीपाद विरचित प्रार्थना ग्रन्थ सानुवाद

५रु. • श्रीगौरकरुणावैशिष्ट्य MGK001

भगवान् श्री राम–कृष्ण–चैतन्य में से महाप्रभु श्रीचैतन्य की जीवों पर की गयी विशेष करुणा का श्रीगणेशदासचुघ द्वारा प्रस्तुत अपूर्व प्रस्तुतिकरण

अनुपलब्ध • गम्भीरा में श्रीविष्णुप्रिया MGV001

गौरशून्य शचीगृहरूपी गम्भीरा में श्रीगौर–वल्लभा श्रीविष्णुप्रिया जी की पाषाणभेदी करुण–क्रन्दनात्मक श्रीगौरांग ध्यान–चिन्तनोपासना पद्धति का अनुपम ग्रन्थ

यन्त्रस्थ • श्रीनिताईचाँद (सचित्र) MNC 001

श्रीमन्नित्यानन्दप्रभु का सर्वांगीण अध्ययन, ५० भक्तों के चरित्र

५०रु. • श्रीअद्वैतप्रकाश MAP001

महाप्रभु श्रीचैतन्य के निजसेवक श्रीईशान कृत--श्रीअद्वैत प्रभु का दिव्य जीवनवृत्त, मूल–अनुवाद

१५रु. • श्रीशिक्षाष्टक MSH001

महाप्रभु श्रीचैतन्य की सभी रचनाएँ सानुवाद

१५०रु.• श्रीमद्‌भागवतमहापुराण (१–२ स्कन्ध) MBM001

२००रु.• श्रीमद्‌भागवतमहापुराण (दशम–पूर्वार्द्ध) MBM002

२००रु.• श्रीमद्‌भागवतमहापुराण(दशम–उत्तरार्द्ध) MBM003

श्रीश्रीधर स्वामी, श्रीपाद सनातन–श्रीजीव गोस्वामी एवं श्री विश्वनाथ–चक्रवर्तीपाद कृत संस्कृत टीकाओं पर आधारित श्रीजीवविश्व–कृपानुगा हिन्दी टीका, अनुवाद एवं मूल सहित

यन्त्रस्थ • श्रीगोपाल चम्पू MGC001

श्रीजीवगोस्वामी द्वारा रचित भगवान् श्रीकृष्ण की वृन्दावनीय लीलाओं का ग्रन्थ

६०रु. • श्रीविदग्धमाधवनाटक MVM001

श्रीरूपगोस्वामी रचित प्रायिकी व्रजलीलामय नाटक

२०रु. • श्रीललितमाधवनाटक MLM001

श्रीरूपगोस्वामी रचित कादाचित्की पुरलीलामय, आश्चर्यपूर्ण, आनन्दमय नाटक

२००रु. • श्रीराधारससुधानिधि MRS001

श्रीप्रबोधानन्द सरस्वती रचित, श्रीराधादास्यनिष्ठा प्रकाशक अद्‌भुत रसोपासना ग्रन्थरत्न, सानुच्छेद–अन्वय, सटीक

२००रु. • श्रीगोविन्दलीलामृत MGL001

श्रीकृष्णदास कविराज विरचित वृन्दावनीय अष्टयाम मानसी सेवा का अनुपम ग्रन्थ, मूल–सानुवाद

१००रु. • श्रीमानसी–सेवा MMS001

श्रीश्रीगौरांग (नवद्वीप–व्रज), गोविन्द अष्टयाम लीला–स्मरण गुटका (मानसिक सेवोपासना)

३०रु. • श्रीचैतन्य–सम्प्रदाय MCS001

माध्व, माध्वगौड़ेश्वर, चैतन्य आदि सम्प्रदायों का वर्गीकरणकारक एवं भ्रमनिवारक ग्रन्थ

१५रु. • श्रीमद्वैष्णवसिद्धान्तरत्नसंग्रह MVS001

वैष्णव दर्शन के प्रमुख सिद्धान्तों का निरपेक्ष, प्रामाणिक संक्षिप्त अद्वितीय ग्रन्थ

१००रु. • श्री भक्तिरसामृतसिन्धुबिन्दु MBS001

भक्तिपथ पथिकों के अनेक संशयों का समाधानकारक ग्रन्थ। गुरू कैसा हो, नामजप कैसे, क्यों करें, मूर्तिपूजा, नामापराध, तिलकधारण मंत्र आदि, श्रीविश्वनाथचक्रवर्ती की सुबोध रचना

२५०रु. • श्रीबृहद्भागवतामृत MBB001

श्रीसनातन गोस्वामी रचित विभिन्न साधनों द्वारा किन–किन साध्यों या लोकों की प्राप्ति होती है, उन साध्यों की प्राप्ति से कैसा अनुभव होता है? जीव का परम साध्य और साधन क्या है? गूढ़ विषय की बोधगम्य आख्यानात्मक सरस रचना।

प्रस्तुत • श्रीवृन्दावनमहिमामृतम (१ से १०)

५०रु. • श्रीवृन्दावनमहिमामृतम (११ से १७) MVM002

श्रीप्रबोधानन्द सरस्वती रचित धामनिष्ठा विषयक अद्भुत प्रामाणिक ग्रन्थ, मूल–अनुवाद

१०रु. • महाभावस्वरूपा श्रीराधानाम MMR001

श्रीमद्भागवत में 'श्रीराधा' नामोल्लेख वाले श्लोकों का गोस्वामी श्री नित्यानन्दजी भट्ट द्वारा सानुवाद संकलन

१५रु. • श्रीकिशोरीकरुणाकटाक्ष MKK001

निकुंजलीलाओं, अष्टयामसेवा तथा वर्षोत्सवों का पद्यात्मक एवं अभिनयात्मक रसीला संकलन

२५रु. • श्रीभक्तभावसंग्रह MBS002

स्तोत्र, भजन, रसिया, कवित्त, सवैया, गजल, आरती, आदि का वर्षोत्सव के पदों सहित अद्भुत रसीला विशद संग्रह

१५रु. • श्रीकृष्णकर्णामृत MKK002

लीलाशुक श्रीबिल्वमंगल की चमत्कारिक जीवनी सहित लीलास्वादक प्रार्थनाग्रन्थ,

१५रु. • श्रीकृष्ण भक्ति MKB001

भक्तिका सर्वांगीण अध्ययन, स्वरूप लक्षण, प्रकार–भेदादि, श्रुति–स्मृति सम्मत

१०रु. • **श्रीप्रेमभक्तिचन्द्रिका व श्रीनरोत्तमचरित्र** MPB001

ठाकुर श्रीनरोत्तम महाशय विरचित मूल प्रार्थना हिन्दी अनुवाद सहित उनका दिव्य जीवनचरित्र

६रु. • **नवधाभक्ति** MNB001

श्रवण–कीर्तन आदि नौ प्रकार की भक्तियों के विषय में जीवगोस्वामी कृत विस्तृत आलोचना

२५रु. • **श्रीमुक्ताचरित्र** MMC001

श्रीपाद रघुनाथदास विरचित शृंगाररस–विषयक चमत्कारी ग्रन्थरत्न, मूल–हिन्दी

४०रु. • **परब्रह्म स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण** MPD008

१५रु. • **ब्रज के सन्त** MBS003

ब्रज–सन्तों की चमत्कारी जीवन–गाथाऐं

५रु. • **नामापराध** MNA001

नामापराध, वैष्णवापराध तथा सेवापराध व खण्डन उपाय

५रु. • **श्रीरासलीला रहस्य** MRR001

५रु. • **आपकी दिनचर्या** MAD001

५रु. • **जीवतत्त्व** MJT001

१५रु. • **श्रीनरोत्तम–प्रार्थना** MNP001

५रु. • **नित्यपाठ गुटका** MNP002

५रु. • **महत्कृपातत्त्व** MMT001

१५०रु. • **श्रीतत्त्वसन्दर्भ : पहला सन्दर्भ** VTS001

२००रु. • **श्रीभगवत्सन्दर्भ : दूसरा सन्दर्भ** VBS001

३००रु. • **प्रीति संदर्भ : तीसरा संदर्भ** VPS003

१५०रु. • **श्रीपरमात्मसन्दर्भ : चौथा सन्दर्भ** VPS001

२००रु. • **श्रीकृष्णसन्दर्भ : पांचवाँ सन्दर्भ** VBS002

३००रु. • **श्रीभक्तिसन्दर्भ : छठा सन्दर्भ** VPS002

श्रीजीवगोस्वामी रचित अनुपम दर्शन–शास्त्र, श्रीभागवतसन्दर्भ, मूल, अनुवाद व टीका सहित

२००रु. • श्रीमद्भगवद्गीता (सटीक) VBS001

श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती रचित संस्कृत टीका के तथा श्रीबलदेव विद्याभूषण–टीका के तात्पर्यमय हिन्दी अनुवाद सहित।

२००रु. • श्रीभक्तिरसामृतसिन्धु VBS003

श्रीरूपगोस्वामी रचित, भक्तिरस प्रस्थान ग्रन्थ मूल अनुवाद एवं टीकाओं सहित

४०रु. • श्रीमाधुर्यकादम्बिनी VMK001

श्रीपादविश्वनाथ चक्रवर्ती कृत भक्ति के विकास क्रम का वर्णन एवं साधक के विभिन्न स्तरों की स्थितियों का परिचायक अति सरस एवं अनुपम ग्रन्थ, सानुवाद

२५रु. • साध्य–साधन निर्णय VSN001

मानव जीवन की सार्थकता क्या है? उसे जीवन में क्या प्राप्त करना है और कैसे? प्रश्नोत्तर शैली में विवेचनात्मक ग्रन्थ (श्रीमन्महाप्रभु तथा रायरामानंद के संवाद पर आधारित)

१००रु. • श्रीमद्भागवतीय श्रीकृष्णस्तव VBK001

श्रीमद्भागवत में वर्णित समस्त श्रीकृष्ण–स्तुतियाँ, मूल, अनुवाद एवं सुबोध टीका सहित

३०रु. • श्रीब्रह्मसंहिता (सटीक) VBS004

श्रीब्रह्माजी द्वारा भगवान् श्रीगोविन्द का स्तुतिमय सर्वशास्त्र सिद्धान्त सार ग्रन्थ।

२००रु. • श्रीउज्ज्वलनीलमणि VUN001

शृंगाररस विषयक अनुपम ग्रन्थ, प्रियाप्रियतम की निकुंज–लीलाओं के उद्धरणों सहित, श्रीभक्तिरसामृतसिन्धु का परिशिष्ट

१०रु. • श्रीगौरांगलीला VGL001

महाप्रभु श्रीगौरांग का संक्षिप्त जीवनलीला परिचय

२००रु. • श्रीचैतन्य चिंतन VCC001

श्रीचैतन्य महाप्रभु, उनके सम्प्रदाय तथा दार्शनिक तत्त्वों का सम्पूर्ण परिचय। शोधार्थियों हेतु परम उपयोगी।

५०रु. • श्रीचैतन्यभक्तगाथा VCB001

श्रीमहाप्रभु के गुरुजन, परिकर, छः गोस्वामी एवं अन्य विशिष्ट कृपा–पात्रों भक्तों का चमत्कारी जीवन–परिचय

२५रु. • हमारे छह गोस्वामी VHC001

सर्वश्रीरूप, सनातन, रघुनाथभट्ट, जीव, गोपालभट्ट, रघुनाथदास इन छः गोस्वामियों का प्रमाणिक जीवन–परिचय

५०रु. • श्रीगीतगोविन्द VGG001

कविराज श्रीजयदेव विरचित प्रियाप्रियतम की लीलाओं का दिव्य ग्रन्थ, जीवनी सहित

३०रु. • श्रीहंसदूत VHD001

ब्रजगोपियों ने अपनी विरह–वेदना एक हंस के द्वारा मथुरा में श्रीकृष्ण के पास प्रेषित की थी, उसका वर्णन, सानुवाद

३०रु. • श्रीउद्धव सन्देश VUS001

(श्रीरूपगोस्वामी रचित) भगवान श्रीकृष्ण ने श्रीउद्धव को दूत बनाकर ब्रजगोपियों के पास भेजा, उसका वर्णन, सानुवाद

३०रु. • श्रीविलापकुसुमांजलि VVK001

श्रीरघुनाथदास गोस्वामी रचित अनुपम प्रार्थना ग्रन्थ, मूल, अनुवाद व टीका सहित

यन्त्रस्थ • श्रीब्रजदर्शन VBD001

श्रीवृन्दावन के प्राचीन एवं अर्वाचीन मन्दिरों का ऐतिहासिक व प्रामाणिक परिचय

२५रु. • ब्रजधाम

१५रु. • श्रीदम्पत्ति विलास VDV001

ब्रजलीलाओं की रासपद्धति अनुगत पद्यात्मक लीलाग्रन्थ

४रु. • श्रीभगवत्कर–पदयुगल चिह्न (सचित्र) VBV001

श्रीश्रीराधाकृष्ण एवं श्रीगौर–निताई–अद्वैत प्रभु के हस्त–पद चिन्ह एवं उनका स्थान एवं महत्त्व

२०रु. • श्रीरासपंचाध्यायी–श्रीगोपीगीत VRP001

५०रु. • श्रीराधासहस्रनाम एवं श्रीकृष्णलीलास्तव VRS001

श्रीशिव–नारद संवादान्तर्गत सहस्रनाम एवं श्रीसनातन गोस्वामीपाद विरचित १०८ प्रणामयुक्त दशम–चरित्र

६रु. • श्रीराधाकृष्णकृपाकटाक्ष स्तोत्र VRK001

६०रु. • Six Goswamis VRK001

४००रु. • श्रीवेदान्त–दर्शन (ब्रह्मसूत्र) VVD001

श्रीबलदेवविद्याभूषण कृत श्रीगोविन्दभाष्य, सटीक

१००रु. • श्रीमाधव महोत्सव

श्री राधाजी का श्रीवृन्दावन–राज्याभिषेक वर्णन

१००रु. • भक्त भक्ति भगवन्त गुरु

परमभागवत सिद्ध सन्तों के संग्रहीत अनमोल रत्न

यन्त्रस्थ • लघुभागवतामृतम्

श्रीरूपगोस्वामि विरचित उपास्य–उपासक, स्वरूप निर्णायक अनुपम ग्रन्थ

यन्त्रस्थ • व्रजविभूति 'श्रीश्याम'–स्मृति

व्रजविभूति श्रीश्यामदास द्वारा लिखित स्वयं के जीवन में अद्भुत भगवत्कृपा दर्शन–अनुभव (आत्मकथा) एवं उनकी पद्यात्मक रचनाएँ, संस्मरण एवं चारित्रिक विशेषताएँ।

यन्त्रस्थ • श्रीआनन्दवृन्दावन चम्पू

कविकर्णपूर कृत व्रजलीलाओं का चमत्कारिक ग्रन्थ

श्रीहरिनाम

सन् १९९९ से अनवरत प्रकाशित मासिक पत्र

आइये ! देखें
आप क्या कर सकते हैं ?

- आप इन ग्रन्थों का अध्ययन कर दुर्लभ आनन्द प्राप्त कर सकते हैं।
- अपने मित्रों, सज्जनों को इनके अध्ययन हेतु प्रेरित कर सकते हैं
- इन ग्रन्थों को अपने शुभचिन्तकों को उपहार में दे सकते हैं–जिनसे सत्शास्त्र संग से उनका चित्त शुद्ध होकर वे अपना कल्याण कर सकते हैं।
- इन ग्रन्थों को आप किसी पुस्तकालय में प्रदान कर सकते हैं, जहाँ अनेक धर्मसाहित्य प्रेमी इनका सहज अध्ययन कर सकते हैं।
- अपने पूज्य प्रियजनों की स्मृति में इन ग्रन्थों को प्रकाशित करवा सकते हैं, जिससे ग्रन्थों के साथ–साथ आपके प्रियजन भी अमर हो जायें।
- इसके अतिरिक्त किसी भी अन्य प्रकट/अप्रकट सहायता हेतु आप सादर आमंत्रित हैं।

ग्रन्थ प्रभु के विग्रह हैं

• *सम्पर्क* •

श्रीहरिनाम संकीर्तन मण्डल

हरिनाम पथ, बागबुन्देला, लोई बाजार, वृन्दावन–281121

दूरभाष : 098370-21415

Website : harinampress.com • email : emcl_nangia@rediffmail.com

श्रीश्रीराधाकृष्णाभ्यां नमः

श्रीवृन्दावन-महिमामृतम्

प्रथमं शतकम्

श्रीराधा-मुरलीमनोहर-पदाम्भोजं सदा भावयन्
श्रीचैतन्यमहाप्रभोः पदरजः स्वात्मानमेवार्पयन्।
श्रीमद्भागवतोत्तमान् गुणनिधीनत्यादरादानमन्
श्रीवृन्दावन-दिव्यवैभवमहं स्तोतुं मुदा प्रारभे।।१।।

श्रीराधा तथा श्रीमुरलीमनोहर के चरणारविन्दों का निरन्तर ध्यान-स्मरण करता हुआ, श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु की चरण-रज में आत्म-समर्पण कर एवं कल्याण-गुणसागर भक्तशिरोमणिवृन्द के चरण-कमलों में अतिशय आदर सहित बारम्बार प्रणाम कर आनन्दपूर्वक मैं श्रीवृन्दावन के दिव्य (चिन्मय) वैभव की स्तुति करने में प्रवृत्त होता हूं।।१।।

ईशोऽपि यस्य महिमामृतवारिराशेः पारं प्रयातुमनलं बत तत्र केऽन्ये।
किन्त्वल्पमप्यहमतिप्रणयाद्विगाह्य स्यां धन्य धन्य इति मे समुपक्रमोऽयम्।।२।।

जिस श्रीवृन्दावन के महिमामृत-समुद्र के पार जाने में स्वयं ईश्वर भी असमर्थ हैं-फिर इस काम के लिये और कौन साहस कर सकता है ? किन्तु अत्यन्त प्रीतिपूर्वक मैं इस समुद्र में यत्किञ्चित अवगाहन कर भी धन्य-धन्य हो जाऊँगा-इसलिये ही मेरी यह चेष्टा है।।२।।

श्रीमद्वृन्दाटवि ! मम हृदि स्फोरयात्म स्वरूपं
अत्याश्चर्यं प्रकृतिपरमानन्द विद्यारहस्यम्।
पूर्णब्रह्मामृतमपि ह्रिया वाऽभिधातुं न नेति
ब्रूयुर्यत्रोपनिषद इहात्रत्य वार्ता कुतस्त्या।।३।।

हे श्रीमद्वृन्दाटवि ! अति आश्चर्यजनक स्वाभाविक परमानन्द-विद्या-रहस्ययुक्त जो आपका स्वरूप है, उसकी मेरे हृदय में स्फूर्ति कराओ। पूर्णब्रह्मामृत के ही वर्णन करने में लज्जित होकर जब उपनिषद् "नेति नेति" पुकार रहे हैं,

तब इस श्रीवृन्दावन की महिमा के विषय में और क्या कहा जाये?।।३।।

राधाकृष्णविलासपूर्ण सुचमत्कारं महामाधुरी–
सारस्फार चमत्कृतिं हरिरसोत्कर्षस्य काष्ठां पराम्।
दिव्यं स्वाद्यरसैक रम्य सुभगाशेषं न शेषादिभिः
सेशैर्गम्यगुणौघपारमनिशं संस्तौमि वृन्दावनम्।।४।।

जो स्थान श्रीराधाकृष्ण के विलास–सौभाग्य से पूर्ण चमत्कारित्व–जनक है, जो स्थान महामाधुर्य का सार होने के कारण अतीव विस्मयकर है, जो स्थान श्रीहरि के शृंगार–रस की पराकाष्ठा का प्रतिपादक है, अप्राकृत एवं आस्वादनीय मुख्य उज्ज्वल रस के अशेष सौभाग्य से गौरवान्वित है, (अथवा उन्नत उज्ज्वलरस के द्वारा ही जो अशेषभाव से एकमात्र रमणीय एवं सौभाग्य–मण्डित है), ईश्वर सहित शेषादि देवतागण पर्यन्त जिसकी गुणराशि का वर्णन करते हुए पार नहीं पा सकते, ऐसे श्रीवृन्दावन की मैं निशिदिन सम्यक् प्रकार से स्तुति करता हूं।।४।।

प्रेमौत्क्येन विचिन्त्यतां विलुठनैः सर्वांगमायोज्यतां।
देहस्यास्य समर्पणेन सुदृढ़प्रेमा समास्थीयताम्।।
राधाजानिरुपास्यतां स्थिरचरप्राणीह सन्तोष्यतां।
श्रीवृन्दावनमेव सर्वपरमं सर्वात्मनाश्रीयताम्।।५।।

प्रेमोत्कण्ठा से (श्रीवृन्दावन की) चिन्ता कर, विलुण्ठन के लिये सर्वांगों का नियोग कर, इस (भौतिक) देह को समर्पण कर सुदृढ़ प्रेम के समाश्रित हो, श्रीराधा–नागर की उपासना कर श्रीधाम के स्थावर–जंगम प्राणिमात्र को सन्तुष्ट कर–इसी प्रकार सर्वश्रेष्ठ श्रीवृन्दावन का ही कायमनोवाक्य से आश्रय ग्रहण कर।।५।।

वेदान्ताः प्रतिपादयन्ति मुखतो नोचेत्ततः किं मम
मन्यन्ते न च शास्त्र गर्त्तपतिता दुस्तर्किणः किं ततः।
नोचेद् भागवतानुभूतिपदवीं यातस्ततः किं मम
स्वात्मा वज्रसहस्रविद्ध इव न स्पन्देत वृन्दावनात्।।६।।

श्रीवृन्दावन की महिमा वेदान्त–समूह मुख से (मुख्यावृत्ति से) प्रतिपादन न करें तो मेरा क्या ? शास्त्ररूप गर्त्त में गिरे हुए कुतार्किकगण यदि श्रीवृन्दावन

का सम्मान न करें, तो इससे मेरी हानि क्या ? एवं इस श्रीधाम का माहात्म्य भगवद्–भक्तों के अनुभव–गोचर न हो, तो भी मेरा क्या ? किन्तु मेरा शरीर सहस्त्र वज्रों के द्वारा छेदित–भेदित सा होकर भी श्रीवृन्दावन से अन्यत्र किञ्चितमात्र चालित न हो।।६।।

प्रोदञ्चत् पिकपञ्चमं प्रविलसद् वंशीसुसंगीतकं
शाखाखण्ड–शिखण्डि–ताण्डवकलं प्रोल्लासिवल्लीद्रुमम्।
भ्राजन्मञ्जु निकुञ्जकं खगकुलैश्चित्रं विचित्रं मृगै–
र्नानादिव्यसरः सरिद् गिरिवरं ध्यायामि वृन्दावनम्।।७।।

जिस धाम में कोकिलाएं उदात्त (ऊंची) पञ्चम स्वर में आलाप करती हैं, वंशी की सुमोहन तान के साथ जिस स्थल पर सुमधुर संगीत श्रुतिगोचर होता है, जिस धाम के प्रति वृक्ष की शाखाओं पर मयूरों की ताण्डव–नृत्य सहित अस्फुट मधुर ध्वनि होती है, जहां के लता एवं वृक्ष समूह (फल–फूलों से) उल्लसित हो रहे हैं, जो धाम मञ्जुल निकुञ्जों से सुशोभित है, जहां नाना प्रकार के बिहंग–कुल एवं पशु विहरते हैं, तथा नानाविध दिव्य सरोवर एवं नदियाँ पर्वताकीर्ण हैं–ऐसे श्रीवृन्दावन धाम का मैं ध्यान करता हूँ।। ७।।

स्थूलं सूक्ष्मं कारणं ब्रह्म तुर्यं श्रीवैकुण्ठ–द्वारका–जन्मभूमिः।
कृष्णस्याथो गोष्ठवृन्दावनं तद् गोप्याक्रीड़ं धाम वृन्दावनान्तः।।८।।

स्थूल, सूक्ष्म, कारण एवं तुरीय ब्रह्म, श्रीवैकुण्ठ, द्वारका, जन्मभूमि (मथुरा–गोकुल) श्रीकृष्ण की गोचारण स्थली श्रीवृन्दावन, एवं श्रीवृन्दावन मध्यवर्त्ती गोपियों की क्रीड़ा–भूमि (ये उत्तरोत्तर श्रेष्ठ हैं)।।८।।

अत्याश्चर्या सर्वतोऽस्माद् विचित्रा श्रीमद्राधा कुञ्जवाटी चकास्ति।
आद्यो भावो यो विशुद्धोऽति पूर्णस्तद्रूपा सा तादृशोन्मादि सर्वा।।६।।

अतिशय आश्चर्यजनक एवं परिदृश्यमान जगत् से अतीव सुन्दर श्रीराधाजी की कुञ्जवाटी सुशोभित है। विशुद्ध तथा पूर्णतम जो आद्य–(शृंगाराख्य) भाव है, श्रीराधाजी की कुञ्जवाटी तत्स्वरूपा है एवं उसका समस्त (उपकरण) उस भाव की भांति उन्मादना ही उत्पन्न करने वाला है।।६।।

तत्रैवाविर्भावयद्रूपशोभा वैदग्ध्यान्योऽन्यानुरागाद्भुतौघौ।
नित्याभंगप्रोन्मदानंगरंगौ राधाकृष्णौ खेलतः स्वालिजुष्टौ।।१०।।

उस स्थान पर रूपशोभा-वैदग्धी तथा पारस्परिक अनुराग के अद्भुत सागर का एवं नित्य तथा अभंग उन्मादनकारी अनंग-रंग का आविर्भाव कर श्रीराधाकृष्ण अपनी सखियों के सहित मिलकर लीला करते हैं।।१०।।

अत्युत्कृष्टे सकलविधया श्रीलवृन्दावनेऽस्मिन्
दोषान् दृष्टान्निजहतदृशा वास्तवान् ये वदन्ति।
तादृक् मूढ़ा हरि हरि ! मम प्राणबाधेऽप्यदृश्याः
संभाव्या वा कथमपि नहि प्राय सर्वस्य हास्याः।।११।।

सर्वभाव से अति उत्कृष्ट इस श्रीवृन्दावन में निज दुर्भाग्यवश दृष्ट-दोषों को जो लोग सत्य मान कर वर्णन करते हैं, अहो ! उन मूर्ख लोगों के मैं प्राण संकट आने पर भी दर्शन नहीं करूंगा। किसी भी विषय में क्यों न हो क्या वे सब के सामने उपहास्यास्पद न होकर रह सकते हैं ?।।११।।

ब्रह्मानन्दमवाप्य तीव्रतपसा सम्यक् प्रसाद्येश्वरं
गोरूपाः सकला इहोपनिषदः कृष्णे रमन्ते व्रजे।
वृन्दारण्यतृणं तु दिव्यरसदं नित्यं चरन्त्योऽनिशं
राधाकृष्णपदाम्बुजोत्तम रसास्वादेन पूर्णाः स्थिताः।।१२।।

उपनिषत् समूह (वेद) ब्रह्मानन्द को प्राप्त होकर भी तीव्र तपस्या द्वारा ईश्वर की सम्यक्रूप से आराधना कर इस श्रीकृष्ण के व्रज में धेनुरूप धारण करके आनन्द लाभ करते हैं। वे दिव्य रसदानकारी श्रीवृन्दावन के तृण भक्षण कर निशिदिन नित्य श्रीराधाकृष्ण के चरणकमलों के उत्तम रसास्वादन से परिपूर्ण (तृप्त) होकर अवस्थान करते हैं।।१२।।

श्रीवृन्दावनवासिनि स्थिरचरे दोषान् मम श्रावयेद्
योऽसौ किं शतधा छिनत्ति न हि मां शस्त्रैरथास्त्रैः शितैः।
सर्वाधीशितुरेव जीवनवने यो द्वेषमात्रं चरे-
देकस्यापि तृणस्य घोरनरकात्तं कः कदा वोद्धरेत्।।१३।।

श्रीवृन्दावन-वासी स्थावर जंगम में दोष हैं-ऐसा जो कोई मुझे सुनाता है, वह क्या शोणित (तेज किये हुए) अस्त्र द्वारा मेरे सैंकड़ों टूक नहीं करता है

सर्वाधीश्वर प्राण समान प्रिय वृन्दावन के एक तृण के प्रति भी जो स्वल्प द्वेषाचरण करता है, उसका फिर घोर नरक से क्या कभी कोई उद्धार करेगा।।१३।।

श्रीवृन्दारण्य–शोभामृतलहरि समालोकतो विह्वला मे–
दृष्टिर्वोभोतु वृन्दावनमहिम–सुधावारिधौ मज्जताद्धीः।
श्रीवृन्दारण्यभूमौ लुठतु मम तनुर्विह्वलानन्दपूरैः
श्रीवृन्दारण्यसत्त्वेष्वहह तत इतो दण्डवन्मे नतिः स्तात्।।१४।।

श्रीवृन्दारण्य की शोभामृत तरंगों को अवलोकन करते करते मेरे लोचन विह्वल हों, श्रीवृन्दावन के महिमा–सुधा–समुद्र में मेरी बुद्धि मज्जन करे। सान्द्रानन्द प्रवाह में विभोर होकर मेरा शरीर श्रीवृन्दावन की भूमि पर लुण्ठन करे। अहो ! श्रीवृन्दावनवासी सर्व जीवों के चरणों में जिससे इतस्ततः दण्डवत् प्रणाम कर सकूं।।१४।।

यत्रक्रीड़न्तिकृष्ण–प्रिय–सखि–सुबलाद्यद्भुताभीरबाला
मोदन्ते यत्र राधा–रतिमय ललिताद्युज्ज्वल श्रीकिशोर्यः।
आश्चर्यानंगरंगैरहह ! निशि दिवा खेलनासक्त राधा
कृष्णौ रत्येकतृष्णौ मम समुदयतां श्रीलवृन्दावनं तत्।।१५।।

जहां श्रीकृष्ण के प्रिय सखा सुबलादि अद्भुत गोपबालक क्रीड़ा करते हैं, जहाँ श्रीराधा प्रति रतिशालिनी ललितादि उज्ज्वल–रस–विशिष्टा श्रीकिशोरीवृन्द आनन्दित हो रही हैं, दिन रात आश्चर्य अनंग–रंग में खेलनपरायण रति में ही एक मात्र तृष्णा–युक्त श्रीराधाकृष्ण उसी श्रीवृन्दावन को मेरे हृदय में सुप्रकाशित करें।।१५।।

स्वच्छं स्वच्छन्दमेवास्त्यतिमधुर–रसान्निर्झरादम्बु पातुं
भोक्तुं स्वादूनि कामं सकलतरुतले शीर्णपर्णाणि सन्ति।
कामं निःशीतवातं विमलगिरिगुहाद्यस्ति निर्भाति वस्तुं
श्रीवृन्दारण्यमेतत्तदपि यदि जिहासामि हा हा हतोऽस्मि।।१६।।

स्वच्छन्द पान करने के लिये स्रोतों का स्वच्छ एवं अति मधुर–रस–विशिष्ट जल है, यथेच्छ भोजन के लिये समस्त वृक्षों के नीचे सुस्वादु शीर्ण (सूखे) पत्र विद्यमान हैं, यथेष्ट उष्ण एवं निर्वात विमल गिरिगुफाएं हैं–यह श्रीवृन्दावन सर्वथा वास करने के उपयोगी प्रतीत होता है, तथापि हाय ! यदि इसे त्याग

करूं, तो मैं अत्यन्त मन्दभाग्य हूं।।१६।।

महाप्रेमाम्भोधे–र्यदनुपमसारं यदमलं
हरिप्रेमाम्भोधे र्मधुर मधुरं द्वीपवलयम्।
मुनीन्द्राणां वृन्दैः कलितरस वृन्दावनमहो!
तदेतद्देहान्तावधि समधिवासं दिशतु मे।।१७।।

महाप्रेम–समुद्र की जो अनुपम विमल सार वस्तु है, जो श्रीहरि के प्रेमसागर का अति मधुर द्वीप–भूषण सदृश है एवं जो श्रेष्ठ मुनिगणों द्वारा आस्वादित रस–समूह का आधार स्वरूप है–वह श्रीवृन्दावन मृत्युकाल पर्य्यन्त मुझे सम्यक् प्रकार से आश्रय दान करे।।१७।।

वापीकूपतड़ाग कोटिभिरहो दिव्यामृताभिर्युतं
दिव्योद्यत्फल–पुष्पवाटिकमनन्ताश्चर्यवल्लीद्रुमम्।
दिव्यानन्तपतन् मृगं वनभुवां शोभाभिरत्यद्भुतं
दिव्यानेक निकुञ्जमञ्जुलतरं ध्यायामि वृन्दावनम्।।१८।।

दिव्य–जल से पूर्ण कोटि–कोटि सरोवर, कूप एवं तड़ागों से जो युक्त है, दिव्य दिव्य फल एवं पुष्प–बाटिकाओं से जो मण्डित है, अनन्त चमत्कारकारी वृक्ष–लताओं से जो समाकीर्ण है, जहां असंख्य दिव्य–दिव्य पशु इधर–उधर धावमान हैं, जो बनभूमि की विचित्र शोभा से समुद्भासित है एवं जो अगणित दिव्य मनोहर निकुञ्जपुञ्ज से परिशोभित है–ऐसे श्रीवृन्दावन का मैं ध्यान करता हूं।।१८।।

श्रीराधिका–मदनमोहन केलिकुञ्जपुञ्जैर्वृतंद्रुमलताघन–रत्नभूमि।
आनन्दमत्त–मृग–पक्षिकुलाकुलं श्रीवृन्दावनं हरति कस्य हठान्न चेतः।।१६।।

श्रीराधामदनमोहन के केलिकुञ्ज समूह से आकीर्ण, घन–घन वृक्षलताओं से परिवेष्टित रत्नभूमियुक्त एवं आनन्दमत्त पशु–पक्षियों से आकुलित, यह श्रीवृन्दावन बलपूर्वक किस का चित्त हरण नहीं करता?।।१६।।

कस्यापि दिव्य–रति मन्मथकोटिरूप धामद्वयस्य कनकासित रत्नभासः।
अत्यद्भुतैर्मदनकेलिविलासवृन्दैर्वृन्दावनं मधुरिमाम्बुधिमग्नमीक्षे।।२०।।

किसी दिव्य कोटि–कोटि रति–कामदेव रूपविशिष्ट (अनिर्वचनीय) विग्रहयुगल की (श्रीराधाकृष्ण की) स्वर्ण–नील–ज्योति से उद्भासित, अतीव

अद्‌भुत काम–केलि–विलासादि के माधुर्य–सागर में निमग्न श्रीवृन्दावन के दर्शनों की मैं इच्छा करता हूं।।२०।।

गाढ़ासक्तिमतामपीह विषयेष्वत्यन्त निर्वेदतो
दृक् पातेऽप्यसहिष्णुतातिशयिनां योगे समुद्योगिनाम्।
ब्रह्मानन्दरसैकलीन–मनसां गोविन्दपादाम्बुज–
द्वन्द्वाविष्टधियां च मोहनमिदं वृन्दावनं स्वैर्गुणैः।।२१।।

इस संसार के विषयों में गाढ़ आसक्तियुक्त पुरुषों के मन को, परम वैराग्य के कारण जो पुरुष इन विषयों पर दृष्टिपात करने में ही अत्यन्त असहिष्णु हैं–उनके मन को, योग मार्ग में सम्यक् प्रकार उद्योगीजनों के मन को, केवल मात्र ब्रह्मानन्दरस में मग्नचित्त व्यक्तियों के मन को, और फिर श्रीगोविन्द के चरणारविन्द में आविष्ट–चित्त भक्तवृन्दों के भी मन को यह श्रीवृन्दावन अपने गुणसमूह से मोहित किये रखता है।।२१।।

चिरादुपनिषद् गिरामति विचार्य तात्पर्यकं
न लब्धुमिह शक्यते यमनु माधुरीमप्यहो।
तमप्यनुभवेन्महारसनिधिं यदावासत–
स्तदेव परमं मम स्फुरतु–धामवृन्दावनम्।।२२।।

चिरकालपर्यन्त उपनिषत् के वाक्यों के तात्पर्य का विचार करने पर भी हाय ! अणुमात्र भी जिस माधुरी की प्राप्ति नहीं हो सकती, परन्तु श्रीवृन्दावन में वास करने से ही उसी माधुरीके समुद्र का आस्वादन मिलता है, ऐसा सर्वोत्कृष्ट श्रीधाम वृन्दावन मेरे चित्त में स्फुरित हो।।२२।।

सोढ्वा पादप्रहारानपि च शतशतं धिक्कृतीनाञ्च कोटीः
क्षुत्तृट्शीतादि बाधा शतमपि सततं धैर्यमालम्ब्य सोढ्वा।
मुञ्चन् शोकाश्रुधारामतिकरुणगिरा राधिकाकृष्णनामा–
न्युद्‌गायन् कर्हि वृन्दावनमतिविकलोऽकिञ्चनः सञ्चरामि।।२३।।

शत–शत पाद प्रहारों को एवं कोटि–कोटि धिक्कारों को भी सहन करता हुआ, धैर्यपूर्वक निरन्तर क्षुधा, तृष्णा तथा शीत ग्रीष्मादि के सैंकड़ों विघ्न–बाधाओं को अतिक्रम करके भी मैं कब शोकाश्रुधारा प्रवाहित करते–करते श्रीराधिका–कृष्ण की नामावलि को अत्यन्त करुण ध्वनि से उच्चस्वर में

गान–करता हुआ अति व्याकुल चित्त से अकिञ्चन होकर श्रीवृन्दावन में इधर–उधर विचरण करूंगा ?।।२३।।

अद्य श्वो वा यास्यतीदं कुदेहं सर्वे भोगा यान्ति तत्र स्थितेऽपि।
तस्मात् सौख्याभास उच्चैर्विभाति नित्यानन्दे नन्द वृन्दावनान्तः।।२४।।

आज किंवा कल ही इस कुत्सित देह का पात होगा, और शरीर रहते हुए भी शीघ्र ही समस्त भोग समाप्त हो जायेंगे। अतएव यह स्पष्ट ही प्रतीत होता है कि पार्थिव वस्तुओं में सुख का आभास मात्र है। इसलिये नित्यानन्ददायी श्रीवृन्दावन में ही आनन्द लाभ कर।।२४।।

किं नो भूपैः किं नु देवादिभिर्वा स्वाप्नैश्वर्योत्फुल्लितैः किञ्च मुक्तैः।
शून्यालम्बैर्वैष्णवैर्वापि किं नः श्रीमद् वृन्दाकाननैकान्तभाजाम्।।२५।।

एकान्तभाव से श्रीवृन्दावनाश्रयी हमारा राजाओं से क्या प्रयोजन ? देवताओं से क्या गरज? और स्वप्न ऐश्वर्य तुल्य ऐश्वर्य के द्वारा उत्फुल्लित मुक्तगणों से हमारा क्या प्रयोजन ? अन्य शून्यावलम्बी (परव्योम वैकुण्ठादि की प्राप्ति ही जिनका लक्ष है) वैष्णवों से भी हमारा क्या काम ?।। २५।।

शं सर्वेषामप्रयासेन दात्री द्वित्रैकान्ति प्रेममात्रैकपात्री।
आनन्दात्माशेषसत्त्वा निधात्री श्रीवृन्दाटव्यस्तु मेऽन्धस्य धात्री।।२६।।

अनायास में सबका सुख विधान करने वाली, दो तीन (इने–गिने) ऐकान्ती जनों की ही ऐकांतिक प्रेम–पात्र एवं निखिल जीवों को आनन्द स्वरूप प्रदान करने वाली जो श्रीवृन्दाटवी है, वही मुझ जैसे अन्धे की पालन करने वाली धात्री हो।।२६।।

वेणुं यत्र क्वणयति मुदा नीपमूलावलम्बी
सम्वीत श्रीकनकवसनः शीतकालिन्दितीरे।
पश्यन् राधावदनकमलं कोऽपि दिव्यः किशोरः
श्यामः कामप्रकृतिरिह मे प्रेम वृन्दावनेऽस्तु।।२७।।

शीतल श्रीयमुना के तीर पर कदम्ब वृक्ष के मूल का अवलम्बन लिये हुए सुन्दर पीताम्बरधारी, श्यामवर्ण कामप्रकृति–विशिष्ट कोई एक दिव्य किशोर श्रीराधामुख–कमल दर्शन करते–करते जहां आनन्दपूर्वक वेणु बजाता है, उसी श्रीवृन्दावन में मेरी प्रीति हो।।२७।।

तैस्तैः किं नः परमपरमानन्द–साम्राज्यभोगैः
किंवा योगैः परमपदकृतैः किं परैर्वाऽभियोगैः।
वासेनैव प्रसभमखिलानन्द सारातिसारं
वृन्दारण्ये मधुर–मुरली–नादमाकर्णयिष्ये।।२८।।

अतीव परमानन्द देने वाले उन समस्त साम्राज्य भोगों से हमें क्या ? स्वर्गादि की प्राप्ति के लिये योग समूह से क्या लाभ ? अन्यान्य विषयों में अभिनिवेश करने से क्या फल ? क्योंकि श्रीवृन्दावन में वास करने से तो निखिल आनन्द का परम–सार मधुर मुरली निनाद हठात् कानों में प्रवेश करेगा।।२८।।

श्रीवस्त्राभरणादिभिः करपदाद्युत्कर्त दाहादिभिः
र्निन्दा संस्तव कोटिभिर्बहुविभूत्यत्यन्त दैन्यादिभिः।
जीवन्नेव मृतो यथा न विकृतिं प्राप्तः कथञ्चित् क्वचित्
श्रीवृन्दावनमाश्रये प्रियमहानन्दैककन्दं परम्।।२६।।

उत्तम उत्तम वस्त्रभूषणादि की प्राप्ति में अथवा कर–पदादि के काटे या जलाये जाने पर, कोटि–कोटि निन्दा अथवा प्रशंसा होने पर एवं बहु सम्पत्ति किंवा दीनता प्राप्त होने पर भी जीवन्मृत की तरह कभी भी किसी प्रकार से विकार को प्राप्त न होकर परमप्रिय महानन्द–बीजस्वरूप इस श्रीवृन्दावन का आश्रय करता हूं।।२६।।

दुखान्येव सुखानि विद्ध्यपयशो जानीहि कीर्तिं परां
मन्येथा अधमैश्च दुष्परिभवान् सम्मानवत् सत्तमैः।
दैन्यान्येव महाविभूतिमतिसल्लाभानलाभान् सदा
पापान्येव च पुण्यमस्ति यदि ते वृन्दावनं जीवनम्।।३०।।

यदि श्रीवृन्दावन में तेरा जीवन हो, तो दुखों को तू सुखसमूह जान, अपयश को परमा–कीर्ति मान, अधमपुरुषों के द्वारा अत्यन्त अपमानित होने पर उसे ही तू साधुपुरुषों के द्वारा किये हुए सम्मानवत् जान, दरिद्रता–राशि को महाविभूतिस्वरूप, अत्युत्तम (मायिक) लाभों की महाक्षति–स्वरूप एवं पापसमूह को पुण्यरूप प्रतीत कर।।३०।।

त्यक्त्वा संगं दूरतः स्त्रीपिशाच्याः सर्वाशानां मूलमुद्‌धृत्य सम्यक्।
दैवाल्लब्धेनैव निर्वाह्य देहं श्रीमद्‌वृन्दाकानने जोषमास्स्व।।३१।।

स्त्री–पिशाची का संग दूर से त्याग कर, समस्त वासनाओं को सम्यक् प्रकार से मूल से उच्छेद कर एवं दैवलब्ध–वस्तु, द्वारा देह–यात्रा का निर्वाह करते हुए श्रीवृन्दावन में प्रीतिपूर्वक वास कर।।३१।।

न कुरु न वद किञ्चिद् विस्मराशेषदृश्यं
स्मर मिथुनमहस्तद् गौरनीलं स्मरार्त्तम्।
बहुजन समवायाद् दूरमुद्विज्य याहि
प्रिय निवसतु दिव्यश्रीलवृन्दावनान्तः।।३२।।

तुम्हारे लिये कर्त्तव्य और वक्तव्य कुछ भी नहीं है, दृश्यमान समस्त वस्तुओं को भूल जा, कामातुर उस गौर–नील जोड़ी को स्मरण कर, जिस स्थान पर लोकों का समूह हो, उस स्थान से उद्विग्न–चित्त होकर दूर चला जा। हे प्रिय ! अप्राकृत श्रीमद्‌वृन्दावन में वास कर।।३२।।

करनिहितकपोलो नित्यमश्रूणि मुञ्चन्
परिहृतजनसंगोऽरोच्यमानानुयानः।
प्रतिपद बहुलार्त्त्या राधिकाकृष्णदास्ये
वसति परमधन्यः कोऽपि वृन्दावनेऽस्मिन्।।३३।।

नित्य कपोलदेश पर हाथ रखे हुए अश्रु प्रवाह करते करते निसंग होकर एवं सेवक–अनुचर रहित होकर प्रतिक्षण व्याकुलतापूर्वक जो श्रीराधाकृष्ण के दास्य–रस में निमग्न होकर इस श्रीवृन्दावन में वास करता है, वही परम धन्य है।।३३।।

असुलभमिह लोके लब्धुमिच्छस्ययत्नाद् यदि विपुलधन स्त्रीपुत्रगेहोत्तमादि।
करनिपतितमुक्तिं कृष्णभक्तिञ्च कांक्षस्यधिवस परधामैवाद्य वृन्दावनाख्यम्।।३४।।

यदि तू दुर्ल्लभ विपुल–धन, स्त्री, पुत्र उत्तमोत्तम गृहादि इस संसार में अनायास (बिना यत्न) प्राप्त करना चाहता है, करनिपतित (हाथ में धरी हुई) मुक्ति, कृष्ण–भक्ति (एवं प्रेम) की प्राप्ति के लिए भी यदि तेरी आकांक्षा है, तो आज ही से तू श्रीवृन्दावन नामक परमधाम में वास कर।।३४।।

वृन्दाटवी न हि कवीश्वर काव्यकोटि सम्भाव्यमान गुणरत्नगणच्छटैका।
एतामपार रसखानिमशेषखानि संरुध्य मित्र मतिमध्यवसीय याहि।।३५।।

श्रेष्ठ कविगण कोटि-कोटि काव्य रचना के द्वारा भी श्रीवृन्दावन के गुणरत्न-समूह की एकमात्र छटा का भी वर्णन नहीं कर सकते। हे मित्र! निखिल इन्द्रियों की वृत्तियों का निरोध कर इस अपाररस-खानिरूप वृन्दाटवी के लिये स्थिरमति होकर प्रस्थान कर।।३५।।

वृन्दाटवी जयति कामगवी-सुरद्रु चिन्तामणीनगणितानपि तुच्छयन्ती।
श्रीशंकरद्रुहिणमुख्य सुरेन्द्रवृन्ददुर्ज्ञेय दिव्यमहिमैक रजःकणेन।।३६।।

लक्ष्मी, शंकर, ब्रह्मा, आदि श्रेष्ठ सुरगण जिसकी अप्राकृत महिमा को कदापि नहीं जान सकते, एक रज-कण के द्वारा ही जो अगणित कामधेनु, कल्पवृक्ष एवं चिन्तामणि के समूह को भी तुच्छ करती है-उस श्रीवृन्दाटवी की जय हो।।३६।।

वृन्दाटवी यदि रवीन्दुहुताश विद्युत् कोटिप्रभाभिभवकारी महाप्रभाढ्या।
आत्मप्रभा सकृदपि प्रतिभाति चित्ते वित्तैषणादि न हि तस्य मनस्युदेति।।३७।।

कोटि-कोटि सूर्य, चन्द्र, अग्नि एवं विद्युत्-समूह की प्रभा को पराजयकारी, महादीप्तिमती स्वप्रकाशा वृन्दाटवी जिस किसी के चित्त में एक बार भी उदित होती है फिर उसके मन में धन, स्त्री-पुत्र एवं प्रतिष्ठादि विषय-वासना स्थान नहीं पा सकती।।३७।।

श्रीराधिका-मुरलिमोहन केलिकुञ्जपुञ्जेन मञ्जुलतरा रससिन्धुदोग्ध्री।
स्वानन्दचिन्मय-महाद्भुत सत्त्ववृन्दवृन्दाटवी मम सबीजमघं निहन्तु।।३८।।

श्रीराधिका-मुरलीमनोहर के केलि-कुञ्ज पुञ्जों से जो मनोहरतरा हो रही है, जो रस-समुद्र की प्रभवस्थली (उत्पन्न करने वाली) है। स्वानन्द चिन्मय-रसपूर्ण महाद्भुत प्राणियों के द्वारा सेवित् यह श्रीवृन्दाटवी मेरे पापों को समूल (पापबीज अविद्या के सहित) विनाश करे।।३८।।

वृन्दाटवी सहजवीत समस्त दोषा दोषाकरानपि गुणाकरतां नयन्ती।
पोषाय मे सकलधर्मबहिष्कृतस्य शोषाय दुस्तर महाघचयस्य भूयात्।।३९।।

यह श्रीवृन्दावन जीवों के समस्त दोषों को सहज में नाश करता है, यह सर्वदोषयुक्त दुष्टगणों को भी गुणमण्डित कर देता है। यह श्रीवृन्दावन मुझ

सर्वधर्महीन का पालन करे एवं मेरे दुस्तर महान पापों को नष्ट करे—यही प्रार्थना है।।३६।।

वृन्दाटवी बहुभवीय सुपुण्यपुञ्जान्नेत्रातिथिर्भवति यस्य महामहिम्नः।
तस्येश्वरः सकलकर्म मृषाकरोति ब्रह्मादयस्तमतिभक्तियुताः स्तुवन्ति।।४०।।

अनेक जन्मों के सुपुण्य—समूह के कारण श्रीवृन्दावन जिस महान पुरुष के दृष्टिगोचर होता है, उसके (पूर्वसञ्चित तथा आगामी) समस्त कर्मों को भगवान् झूंठा (नाश) कर देते हैं एवं ब्रह्मादि उसकी अति भक्तिपूर्वक स्तुति करते हैं।।४०।।

वृन्दावने सकलपावन—पावनेऽस्मिन् सर्वोत्तमोत्तम—चरस्थिर सत्त्वजाते।
श्रीराधिकारमण—भक्तिरसैककोषे तोषेण नित्यपरमेण कदा वसामि।।४१।।

सकल पवित्रता को पवित्र करने वाले, सर्वोत्तमोत्तम स्थावर—जंगम से निषेवित (सम्मानित—सेवित), एवं श्रीराधारमण की भक्तिरस के एकमात्र कोष (आधार) स्वरूप इस श्रीवृन्दावन में मैं कब नित्य परमानन्दपूर्वक वास करूंगा ?।।४१।।

वृन्दावने सकलपावन पावनेऽस्मिन् सर्वोज्ज्वलोज्ज्वलदुदारमतिः सदाऽस्ते।
सर्वोत्तमोत्तम महामहिमन्यनन्ते सर्वाद्भुताद्भुत महारसराजधाम्नि।।

सर्वपावन—पावन सर्वोत्तमोत्तम महामहिमायुक्त सर्वचमत्कार—चमत्कारी महारस (श्रृंगार रस) की राजधानी इस श्रीवृन्दावन में सर्वश्रेष्ठ उज्ज्वलरस के (अधिनायक) उदारमति (श्यामसुन्दर) नित्य ही विराजमान हैं अथवा सर्वोज्ज्वलोज्ज्वल उदारमति वैष्णव नित्य विराजमान हैं।।४२।।

वृन्दावने स्थिरचराखिल—सत्त्ववृन्दानन्दाम्बुधिस्नपन—दिव्यमहाप्रभावे।
भावेन केनाचिदिहामृति ये वसन्ति ते सन्ति सर्वपरवैष्णवलोकमूर्ध्नि।।४३।।

स्थावर जंगमादि निखिल जीवों को आनन्द—समुद्र में मज्जन कराने वाले, दिव्य महाप्रभावशाली इस वृन्दावन में जिस किसी भी भाव का आश्रय कर जो आमरण (मृत्युपर्यन्त) वास करते हैं—वे ही सर्वश्रेष्ठ वैष्णवगणों के मुकुटमणि हैं।।४३।।

वृन्दाटवी विमलचिद्घन—सत्त्ववृन्दा वृन्दारक प्रवरवृन्द—मुनीन्द्र—वन्द्या।
निन्द्यानपि स्वकृपयाऽद्भुतवैभवेन मादृक्पशून् स्वचरणानुचरीकरोतु।।४४।।

श्रीवृन्दाटवी में जो वास करते हैं, वे समस्त ही निर्मल एवं चिन्मय शरीर को प्राप्त करते हैं, सर्वश्रेष्ठ पूजनीय मुनीन्द्रवृन्द इस धाम की महिमा वर्णन करते हैं। मुझ जैसे निन्दनीय पशुओं को भी श्रीवृन्दावन अपनी कृपा एवं अद्भुत विभूति को प्रकाश कर अपने चरणों की दासी करें—यही प्रार्थना है।।४४।।

शाखीन्द्रैः कोटिकल्पद्रुम—परममहावैभवैः सात्वत—श्रु
त्युद् गानोन्मत्त—कीर—प्रमुख—खगकुलैः कृष्णरंगैः कुरंगैः।
दिव्यैर्वापी—तड़ागैरमृतमय—सरः सत्सरिद्रत्नशैलैः
कुञ्जैरानन्दपुञ्जैरिव कलय महामञ्जु वृन्दावनं भोः।।४५।।

कोटि कल्पवृक्षों की परम—महाविभूति से सम्पन्न वृक्षराजों से जो शोभित है, वैष्णवों के द्वारा श्रुतियों के उच्चगान से उन्मत्त होकर कीर (शारी) प्रमुख पक्षीकुल एवं श्रीकृष्ण को आनन्द देने वाले हरिणकुल (अथवा काले रंग के हरिणकुल) जहां विहार कर रहे हैं, दिव्य—दिव्य कूप, तड़ागादि के द्वारा जो मण्डित हो रहा है, तथा अमृतमय सरोवरों, नदियों एवं मणिमय पर्वतों से अलंकृत है—ऐसे श्रीवृन्दावन की महामनोहर शोभा हो रही है—अहो ! दर्शन कर।।४५।।

विश्वैश्वर्य—महाचमत्कृतिरियं किं भाति सर्वेशितु—
र्ब्रह्मानन्द सुधाम्बुधेरनवधेः किं वाद्भुतोऽयं रसः।
किंवा दिव्यसुकल्प—पादप—वनश्रेणी—सुबीजं परं
कृष्णप्रेम—नुताद्भुता परिणतिर्वृन्दाटवी किं न्वियम्।।४६।।

यह श्रीवृन्दाटवी क्या उस सर्वेश्वर के विश्व के ऐश्वर्यसमूह की महाचमत्कारकारी कारीगरी विशेष है ? या असीम ब्रह्मानन्द—सुधा—समुद्र का अद्भुत कोई अनिर्वचनीय रस विशेष? अथवा, दिव्य—दिव्य उत्तमोत्तम कल्पवृक्षयुक्त वनराज का सर्वश्रेष्ठ बीज विशेष है? या यह श्रीवृन्दावन कृष्णप्रेम की प्रशंसनीय एक अद्भुत परिणति है ?।।४६।।

श्रीकृष्णैकान्तभावं क्व नु सकलजनोऽवश्यमाप्नोत्ययत्नात्
कृष्णस्याश्चर्यसीमा परमभगवतः कुत्र लीलार्थमूर्त्तिः।
कुत्रत्या कृष्णपादाम्बुजभजन—महानन्द—साम्राज्यकाष्ठा
भ्रातर्वक्ष्ये रहस्यं शृणु सकलमिदं श्रीलवृन्दावनेऽत्र।।४७।।

श्रीकृष्ण में एकान्तभाव अनायास सब जीवों को निश्चयरूप से कहां प्राप्त होता है ? परमभगवान् श्रीकृष्ण का महाश्चर्यजनक केवल लीलाविग्रह कहां दीख पड़ता है ? और फिर श्रीकृष्ण के पादपद्मों के भजन से उत्पन्न होने वाले महानन्द की पराकाष्ठा कहां देखी जा सकती है ? भाई ! मैं कहता हूँ, रहस्यमय कथा सुन, इसी श्रीवृन्दावन में ही ये समस्त वस्तुएं प्राप्त होती हैं।।४७।।

भ्रातस्तिष्ठ तले तले विटपिनां ग्रामेषु भिक्षामट
स्वच्छन्दं पिब यामुनं जलमलं चीरैः सुकन्थां कुरु।
सम्मानं कलयाति–घोरगरलं नीचापमानं सुधां
श्रीराधामुरलीधरौ भज रसाद् वृन्दावनं मा त्यज।।४८।।

भाई ! वृक्षों के नीचे–नीचे अवस्थान कर, ग्राम–ग्राम में भिक्षा कर, स्वच्छन्द चित्त से यमुना का जल यथेष्ट पान कर, चीरों (चीथड़ों) के द्वारा उत्तमोत्तम कन्था तैयार कर, सम्मान को घोर विष एवं नीचापमान (तुच्छ–अपमान) को ही अमृत जान। भ्रातः ! प्रेम से श्रीराधामुरलीधर का भजन कर, और श्रीवृन्दावन का त्याग मत कर।।४८।।

कृष्णानन्दरसाम्बुधेः परतरं सारं विचित्रोज्ज्वला–
कारं पारगतैरपि श्रुतिशिरोवृन्दस्य नेक्ष्यं मनाक्।
श्रीवृन्दाविपिनं सुदुर्लभतरं प्रत्याशमासाद्य भोः
क्षुद्राशाकुपिशाचिका–वशगतो वंभ्रम्यसे किं बहिः।।४९।।

कृष्णानन्द–रस–समुद्र के विचित्र उज्ज्वलाकार श्रेष्ठतम सार का किञ्चितमात्र भी दर्शन श्रेष्ठ–श्रेष्ठ वेदवित् शिरोमणिगण भी कभी प्राप्त नहीं कर सकते। भ्रातः ! इस सुदुर्लभतर श्रीवृन्दावन में आकर भी तू क्षुद्र–वासनारूप कुत्सित पिशाची के वश होकर बहिर्मुख हुआ वृथा क्यों घूमता है ?।।४९।।

भ्रातस्ते किमु निश्चयेन विदितः स्वस्यान्तकालः किमु
त्वं जानासि महामनुं बलवतो मृत्योर्गतिस्तम्भने।
मृत्युस्तत् करणं प्रतीक्षत इति त्वं वेत्सि किंवा यतो
बारं बारमशंक एव चलसे वृन्दावनादन्यतः।।५०।।

अरे भाई ! तू क्या अपने मृत्युकाल को निश्चयरूप से जानता है—कि कब होगा ? बलवान मृत्यु की गति को रोकने का क्या तू कोई महामन्त्र जानता है ? मृत्यु तुम्हारे कार्य की अपेक्षा (इन्तजार) करेगी—क्या तेरी ऐसी धारणा है ? जो तू बारम्बार निशंक—चित्त होकर वृन्दावन से अन्यत्र चला जाता है।।५०।।

वृन्दारण्यमनन्य—भक्तिरसदं गोविन्दपादाम्बुज
द्वन्द्वे मन्दधियो विदन्ति न हि तद्वासञ्च नाशासते।
सान्द्रानन्द—रसाम्बुधिर्निरवधिर्यत्राविरस्ति ध्रुवं
नो मज्जन्ति कुबुद्धयो बत समुद्विग्नाः सुदुःखैरपि।।५१।।

श्रीवृन्दावन, श्रीगोविन्द के युगल पादपद्मों में अनन्य भक्तिरस दान करता है—यह बात मन्दबुद्धि लोग नहीं जानते, वे श्रीवृन्दावन में वास करने की आशा भी नहीं करते। असीम गाढ़ आनन्द—समुद्र जहां निश्चित ही आविर्भूत हुआ है, हाय ! मूर्खलोग अनेक दुखों के द्वारा व्याकुलचित्त होते हुए भी (उस रस—समुद्र में) मज्जन करना नहीं चाहते।।५१।।

न वेदाज्ञा—भंगे कुरु भयमये नापि वचनं।
गुरुणां मन्येथाः प्रविश न हि लोकव्यवहृतौ।।
कुटुम्बाद्ये दीने द्रव न कृपया नो भव सितोऽ—।
सकृत् स्नेहैर्वृन्दावनमनु हठान्निःसर सखे।।५२।।

हे सखे ! वेदों की आज्ञा को भंग करने में भय मत कर, गुरुजनों (माता—पितादि) के वचनों को मत मान, लोक—व्यवहार में प्रवेश (लोकापेक्षा) न कर, दीनचित्त कुटुम्बियों के प्रति करुणा से द्रवित न हो, स्नेह में आकर बारम्बार संसार में आबद्ध न हो, श्रीवृन्दावन के लिये शीघ्र ही धावित हो।।५२।।

यत्राभंग—स्मरविलसितैः क्रीड़तो दम्पती तौ
गौरश्यामौ प्रतिपद—महाश्चर्य—सौन्दर्यराशी।
सान्द्रानन्दोन्मद—रस—महासिन्धु सम्मज्जिताली वृन्दौ
वृन्दावनमिदमहो दुर्भगा नाश्रयन्ते।।५३।।

जहां निरन्तर कामविलास में क्रीड़ा—परायण होकर प्रतिक्षण महाश्चर्यमय लावण्य—सौन्दर्यराशि का विस्तार करते हुए वही गौर—श्यामांग युगलकिशोर गाढ़ आनन्दपूर्वक उन्मत्तकारी रस के महासमुद्र में सखीवृन्द को निमज्जित कर

विहार कर रहे हैं, उस इसी श्रीवृन्दावन का दुर्भाग्यवान मनुष्य ही आश्रय ग्रहण नहीं करते।।५३।।

राधानागर–केलिसागर–निमग्नालीदृशां यत्सुखं
नो तल्लेशलवायते भगवतः सर्वोऽपि सौख्योत्सवः।
तत्राशा यदि कस्यचिन्निरुपमां प्राप्तस्य भाग्यश्रियं
तद् वृन्दावननाम्नि धाम्नि परमे स्वीयं वपुर्नस्यतु।।५४।।

श्रीराधानागर के केलि–समुद्र में निमग्ना सखियों के नेत्रों को जो सुख होता है, श्रीभगवान् के सकल सुखोत्सव भी उस सुख के लवलेश तुल्य नहीं हैं। अनुपम सौभाग्य–लक्ष्मीवान् जिस किसी व्यक्ति की यदि उस सुख को प्राप्त करने की आशा हो, तो श्रीवृन्दावन–नामक परमधाम में अपने शरीर का पात करे (देहान्त करे)।।५४।।

राधाकेलिमृगस्य कस्यचिदहो श्यामस्य यूनो नव–
स्याभीरीगणकांक्षमाण करुणादृष्टेः स्मरोन्मादिनी।
सर्वाम्नाय–दुरूह–कृष्णरस सर्वस्वैक संधारिणी
श्रीवृन्दाविपिनाभिधा विजयते कन्दर्पकेलिस्थली।।५५।।

आभीरीगण (गोपियां) जिसकी करुणापूर्ण दृष्टि की प्रार्थना करती हैं, उसी श्रीराधा–केलि–मृग किसी एक श्यामांग नवीन युवक को कामोन्मत्तता विधान करने वाली एवं समस्त वेदों के सुगुप्त कृष्ण–रस के सर्वस्व को ही सम्यक् प्रकार सञ्चार करने वाली श्रीवृन्दाटवी–नामक कामविलासस्थली सर्वोत्कर्षयुक्त विराजमान है।।५५।।

महारंकत्वे वा परमविभवे वा बहुतरे
सुखे वा दुःखे वा यशसि बहुलेऽथाप्यशसि।
मणौ वा लोष्ट्रे वा सुहृदि परमे विद्विषति वा
समा दृष्टिर्नित्यं मम भवतु वृन्दावनजुषः।।५६।।

महादारिद्र्य में अथवा परम विभुत्व में, महान् सुख में अथवा विषम दुख में, बहुत यश में अथवा अपयश में, मणि में अथवा मिट्टी के डेले में, परम बन्धु में अथवा परम शत्रु में वृन्दावन–वास करते हुए मेरी नित्य समान दृष्टि हो।।५६।।

आश्चर्यं धाम–वृन्दावनमिदमहहाश्चर्यमत्रापि राधा
कृष्णाख्यं गौरनीलद्वय मधुरमहस्तत्पदाम्भोरुहे च।
आश्चर्यः शुद्धभावः परमपदमथारुह्य तन्निष्ठ एवा–
श्चर्यः कश्चिन्महात्मा परमसुविरलस्तद्विदाश्चर्य एव।।५७।।

यह श्रीधाम वृन्दावन आश्चर्य है ! अहो ! इससे और एक आश्चर्य है–श्रीराधाकृष्णाख्य गौर–नीलवर्णयुक्त दोनों का मधुर विग्रह और इनके चरणकमलों में जो शुद्धभाव–वह भी एक आश्चर्य है, और एक आश्चर्य वह है, परमपद (श्रीवृन्दावन) में आकर जिसकी इसमें निष्ठा है, और इस समस्त तत्त्व को जानने वाला परम विरला कोई एक महात्मा भी आश्चर्य ही है।।५७।।

सखे न जनरञ्जनं कुरु कदिन्द्रियाणां सदा
विधेहि बहुगञ्जनं प्रणयभञ्जनं सर्वतः।
हठं न कुरु बन्धने सुत–कलत्र–मित्रादिके
वपुर्व्यय–समीहया निवस वत्स वृन्दावने।।५८।।

हे सखे ! लोकों के रञ्जन (प्रसन्नता) के लिए तू यत्न न कर, सर्वदा हर ओर से जैसे प्रीति टूटे, उसी प्रकार की बहु ताड़ना इन शोभाहीन इन्द्रियों के प्रति विधान कर, स्त्री–पुत्र–बन्धु आदि के प्रति आसक्ति में और हठ न कर, वत्स ! जब तक शरीर रहे प्रतिज्ञापूर्वक इस श्रीवृन्दावन में वास कर।।५८।।

राधामाधवयोर्यशांसि सततं गायंस्तथाकर्णयन्
तज्जीवेषु च वर्णयन् समरसैः सम्भूय सन्तर्कयन्।
कुञ्जं कुञ्जमनारतं बहु परिष्कुर्वन्महाभावतो
देहादौ कृतहेलनो दयित हे वृन्दाटवीमावस।।५९।।

हे दयित (हे प्यारे) ! श्रीराधामाधव के यश का निरन्तर गान एवं श्रवण करते–करते, श्रीराधागोविन्द के जीवों (भक्तों) के निकट उसका वर्णन करते–करते, समरस रसिक भक्तों के साथ मिलकर इष्टगोष्ठी करते–करते, निरन्तर कुञ्जों को बारम्बार परिष्कार (बुहारी) करते–करते तथा महानुरागवश (प्रेमवश) देह के प्रति निरपेक्ष होकर श्रीवृन्दाटवी में वास कर।।५९।।

मुक्तिश्रीभिः स कलितपदो नारकं याति धावन्
लब्ध्वा चिन्तामणिमथ महावारिधौ निक्षिपेत् सः।
कृत्वा वश्यं सकलभगवच्छेखरं श्वाधमः स्याद्
यो दुर्बुद्धिस्त्यजति सहसा प्राप्य वृन्दावनं तत्।।६०।।

जो दुर्बुद्धि मनुष्य वृन्दावन में आकर भी सहसा इसे त्याग कर अन्यत्र चला जाता है, वह मानों मुक्ति द्वारा गृहीत–पद होकर भी नरक में धावित होता है, हाथ में चिन्तामणि लेकर उसे महासमुद्र में फैंकता है, और सकल–भगवत् शिरोमणि (परम भगवान्) को अधीन करके भी वह कुत्ते से अधम है।।६०।।

सेवा वृन्दावनस्थ–स्थिर–चर–निकरेष्वस्तु मे हन्त केवा
देवा ब्रह्मादयः स्युस्तत उरुमहिता वल्लभा ये ब्रजेन्दोः।
एते ह्यद्वैत–सच्चिद्रसघनवपुषो दूरदूरातिदूर
स्फूर्जन्माहात्म्यवृन्दा बृहदुपनिषदानन्दजानन्दकन्दाः।।६१।।

श्रीवृन्दावन के स्थावर जंगम की सेवा मुझे प्राप्त हो। अहो ! जो गोकुलचन्द्र के प्रियतम हैं, वे ब्रह्मादि देवताओं से भी अधिकतर पूजा करने योग्य हैं। वे श्रीकृष्ण प्रियजन अद्वय सच्चिदानन्दघनमूर्त्ति हैं–उनकी महिमा दूरातिदूर (मानव–बुद्धि के अगोचर) स्फुरित होती है। अति प्राचीन उपनिषदों को भी आनन्द प्रदान करने वाली जो महानन्दराशि है, वे उसके भी मूल–बीज स्वरूप हैं।।६१।।

नाहं वेद्मि किमेतदद्भुततमं वस्तु त्रयी मस्तकैः
स्तव्यं प्रीतिभरेण गोकुलपतिर्यन्नित्यमासेवते।
कन्दं प्रेमरहस्य किं मधुरिमोत्कर्षान्त्यसीम्नोऽद्भुत
सान्द्रानन्दरसस्य वा परिणतिर्वृन्दावनं पावनम्।।६२।।

मैं नहीं जानता वह कैसी अद्भुततम वस्तु है, जिसकी वेदसमूह नतमस्तक होकर वन्दना करते हैं और श्रीगोकुलपति प्रेमपूर्वक जिसकी नित्य सेवा करते हैं। यह परम पवित्र श्रीवृन्दावन क्या प्रेमरस का मूल बीज है ? या माधुर्योत्कर्ष की चरमसीमा प्राप्त अद्भुत गाढ़ आनन्दरस का परिणाम?।।६२।।

लोकाः स्वच्छन्दनिन्दां विंदधति यदि मे किं ततो दीनदीनं
सर्वं चेत् स्यात् कुटुम्बं किमिव मम ततो दुर्दशाः स्युस्ततः किम्?।
सेवाधीशस्य न स्याद् यदि किमिव ततः श्रीलवृन्दावनेऽहं
स्थास्याम्यास्थाय धैर्यं मम निजपरमाभीष्टसिद्धिर्भवित्री।।६३।।

यदि सब लोक मेरी यथेष्ट निन्दा करें, उससे मेरी हानि क्या ? यदि मेरा सब कुटुम्ब दीनातिदीन (अत्यन्त दरिद्री) हो जाये तो उससे मेरा क्या बिगाड़ ?

मेरी अत्यन्त दुर्दशा हो तो क्या ? और यदि भगवान् की सेवा मुझसे न बन पड़े, तो मेरी हानि क्या ? किन्तु मैं श्रीवृन्दावन में धैर्यपूर्वक वास करूंगा—अवश्य ही मुझे अपनी परम—अभीष्ट वस्तु प्राप्त होगी।।६३।।

कन्था कौपीनवासास्तरुतलपतितैः क्लृप्तवृत्तिः फलाद्यैः
कुर्वन्न व्यर्थवार्त्तां कथमपि न वृथा चेष्टया कालयापी।
त्यक्त्वा सर्वाभिमानं प्रतिगृहमटनं तुच्छभैक्ष्याय कुर्वन्
वृन्दारण्ये निवत्स्याम्यनिशमनुसरन् राधिकैकात्मलोकान्।।६४।।

कन्था कौपीन धारण करते हुए, वृक्षों के नीचे गिरे हुए फल आदि के द्वारा जीविका निर्वाह करके, आवश्यक वार्ताओं की आलोचना करते हुए एवं किसी प्रकार भी समय को वृथा व्यतीत न करके, सकल अभिमान त्यागपूर्वक तुच्छ भिक्षा के लिये घर—घर में जाकर तथा श्रीराधिका जी के निज जनों (प्रिय भक्तों) का अनुसरण करते—करते मैं निरन्तर श्रीवृन्दावन में ही वास करूंगा।।६४।।

स्त्रीमात्रे मातृबुद्धिः स्थिर—चर—निखिलप्राणिषूपास्यबुद्धि—
र्बाह्याशेषार्थ—लाभेष्वपि हृदयमुखम्लानिकृद्धानिबुद्धिः।
देह स्त्री—वित्त—पुत्रादिषु न हि ममधीर्मित्रबुद्धिः स्वशत्रु—
ष्वापीड़ायां समन्तात् सुखमतिरमितानन्द—वृन्दावनेऽस्तु।।६५।।

स्त्री—मात्र में मेरी मातृ—बुद्धि हो, स्थावर—जंगमात्मक समस्त प्राणियों में मेरी उपास्यबुद्धि हो एवं सांसारिक समस्त अर्थों के लाभ में भी हृदय एवं मुख की म्लानिजनक हानिबुद्धि उत्पन्न हो। देह, स्त्री, धन और पुत्रादि में ममताबुद्धि न रहे तथा अपने को विशेषभाव में पीड़ा देने वाले शत्रुओं में भी मेरी मित्रबुद्धि हो। इस प्रकार से सर्वदा सुखमग्नचित्त होकर अपरिसीम आनन्दमय श्रीवृन्दावन में मैं वास कर सकूं।।६५।।

तिक्तीभूता विमुक्तिर्विषमनिरयवद्भाति सर्वेन्द्रियार्थः
सर्वे भोगा भवन्ति प्रबल—गरल—वन्ह्युद्भटज्वालकल्पाः।
कीटप्रायाः समस्त—प्रवर—सुरगणाः सिद्धयश्चेन्द्रजाल
प्रायाः संस्वाद्य वृन्दावन—रसिकरसं माद्यते मेऽद्य हृद्यम्।।६६।।

विमुक्ति तिक्त (कड़वी) लगती है, समस्त इन्द्रियों के विषय विषम नरक के समान प्रतीत होते हैं एवं निखिल भोग—पदार्थ प्रबल विष एवं अग्नि की तीव्र

ज्वाला के सदृश लगते हैं। श्रेष्ठ–श्रेष्ठ देवता कीड़ों के समान एवं अष्टसिद्धियां इन्द्रजालवत् प्रतीयमान होती हैं, क्योंकि आज मेरा हृदय श्रीवृन्दावन–रसिक (श्रीश्यामसुन्दर) का रस आस्वादन करके मतवाला हो रहा है।।६६।।

त्यक्त्वा वृन्दावनमिदमहो चेद्बहिर्यासि नूनं
क्षिप्त्वा कल्पद्रुमवरवनं हन्त शाखोटमेषि।
हित्वा वृन्दावन–रसकथामन्यवार्त्ता–रुचिश्चेज्
ज्ञातं क्षिप्त्वा परमममृतं भोक्तुमिच्छुः श्वविष्ठाम्।।६७।।

यदि इस वृन्दावन को त्याग कर तू अन्यत्र जाये, तो सचमुच तू कल्पवृक्षों के श्रेष्ठ वन को छोड़ कर सिहोर के जंगल में जाता है। यदि वृन्दावन के रस की कथा को छोड़ कर और वार्ता तुम्हें अच्छी लगे, तब तू जान ले कि उत्तमोत्तम अमृत को त्याग कर कुत्ते की विष्ठा भोजन करने की तुम्हारी इच्छा होती है।।६७।।

पापात्मा पुण्यवान् वा प्रसरदपयशाः कीर्त्तिमान वा महादु–
ष्प्राप–ग्रासोऽथ सम्राड़समजड़मतिः सर्वविद्यानिधिर्वा।
यः कोऽपि स्याः सखे नो गणय कथमपीक्षस्व वृन्दावनं त–
च्छिन्धि छिन्धि स्वपाशान् गुरुनिगमगिरा स्वीयमोहैकसिद्धान्।।६८।।

पापी या पुण्यात्मा, प्रसिद्ध अपकीर्त्ति या कीर्त्तिमान, महादरिद्र या महासम्राट, विषम जड़मति या सर्वविद्या–विशारद– तुम जो कुछ भी क्यों नहीं हो, हे सखे! तू इन में अपनी कुछ भी गणना मत कर। किन्तु जैसे भी हो उस श्रीवृन्दावन के दर्शन कर, और गुरु एवं शास्त्राज्ञानुसार अपने मोह के मूलस्वरूप अपने बन्धनों को छेदन कर।।६८।।

नाहन्ता–ममते वृथा कुरु सखे ! देहालय–स्त्र्यादिके
छित्त्वा दुर्जरश्रृंखलं गुरुगिरा ते मोहमात्रोदितम्।
वृन्दारण्यमुपेत्य शीघ्रमखिलानन्दैकसाम्राज्यसत्
कन्दं कन्दफलादि–वृत्तिरनिशं तन्नाथलीलां स्मर।।६६।।

हे सखे ! देह, गृह, स्त्री आदि में वृथा 'अहं' 'मम' बुद्धि न कर, मोह मात्र ही उत्पन्न करने वाले इन पाशों (जंजीरों) को गुरुवाक्यों द्वारा तोड़। समस्त साम्राज्यसुख के बीजस्वरूप श्रीवृन्दावन में शीघ्र पहुंच कर कन्द फलादि द्वारा

जीवन धारण करते हुए श्रीवृन्दावनचन्द्र की लीला निरन्तर स्मरण कर।।६९।।

न कुरु न कुरु मिथ्या देहगेहाद्यपेक्षां मृतिमखिलपुमर्थभ्रंशिकां विद्धि मूर्ध्नि।
चल चल सुहृदद्यैवाभिमुख्येन वज्रादपि च हृदि कठोरः श्रीलवृन्दावनस्य।।७०।।

मिथ्या देह–गेहादि की कभी अपेक्षा न कर, समस्त पुरुषार्थों को नाश करने वाली मृत्यु को सिर पर खड़ा जान, हे बन्धो ! आज ही श्रीवृन्दावन के लिए वज्र से भी कठोर–चित्त होकर चल दे, चल दे।।७०।।

अद्यैव मूर्ख चल सर्वमिदं विहाय वृन्दावनाय सकलार्थ सुरद्रुमाय।
श्रीराधिका–सुरतनाथ–विशुद्धभावसत्राय मैव कुरु कृत्यसमाप्त्यपेक्षाम्।।७१।।

अरे मूर्ख ! आज ही सब कुछ (विषय–सम्पदादि) परित्याग कर सर्व वाञ्छा–कल्पतरु श्रीराधा–सुरतनाथ के विशुद्ध भाव के सुलभ प्राप्ति स्थल श्रीवृन्दावन की यात्रा कर। आरब्ध (जो आरम्भ कर रखे हैं) कार्यों की समाप्ति पर्यन्त और अपेक्षा न कर।।७१।।

साधो शक्नोषि नो चेत् सकलमपि हठात् स्वप्नकल्पं विहातुं
तर्हि त्वं ध्याय वृन्दावनमनिशमथोपास्य वृन्दावनेऽसौ।
तन्नामान्येव नित्यं जप सततमथो तत्कथां संश्रृणुष्व
श्रीमद् वृन्दावनस्थानथ परिचर भो भोजनाच्छादनाद्यैः।।७२।।

हे साधो ! यदि तू इन समस्त स्वप्रकल्पित वस्तुओं का सहसा त्याग नहीं कर सकता, तो श्रीवृन्दावन के युगल–किशोर की उपासना करते हुए निरन्तर श्रीवृन्दावन का ध्यान कर। प्रति क्षण उनके नामों का जप कर, निरन्तर उनकी कथाओं (लीलाओं) को श्रवण कर और सब वृन्दावनवासियों को भोजन वस्त्रादि देकर उनकी सेवा कर।।७२।।

वस्तुः कोटिगुणं श्रुतं सुकृतं वासोऽन्नवासादिभि–
तीर्थे वासयितुः स्वयं हि तरति द्वौ तौ स यत्तारयेत्।
प्रेमानन्द–रसात्मधामनि परे वृन्दावने वासक–
स्त्वाश्चर्यां वृषभानुजा–प्रिय–रतिं प्राप्नोत्यनायासतः।।७३।।

जो वस्त्र–अन्न या वासस्थानादि के द्वारा तीर्थ (श्रीवृन्दावन) में किसी को वास कराता है, वह श्रीवृन्दावन में वास करने वाले से भी कोटिगुण–अधिक पुण्य का पात्र होता है, क्योंकि जो वास करता है, वह तो केवल स्वयं उत्तीर्ण

होता है, और जो दूसरे को वास कराता है, वह अपना एवं जिसको वास कराता है—उसका उद्धार करता है। श्रेष्ठ प्रेमानन्द—रसस्वरूप श्रीधामवृन्दावन में जो दूसरे को वास कराता है, वह श्रीवृषभानु किशोरी के प्रिय श्रीकृष्ण में आश्चर्यमय रति को अनायास ही प्राप्त कर लेता है।।७३।।

निष्किञ्चनान् कृष्णरसे निमग्नान् महानिरीहान् जनसंगभीतान्।
वृन्दावनस्थान् वसनाशनाद्यैर्यः सेवतेऽसौ वशयेत्तदीशौ।।७४।।

निष्किञ्चन, कृष्णरस में मग्नचित्त एवं महानिरीह (वासना रहित) तथा जन—संग—भीत (एकान्त—प्रिय) श्रीवृन्दावन में वास करने वाले महात्माओं की जो वस्त्र एवं भोजनादि के द्वारा सेवा करता है, वह श्रीयुगलकिशोर को ही वशीभूत कर लेता है।।७४।।

वृन्दारण्यमनन्यभाव — मधुराकारेहितो राधिका—
कृष्णक्रीड़ित—रञ्जित—प्रविलसत्— कुञ्जावलीमञ्जुलम्।
योऽन्यत्रापि कृतस्थितिर्विधिवशाच्छोचन् सदा चिन्तये—
न्नित्यं तन्मिलनं विचिन्तयदहं तद्धामयुग्मं भजे।।७५।।

जो अन्य स्थान में वासरूप दुर्भाग्य से दुखी होते हुए अनन्य भाव से मधुराकृति श्रीवृन्दावन के लिये लालायित होकर श्रीराधाकृष्ण के क्रीड़ामय, रमणीय एवं विलासमय कुञ्जों से परिशोभित श्रीवृन्दावन की सदा चिन्ता करता रहता है, उसको मिलने के लिये जो नित्य (श्रीवृन्दावन में) चिन्ता करते हैं, उन ज्योतिर्मय श्रीयुगलकिशोर का मैं भजन करता हूँ।।७५।।

राज्यं निष्कण्टकमपि परित्यज्य दिव्याश्च रामाः
कामान् सर्वानपि च विहितांस्तिक्ततिक्तान् विदन्तः।
हित्वा विद्या—कुल—धन—जनाद्याभिमानं प्रविष्टा
ये श्रीवृन्दाविपिनमपुनर्निर्गमास्तान् नमामः।।७६।।

निष्कण्टक राज्य को एवं दिव्य रमणीगणों को भी त्याग कर, हर प्रकार की विहित वासनाओं को अतीव तिक्त (दुखमयी) जानकर तथा विद्या—कुल—धन परिवार आदि का अभिमान भी त्याग कर जो श्रीवृन्दावन में प्रवेश करके फिर वहां से बाहर नहीं जाते, उनको हम नमस्कार करते हैं।। ७६।।

राधाकृष्णौ परममृणिनौ कुर्वतः सर्वतः श्री–
विष्णोर्धाम्नः स्फुरदतिमहानन्द–वृन्दावनस्थान्।
जन्तून् हन्तुं विरचितकृतीनप्युरुप्रेमभाजो
दानैर्मानैरहह भजतो धन्य–धन्यान् नमामः।।७७।।

श्रीविष्णु के समस्त धामों से (परव्योम से) भी अधिक स्फूर्तिशील महानन्दमय जो श्रीवृन्दावन है, उस धाम के सब जीव अपनी हत्या करने वालों की भी दान और मान से सेवा करते हैं एवं जिन्होंने श्रीराधाकृष्ण को परम ऋणि किया है, उन पूर्ण प्रेम के भाजन धन्य–धन्य पुरुषों को हम नमस्कार करते हैं।। ७७।।

मरिष्यसि कदा सखे! त्वमिति किं विजानासि किं
शिशोः सुतरुणस्य वा न खलु मृत्युराकस्मिकः।
तदद्य निरवद्यधीरवपुरिन्द्रियासक्तिको
न किञ्चन् विचारय द्रुतमुपैहि वृन्दावनम्।।७८।।

हे सखे! किस दिन मृत्यु होगी, क्या तू यह जानता है? बालक या नवीन युवक की क्या अकस्मात मृत्यु नहीं होती है? अतएव अनिन्दनीय बुद्धि एवं देह इन्द्रियादि से आसक्ति रहित होकर कोई विचार न करते हुए आज शीघ्र ही श्रीवृन्दावन के लिये चल दे।।७८।।

शुद्धामाद्यरतिं समस्तभगवद्रत्युच्छ्रित–श्रीमतीं
त्वं चेत् कांक्षसि माधुरीभर–धुरीणानन्द सन्दोहिनीम्।
धर्म–ज्ञान–विरक्ति–भक्तिपदवीं तत्साध्यमप्यस्पृशन्
दुर्भेदं सहसा विभिद्य निगड़ं संन्यस्य वृन्दावने।।७९।।

समस्त भगवत्–रतिसमूह से भी उन्नत श्रीयुक्त एवं माधुर्यरस श्रेष्ठ आनन्दयुक्त विशुद्ध आद्यरति (मधुराराति) को यदि तू चाहता है, तो धर्म, ज्ञान वैराग्य एवं भक्तिरूप साधन तथा उसके साध्य को स्पर्श न करके दुर्भेद्य पाशों को बलपूर्वक तोड़कर श्रीवृन्दावन में निरन्तर वास करने का संन्यासव्रत ग्रहण कर।।७९।।

महाभाग्यैः प्राप्तं वपुरिदमिहाकर्णि महिमाऽ–
द्भुतो वृन्दाटव्याः कलितमखिलं स्वप्नसदृशम्।
शुभायामाश्वासो नहि नहि मतौ नापि वपुषि
क्षणेऽस्मिन्नेव त्वं तदभिचल वृन्दावनवनम्।।८०।।

महाभाग्य से यह (नरतन) देह पाया है, (महाभाग्य से) श्रीवृन्दावन की अद्‌भुत महिमा भी सुनी है, समस्त संसार स्वप्न समान है—यह भी (महाभाग्य से) जान लिया है, शुभबुद्धि का आश्वास नहीं किया जाता (आज शुभबुद्धि है, कल न भी रहे) और शरीर का भी विश्वास नहीं है, अतः इसी क्षण ही तू श्रीवृन्दावन के लिये प्रस्थान कर।।८०।।

भ्रातर्यर्हि निमीलिताऽसि नयने तत्र क्व कान्तात्मज—
भ्रातृ—स्वाप्त—सुहृद्‌गणाः क्व च गुणाः कुत्र प्रतिष्ठादयः।
कुत्राहंकृतयः प्रभुत्व—धनविद्याद्यैस्ततः सर्वत—
स्त्वं निर्विद्य सविद्य! किं नु न चलस्यद्यैव वृन्दावनम्?।।८१।।

हे भ्रातः ! जब तुम दोनों नेत्र बन्द करोगे (मृत्यु को प्राप्त होवोगे) तब तुम्हारे स्त्री, पुत्र, भ्राता एवं विश्वासपात्र सुहृदगण कहां रहेंगे ? तुम्हारे गुण, तुम्हारी प्रतिष्ठा आदि किस काम आवेंगे ? प्रभुता, धन एवं विद्या जनित जो अभिमान है, वह कहां रहेगा ? इसलिये, हे सुविज्ञ ! सबों से वैराग्य करके आज ही तू क्यों श्रीवृन्दावन नहीं चलता ?८१।।

रुददपि पितृमातृ—बन्धुपुत्रादिकमपहाय निशम्य नार्हदुक्तीः।
हृदि परमकठोरतां दधानो द्रुतमवलोकय कृष्णकेलिकुञ्जम्।।८२।।

रोते हुए पिता, माता, बन्धु तथा पुत्रादिकों को भी त्याग कर, (तुम्हारे वृन्दावन जाने में यदि वे स्नेहवश रोते हैं) पूजनीय व्यक्तियों के वाक्यों को सुन ही मत, हृदय में परम कठोरता पोषण करते हुए श्रीवृन्दावन के दर्शन कर।।८२।।

रति—रतिपति—कोटि—सुन्दरं तत्प्रमुषित—कोटि—रमा—रमापतिश्रि।
कनक—मरकताभमूर्त्ति वृन्दाविपिनविहारि महोद्वयं भजामि।।८३।।

कोटि—कोटि रति—कामदेव से भी अधिक सौन्दर्यशाली, कोटि—कोटि रमा एवं नारायण की शोभा को तिरस्कार करने वाले, स्वर्ण तथा इन्द्रनीलाभ मूर्त्तिधारी तथा श्रीवृन्दावन बिहारी उस ज्योतिर्मय विग्रहयुगल—श्रीयुगलकिशोर को मैं भजता हूँ।।८३।।

तदखिल भगवत् स्वरूप—रूपामृतरसतोऽप्यति—माधुरीधुरीणम्।
कुवलय—कमनीय—धाम राधापदरसपूर्णवने भ्रमद् भजामः।।८४।।

अखिल भगवत् स्वरूपों के रूपामृत रस से भी अतिशय माधुर्यमण्डित श्रीराधापद–कमल–रस से पूर्ण वन में भ्रमण करने वाले उस प्रसिद्ध कुवलयवत् (नीलकमलवत्) विग्रह (श्यामसुन्दर) का हम भजन करते हैं।।८४।।

अलक्ष्याः श्रीलक्ष्म्या अपि च भगवत्या भगवतः
यदा वक्षस्थाया मधुरमधुराः केचन रसाः।
अहो ! यद् दासीभिः सततमनुभूयन्त ऊरुभिः
प्रकारैस्तां राधां भज दयित ! वृन्दावनवने।।८५।।

भगवती श्रीलक्ष्मीदेवी सदा श्रीभगवान् की वक्षस्थल–विलासिनी होते हुए भी जिन किन्हीं–किन्हीं मधुरतम रसों का आस्वादन नहीं कर सकती–अहो! जिनकी दासियां भी अनेक प्रकार से उस रस का सर्वदा आस्वादन करती हैं, हे प्रिय ! श्रीवृन्दावन वास करके उस श्रीराधा जी का भजन कर।।८५।।

विषय–विष–कृमीणां बोधमात्रात्मभाजां स
समय–सभय–सर्वेशैक–भक्त्याश्रितानाम्।
न निजरुचिकरं वर्त्मोत्सृजन्तः स्थिताः स्मो
वयममलसुखौघ–स्यन्दि–वृन्दावनाशाः।।८६।।

विषयरूप विष के जो कृमि हैं (लोलुप हैं) उनका, बोधमात्रात्मवादियों का (रुक्षज्ञानियों का) एवं वृद्धावस्था में (मृत्यु के) भय से भगवान् का भजन करने वालों का मार्ग हमें रुचिकर नहीं है। अतः उसको त्याग पूर्वक हम निर्मल सुखराशि देनेवाले श्रीवृन्दावन की आशा लेकर बैठे हैं।।८६।।

उन्मत्तप्रायवाचः परिमुषित–धियो माययाऽनर्थबीजं
स्वार्थं मत्वाऽकृतार्था अथ न सुख–विवेकादयोऽग्राह्यवाचः।
स्वीयाः सर्वे जिघांसन्त्यहह बहुमृषा स्नेहपाशैर्निबध्य
श्रीवृन्दारण्य ! यायामहमहितसमाजात् कदा निःसृतस्त्वाम्।।८७।।

सम्बन्धि अथवा मित्रों के वाक्य पागलों के से हैं, माया से मोहित होकर उनकी बुद्धि–वृत्ति नाश हो गई है, अनर्थों (दुखों) के बीज को ही स्वार्थ मानकर वे कृतकृतार्थ हो रहे हैं एवं वास्तव सुख तथा विवेकादि के उपदेश को वे ग्रहण नहीं करते। अहो ! मेरे स्वजनगण अत्यन्त झूठे स्नेहपाशों में बांध कर मुझे मारने की चेष्टा करते हैं। हे श्रीवृन्दावन ! मैं कब इस अनिष्टकारी समाज से छुटकारा पाकर आपके आश्रित हूंगा ?।।८७।।

गृहान्धकूपे पतितः कदा मामुद्धृत्य मूढ़ं कृपया स्वयैव।
कामादि–कालाहिगणैर्निगीर्णं मातेव वृन्दाटवि! नेष्यसेऽङ्कम्।।८८।।

मैं जो गृहरूप अन्धे कूप में गिरा हुआ हूँ, कामादि कराल काल–सर्प से ग्रस्त हूँ एवं मूर्ख हूँ, हे वृन्दाटवि! आप कब कृपापूर्वक मेरा उद्धार कर, माता की भांति मुझे अपनी गोदी में स्थान दोगी?।।८८।।

निष्किञ्चनो नित्यविविक्तसेवी वृन्दावने दैवतवृन्दवन्द्ये।
श्रीराधिकामाधव–नाम–धाम द्वयं कदा भावभरेण सेवे।।८९।।

निष्किञ्चन एवं नित्य निर्जनवासी होकर मैं कब देवतागणों से भी वन्दनीय इस श्रीवृन्दावन में श्रीराधामाधव नामक जोड़ी की भावपूर्वक सेवा करूंगा?।।८९।।

निज सर्वनाशकरमात्मसुहृत–सुत–दार–मित्र–परिवारगणम्।
परिवञ्चय कर्हि दृढ़बुद्धिरहं प्रपलाय्य यामि हरिकेलिवनम्।।९०।।

अपना सर्वनाश करने वाले अपने सुहृद, स्त्री, पुत्र, मित्रादि परिवार के लोगों की वञ्चना कर, कब मैं दृढ़बुद्धि–पूर्वक दौड़कर श्रीहरि के केलिवन (श्रीवृन्दावन) का आश्रय करूंगा?।। ९०।।

जन्मान्यसंख्यानि गतानि मे वृथा व्यग्रात्मनो देहगृहादिकेहया।
अद्यापि मुह्याम्यपि बुद्धिमानहं तवैव वृन्दाटवि! नाम मे गतिः।।९१।।

देह–गृहादि की चेष्टा में व्यग्रचित्त होकर मेरे अनगिनत जन्म वृथा नाश हो गए हैं। हाय! बुद्धिमान होकर भी आज तक मैं मोह में फंसा रहा, हे वृन्दाटवि! अब आपका नाम ही मेरी एकमात्र गति है।।९१।।

ऋणग्रसतो यायां कथमहह वृन्दावनमहं
त्यजेयं वा वृद्धावगति–पितरौ दार–शिशुकान्।
कथं वा मज्जीवान् बत परिहरेयं निजजनान्
सतांश्लाघ्यो भूत्वेत्यफल–कलनो मुह्यति कुधीः।।९२।।

अहो! ऋणी होकर मैं कैसे श्रीवृन्दावन जाऊं, अगति वृद्ध माता–पिता एवं स्त्री–पुत्रादि को मैं कैसे छोड़ सकता हूँ, और जो मद्गत–प्राण हैं, ऐसे अपने परिवार के लोगों को मैं कैसे त्याग करूं,–इस प्रकार की निष्फल चिन्ताएं कर सज्जन पुरुषों से प्रशंसनीय होकर कुबुद्धि पुरुष मोहित होते हैं।।९२।।

जानन्नप्यमृतं विहाये गरलं भुञ्जे स्वयं बन्धम–
प्यार्तिव्रातनिबन्धनं दृढ़तरं कुर्वे सुदृक् स्वंधवत्।
श्रीवृन्दाटवि ! मातरेकमिह मज्जीवातुरस्ति स्वयं
यत्त्वं स्नेहमयी विकृष्य जनतां स्वांकं समानेष्यसि।।९३।।

अमृत जानते हुए भी उसे त्याग कर मैं स्वयं विष पान कर रहा हूं, सुन्दर नेत्र रखते हुए भी महा अंधे की तरह दुखों के समूह के कारण बन्धन को और भी दृढ़तर करता जा रहा हूँ, हे माता वृन्दाटवि ! मुझे एकमात्र यही जीवनाशा दीखती है कि आप स्नेहमयी हो, अतः जनता (परिवार–सम्बन्धियों) से खैंचकर मुझे गोद में ले लोगी।।९३।।

राधाकृष्ण–रहस्य–दास्यरस एवेष्टः पुमर्थो मम
त्यक्त्वा सर्वमहं कदापि नियतं वत्स्यामि वृन्दावने।
इत्थं स्यादपि वाचि यस्य परमासक्तस्य गेहादिके
नासक्तावपि सक्तता–परिहृतौ तं पाति वृन्दाटवी।।९४।।

श्रीराधाकृष्ण–रहस्य दास्यरस ही (शृंगाररसात्मक–दास्यरस ही) मेरा अभिलषित पुरुषार्थ है, मैं कब यह समस्त त्याग कर नियत काल पर्यन्त श्रीवृन्दावन में वास करूंगा–इस प्रकार से जो पुरुष गृहादि में परम आसक्ति के कारण एवं उसे त्याग करने में असमर्थ होता हुआ वाक्य द्वारा ही केवल घोषणा करता रहता है, उसकी रक्षा श्रीवृन्दाटवि करती है।।९४।।

संक्रान्तं निजकान्तिमण्डलमुदीक्ष्योरःस्थले तर्कय–
न्नीलां कञ्चुलिकां परामपनयाशक्त्या प्रिये विस्मिते।
याताया नवकेलिकुञ्जशयनं श्रीराधिकायाः परी
हासाः सन्तु मुदे ममातिहसितालीभिर्बहिस्तद्रसाः।।९५।।

नवकेलिकुञ्ज–शय्या पर विराजमान श्रीराधा के वक्षस्थल में प्रतिबिम्बित निज कान्तिमण्डल का दर्शन कर और एक नील कञ्चुलिका (चोली) का अनुमान करते हुए उसे दूर करने की व्यर्थ चेष्टा के लिए विस्मित प्रिय के (श्रीकृष्ण के) प्रति कुञ्ज के बाहर खड़ी हुई हास्ययुक्ता सखीवृन्द की जो रसपूर्ण परिहास–वाणी है, वही मेरे लिये अतिशय आनन्द विधान करे।।९५।।

कदाचिच्छ्रीराधा–चरणकमल–द्वन्द्व–पतितं
कदाचिच्छ्रीराधामुखकमल–माध्वीरस पिबम्।
कदाचिच्छ्रीराधा–कुचकमल–कोषद्वयरतं
विलोके तं कृष्णभ्रमरमधिवृन्दावनमहम्।।९६।।

कभी श्रीराधा के चरणकमलों में पतित, कभी श्रीराधा के मुखारविन्द–मधुर रस पान करने में उन्मत्त और कभी श्रीराधा के कुच–कमल कोषद्वय निमग्न कृष्ण–भ्रमर के मैं श्रीवृन्दावन में दर्शन करूंगा ?।।९६।।

निर्विद्य कृत्याद्यखिलात् कदाहं छित्वा समस्ताश्च जगत्यपेक्षाः।
प्रविश्य वृन्दावनमत्यसंगस्तदीशवार्त्ताभिरहानि नेष्ये।।९७।।

समस्त कर्तव्यों से निर्वेद (वैराग्य) प्राप्त कर एवं जगत् की सकल अपेक्षाओं से रहित होकर मैं कब निसंग भाव से श्रीवृन्दावन में प्रवेश कर श्रीवृन्दावनेश्वर एवं श्रीवृन्दावनेश्वरी की वार्ताओं में (गुण–लीलाओं के श्रवण कीर्त्तन में) दिन यापन करूंगा ?।।९७।।

कदा श्रीमद् वृन्दावनमिह मृषा स्नेहनिगड़ं
समुच्छिद्य स्वानां शरणमुपयास्यामि विकलः।
क्वचित् स्वान्तःशल्योद्धरणमभिपश्यन्न हि मना–
गपि श्रौते वर्त्मन्यखिल–विदुषामनुमते।।९८।।

मैं कब अपने सम्बन्धियों के मिथ्या स्नेहपाशों को तोड़कर एवं समस्त विद्वज्जनों के द्वारा अनुमोदित वैदिक मार्ग से कभी भी अपने हृदय के बाण निकलने की कोई भी आशा न देखकर व्याकुलचित्त से श्रीवृन्दावन की ही शरण ग्रहण करूंगा ?।।९८।।

वृन्दावनेशैक–पदस्पृहोऽपि महत्तमानां श्रुतभाषितोऽपि।
विदन्नपि स्वार्थविधाति सर्वं हा धिङ्! न वृन्दावनाश्रयामि।।९९।।

श्रीवृन्दावनचन्द्र के चरणकमलों में स्पृहावान होता हुआ भी महत्–पुरुषों के वचन सुनकर भी एवं सब पदार्थों को स्वार्थ–विध्वंसी (अथवा काम बिगाड़ने वाले) जानता हुआ भी श्रीवृन्दावन का आश्रय ग्रहण नहीं करता हूँ। हाय ! मुझे धिक्कार है !।।९९।।

सकृदपि यदि दृष्टा हन्त ! वृन्दाटवि त्वं ।
सकृदपि यदि राधा–कृष्णनामाभ्यधायि ।।
सकृदपि यदि भक्त्या सन्नतस्त्वत् प्रपन्नो
ध्रुवमहह तदा मामम्ब नोपोक्षतासि ।।१००।।

हे माता वृन्दाटवि ! (जीवन में) एक बार भी यदि आपके दर्शन कर लूं, (जीवन में) एक बार भी यदि श्रीराधाकृष्ण नाम उच्चारण कर पाऊँ, और (जीवन में) एक बार भी यदि भक्तिपूर्वक आपके शरणापन्न पुरुषों को प्रणाम कर लूं, तो निश्चय ही आप मेरी उपेक्षा नहीं करोगी।।१००।।

श्रीप्रबोधानन्द सरस्वति–विरचित श्रीवृन्दावन–महिमामृतम् का
प्रथम शतक समाप्त हुआ।।१।।

द्वितीयं शतकम्

वृन्दारण्ये वरं स्यां कृमिरपि परतो नो चिदानन्ददेहो,
रंकोऽपि स्यामतुल्यः परमिह न परत्राद्भुतानन्त–भूतिः।
शून्योऽपि स्यामिह श्रीहरिभजन–लवेनातितुच्छार्थमात्रे,
लुब्धो नान्यत्र गोपीजनरमण–पदाम्भोज–दीक्षा–सुखेऽपि ।।१।।

श्रीवृन्दावन में भले ही मैं कृमि होकर रहूंगा, किन्तु अन्यत्र चिदानन्द देह के लिये भी प्रार्थना नहीं करता हूं। यहां अतुलनीय दरिद्रता की भले ही इच्छा करता हूँ, किन्तु और स्थान पर अनन्त विभूतियों की भी इच्छा नहीं है। भले ही श्रीहरिभजन–लवशून्य होकर (लव मात्र भी श्रीहरिभजन न कर) अति तुच्छ विषयों में लोलुप होता हुआ ब्रज में वास करूंगा, तथापि श्रीगोपीजन–रमण के पादपद्मों की दीक्षा के सुख में भी लुब्ध होकर अन्यत्र नहीं जाऊंगा।।१।।

दिव्यानेक–विचित्रपुष्पफलवद्वल्लीतरुणां तति,
दिव्यानेक–मयूर–कोकिल–शुकाद्यानन्दमाद्यत्खगः ।
दिव्यानेकसरः–सरिद्गिरिवरः प्रत्यग्रकुञ्जावली
दिव्या काञ्चनरत्नभूमिरपि मां वृन्दावनेऽमोहयत् ।।२।।

श्रीवृन्दावन में (जो) दिव्य–दिव्य अनेक विचित्र पुष्प एवं फलशाली वृक्ष–लताओं का समूह है, दिव्य–दिव्य अनेक मोरों कोकिलाओं एवं शुकादि पक्षियों की (जो) आनन्द–उन्मत्त ध्वनि है, दिव्य–दिव्य अनेक सरोवरों, नदियों, पर्वतों से शोभित (जो) नवीन–नवीन कुञ्जसमूह हैं एवं दिव्य स्वर्णमयी (जो) रत्नभूमि है–(इन्होंने) मुझे मोहित कर लिया है।।२।।

भुवः स्वच्छाश्चिन्तामणिभिरतिचित्रैर्विरचिता–
श्चिदानन्दाभासः फल–कुसुमपूर्ण–द्रुमलताः।
खगश्रेणीः सामस्वर–कलकलाश्चिद् रससरित्
सरांसि श्रीवृन्दावनमनु मनो मे विमृशतु।।३।।

श्रीवृन्दावन के स्वच्छ एवं अति विचित्र चिन्तामणियों से रचित भूमण्डल को, चिन्मय आनन्द विस्तार करने वाले फल–पुष्पयुक्त वृक्षलताओं को, सामवेद के गान की अव्यक्त मधुर ध्वनि से कलकलायमान (गुञ्जार करते हुए) पक्षिसमूह को एवं चिन्मय रसयुक्त नदी तथा जलाशयों को मेरा मन स्मरण करे।।३।।

मरकतमयपत्रैर्हीरपुष्पैः सुमुक्ता निकर–कलिकयाढ्यैः कौरविन्दप्रवालैः।
बहुविधरसपूर्णैः पद्ममरागैः फलाढ्यैरविरलमधुवर्षैर्नीलरत्नालिमालैः।।४।।

जिनके पत्र समूह मरकतमणिमय हैं, पुष्प समूह हीरा के सदृश हैं, कलिका समूह सुन्दर–सुन्दर मुक्तावत् हैं, प्रवाल (अंकुर) समूह कुरुविन्द मणि की भांति हैं, अनेक प्रकार के रसों से पूर्ण फल–समूह पद्मरागमणिवत् हैं एवं अविरल मधुवर्षी तथा नील रत्नों के समान मधुकर समूह से परिवेष्टित श्रीवृन्दावन के वृक्षराज शोभित हो रहे हैं।।४।।

अगणितरविकोटिप्रस्फुरद्दिव्यभातिःसकृदपि हृदि भातैः शीतलानन्दवृष्ट्या।
प्रशमितभवतापैर्दुर्लभार्थान् दुहद्भिः परमरुचिरहैमासंख्यवृक्षैः परीतम्।।५।।

असंख्य कोटि–कोटि सूर्यप्रभा के समान प्रकाशमान परम रमणीय स्वर्णमय वृक्षों से श्रीवृन्दावन परिपूर्ण है। वह समस्त वृक्षसमूह एक बार मात्र हृदय में स्फुरित होने पर शीतलानन्द की वृष्टि के द्वारा संसार–तापों को प्रशमन कर देता है एवं दुर्ल्लभ पुरुषार्थ को देनेवाला है।।५।।

वृन्दाटव्यामगणित–चिदानन्द–चन्द्रोज्ज्वलायां
सान्द्रप्रेमामृतरस–परिस्पन्दनैः शीतलायाम्।

कूजन्मत्त–द्विजकुलवृतानल्पकल्पद्रुमायां
राधाकृष्णावचलविहृतौ कस्य नो याति चेतः? ।।६।।

असंख्य चिदानन्द–चन्द्रों की चाँदनी के द्वारा प्रकाशमान, निबिड़ प्रेमामृत–रस के परिस्पन्दन (हिलोरों) से शीतल, पक्षिकुल के द्वारा मुखरित एवं अनेक कल्पवृक्षों से शोभित श्रीवृन्दावन में निरन्तर बिहार करने वाले श्रीराधा–कृष्ण की ओर किसका चित्त धावित नहीं होता ?।।६।।

स्वपर–सकल–वस्तुन्यत्र सूर्येन्दुकोटि–
च्छबिसुविमलसच्चिद् विग्रहे सद्गुणौघे।
बहिरगतदृगन्तर्धैर्य्यमालम्ब्य नित्य–
स्मृतिरधिवस वृन्दारण्यमन्यानपेक्षः।।७।।

यहां की अपनी व परायी सब वस्तुएँ ही कोटि–कोटि सूर्य–चन्द्र की कान्ति युक्त हैं, निर्मल चिन्मय–मूर्त्ति एवं उत्तम गुणसमूह से पूर्ण हैं। यह नित्य स्मरण रखते हुए बाह्य विषय की ओर दृष्टिपात न कर धैर्यपूर्वक निरपेक्ष होकर श्रीवृन्दावन में वास कर।।७।।

देहेऽस्मिन्नतिकुत्सिते त्यज वृथाऽध्यासं यतः संस्मृति–
र्घोरा चिन्तय चिद्घनं निजवपुः सर्वञ्च वृन्दावने।
घोराः सन्तु विपत्तिकोटय इह त्वं याहि नो विक्रिया
मारब्धक्षयमावसैतदथ तन्नाथौ सदा खेलय।।८।।

घोर संसार के कारण इसी कुत्सित् शरीर में वृथा अध्यास (अहंता–ममता) त्याग कर, अपना शरीर एवं श्रीवृन्दावन का समस्त ही चिद्घन जानकर धारणा कर, यहां कोटि–कोटि घोरतर विपत्तियों के आने पर भी तुम विकारग्रस्त (विचलित) मत होना, जब तक प्रारब्ध नाश नहीं होती इस श्रीवृन्दावन में ही वास कर एवं नित्य श्रीयुगलकिशोर की लीला का चिन्तन कर।।८।।

दिव्यस्वर्ण–सुनीलरत्नसुभगं लीला–सनालारुणा–
म्भोज श्रीमुरलीधरं पृथुलसद्वेणी–सुवर्होज्ज्वलम्।
सम्वीतोज्ज्वलशोण–पीतवसनं कन्दर्पलीलामयं
श्रीवृन्दावनकुञ्ज एव किमपि ज्योतिर्द्वयं सेव्यताम्।।९।।

कन्दर्पलीलामय किसी एक अनिर्वचनीय ज्योतिर्मय जोड़ी की श्रीवृन्दावन

के कुञ्जों में ही सेवा कर—उनमें एक दिव्य स्वर्णवर्ण है, अपर सुन्दर इन्द्रनीलमणि वर्ण विशिष्ट है, एक के हाथ में नीलिमायुक्त रक्तवर्ण विशिष्ट लीलापद्म एवं दूसरे के हाथों में मोहन—मुरली है, एक के सिर पर विशाल वेणी एवं दूसरे के सिर पर मोरपुच्छ सुशोभित है, परिधान में एक ने उज्ज्वल रक्तवर्णा वसन एवं अपर ने सुन्दर पीताम्बर धारण कर रखा है।।६।।

राधाकृष्णौ परम—कुतुकाद्यल्लतापादपानां
चित्वा पुष्पादिकमुरुविधं श्लाघमानौ जुषाते।
स्नानाद्यं यत् सरसि कुरुतः खेलतो यत्खगाद्यै—
र्वृन्दारण्यं परमपरमं तन्न सेवेत को वा ?।।१०।।

परम कौतुकवशतः श्रीराधाकृष्ण जहां के वृक्ष—लताओं के अनेकविध पुष्पादि चयन कर प्रशंसापूर्वक उन्हें अपनी सेवा में नियोजित करते हैं, जहां के सरोवरों में वे स्नानादि करते हैं एवं जहां के पक्षियों के साथ वे खेलते हैं—उस सर्वसुन्दर श्रीवृन्दावन का सेवन किसके लिए उचित नहीं है?।।१०।।

आबाल्यं जलसेचनेन वरणेनावालनिर्माणतः
स्वेन श्रीकरपल्लवेन मृदुना श्रीराधिकामाधवौ।
यान् सम्वर्ध्य विवाह्य नव्य कुसुमाद्यालोक्य सन्नर्मभि—
र्मोदेते सुलता तरुनहह तान् वृन्दावनीयान्नुमः।।११।।

शिशुकाल से अपने कोमल करपल्लवों के द्वारा आवरण तथा आलवाल निर्माण करते हुए उसमें जल सिञ्चन कर श्रीराधामाधव ने जो समस्त सुमनोहर वृक्ष—लतादि अति यत्न पूर्वक वर्द्धित कर विवाह दिये थे एवं जिनके नवीन नवीन कुसुमादि देखकर दोनों परिहास—वचन बोलते बोलते आनन्द प्राप्त करते हैं—हम श्रीवृन्दावन के उन लता—वृक्षों को नमस्कार करते हैं।।११।।

द्रवन्ति हरिभावतस्तरणतारणेऽतिक्षमा—
स्ततो द्रुमतरुप्रथा—व्रततयश्च कृष्णव्रताः।
स्फुरन्ति हरिणा इह प्रकट—कृष्णसार—प्रथा
मृगाश्च पदमार्गिणः प्रविलसन्ति वृन्दावने ।। १२।।

श्रीवृन्दावन में श्रीहरि के भाववश द्रवीभूत हो जाने से अन्वर्थनामधारी "द्रुम" विराजमान हैं एवं अपनी तथा दूसरे की रक्षा करने से उनका "तरु" नाम

भी यथार्थ ही हुआ है। लता समूह ने कृष्ण–व्रत धारण कर "व्रतती" नाम सार्थक किया है, यहां के हरिणों ने श्रीकृष्ण को ही सारातिसार जाना है, अतः "कृष्णसार" नाम को प्राप्त हुए हैं, एवं श्रीकृष्ण के चरणचिह्नों का मार्गण (अनुसरण) कर उन्होंने "मृग" नाम की भी सार्थकता सम्पादन की है।।१२।।

अनन्तरुचिमत् स्थलं स्फुरदनन्तवल्लीद्रुमं
मृगद्विजमनन्तकं दधदनन्तकुञ्जोज्ज्वलम्।
अनन्तसुसरित्–सरोवरमनन्त–रत्नाचलं
स्मराम्यहमनन्त तद् द्वयरसेन वृन्दावनम्।।१३।।

अनन्त मनोहर स्थलों से युक्त, अनेक वृक्ष वल्लरी समूह से शोभित, अनन्त पशु पक्षियों से आकुलित, उज्ज्वलोज्ज्वल अनन्त, कुञ्जवाटिकाओं से मण्डित, अनन्त सुमनोहर नदी–तड़ागों से युक्त, अनन्त रत्न–पर्वतों से सन्निविष्ट, युगलकिशोर की अनन्त रसमयी लीलाओं के स्थान श्रीवृन्दावन को मैं स्मरण करता हूं।।१३।।

भ्रातर्भोगाः सुभुक्ताः क इह न भवता नापि संसारमध्ये
विद्या–दानाध्वराद्यैः कति कति जगति ख्यातिपूजाद्यलब्धाः।
अद्याहारेऽपि यादृच्छिक उरुगुणवानप्यहो संवृतात्मा
श्रीमद्वृन्दावनेऽस्मिन् सततमट सखे सर्वतो मुक्तसंगः ।। १४।।

हे भाई ! इस संसार में तुमने क्या–क्या सुभोग उपभोग नहीं किया है? इस जगत में विद्या, दान एवं यज्ञादि के द्वारा क्या तुमने बहुत ख्याति पूजादि प्राप्त नहीं की है ? आज के आहार में भी यदृच्छालब्ध वस्तु में सन्तोष करते हुए एवं बहुत गुणी होकर भी अपने गुणों को छिपाते हुए इस श्रीवृन्दावन में सर्व–संग को छोड़कर सर्वदा भ्रमण कर।।१४।।

वृन्दारण्यं त्यजेति प्रवदति यदि कोऽप्यस्य जिह्वां छिनद्मि
श्रीमद् वृन्दावनान्मां यदि नयति बलात् कोऽपि तं हन्म्यवश्यम्।
कामं वेश्यामुपेयां न खलु परिणयायान्यतो यामि कामं
चौर्यं कुर्यां धनार्थं न तु चलति पदं हन्त वृन्दावनान्मे ।।१५।।

यदि कोई मुझे वृन्दावन त्याग करने को कहे, तो मैं उसकी जिह्वा काट लूंगा, यदि कोई मुझे बलपूर्वक श्रीवृन्दावन से अन्यत्र ले जाये, तो मैं अवश्य ही

उसको मार डालूंगा, इच्छा होने पर भले ही मैं वैश्या का संग कर लूंगा, तथापि विवाह करने के लिये अन्यत्र नहीं जाऊंगा, धन के लिये भले ही यथेष्ट चोरी कर लूंगा तथापि हाय ! श्रीवृन्दावन से बाहर एक पद भी नहीं जाऊंगा।।१५।।

परीहासेऽप्यन्याप्रिय–कथन–मूकोऽतिबधिरः
परेषां दोषानुश्रुतिमनु विलोकेऽन्धनयनः।
शिलावन्निश्चेष्टः परवपुषि बाधालवविधौ
कदा वत्स्याम्यस्मिन् हरिदयित–वृन्दावन वने ।। १६।।

परिहास में भी दूसरे को अप्रिय (बुरा) कहने में गूंगे के समान होकर, दूसरे के दोष सुनने में बहरे के समान होकर, दूसरे के दोष देखने में अन्धे के सदृश होकर एवं दूसरे के शरीर को जिससे लेशमात्र भी कष्ट न पहुंचे, इस विषय में पत्थरवत् निश्चेष्ट होकर कब मैं हरि के प्यारे इस श्रीवृन्दावन में वास करूंगा ?।।१६।।

सोढ्वाऽपि दुःखानि सुदुःसहानि त्यक्त्वाऽप्यहो जातिकुलादिकानि।
भुक्त्वा स्वपाकैरपि थुत्कृतानि वृन्दाटवीवासमहं करिष्ये ।। १७।।

अति दुसह दुख समूह को सहन करके भी, जाति कुलादि को त्याग कर भी, एवं चाण्डाल का थूका हुआ (झूंठा) आहार खाकर भी मैं श्रीवृन्दावन वास करूंगा।।१७।।

नाहं गमिष्यामि सतां समीपतो नाहं वदिष्यामि निजं कुलादिक।
नाहं मुखं दर्शयितास्मि कस्यचिद् वृन्दाटवीवासकृतेऽति–साहसी।। १८।।

सज्जनों के समीप भी नहीं जाऊंगा (अथवा सत्पुरुषों से दूर नहीं जाऊंगा) मैं अपने कुलादि का परिचय नहीं दूंगा। श्रीवृन्दावन के वास करने में अति साहसी होकर अन्य किसी को मुख नहीं दिखलाऊंगा।।१८।।

सर्वाभास ज्योतिषोऽनन्तपारस्यान्तर्ज्योतिर्वैष्णवानन्द–सान्द्रम्।
तस्याप्यन्तर्ज्योतिरस्त्यप्रमेयानन्दास्वादं तत्र वृन्दाटवीयम् ।। १९।।

अनन्तपार सर्व उद्भासी ब्रह्मज्योति की अन्तर–ज्योति (सार) आनन्दसान्द्र विष्णुधाम (परव्योम) है, उसका भी अन्तरतर ज्योति है–अपरिमित आनन्द का आस्वादनमय ब्रजमण्डल, उसका भी अन्तरतम (सारात्सार) यह श्रीवृन्दाटवी है।।१९।।

किं क्रीड़ैव शरीरिणी स्मरकला किं देहिनी किं रतिः
स्वाभा मूर्त्तिमती किमद्भुतमनोजन्मास्त्र–विद्यैव वा।
किंवा जीवनशक्तिरेव सतनुः श्यामस्य न ज्ञायते
सा राधा विजरीहरीति हरिणा वृन्दावनेऽहर्निशम्।।२०।।

यह क्या देहविशिष्ट क्रीड़ा ही है या शरीर धारण किये हुए कोई काम–कला ? सुदीप्तियुक्त मूर्त्तिमती यह रति ही है क्या ? या अद्भुत कामास्त्र विद्या ही प्रादुर्भूत हुई है ? अथवा देह धारण कर श्रीश्यामसुन्दर की जीवन शक्ति ही प्रकट हुई है–यह कुछ भी तो नहीं जाना जा सकता। हां ! वह श्रीराधा ही श्रीहरि के सहित निशिदिन श्रीवृन्दावन में बिहार कर रही हैं।। २०।।

सर्वप्रेमरसैकबीजविलसद् विप्रुन्महामाधुरी–
पूर्णस्वर्णसुगौरमोहन महाज्योतिः सुधैकाम्बुधीन्।
एकैकांगत उन्मदस्मरकला–रंगान् दुहन्त्यद्भुतान्
वृन्दाकानन–संप्लवान् हृदि मम श्यामप्रिया खेलतु।।२१।।

श्रीवृन्दावन को प्लावन करने वाले एवं सर्व–प्रेमरस के मुख्य बीजरूप बिन्दुओं से भरपूर, महामाधुर्य–पूर्ण स्वर्ण–सदृश गौरमोहन महाज्योति–पूर्ण अमृत–रस के एकमात्र समुद्र के समान अद्भुत उन्मत्त कामकला–रंग समूह को प्रत्येक अंग से प्रकाशित करती हुई श्रीश्यामप्रिया मेरे हृदय में विहार करें।।२१।।

लोलद्वेण्यः पृथुसुजघनाः क्षाममध्याः किशोरीः
संवीत श्रीस्तनमुकुलयोरुल्लसद्धारयष्टीः।
नाना–दिव्याभरणवसनाः स्निग्धकाश्मीरगौरी–
र्वृन्दाटव्यां स्मर रसमयी राधिका–किंकरीस्ताः।।२२।।

जिनकी वेणियां झूल रही हैं जिनकी जंघा विशाल हैं, कटिदेश क्षीण हैं एवं जिनके आवृत सुन्दर मुकुल–स्तनद्वय के बीच हार शोभित हैं, जिनकी किशोर अवस्था है, जो अनेक दिव्य वसन भूषणों से सुसज्जित हैं, जो स्निग्ध कुंकुमवत् गौरांगिणी एवं रसमयी हैं–उन श्रीराधाजी की किंकरीवृन्द का स्मरण करो।।२२।।

आः कीदृक्–पुण्यराशेः सुपरिणतिरियं केयमाश्चर्यरूपा ।
कारुण्यौदार्यलीला स्फुरति भगवतः को नु लाभोऽद्भुतोऽयम् ?।।

यद्वा नाश्चर्यमेतन्निजसहजगुणं मोहितश्रीविधीशा-।
द्युत्युच्चैर्वस्तु वृन्दावनमिदमवनौ यत् स्वयं प्रादुरास्ते।।२३।।

आहा! यह कैसे पुण्यों की शेष परिणति है ? आहा! यह क्या भगवान् की आश्चर्यमय करुणा एवं उदारता की लीला स्फुरित हो रही है ? आहा! कैसा अद्भुत लाभ ही है! अथवा यह आश्चर्य का कुछ विषय नहीं, क्योंकि जो अति उत्कृष्ट वस्तु है एवं जिसमें लक्ष्मी, ब्रह्मा, शिवादि देवगण भी मोहित हो जाते हैं वह भगवान् का स्वकीय सहज गुण ही श्रीवृन्दावन रूप में पृथ्वी पर प्रादुर्भूत हुआ है !!।।२३।।

रटन् वृन्दारण्येऽत्यविरतमटंस्तत्र परितो
नटन् गायन् प्रेम्णा पुलकितवपुस्तत्र विलुठन्।
त्रुटत्–सर्वग्रन्थिः स्फुटदतिरसोपास्ति–पटिमा
कदाहं धन्यानां मुकुटमणिरेषोऽस्मि भविता।।२४।।

निरन्तर गुणों का वर्णन करता हुआ श्रीवृन्दावन में इतस्ततः भ्रमण करते–करते नाचता गाता हुआ, प्रेम में पुलकितांग होकर ब्रजरज में लुण्ठन पूर्वक सब ग्रन्थियों को तोड़कर एवं स्फूर्ति–प्राप्त अत्युत्तम रसमयी उपासना की निपुणता को प्राप्त कर कब मैं धन्य–शिरोमणि हूंगा ?।। २४।।

सौंदर्यादि–महाचमत्कृतिनिधी दिव्यौ किशोरौ महा
गौरश्यामतनुच्छवी निशि दिवा यत्रैव विक्रीड़तः।
यत्रैवाखिल–दिव्यकानन–गुणोत्कर्षोऽतिकाष्ठां गत–
स्तद् वृन्दाविपिनं कदा नु मधुरप्रेमानुवृत्त्या भजे।।२५।।

जहां सौंदर्यादि के चमत्कार का समुद्र है एवं गौर–श्याम–विग्रह महाकान्तिशाली दिव्य युगलकिशोर निशिदिन क्रीड़ा कर रहे हैं, जहां समस्त अप्राकृत वनों का गुण–समूह चरम काष्ठा को प्राप्त हुआ है–उस श्रीवृन्दावन को मैं कब मधुर प्रेम की अनुवृत्ति के द्वारा भजन करूंगा ?।।२५।।

अनादौ संसारे कति नरकभोगा न विहिताः
कियन्तो ब्रह्मेन्द्राद्यतुलसुखभोगाश्च न कृताः।
तदास्मिन्नेकस्मिन् वपुषि सुखदुःखे न गणयन्
सदैव श्रीवृन्दावनमखिलसारं भज सखे।।२६।।

हे सखे ! इस संसार में कितने नरक भोग नहीं किये हैं ? कितने–कितने ब्रह्मा, इन्द्र आदि के अतुल सुख–भोगादि का तिरस्कार नहीं किया है ? अतएव इस वर्तमान एक शरीर के सुख–दुख को न गिनता हुआ सदा परमसार श्रीवृन्दावन में वास कर।।२६।।

श्रीवृन्दावनवासि–पादरजसा सर्वांगमागुण्ठयन्
श्रीवृन्दावनमेकमुज्ज्वलतमं पश्यन् समस्तोपरि ।
श्रीवृन्दावनमाधुरीभिरनिशं श्रीराधिकाकृष्णयो–
रप्यावेशमनुस्मरन्नधिवस श्रीधाम–वृन्दावनम्।।२७।।

श्रीवृन्दावन–वासियों की चरण–धूलि में सर्वांगों को धूसरित करके एकमात्र उज्ज्वलतम श्रीवृन्दावन को ही सर्वोपरि जानते हुए, श्रीवृन्दावन के माधुर्य में सर्वदा श्रीराधाकृष्ण का आवेश अनुस्मरण करते–करते श्रीधाम वृन्दावन में ही वास कर।।२७।।

वृन्दाकानन ! काननस्य परमा शोभा परातः परा–
नन्द त्वद् गुणवृन्दमेव मधुरं येनानिशं गीयते।
हा वृन्दावन ! कोटिजीवनमपि त्वत्तोऽतितुच्छं यदि
ज्ञातं तर्हि किमस्ति यत्तृणकवच्छक्येत नोपेक्षितुम्।।२८।।

हे श्रीवृन्दावन ! आपके वन की शोभा सर्वोत्कृष्ट है, हे परानन्द ! आपके मधुर गुणों को जो निशिदिन गान करता है एवं हे वृन्दावन ! जो कोटि जीवन भी आपके सामने तुच्छ जानता है, फिर उसके लिये संसार में ऐसी कौन सी वस्तु है जिसकी वह तृण के समान उपेक्षा नहीं कर सकता ?।।२८।।

स्वात्मेश्वर्या ममाद्य प्रणयरस–महामाधुरी–सारमूर्त्या
कोऽपि श्यामः किशोरः कनकवररुचा श्रीकिशोर्या कयापि।
क्रीड़त्यानन्दसारान्तिम–परम–चमत्कार–सर्वस्वमूर्त्ति–
र्नित्यानंगोत्तरंगैर्यदधि भज तदेवाद्य वृन्दावनं भोः।।२९।।

आनन्द सार के परमकाष्ठाभूत परम चमत्कार की सर्वस्वमूर्त्ति कोई एक श्यामकिशोर नित्य अनंग–तरंगों में उन्मत्त होकर निज प्राणेश्वरी आद्य प्रणय–रस महामाधुर्यसार–मूर्त्ति किसी स्वर्णकान्ति विशिष्ट किशोरी के साथ जहां नित्य क्रीड़ा करता है, आज ही से उसी श्रीवृन्दावन का भजन कर।।२९।।

नवकनक–चम्पकावलि–दलितेन्दीवर–सुवृन्द–निन्दितश्रि
वृन्दावन–नवकुञ्जे किशोरमिथुनं तदेव भज रसिकम्।।३०।।

श्रीवृन्दावन के नवीन कुञ्जों में उन रसिक युगलकिशोर की चिन्ता कर–जिनमें से एक की देहकान्ति नूतन स्वर्ण तथा चम्पकावलि को निन्दित करती है, और दूसरे की देह ज्योति दलित (प्रफुल्लित) नीलकमल की शोभा को तिरस्कार करती है।।३०।।

परिचर चरणसरोजं तद् गौरश्याम–रसिकदम्पत्योः।
वृन्दावन–नवकुञ्जावलिषु महानंग–विह्वलयोः।।३१।।

श्रीवृन्दावन के नवीन कुञ्जों में जो महानंग से विह्वल हो रहे हैं, उन्हीं गौरश्याम रसिकयुगल के चरण कमलों की परिचर्या कर।।३१।।

अतिकन्दर्परसोन्मदमनिशं विवर्द्धिष्णु तन्मिथःप्रेम।
घनपुलक–गौरलीलाकृति मिथुनं निकुञ्जमण्डले स्मरत।।३२।।

कन्दर्परस में अति उन्मत्त उस युगलकिशोर का पारस्परिक प्रेम नित्य ही वर्द्धित होता है। घन पुलकावलि से शोभित उस गौर–नील कान्ति विशिष्ट नवीन जोड़ी की निकुञ्ज–मण्डल में चिन्ता कर।।३२।।

पूर्ण–प्रेमानन्द–चिच्चन्द्रिकाब्धेर्मध्ये द्वीपं किञ्चिदाश्चर्यरूपम्।
तत्राश्चर्याभाति वृन्दाटवीयं तत्राश्चर्यौ गौर–नीलकिशोरौ।।३३।।

पूर्ण प्रेमानन्द–दिव्यज्योत्स्ना के समुद्र में एक आश्चर्यरूप द्वीप है, फिर उसमें यह वृन्दाटवी और एक आश्चर्य है, उसमें भी परम आश्चर्यरूप यह गौर–नील युगलकिशोर हैं।।३३।।

धन्यो लोके मुमुक्षुर्हरिभजनपरो धन्यधन्यस्ततोऽसौ
धन्यो यः कृष्णपादाम्बुजरतिपरमो रुक्मिणीशप्रियोऽतः।
याशोदेय–प्रियोऽतः सुबलसुहृदतो गोपीकान्तप्रियोऽतः
श्रीमद् वृन्दावनेश्वर्यतिरसविवशाराधकः सर्वमूर्ध्नि।।३४।।

इस पृथ्वी पर जो मुमुक्षु हैं, वे धन्य हैं, जो हरिभजन–परायण हैं, वे धन्य–धन्य हैं। उनसे उत्कृष्ट वे हैं, जो श्रीकृष्ण के चरणकमलों में परमासक्त हैं। उनसे अधिक रुक्मिणीवल्लभ–श्रीकृष्ण के भक्त हैं, उनसे श्रीयशोदानन्दन–श्रीकृष्ण के भक्तवृन्द अधिक प्रशंसनीय हैं, उनसे अधिक धन्य

सुबल सखा—श्रीकृष्ण के प्रियगण हैं, उनसे अधिक गोपीजन—धन्य हैं, श्रीकृष्ण की प्रीति—परायण है। किन्तु श्रीमद्वृन्दावनेश्वरी के परमरस विवश श्रीकृष्ण—आराधक सबके मुकुटमणि हैं।।३४।।

एकं सख्यापि नो लक्षितमुरसि लसन्नित्य—तादात्म्यकान्तं
तद् दृश्यं दूरतोऽन्यद्व्रतति—नवगृहेऽन्यत्तु तन्नर्मशर्म।
अन्यद्—वृन्दावनान्तर्विहरदथ परं गोकुले प्राप्तयोगं
विच्छेद्यन्यत्तदेवं लसति बहुविधं राधिका—कृष्णरूपम्।।३५।।

श्रीराधाकृष्णरूप अनेक भावों से विलास—परायण होकर विराजमान हैं। एक अवस्था यह है—सखीगणों से भी अलक्षितभाव से कान्ता एवं कान्त एक दूसरे को गाढ़—आलिंगन पूर्वक नित्य तादात्म्य—भाव प्राप्त हैं। अपरावस्था है—सखीगणों के द्वारा दूर से दृश्यमान होकर लता—निर्मित नवीन मण्डल में मिलन और एक अवस्था (निकुञ्ज में) है—दोनों का परिहासयुक्त मंगल वाक्यों में निरत होना, अन्यावस्था है—वृन्दावन में नित्य विहारशील। और अवस्था है—(कुञ्जों से गोष्ठ में एवं गोष्ठ से कुञ्जों में गमनागमन करते हुए) गोकुल में मिलन, और प्रकाश में (अवस्था में) वे (माथुर) विरह दशा प्राप्त हैं। (एवं तदनन्तर समृद्धिमान् सम्भोगयुक्त मिलन है—श्रीवृहद्भागवतामृत द्रष्टव्य)।।३५।।

नित्योत्तुंगदनंगरंग—विलसल्लीलातरंगं सदा
राधा—मानसदिव्यमीननिलयं तद्वक्त्रचन्द्रश्रितम्।
तत् कन्दर्पसुमन्दरेण मथितं सख्यक्षिपीयूषदं
कञ्चिच्छ्याम रसाम्बुधिं भज सखे! वृन्दाटवी—सीमनि।।३६।।

हे सखे! श्रीवृन्दावनवासी उस अनिर्वचनीय श्याम—रस—समुद्र का भजन कर—जिस श्यामरस—समुद्र में नित्य ही काम—रंग—विलास लीलामय उत्तुंग तरंगें प्रकाशित हो रही हैं, उसमें श्रीराधा का मनरूप दिव्य मत्स्य निरन्तर वास करता है। वह श्रीराधा—मुख—चन्द्र के द्वारा उच्छलित होता है, श्रीराधा के कामरूप सुन्दर पर्वत के द्वारा वह मथित होता है एवं वह सखियों के नेत्रों को अमृत दान करने वाला है।। ३६।।

श्यामप्राणमृगैकखेलन—वनश्रेणी सदा श्यामलोत्—
खेलन्मानस—मीनदिव्यसरसी श्यामालि—सत् पद्मिनी।

श्यामानंगसुतप्तहृच्छिशिरताकारि–स्फुरच्चन्द्रिका
श्यामानन्य–सुनागरेण विहरत्येका मम स्वामिनी ।।३७।।

श्यामसुन्दर के प्राणरूप मृग की एकमात्र क्रीड़ास्थली, उज्ज्वल रस में क्रीड़ा–परायण मानस रूप मीन के लिये दिव्य सरोवर के समान, श्यामरूप भ्रमर के लिये पद्मिनीरूपा, श्याम के कामतप्त–हृदय को शीतलता विधान करने वाली उज्ज्वल चन्द्रिका सदृश मेरी स्वामिनी अकेली श्यामा (श्रीराधा) ही अतुलनीय श्याम सुनागर के साथ विहार करती हैं।।३७।।

श्रीमद् वृन्दाकानने रत्नवल्लीवृक्षैश्चित्रज्योतिरानन्दपुष्पैः।
कीर्णे स्वर्णस्थल्युदञ्चत् कदम्बच्छायायां नश्चक्षुषी गौरनीले ।। ३८ ।।

रत्नमय लता–वृक्षों से मण्डित विचित्र ज्योत्स्ना विस्तार करने वाले आनन्दमय पुष्पों से व्याप्त श्रीवृन्दावन में स्वर्ण–स्थली से शोभित कदम्ब की छाया में (विराजमान) गौर–नील वपुधारी श्रीयुगलकिशोर ही हमारे नेत्रों में नित्य विराजमान रहें।।३८।।

श्रीवृन्दाकाननेऽत्यद्भुतकुसुमलसद् रत्नवल्लीनिकुञ्ज–
प्रासादे पुष्पचन्द्रातपचयरुचिरे पुष्पपल्यंकतल्पे।
राधाकृष्णौ विचित्रस्मरसमरकला–खेलिनौ वीक्ष्य वीक्ष्या–
नन्दाद्विभ्रामितं तल्लुठदवनितले वन्द्यतामालिवृन्दम।।३९।।

श्रीवृन्दावन में अत्यन्त अद्भुत कुसुमों से शोभित रत्नमय लता–निकुञ्ज–प्रासाद (महल) में पुष्पमय चन्द्रातप समूह के द्वारा मनोहर पुष्प–पालंक की शय्या पर विचित्र कामयुद्ध में खेलन परायण श्रीराधाकृष्ण को देख देख कर आनन्द से विह्वल होकर पृथ्वी पर लोट–पोट होने वाली सखिवृन्द की वन्दना करनी चाहिये।। ३९।।

प्रेष्ठद्वन्द्व प्रसादाभरणवरपस्रङ्नवाभीरबाला
मालालंकार–कस्तूर्य्यगुरुघुसृणसद् गन्धताम्बूलवस्त्रैः ।
वाद्यैः संगीतनृत्यैरनुपमकलया लालयन्तीः सतृष्णा
राधाकृष्णावखण्ड–स्वरसविलसितौ कुञ्जवीथ्यामुपैमि ।।४०।।

प्रियतम युगलकिशोर के प्रसादी अलंकार, श्रेष्ठ वस्त्र माल्यादि से भूषित नवीना गोपकुमारीवृन्द माला, अलंकार, कस्तूरी, अगुरु, कुंकुम, मनोमदगन्ध,

ताम्बूल, वस्त्र आदि समाहरण के द्वारा एवं अनुपम ताल–लययुक्त वाद्य तथा नृत्यादि के द्वारा निकुञ्ज–विलासी अखण्ड–स्व–रस विलासी श्रीराधाकृष्ण जोड़ी की जो सतृष्णभाव से सेवा कर रही हैं, मैं उनकी शरणापन्न होती हूं।। ४०।।

काश्चिच्चन्दनघर्षिणीः सघुसृणं काश्चित् स्रत्रजो ग्रथ्नतीः
काश्चित् केलिनिकुञ्जमण्डनपराः काश्चिद्वहन्तीर्जलम्।
कश्चिद्दिव्यदुकूलकुञ्चनपराः संगृह्णतीः काश्चनाऽ–
लंकारं नवमन्नपान–विधिषु व्यग्राश्चिरं काश्चन।।४१।।

कोई–कोई गोपबाला उत्तम कुंकुम सहित चन्दन घर्षण कर रही हैं, कोई माला रचने में संलग्न हैं, कोई कोई केलिनिकुञ्ज सुसज्जित कर रही हैं तो कोई जल ला रही हैं, कोई नवीन–नवीन अलंकारों को संग्रह कर रही हैं, और कोई–कोई व्यग्रचित्त से खाने पीने आदि की चेष्टा में बहुत देर से लगी हुई हैं।। ४१।।

ताम्बूलोत्तम–वीटिकादि–करणे काश्चिन्निविष्टो नवाः
काश्चिन्नर्त्तनगीत–वाद्यसुकला–सामग्रि–सम्पादिकाः।
स्नानाभ्यंगविधौ च काश्चन रताः सम्वीजनाद्यैः सदा
काश्चित् सन्निधिसेवनातिमुदिताः काश्चित् समस्तेक्षिकाः।। ४२।।

कोई कोई नवीना गोपबाला उत्तम ताम्बूलवीटिका आदि के निर्माण करने में संलग्न है, कोई नृत्य, गीत, वाद्यादि की उत्तम–उत्तम कला विद्या दिखानेवाली वस्तुओं का आयोजन कर रही हैं, और कोई कोई स्नान–उबटनादि की सामग्री संग्रह कर रही हैं, और कोई पंखा हाथ में लेकर पास में खड़ी होकर श्रीअंग की सेवा के लिये अतिशय मुदित हो रही हैं तथा और कोई सब विषयों की देखभाल कर रही हैं।।४२।।

काश्चित् स्वप्रिययुग्मचेष्टित–दृशः स्तब्धाः स्वकृत्ये स्थिताः
क्षिप्त्वाऽन्यालि–प्रवर्तिता दयितयोः काश्चित् सुखेला–पराः।
इत्थं विह्वल–विह्वलाः प्रणयतः श्रीराधिकाकृष्णयो–
र्दासीरद्भुतरूपकान्तिवयसो वृन्दावनेऽन्वीयताम्।।(विशेषकम्)।।४३।।

कोई कोई अपने प्रियतम युगलकिशोर की चेष्टा को देखकर अपने कार्य को भूल चुकी हैं, और कोई गोपी अपर सखि के अनुयोग से अपने कार्य में प्रवृत

हो रही है एवं प्यारे युगलकिशोर की सुन्दर क्रीड़ा में सहयोग कर रही है। इस प्रकार श्रीराधाकृष्ण के अत्यन्त प्रेम में विभोर अद्भुत रूप–कान्ति–अवस्थायुक्त सखियों का श्रीवृन्दावन में अन्वेषण कर।। ४३।।

एकं चित्रशिखण्डचूड़मपरं श्रीवेणीशोभाद्भुतं
वक्षश्चन्दनचित्रमेकमपरं चित्रं स्फुरत्–कञ्चुकम्।
एकं रत्नविचित्रपीतवसनं जंघान्तवस्त्रोपरि
भ्राजद्रत्नसुचित्र–शोणवसने नान्यच्च संशोभितम्।।४४।।

एक तो अद्भुत मोरपुच्छ का चूड़ा धारण किये हुए है, दूसरे के सिर पर श्रीवेणी की चमत्कारी शोभा है, एक का वक्षस्थल चन्दन–चित्रित है, एवं दूसरे के वक्षस्थल पर विचित्र काञ्चुलि शोभित है, एक विचित्र पीताम्बरधारी है एवं दूसरा जंघा पर्यन्त विस्तृत वस्त्र के ऊपर बहुरत्नमय विचित्र लाल वस्त्र से सुशोभित है।।४४।।

इत्थं दिव्य–विचित्रवेशमधुरं तद् गौरनीलं मिथः–
प्रेमावेश–हसत्किशोरमिथुनं दिग्व्यापि–चित्रच्छटम्।
काञ्ची–नूपुरनादरत्नमुरलीगीतेन संमोहय–
च्छ्रीवृन्दावनचिद्घनस्थिरचरं रंगे महा श्रीमति।।४५।।

इस प्रकार दिव्य विचित्र वेश–माधुर्य से मण्डित चारों दिशाओं में विचित्र कान्ति विस्तार करते हुए गौर–नील वपुधारी वे युगलकिशोर–जो परस्पर प्रेमावेश में हास्ययुक्त हैं, महासौन्दर्यशाली रंग में श्रीवृन्दावन की स्थावर–जंगमात्मक चिद्घन वस्तु मात्र को ही काञ्ची, नूपुर झंकार में एवं मुरली के मनोहर गीत में सम्यक् प्रकार से मुग्ध करते हुए विराजमान हैं।। ४५।।

अन्वालीमुखशब्दके मणिमये मीलन्मृदंगध्वनौ
प्रोत्सार्यैव प्रविष्टवज्जवनिकामुत्कीर्य पुष्पाञ्जलीम्।
अत्याश्चर्य–सुनृत्य–हस्तक–महाश्चर्यांग–दृग्भंगिमो–
त्तुंगानंगरसोत्सवं भजति मे प्राणद्वयं कः कृती ? ।।(युग्मकम्)।।४६।।

उसी मणिमय रंगमंच पर सखीगणों के मुखोच्चारित शब्द तथा मृदंग ध्वनि के होते ही परदे को दूर कर पुष्पाञ्जलि विकीर्ण करते–करते प्रवेश पूर्वक अतीव आश्चर्यजनक नाना प्रकार से हस्तभंगी सहित नृत्य करते हुए तथा

महाश्चर्यमय अंगों व नेत्रों की भंगी के द्वारा सुमहान् काम–रसोत्सव का विधान करने वाले मेरे प्राणप्रियतम युगलकिशोर का भजन कोई पुण्यात्मा ही करता है।। ४६।।

अनन्तरतिमत् प्रियच्छविविलाससम्मोहनं
महारसिक–नागराद्भुत–किशोरयोस्तद्द्वयम्।
विचित्ररतिलीलया नवनिकुंजपुंजोदरे
स्मरामि विहरन्महाप्रणय–घूर्णितांगं मिथः।।४७।।

अनन्त रतिशाली मनोहर कान्तियुक्त तथा विलास–सम्मोहित उन महारसिक नागर अद्भुत श्रीयुगलकिशोर के विचित्र रतिलीला हित नित्य नवीन निकुञ्जों में विहार परायण महाप्रीतिरस में घूर्णित विग्रह–युगल को मैं स्मरण करती हूँ।।४७।।

कदा कनकचम्पकद्युतिविनिन्दितेन्दी–वरं
वरं नवकिशोरयोर्द्वयमगाधभावं मिथः।
पुरः स्फुरतु मन्मथक्षुभितमूर्त्ति वृन्दाटवीं
ममाधिवसतो महासरस–दिव्यचक्षुर्युजः।।४८।।

महासरस दिव्य नेत्रधारी तथा वृन्दावनवासी मेरे सम्मुख स्वर्णचम्पक कान्ति एवं नीलकमल को निन्दित करने वाले रूपविशिष्ट नवकिशोर–दम्पती की एक दूसरे के प्रति अगाध भावयुक्त कामदेव–विमोहित मूर्त्ति कब स्फुरित होगी ?।।४८।।

प्रेमानन्दोज्ज्वलरसमय–ज्योतिरेकार्णवान्त–
स्तादात्म्येन स्फुरतु बहुधाश्चर्यवृन्दावनं मे।
कुञ्जे कुञ्जे मधुर मधुरं तत्र खेलत्–किशोर–
द्वन्द्वं गौरासित रुचि मनस्तद् रसार्हं क्रियान्मे।।४६।।

प्रेमानन्द के उज्ज्वल–रस विशिष्ट ज्योतिपूर्ण किसी एक अनिर्वचनीय समुद्रगर्भस्थित आश्चर्यमय श्रीवृन्दावन, उसी प्रकार के ज्योतिर्मय समुद्र के साथ तादात्म्यक–भाव को प्राप्त होकर अनेक प्रकार से मेरे निकट स्फुरित हो, एवं उसके प्रत्येक कुञ्ज में मधुरातिमधुर लीला–विहारी गौर–श्याम श्रीयुगलकिशोर मेरे मन को उस रस में आविष्ट कर दें–यही प्रार्थना है।।४६।।

दविष्ठे यस्तिष्ठेदतिकुकृतिनिष्ठः कुविषये
सकृद् वृन्दाटव्यास्तृणकमपि वन्देत सुकृती।
स तत्प्राणस्योच्छृंखल–निखिलशक्तेः करुणया
ध्रुवं देहस्यान्ते हरिपदमलभ्यञ्च लभते।।५०।।

दूर देश में रहते हुए भी, कुविषयों में कुकर्म परायण होते हुए भी यदि कोई सुकृती एक बार भी श्रीवृन्दावन के क्षुद्र तृण की भी वन्दना करे, तो देहान्त पीछे वह उन तृणादि के प्राणस्वरूप, असीम निखिल–शक्ति–पूर्ण श्रीराधाकृष्ण की कृपा से दुर्ल्लभ श्रीहरि के चरण–कमलों को प्राप्त कर लेता है।।५०।।

कुबेराणां कोटिर्हसति धनसम्पत्तिभिरहो
तिरस्कुर्याद्वर्यानपि सुरगुरून् बुद्धिविभवैः।
अशोच्यः स्त्रीपुत्रादिभिरसम ईड्यो हरिरसा–
च्छुक–प्रह्लादाद्यै रतिकृदिह वृन्दावनवने।।५१।।

इस श्रीवृन्दावन में प्रीति करने वाला पुरुष, धनसम्पत्ति के द्वारा कोटि–कोटि कुबेरों का भी उपहास करता है, बुद्धि–सम्पत्ति के द्वारा देवताओं के गुरु वृहस्पति का भी तिरस्कार कर सकता है, और स्त्री–पुत्रादि कुटुम्बी भी उसके लिये शोक नहीं करते हैं, वह श्रीहरि–रस विषय में श्रीशुक–प्रह्लादादिकों द्वारा भी प्रशंसनीय है।।५१।।

त्यक्त्वा सर्वान् गृहद्वार सकल–गुणालंकृत–स्त्री–सुतादीन्
सर्वत्रात्यन्तसम्माननमथ महतः सत्कुलाचारधर्मान्।
मातापित्रोर्गुरूणामपि च न हि मनागाग्रहैः कोमलात्मा
यो यायादेव वृन्दावनमयमखिलैः स्तूयते धन्यधन्यः।।५२।।

गृह–द्वार स्वर्णगुणयुक्त स्त्री–पुत्रादि सबको त्यागकर एवं सर्वत्र महान सम्मान तथा बड़े–बड़े सत्कुलाचार धर्मादि को तिलाञ्जली देकर, माता–पिता एवं गुरुजनों के आग्रह में जरा भी कोमलचित्त न होकर जो श्रीवृन्दावन जा सकता है, सब लोक उसकी प्रशंसा करते हैं एवं उसे धन्यवाद देते हैं।।५२।।

नो श्रृण्वन् नैव गृह्णन् सकलतनुभृतां क्वापि दोषं गुणं वा
वृन्दावनस्थ सत्त्वान्यखिल–गुरुधिया संनमन् दण्डपातैः।

त्यक्ताशेषाभिमानो निरवधि परमाकिञ्चनः कृष्णराधा–
प्रेमानन्दाश्रु मुञ्चन् निवसति सुकृती कोऽपि वृन्दावनान्तः।।५३।।

समस्त जीवों के दोषों तथा गुणों को न कहीं सुनता हुआ और न ही ग्रहण करता हुआ, सब वृन्दावनवासी प्राणियों में गुरु–बुद्धि से दण्डवत् प्रणाम करता हुआ, सब अभिमान छोड़कर एवं निरन्तर परम निष्किञ्चन भाव से श्रीराधाकृष्ण के प्रेमानन्द में अश्रु बहाता हुआ कोई पुण्यात्मा ही श्रीवृन्दावन में वास करता है।।५३।।

क्रन्दन्नार्त्तस्वरेण क्षितिषु परिलुठन् संनमन् प्राणबन्धुं
कुर्वन् दन्ते तृणान्यादधदनु करुणा–दृष्टये काकुकोटीः।
तिष्ठन्नेकान्त–वृन्दाविपिन–तरुतले सव्यपाणौ कपोलं
न्यस्याश्रुण्येव मुञ्चन्नयति दिननिशां कोऽपि धन्योऽत्यनन्यः।।५४।।

क्रन्दन एवं आर्त्तस्वर से भूमि पर लोट–पोट होते–होते प्राणबन्धु को दण्डवत् प्रणाम करते करते दाँतों में तृण धारणकर कृपाकटाक्ष के लिए कोटि कोटि दीन वचन उच्चारण करता हुआ श्रीवृन्दावन के वृक्ष–वृक्ष के नीचे एकान्त–वासी होकर हाथ पर कपोल रखकर आँसू बहाता हुआ जो कोई दिन–रात व्यतीत करता है, वह अति अनन्य एवं धन्य है।।५४।।

मुञ्चन् शोकाश्रुधारां सततमरुचिमान् ग्रासमात्राग्रहेऽपि
क्षिप्तो बद्धो हतो वा गिरिवदविचलः सर्वसंगैर्विमुक्तः।
नैष्किञ्चन्यैककाष्ठां गत उरुतरयोत्कण्ठया चिन्तयन् श्री–
राधाकृष्णांघ्रि पंकेरुहदलसुषमां कोऽपि वृन्दावनेऽस्ति।।५५।।

निरन्तर शोकाश्रु बहाता हुआ, एक ग्रास मात्र आहार में भी अरुचिवाला, उन्मत्त, बद्ध, हत तथा पर्वत की भांति अचल एवं सर्वसंग रहित, परम निष्किञ्चनता की पराकाष्ठा–प्राप्त, अत्यन्त उत्कण्ठा से श्रीराधाकृष्ण के चरणारविन्दों की शोभा का जो ध्यान करता है, ऐसा कोई (भाग्यवान पुरुष भी) श्रीवृन्दावन में विराजमान है।।५५।।

मालां कण्ठेऽर्पय सुललितं चन्दनं सर्वगात्रे,
ताम्बूलं प्राशय कुरु सुखं साधु सम्बीजनेन।

व्यत्याश्लेषात् सुखशयितयोर्लालयन्नंघ्रि मित्थं
राधाकृष्णौ परिचर रहःकुञ्जशय्यामुपेतौ।।५६।।

श्रीराधाकृष्ण–निर्ज्जन कुञ्जशय्या पर विराजमान हैं–उनके कण्ठ में सुगन्धित माला अर्पण कर, उनके सर्वांगों पर सुललित चन्दन लेपन कर, श्रीमुख में ताम्बूल प्रदान कर एवं मृदु मधुर वीजन के द्वारा उन्हें सुखी कर। वे परस्पर गाढ़ आलिंगनपूर्वक सुख से शयन कर रहे हैं,–उनके चरणकमलों की सेवा कर–इस प्रकार श्रीयुगलकिशोर परिचर्या कर।।५६।।

राधाकृष्णौ रहसि लतिकामन्दिरे सूपविष्टौ
रत्याविष्टौ रसवशलसद् दृष्टि–वागंग–चेष्टौ।
दृष्ट्वाऽन्यादृग् वरविलसितौ साधु यान्तीर्वहिस्ता–
स्ताभ्यामात्ताः सहसमवनम्याः स ह्रीसौख्यमग्नाः।।५७।।

एकान्त लतामन्दिर में श्रीराधाकृष्ण विराजमान हैं, रत्यावेश होने से रसवश उनकी दृष्टि, बोलिन एवं अंगचेष्टा अत्यन्त शोभा दे रही है, उनके अति मनोहर विलास का दर्शन कर दूसरी ओर देखती हुई वे (सखियाँ) बाहर आने लगीं, उनको श्रीयुगलकिशोर ने हँसते हँसते पकड़ लिया–तब वे लज्जायुक्त एवं सौख्यरस में मग्न हो सिर झुकाकर खड़ी हो गयीं।।५७।।

किशोरवयसः स्फुरत् पुरट–रोचिषो मोहिनीः
सुचारुकृशमध्यमाः पृथुनितम्ब–वक्षोरुहाः।
सुरत्नकनकाञ्चित–स्फुरित–नासिकमौक्तिकाः
सुवेणिपटभूषणाः स्मरत राधिकाकिंकरीः।।५८।।

उनकी (सखियों की) वयस किशोर है, सुन्दर स्वर्ण वर्ण हैं एवं मोहिनी मूर्त्ति हैं, उनका मध्यदेश (कटि) अति सुन्दर एवं कृश है, नितम्ब तथा स्तनयुगल पृथुल हैं, नासिका में रत्न एवं स्वर्ण जटित मुक्तासमूह लटक रहा है, सिर पर सुन्दर वेणी है एवं (परिधान में) रेशमी वस्त्र धारण कर रही हैं–इस प्रकार से श्रीराधाजी की सखियों का स्मरण कर।।५८।।

सुरम्या दोर्वल्ली–वलयगण–केयूर–रुचिराः
क्वणत् काञ्ची–मंजीरक–मणिसुताटंकललिताः।

लसद्वेणी वक्षोरुह–मुकुलहारावलिरुचः
स्मरानन्यस्निग्धाः कनकरुचि–राधांघ्र्यनुचरीः।।५६।।

जो परम रमणीया हैं एवं भुज लताओं में बाजूबन्द तथा कंकणों से सुशोभित हैं, शब्दायमान काञ्ची नूपुर तथा मणिमय कर्णफूलादिकों से सुसज्जित हैं, जो सुन्दर वेणीयुक्त हैं, जिनके स्तन–मुकुल पर हारसमूह प्रतिबिम्बित हो रहा है, उन प्रेमशीला–स्वर्णवर्णा श्रीराधा की दासियों का स्मरण कर।।५६।।

अहो वृन्दारण्ये सकलपशुपक्षि–द्रुमलता
द्यनन्तैर्लावण्यैर्मधुरमधुरैः काञ्चननिभैः।
महाप्रेमानन्दोन्मद–सुरसनिष्पन्दसुभगैः
किशोरं मे संमोहयदहह सर्वस्वमुदितम्।।६०।।

अहो! वृन्दावन में समस्त पशु–पक्षी, वृक्ष लतादिकों को अपने स्वर्ण सदृश मधुर से मधुर लावण्यराशि के द्वारा एवं महाप्रेमानन्द में उन्मत्त करने वाले रसयुक्त अक्षुण्ण सौन्दर्य के द्वारा मोहित करते हुए मेरा सर्वस्व किशोर (श्रीराधा–दासी) रूप प्रकट हुआ है।।६०।।

अहो श्यामं प्रेमप्रसरविकलं गद्गदगिरा
सरोमाञ्चं सास्रं समनुनयदालीः प्रियतमाः।
पदं वेण्या बद्ध्वा क्षणमहह संप्रेष्य दयितं
क्वचिद् वृन्दारण्ये जयति मम तज्जीवनमहः।।६१।।

अहो! किसी समय (प्रबल विरहावस्था में) श्रीमती प्रेमातिशय्य के कारण व्याकुल होकर गद्गद् वाणी से पुलकित एवं अश्रुपूर्ण लोचनयुक्त हो अपनी प्रियतमा सखियों को अनुनय विनय करके प्रिय श्यामसुन्दर के पास भेजकर थोड़े समय तक (तीव्र असहिष्णुता के कारण) वेणी से अपने चरणों को बान्धती हैं, मेरी जीवन स्वरूप श्रीराधा श्रीवृन्दावन में सर्वोत्कर्षयुक्त विराजमान हैं।।६१।।

नवोद्यत् कैशोरं नव–नव–महाप्रेमविकलं
नवानंगक्षोभात्तरलतरलं नव्यललितम्।
नवीनादृष्ट्यंगोक्तिषु मधुरभंगीर्दधदहो
महो गौरश्यामं स्मरत नवकुञ्जे तदुभयम्।।६२।।

नव किशोर–अवस्था प्राप्त, नव नव महाप्रेम के वशीभूत, नव काम–क्षोभ से अत्यन्त चञ्चल, नव ललित, दृष्टि में, अंगों में तथा बोलिन में नवीन मधुर

भंगी धारण करने वाले, नवीन कुञ्जों में उन गौरश्याम ज्योति श्रीयुगलकिशोर का स्मरण कर।।६२।।

मिथो न्यस्तप्राणं कथमपि न हि स्नान–शयना–
शनादौ विच्छिन्नं गुरुभिरनुरागैर्नवनवैः।
सदा खेलद्वृन्दावन–नवनिकुंजावलिषु तद्–
भजे गौरश्यामं मधुरमधुरं धामयुगलम्।।६३।।

परस्पर न्यस्त–प्राण, स्नान, भोजन एवं शयनादि में भी सर्वदा अविच्छिन्न, नव नव प्रचुर अनुरागवश श्रीवृन्दावन के नव नव निकुञ्जों में सदा खेलन–परायण उन मधुर मधुर गौर–श्यामाकृति श्रीयुगलकिशोर का भजन कर।।६३।।

उत्तुंगानंगरंग–व्यतिकर–रुचिराभंग–संगीत–रंगैः
रंगैस्तारुण्यभंगीभर–मधुर–चमत्कारि–रोचिस्तरंगैः।
अत्यन्तान्योन्यसक्त्या निमिषममिलनादार्तिमूर्त्ती भवन्तौ
तौ वृन्दारण्यवीथ्यां भज भरितरसौ दम्पती गौरनीलौ।।६४।।

उद्दाम अनंग–रंग–रस के कारण परस्पर मिलन में मनोरम, अविच्छिन्न विविध नृत्य, गीतादि के द्वारा एवं यौवन–रस के नानाविध मधुर तथा चमत्कारकारी दीप्ति–लावण्य के द्वारा आपस में अतिशय आसक्ति के कारण निमिष मात्र के विरह से भी आर्त्ति–मूर्त्ति धारण करने वाले पूर्ण रस–स्वरूप गौरश्याम युगल का श्रीवृन्दावन की गलियों में भजन कर।।६४।।

नश्वर–सुत–धनजायादिषु हरिमायामयेषु न प्रयासम्।
कुरु पुरुषार्थशिरोमणिमाचिनु वृन्दावने स्वयं पतितम्।।६५।।

नश्वर सुत, धन तथा स्त्री आदि श्रीहरि की मायामय वस्तुओं के लिए यत्न न कर, श्रीवृन्दावन में स्वयं पड़े हुए पुरुषार्थ शिरोमणि का चयन (संग्रह) कर।।६५।।

वृन्दावन तरुमूले कूले श्रीमत्कलिन्दनन्दिन्याः।
भज रतिकेलि–सतृष्णौ राधाकृष्णौ तदेकभावेन।।६६।।

श्रीवृन्दावन में श्रीमत् कलिन्दनन्दिनी (श्रीयमुना) के तीर पर वृक्ष के नीचे रति–केलि तृष्णाशील श्रीराधाकृष्ण का अनन्य भाव से भजन कर।।६६।।

वरमिह वृन्दारण्ये सुवराकी मदनमोहनद्वारि।
अपि सरमापि रमाप्रियसख्यपि नान्यत्र नो रमापि स्याम्।।६७।।

इस श्रीवृन्दावन में श्रीमदनमोहन के दरवाजे पर तुच्छ कुक्करी (कुतिया) होकर भले ही रहूँगा, तथापि और जगह लक्ष्मी की प्यारी सखी अथवा स्वयं लक्ष्मी बनकर भी रहने की इच्छा नहीं है।।६७।।

प्रत्यंगोच्छलदद्भुत–नवकाञ्चन–चन्द्रचन्द्रिका–जलधिः।
नवकैशोर–चमत्काररूपा वृन्दावनेश्वरी स्फुरतु।।६८।।

जिनके प्रति अंग से उज्ज्वल अद्भुत नवीन स्वर्ण चन्द्र–चन्द्रिका का सागर उच्छलित हो रहा है, वही नवीन कैशोर के चमत्कार की हेतुरूपा श्रीवृन्दावनेश्वरी मेरे हृदय में स्फुरित हों।।६८।।

कुर्वन्ति सर्वनाशं ध्रुवमतिमायामयप्रमदाः।
तच्छब्दशून्य वृन्दारण्य प्रदेशे वसेत्ततश्चतुरः।।६९।।

अत्यन्त मायाशीला स्त्रियां निश्चय ही सर्वस्व नाश कर देती हैं। अतः चतुर व्यक्ति को इस मायाविस्तारी नारी शब्द–शून्य श्रीवृन्दावन प्रदेश में वास करना उचित है।।६९।।

उत्तीर्य विष्णुमायामपि वनितायामविश्वसन् प्राज्ञः।
तद्भयचकितः सततं निवसति वृन्दावनेऽतिनिर्विण्णः।।७०।।

विष्णुमाया से उत्तीर्ण होकर भी बुद्धिमान पुरुष स्त्रियों में विश्वास न करके अत्यन्त वैराग्यवान होकर नारी के भय से चकित–चित्त हुआ निरन्तर श्रीवृन्दावन वास करता है।।७०।।

परदार–वित्तहारिषु सत्यपदेशे महाप्रहारिषु च।
न हि वृन्दावनवासिषु दोषं पश्यन्ति चिद्घनेषु धीराः।।७१।।

पर स्त्री एवं धन हरण करने वाले, और कपट से महाप्रहार करने वाले, चिद्घनस्वरूप श्रीवृन्दावनवासियों में धीर पुरुष दोष नहीं देखते हैं।।७१।।

वृन्दाकानन ! काऽऽनने सुभगता न स्तौति यत्त्वां सदा
किं तद् देहमपास्य गेहममतां यन्न त्वयि न्यस्यते।
किं तत् पौरुषमौरसं च तनयं विक्रीय न स्थीयते
येन त्वय्यथ तत्त्ववित् स खलु को यस्ते तृणं नाश्रयेत् ?।।७२।।

हे वृन्दावन ! जो मुख सदा आपकी स्तुति नहीं करता है, उसकी क्या सुन्दरता ? गृह ममता को परित्याग करके जो देह तुम्हारे में पात नहीं करता है, वह देह कैसा ? स्ववीर्य पुत्र को भी बेचकर जो वृन्दावन वास नहीं करता, तो उसका पुरुषार्थ ही कैसा ? वह क्या तत्त्ववेत्ता कहा जा सकता है, जो श्रीवृन्दावन के तृण का भी आश्रय नहीं ले सकता ?७२।।

वृन्दारण्यमनन्यभावरसिकः श्रीराधिका–नागरे
वैदग्धीरससागरे नवनवानंगैकखेलाकरे।
राधायाः क्षणकोप–कातरतरे तद् भ्रूविलासांकुशा
कृष्टात्मेन्द्रिय सर्वगात्र उरुभिर्विघ्नैरचाल्यः श्रये।।७३।।

जो वैदग्धीरस का समुद्र है एवं नव नव कामरस में क्रीड़ा परायण है, जो श्रीराधा के किञ्चित् कोप से ही अति कातर हो जाता है एवं श्रीराधा के भ्रूविलासरूप अंकुश से जिसका आत्मा, इन्द्रिय तथा सर्व देह आकृष्ट हो जाता है, उसी श्रीराधा–नागर में अनन्य भाव–रसिक होकर एवं अनेक विघ्नों में भी अविचल रहकर मैं इस श्रीवृन्दावन का आश्रय लेता हूँ।।७३।।

मदनमोहनवक्त्र–सुधाकरे मुदित–गोपवधू–कुमुदाकरे।
सरस–राधिकया परिचुम्बिते मम मनो नवकुञ्जविलम्बिते।।७४।।

नव निकुञ्ज विलासी गोपवधूरूप कुमुदिनीवृन्द को आनन्दित करने वाले एवं श्रीराधा के द्वारा परिचुम्बित श्रीमदनमोहन के मुखचन्द्र में मेरा मन लगा रहे।।७४।।

निलयनाय निकुंजकुटीगतां वरसखीनयनेगिंतसूचिताम्।
सुमिलितां हरिणा स्मर राधिकामनु च तां परिरम्भित–चुम्बिताम्।।७५।।

छिपने के लिये निकुञ्ज कुटी में जाने पर एवं श्रेष्ठ सखी (ललिता) के नेत्रों के इशारे को पाकर श्रीहरि के सहित सुमिलिता एवं तदनन्तर (श्रीहरि के द्वारा) आलिंगिता एवं चुम्बिता श्रीराधा को स्मरण कर।।७५।।

मदनकोटिमनोहरमूर्तिना नवलताभवनोदरवर्त्तिना।
प्रियसखीमिष–नन्दितराधिकां स्मर बलाद्रमितां प्रणयाधिकाम्।।७६।।

कोटि कामदेव सदृश मनोहर मूर्त्ति, नवलतागृह मध्यवर्त्ती श्रीहरि अत्यन्त प्रणयवती आनन्दपूर्ण श्रीराधा से प्रियसखी के बहाने बलपूर्वक रमण कर रहे

हैं—ऐसा स्मरण कर।।७६।।

प्रियतमेन निजप्रियकिंकरीजनसुवेशधरेण पदाम्बुजम्।
किमपि लालयता रमितां स्मराम्यनुचरीं क्षिपतीमथ राधिकाम्।।७७।।

प्रियतम अपनी प्रिय किंकरी का सुवेश धारण कर श्रीराधा के पादपद्म को किसी अनिर्वचनीय मधुर भाव से लालन करते करते श्रीराधा को रमण करा रहे हैं—जो अपनी अनुचरी के प्रति तर्ज्जन कर रही हैं, मैं उनका स्मरण करती हूँ।।७७।।

एकैकांगच्छटाभिर्भरित—दशदिगाभोगमत्युन्मदाढ्यं
प्रेमानन्दात्मकाभिर्विद्रुतकनक सूद्भास्वराभिः किशोरम्।
तद्धामश्यामचन्द्रोरसि रसविवशं केलिशिञ्जानभूषं
भ्रश्यद्वासस्त्रुटत्प्रक्स्फुरति रतिमदान्निस्त्रपं कुञ्जसीम्नि।।७८।।

जिसकी प्रेमानन्दात्मक, उत्तम स्वर्ण सदृश, सुन्दर तथा देदीप्यमान प्रत्येक अंगच्छटा से दशों दिशाएँ परिपूर्ण हो रही हैं, वही अति उन्मादी, किशोरमूर्त्ति, रसविवश तथा केलिभूषण शोभित ज्योतिर्मय (श्रीराधा) विग्रह श्यामचन्द्र के वक्षस्थल पर रति—मद—पूर्णता से निर्लज्ज होकर भ्रष्ट वसन और छिन्नमाल होकर निकुञ्ज में शोभा विस्तार कर रहा है।।७८।।

कलिन्दगिरिनन्दिनीतटकदम्बकुंजोदरे
दरेण नलिनीभ्रमान्मधुकरादिवाधावतः।
स कृष्ण इति कृष्ण ते शरणमागतास्मीति—वाक्—।
प्रियासुपरिरम्भणादति मुमोद दामोदरः।।७९।।

श्रीयमुना के किनारे कदम्बकुञ्ज में नलिनी के भ्रम से दौड़ते हुए भ्रमर के भय से "वह कृष्णवर्ण भ्रमर मेरी ओर आ रहा है, अतएव हे कृष्ण ! मैंने तुम्हारी शरण ग्रहण कर ली है"—इस प्रकार वाक्य उच्चारण करने वाली प्रियतमा के सुन्दर आलिंगन से दामोदर अति प्रसन्न हुए।। ७९।।

श्रीवृन्दाविपिने महापरिमलप्रोत्फुल्लमल्लीवने
श्रीराधा—मुरलीधरावतिरसोल्लासान्मिथः स्पर्शतः।
आसीनौ कुसुमैः परस्परवपुर्भूषां विचित्रां मुहुः
कुर्वन्तौ रतिकौतुकेन विगमाल्लब्धानवस्थौ भजे।।८०।।

श्रीवृन्दावन में महा सुगन्ध विस्तार करने वाले खिले हुए मल्लिका वन में श्रीराधा मुरलीधर अति रसोल्लास वश परस्पर स्पर्श कर रहे हैं, वे दोनों कुसुमों के द्वारा बारम्बार एक दूसरे के लिये विचित्र भूषण निर्माण कर रहे हैं, रति कौतुकवश उनके वस्त्र भूषण स्थानभ्रष्ट हो गये हैं, अतः वे अनवस्था को प्राप्त हो रहे हैं—ऐसे श्रीयुगलकिशोर का मैं भजन करती हूँ।। ८०।।

श्यामानन्दरसैकसिन्धुबुड़ितां वृन्दावनाधीश्वरीं
तत् स्वानन्द—रसाम्बुधौ निरवधौ मग्नं च तं श्यामलम्।
तादृक्—प्राणपरार्द्धवल्लभ युगक्रीड़ावलोकोन्मदा—
नन्दैकाब्धिरस भ्रमत्तनुधियो ध्यायामि तास्तत्पराः।।८१।।

श्यामानन्द—रस सिन्धु में निमज्जिता श्रीराधा का तथा श्रीराधा के असीम आनन्दरस—समुद्र में मग्न उस श्रीश्यामसुन्दर का और कोटि—प्राण से भी अत्यन्त प्रियतम उन श्रीयुगल—किशोर की क्रीड़ा का दर्शन कर, उन्मत्तकारी आनन्दसागर रस में जिन के देह एवं बुद्धि घूर्णित हो रहे हैं—उन्हीं श्रीराधाकृष्ण परायण सखियों का मैं ध्यान करती हूँ।। ८१।।

निमिषे निमिषे महाद्भुतां मदनोन्मादकतां वहन्महः।
द्वयमेव निकुंज मण्डले नव गौरासित नागरं भजे ।। ८२।।

जो प्रति निमेष में महा अद्भुत मदनोन्माद प्रकाशित कर रहा है, उसी निकुञ्ज मण्डल में स्थित गौर नीलवर्ण ज्योतिर्मय नागर—युगल का मैं भजन करती हूँ।। ८२।।

सिञ्चन्तौ बालवल्लीद्रुममतिरुचिरं कुत्रचित् पाठयन्तौ
शारीकीरौ क्वचित् क्वापि च शिखिमिथुनं ताण्डवं शिक्षयन्तौ।
पश्यन्तौ क्वाप्यपूर्वागत—सदनुचरीदर्शितं सत् कलौघं
तौ श्रीवृन्दावनेशौ मम मनसि सदा खेलतां दिव्यलीलौ ।। ८३।।

जो कहीं अति सुन्दर छोटे छोटे वृक्ष—लताओं में जल सिञ्चित कर रहे हैं और कहीं तोता—मैंना को पाठ पढ़ा रहे हैं, कहीं मयूर मयूरी को ताण्डवनृत्य शिक्षा कर रहे हैं तो कहीं नवागत दासी के द्वारा प्रदर्शित सुन्दर सुन्दर कला—विद्या का दर्शन कर रहे हैं, इस प्रकार से दिव्यलीला विनोदी वे श्रीवृन्दावनेश्वर श्रीयुगलकिशोर मेरे मन में सर्वदा क्रीड़ा करें।।८३।।

नवीनकलिकोद्गतिं कुसुमहास–संशोभिनीं
नवस्तवकमण्डितां नवमरन्दधारां लताम्।
तमालतरुसंगतां समवलोक्य वृन्दावने
पतिष्णुमति विह्वलामधृत काऽपि मे स्वामिनीम् ।।८४।।

नवीन लता में नवीन कलिका निकल रही है और बहु कुसुम विकाश के छलरूप हास्य से संशोभित है, वह नव स्तवक से मण्डित है एवं उससे नव मधुधारा निःसृत हो रही है—इस प्रकार की लता का तरुण तमाल वृक्ष के साथ मिलन देखकर, अति विह्वल चित्त होकर मेरी स्वामिनी श्रीवृन्दावन में मूर्छित होकर जब गिरने लगीं तब किसी सखी ने उन्हें धारण कर लिया।। ८४।।

शुद्धानन्दरसैकवारिधि–महावर्तेषु नित्यं भ्रम–
न्नित्याश्चर्यवयोविलाससुषमा–माधुर्यमुन्मीलयत्।
अत्यानन्दमदान्मुहुः पुलकितं नृत्यत् सखीमण्डले
श्रीवृन्दावनसीम्नि धामयुगलं तद् गौरनीलं भजे।।८५।।

नित्य एकमात्र शुद्धानन्दरस समुद्र के महावर्तों में भ्रमणकारी, नित्य आश्चर्यमय अवस्था, विलास, शोभा एवं माधुर्यादि को प्रकाशित करने वाले तथा अतिशय आनन्द के आधिक्य के कारण बारम्बार पुलकित अंग होकर सखी समाज में नृत्य करने वाले, श्रीवृन्दावन में विराजमान उन गौर–नील वर्ण विशिष्ट श्रीयुगलकिशोर का मैं भजन करती हूँ।।८५।।

श्रीराधापादपद्मच्छविमधुरतर–प्रेम–चिज्ज्योतिरेका–
म्भोधेरुद्भूत फेनस्तवकमयतनूः सर्व वैदग्ध्यपूर्णाः।
कैशोर व्यंजितास्तद् घनरुगपघन–श्रीचमत्कारभाजो
दिव्यालंकारवस्त्रा अनुसरत सखे राधिका–किंकरीस्ताः।।८६।।

हे सखे! श्रीराधा के पादपद्म की कान्ति द्वारा मधुरतर प्रेम चिद्घनज्योति के एकमात्र समुद्र से उत्पन्न फेन समूहमय जिनके देह हैं, जो सर्व चतुरतापूर्ण हैं, व्यक्तकिशोर अवस्था एवं तारुण्य छटा के द्वारा जिनके सुन्दर अवयव–समूह परम सुन्दर तथा चमत्कार के पात्र हैं, उन्हीं दिव्यालंकारों तथा वस्त्रों से सुशोभित श्रीराधाजी की किंकरियों का अनुसरण कर।।८६।।

भृंगीगुंजरितं पिकीकुलकुहूरावं नटत्केकीनां
केकास्ताण्डवितानि चातिललितां कादम्बयूनोर्गतिम् ।
आश्लेषं नववल्लरीक्षितिरुहां त्रस्यत् कुरंगेक्षितं
श्रीवृन्दाविपिनेऽनुकुर्वदनुयाह्यात्मैकबन्धुद्वयम् ।।८७।।

श्रीवृन्दावन में भ्रमरों की गुञ्जार का, कोयल–समूह के "कुहू कुहू" मधुर शब्द का, नृत्य परायण मोर समूह की केका–ध्वनि एवं ताण्डव नृत्य का, कलहंस युगल की सुललित गति का, नवीन वृक्ष–लताओं के आलिंगन का एवं डरे हुए हरिणसमूह की नयन–भंगिमा आदि का अनुकरण करने वाले प्राणप्रियतम–युगल का अनुसरण कर।। ८७।।

अहो पतितमुत्तरोत्तरविवर्द्धमान–भ्रमौ
महारयमहोज्ज्वल–प्रणयवाहिनी–स्रोतसि।
किशोरमिथुनं मिथोऽवशविचित्रकामेहितं
करोत्यहह विस्मय–स्थगितमेव वृन्दावनम् ।।८८।।

अहो ! महावेगवती महा उज्ज्वल प्रणय–नदी के स्रोत में, उत्तरोत्तर क्रमशः वृद्धि प्राप्त आवर्त्त में निपतित श्रीयुगल–किशोर परस्पर विवश होकर विचित्रकामचेष्टाओं का प्रकाश कर रहे हैं, अहह ! श्रीवृन्दावन उन्हें विस्मय–विमुग्ध ही कर रहा है।। ८८।।

क्व यानं क्व स्थानं किमशनमहो किं नु वसनं
किमुक्तं किं भुक्तं किमिव च गृहीतं न किमपि ।
मिथः कामक्रीड़ा–रस–विवशतामेत्य कलयत्
किशोरद्वन्द्वं तत् परिचरत वृन्दावन–वने।।८९।।

कहां यान वाहनादि है और कहां स्थान है, क्या भोजन है, क्या वस्त्र है, और क्या कहा, क्या खाया क्या ग्रहण किया–इन सब में किसी के प्रति कुछ भी लक्ष्य न रखकर परस्पर कामक्रीड़ा रस में ही जो श्रीयुगलकिशोर विवश हो रहे हैं, श्रीवृन्दावन में उन्ही की परिचर्या कर।। ८९।।

केशान् बध्नन्ति भूषां विदधति वसनं वासयन्त्याशयन्ति
वीणा–वंशादि हस्ते निदधति नटनायादराद्वादयन्ते।

वेशाद्यर्द्धिं च कर्तुं कथमपि नितरामालयः शक्नुवन्ति
श्रीराधाकृष्णयोरुन्मद–मदनकलोत्कण्ठयोः कुंजवीथ्याम्।।६०।।

सखीवृन्द कुञ्जवीथी में उन्मद मदन कला में उत्कण्ठित श्रीराधाकृष्ण के केशों को बांधती हैं, भूषणों को सजाती हैं, वस्त्र पहराती हैं। भोजन कराती हैं, वीणा वंशी आदि श्रीहस्त में धारण कराती हैं। नृत्य कराने के अभिप्राय से वाद्य–यन्त्रों में आदरपूर्वक तान छेड़ती हैं एवं किसी भी प्रकार वेशभूषादि की शोभा समृद्धि के लिये अतिशय यत्नवती होती हैं।। ६०।।

विद्योतद्बीजराजात्मक–विमल–महाज्योतिरानन्द–सान्द्रे
श्रीवृन्दाकाननेऽत्यद्भुत–मधुर–महाभाव–सर्वस्वमूर्त्या।
प्रत्यंगोत्सर्पि–हैमच्छबि–रसजलधि–श्रीकिशोर्या कयाचित्
कोऽपि श्यामः किशोरोऽद्भुतमधुर–रसैकात्ममूर्तिश्चकास्ति।।६१।।

विद्योतमान कामबीज स्वरूप विमल महाज्योतिपूर्ण आनन्दघन श्रीवृन्दावन में जो अत्यन्त अद्भुत मधुर महाभाव की सर्वस्वमूर्त्ति है और जिसके प्रति अंग से स्वर्ण कान्ति रस–समुद्र उच्छलित हो रहा है–ऐसी किसी (अनिर्वचनीय) श्रीकिशोरी जी के साथ कोई अद्भुत मधुर रसैकमूर्त्ति श्रीश्याम–किशोर शोभा पा रहा है।। ६१।।

विमलकलितबीज–ज्योतिरेकार्णवान्तः
स्फुरति मधुरमेतद्धाम वृन्दावनाख्यम्।
तदधि निरवधीनां माधुरीणां धुरीणा–
वनुसर रतिलोलौ दम्पती गौरनीलौ ।।६२।।

विमल सबीज ज्योति पूर्ण समुद्र–गर्भ में श्रीवृन्दावन नामक यह धाम स्फुरित हो रहा है। उसमें असीम माधुर्यशाली रति लम्पट गौर–नील कान्ति विशिष्ट दम्पति का अनुसरण कर।। ६२।।

अंगादंगादनंगाकुलितपुलकिताद् गौररोचिस्तरंगाः
प्रोत्तुंगाः प्रोच्छलन्तः सकलमपि जगन्मण्डलं प्लावयन्ति ।
श्रीराधाया विधायात्मन उरुमधुराभीक्षयैवात्यधीनं
श्यामेन्दुं नित्यवृन्दावन–रति विहृतौ येऽद्भुतांस्तान् स्मरामः।।६३।।

श्रीराधा के अतिमधुर अपांग विक्षेप(बंक–विलोकन) के द्वारा ही श्यामचन्द्र को अपने अति अधीन करके, उसके (श्रीराधा के) कामातुर पुलकित प्रति अंग से जो गौरकान्ति तरंग समूह उत्तरोत्तर वृद्धि को प्राप्त हुआ चारों ओर व्याप्त होकर सम्पूर्ण जगत्–मण्डल को ही प्लावित कर रहा है, उसी नित्य वृन्दावन रति–विहार के अद्‌भुत (तरंगादि) वस्तु–समूह का हम स्मरण करती हैं।।६३।।

वृन्दावन–नवकुञ्जे रसपुञ्जे खेलदाश्चर्यम्।
तद् गौरनीलमोहन–किशोरमिथुनं स्मराकुलं स्मरत।।६४।।

रसपुञ्ज वृन्दावन के नवीन कुञ्जों में आश्चर्यभाव से खेलनशील स्मराकुल उन गौरनील कान्तिविशिष्ट मोहन किशोर युगल का स्मरण कर।। ६४।।

श्रीवृन्दावनतत्त्वं श्रीराधाकृष्णयोस्तत्त्वम्।
निजतत्त्वं च सदा स्मर यत् प्रकटितमस्ति गौरचन्द्रेण।।६५।।

श्रीगौरचन्द्र के द्वारा प्रकटित श्रीवृन्दावनतत्त्व, श्रीराधाकृष्णतत्त्व तथा आत्मतत्त्व सदा सर्वदा स्मरण कर।। ६५।।

कृष्णानुराग–सागर सारेष्वत्यन्त–चमत्कारम्।
विन्दत वृन्दाकानन–कुञ्जकुटीवृन्द–वन्दनादेव।।६६।।

श्रीवृन्दावन के कुञ्ज–कुटी समूह की वन्दना मात्र से ही श्रीकृष्णानुराग–सागर का सारभूत अति चमत्कार प्राप्त कर।।६६।।

भेदत्रयरहितमस्ति ब्रह्म महानन्दसान्द्रं यत्।
तत् सविशेष–चमत्कृति–ततिरिह वृन्दावने गता काष्ठाम्।।६७।।

जिसे सजातीय एवं विजातीय भेदरहित महानन्दघन ब्रह्म कहते हैं, वह इस श्रीवृन्दावन में सविशेष चमत्कार–राशि की पराकाष्ठा को प्राप्त हुआ है।।६७।।

चिच्छक्तिसिन्धुबन्धुरमद्वयमानन्दमद्‌भुताकारम्।
तद्बिन्दुयुक् चिदात्मक स्मर तत्त्वं कुञ्जरोक्षितं सरसम् ।। ६८।।

हे चिच्छक्ति समुद्र के बिन्दुयुक्त चित्कण (जीव) तू चिच्छक्ति सागर के मनोहर और अनुपम अद्‌भुताकार, सरस एवं (श्याम) कुञ्जर के द्वारा (प्रेम जल से) सिञ्चित वृन्दावन–तत्त्व को स्मरण कर।। ६८।।

अपारावारकन्दर्प- नवकेलिरसाम्बुधौ।।
मग्नं वृन्दावने गौरश्यामधामद्वयं भज।।६६।।

श्रीवृन्दावन में पारावार विहीन काम-नव-केलि-रस समुद्र में मग्न गौरश्याम विग्रह-युगल का भजन कर।। ६६।।

श्रीप्रबोधानन्द सरस्वति-विरचित श्रीवृन्दावन-महिमामृतम् का
द्वितीय शतक समाप्त हुआ।।२।।

तृतीयं शतकम्

स्वान्तर्भावविरोधिनी व्यवहृतिः सर्वा शनैस्त्यज्यतां
स्वान्तश्चिन्तिततत्त्वमेव सततं सर्वत्र सन्धीयताम् ।
तद्भावेक्षणतः सदा स्थिरचरेऽन्यादृक् तिरोभाव्यतां
वृन्दारण्यविलासिनोर्निशि दिवा दास्योत्सवे स्थीयताम् ।।१।।

अपने आन्तरिक-भाव (श्रीकृष्ण-दास्यभाव) के विरोधी सब व्यवहारों को धीरे-धीरे त्यागकर, अन्तश्चिन्तित तत्त्व (सेव्यतत्त्व, श्रीराधाकृष्णतत्त्व) का ही निरन्तर सर्वत्र अनुसन्धान (खोज) कर, सदा उसी भावमयी दृष्टि से स्थावर जंगमादि को देखते हुए अन्य प्रकार की भावनाओं का त्याग कर, श्रीवृन्दावन-विलासी श्रीयुगल-किशोर की सेवा में निशिदिन तत्पर रह।।१।।

प्रकृत्यन्तं तीर्त्वा प्रविश वितते ब्रह्ममहसि,
स्फुरत् पश्यानैकान्तिक-कलित-वैकुण्ठभवनम् ।
तदध्युच्चान्युच्चान्यनुसर सुधामान्यथ महो-
ज्ज्वले वृन्दारण्ये भ्रम यदि किमप्यत्र मिलति।।२।।

प्रकृति-आवरण उल्लंघन कर विस्तीर्ण ब्रह्म ज्योति में प्रवेश कर, फिर अनैकान्तिक (जो एकान्तिक-अद्वितीय ब्रह्मवादी नहीं हैं), अर्थात् भक्त ही जिसे देख सकते हैं-उस वैकुण्ठलोक के दर्शन कर, उससे ऊपर उच्च उच्चतर मनोहर धामों का अनुसरण कर एवं यदि किसी अनिर्वचनीय वस्तु के पाने की इच्छा हो तो सर्वोपरि महा-उज्ज्वल श्रीवृन्दावन में भ्रमण कर।।२।।

अंगेऽङ्गेऽन लीला–जलनिधि–रमितो माधुरी–वारिधीना
मेकैकं तत्र कोटिः प्रतिपदमुदयत्येतदास्वादमत्तः ।
श्यामः स श्रीकिशोरः प्रतिनिमिषमहो कोटिकोटिं विकारान्
धत्ते कन्दर्पदर्पात् परमरसनिधौ कानने राधिकायाः ।।३।।

अहो ! वह श्रीश्यामकिशोर प्रति अंग में अनन्त अनंग–लीला समुद्र के द्वारा आनन्दित हो रहे हैं एवं माधुर्य–समुद्र के पद–पद में हर एक अंग को ही कोटिगुणा और अधिक प्रकाशित कर रहे हैं, तथा उसी आस्वादन में उन्मत्त होकर श्रीराधा का परम रसनिधि रूप इस श्रीवृन्दावन में कन्दर्प–दर्प के कारण प्रति निमिष में ही कोटि–कोटि विकारों को प्राप्त हो रहा है।।३।।

वन्दे वृन्दावनगतमहं भक्तिभारावनम्रो
धन्याग्रण्यं कृमिमपि न चान्यत्र–संस्थान् तृणाय ।
मन्ये ब्रह्मादिक–सुरगणान् किं बहूक्त्या ममेयं
प्रौढ़िर्गाढ़ा न खलु परतो भाति कृष्णोऽपि पूर्णः ।।४।।

भक्तिपूर्वक नम्र होकर श्रीवृन्दावन के परमधन्य कृमि की भी मैं वन्दना करता हूँ, किन्तु अन्यत्र रहने वाले ब्रह्मादिक देवताओं को तृण के समान भी नहीं मानता। और अधिक क्या कहूँ ? मेरी यह चतुरतापूर्ण बात पक्की है, क्योंकि श्रीवृन्दावन को छोड़कर श्रीकृष्ण भी तो पूर्णरूप से प्रतिभात नहीं होते।।४।।

वृन्दारण्ये चिदचिदखिलज्योतिराच्छादकान्ति–
स्वच्छानन्तच्छवि–रससुधा–सीधुनिस्यन्दिनि त्वम् ।
सर्वानन्दास्मृतिकर – महाप्रेमसौख्यैरगाधे
राधाकृष्णानवधिविहृतौ संवस त्यक्तसर्वः ।।५।।

चित्–ज्योति (वैकुण्ठादि अप्राकृत धाम) और अचित् ज्योति (प्राकृत भवन, दैवी धामादि) सबको आच्छादनकारी ज्योति वाले, एवं जिससे उज्ज्वल अनन्त ज्योति–रसामृत टपक रहा है और जो अन्य सब प्रकार के आनन्द को भुला देने वाले हैं, तथा जहाँ श्रीराधाकृष्ण महाप्रेम सुख से अगाध अनन्य विहार कर रहे हैं–ऐसे श्रीवृन्दावन में सब कुछ त्याग कर तू वास कर।।५।।

सर्वाश्चर्यमुदेति यत्र सततं कन्दर्पलीलामयं
गौरश्याम–महामनोहर महोद्वन्द्वं किशोराकृति ।
यत्स्वान्तः प्रतिवीथि कल्पित–मृजा–गन्धाम्बुसेकं कदा
भ्राजन्मञ्जु–निकुञ्जपुञ्जमचलो वृन्दावनं संश्रये ।।६।।

जहाँ निरन्तर कन्दर्प–लीलामय सर्व आश्चर्यजनक किशोर मूर्ति गौरश्याम महामनोहर जोड़ी विराजमान है, जिसकी हर एक गली में मार्ज्जन और सुगन्धित जल का छिड़काव हो रहा है, जिससे मञ्जुल निकुञ्जसमूह चमक रहा है, ऐसे श्रीवृन्दावन में कब मैं अचल निवास करूँगा ?

नित्यक्रीड़ामयतनु तनुक्षौममानीलपीतं
विभ्रज्जाम्बुनद–मरकत–ज्योतिराश्चर्यनीलम् ।
नानानर्मप्रहसन–महाकौतुकैर्यत्र नन्द–
त्यानन्दाब्धिद्वयमिह रतिं विन्द वृन्दावनान्तः ।।७।।

नित्यक्रीड़ापरायण विग्रह जो सूक्ष्म एवं हलके नीले और पीले रंग के रेशमी वस्त्र धारण कर रहे हैं, सुवर्ण एवं मरकत–मणि की ज्योति वाले तथा आश्चर्यमय लीलायुक्त आनन्द के समुद्र दोनों जिस (श्रीवृन्दावन) में अनेक प्रकार के हास्य प्रहससनादि के महाकौतुक–विनोद के द्वारा आनन्द प्राप्त कर रहे हैं, उसी श्रीवृन्दावन में तू प्रीति कर।।७।।

नित्यव्यञ्जन्मधुरमधुराश्चर्यकैशोर–वेशं
नित्याऽन्योन्यप्रकटसुषमा–माधुरी सन्निवेशम् ।
नित्योद्वर्द्धि–प्रतिनव–मिथःप्रेमनित्यांगसंगं
नित्यं वृन्दावनभुवि भजे गौरनीलं द्विधाम ।।८।।

श्रीयुगल किशोर नित्य ही मधुर से सुमधुर आश्चर्यजनक कैशोर वेश धारण करते हैं, नित्य ही एक दूसरे की शोभा और माधुरी में सन्निवेश करते हैं, नवीन नवीन नित्य अंग–संग से एक दूसरे का प्रेम नित्य ही बढ़ता है, मैं नित्य ही श्रीवृन्दावनभूमि में उस गौरश्याम जोड़ी का भजन करता हूँ।। ८।।

श्रीगान्धर्वा–रसिकचरणद्वन्द्वमाध्वीक–गन्धा–
दन्धा नित्यं मतिमधुकरी श्रीलवृन्दावनान्तः ।
येषां भ्राम्यत्यतिरसभराद्विह्वला तादृशानां
पादान्ते मे विलुठतु मुहुर्भक्तिभावेन मूर्द्धा ।।६।।

श्रीराधिका–रसिक (श्रीश्यामसुन्दर) के युगल चरणों की मधुगन्ध में विमुग्ध होकर जिनकी बुद्धिरूप मधुकरी नित्य अति रसपूर्णता से विह्वला होकर श्रीवृन्दावन में ही भ्रमण करती है, उनके चरणों में भक्तिपूर्वक मस्तक झुकाकर मैं बारबार वन्दना करता हूँ।।९।।

स्वच्छ–प्रोज्ज्वल–दिव्यवास–कुसुमाद्यापूर्ण–संशीतल–
च्छायाभाजि तले नवक्षितिरुहां संक्रीड़–सुप्तासिकम् ।
कुञ्जे कुञ्जे उदारकेलि कुसुमोल्लोचास्तरे पानका–
द्याढ्ये यस्य तदद्भुतं द्वयमहस्तत् पश्य वृन्दावने ।।१०।।

जिस (श्रीवृन्दावन) के स्वच्छ परम उज्ज्वल दिव्य वस्त्र रूप कुसुमादि से परिपूर्ण सुशीतलछायायुक्त नवीन वृक्षों के नीचे दोनों सुन्दर क्रीड़ाकर निद्रित भाव से विराजते हैं, एवं जिसकी कुसुमरूप चन्द्रातपों से आच्छादित विविध मधुभरी कुञ्ज कुञ्ज में उदार केलिपरायण अद्भुत श्रीयुगलकिशोर अवस्थित हैं–उसी श्रीवृन्दावन में ज्योतिमय उन युगलकिशोर का दर्शन कर।।१०।।

त्रैगुण्यातीतपूर्णोज्ज्वल–विमल–महाकामबीजात्मदिव्य
ज्योतिःस्वानन्दसिन्धौ किमपि सुमधुरं द्वीपमाश्चर्यमस्ति ।
तस्मिन् वृन्दावनं तद्रहसि रसभरैर्मञ्जुला कुञ्जवाटी
काचित्तत्रातिभावाद् भज सुरतिनिधी राधिकाकृष्णचन्द्रौ ।।११।।

सत–रज–तम–इन तीनों गुणों से परे अत्यन्त उज्ज्वल शुद्ध महाकामबीज स्वरूप दिव्य ज्योति के स्वानन्द (निजानन्द) समुद्र में कोई एक अति मधुर आश्चर्यजनक द्वीप है, उसमें श्रीवृन्दावन अवस्थित है, उस श्रीवृन्दावन के गुप्त स्थान में रसपूर्ण कोई एक मनोहर कुञ्जवाटी विद्यमान है–वहां सुरति निधि श्रीराधिका–कृष्णचन्द्रका अति भावपूर्वक भजन कर।।११।।

दृष्ट्वा दृष्ट्वा राधिकाकृष्णयोस्तद्दिव्यं रूपं दिव्यकन्दर्पकेलिम् ।
श्रुत्वा श्रुत्वा शीतपीयूषवाणीं वृन्दारण्ये किं रसाब्धि विगाहे ? ।।१२।।

श्रीराधाकृष्ण के उस दिव्य रूप एवं दिव्यकन्दर्पकेलि का दर्शन करते–करते तथा उनकी सुशीतल अमृतवाणी को सुन–सुनकर इस श्रीवृन्दावन में क्या (कभी) मैं भी रस के समुद्र में अवगाहन कर सकूँगा ?।।१२।।

ब्रह्मज्योतिः पूर्णमानन्दसान्द्रं राधाकृष्णाकारमाश्चर्यसीम ।
शुद्ध–स्वाद्यप्रीतिशक्तेर्निधानं वृन्दारण्ये यो भजेत् सोऽतिधन्यः ।।१३।।

ब्रह्मज्योति पूर्ण, आनन्दघन, आश्चर्य की सीमा श्रीराधा–कृष्णनामधारी विशुद्ध एवं आस्वादन करने योग्य प्रीति–शक्ति के बीज स्वरूप को जो श्रीवृन्दावन में भजे, वही अति धन्य है।।१३।।

नवं नवमहो दधद्वपुरपूर्वकैशोरकं
नवं नवमहो वहद्वहलमन्मथाड़म्बरम् ।
नवं नवमहो दुहत्सुखमहाब्धिमालीदृशां
दृशाहमपि किं पिवाम्यभय धाम–वृन्दावने ।।१४।।

अहो ! नव नवायमान अपूर्व कैशोर देह धारण करने वाले, अनेक प्रकार के नवीन–नवीन काम–आडम्बर प्रकट करने वाले एवं सखियों के नेत्रों को नूतन–नूतन सुख महासागर दान करने वाले, उस अभयदानकारी युगलकिशोर के मैं भी क्या इन नेत्रों के द्वारा श्रीवृन्दावन में दर्शन कर सकूँगा?।।१४।।

प्रभो मदनमोहन! त्वमतिचारुवृन्दाटवी–
निकुञ्जभवने मया दयित ! कर्हि सेविष्यसे ? ।
प्रसून–शयनं गतः स–रभसं ममात्मेश्वरी–
सहाय रुमन्मथक्षुभितमूर्त्तिरुद्यत्स्मितः ।।१५।।

हे प्रभो मदनमोहन ! हे प्यारे ! मनोहर श्रीवृन्दावन के निकुञ्ज भवन में पुष्प–शय्या पर मेरी प्राणेश्वरी (श्रीराधा) के साथ प्रसन्न–चित्त बैठे हुए प्रबल काम के द्वारा क्षुभित–आकृति वाले एवं मृदु मधुर मुसकानयुक्त आपकी मैं कब सेवा करूँगा ?।।१५।।

क्षणाच्छरदुपागमं क्षणत एव वर्षागमं
क्षणात् सुरभिवैभवं क्षणत एव चान्यर्तुमत् ।
सदा जनितकौतुकं किमपि राधिकाकृष्णयोः
स्मर प्रतिपदोल्लसद्रसमयं हि वृन्दावनम् ।।१६।।

श्रीवृन्दावन में क्षण क्षण में शरद् आ जाती है, और क्षण में फिर वर्षा आ जाती है, क्षण में बसन्त शोभा देता है तो क्षण पीछे किसी अन्य ऋतु का आगमन होता है। इस प्रकार सर्वदा श्रीराधाकृष्ण के किसी न किसी (अनिर्वचनीय)

कौतुक को सम्पादन करने वाले एवं पद-पद पर आनन्द विधान करने वाले श्रीवृन्दावन को ही स्मरण कर।।१६।।

विलसत्कदम्बमूला-लम्बी सम्वीतपीतचारुपटः ।
राधां विलोक्य मुरलीं क्वणयन् वृन्दावने हरिर्जयति ।।१७।।

कदम्बवृक्ष के मूल का अवलम्बन लिए हुए, पीताम्बर धारी, श्रीराधा का दर्शन करते-करते मुरली बजाने वाले, श्रीहरि श्रीवृन्दावन में जययुक्त हो रहे हैं।।१७।।

कालिन्दीपुलिनवने मोहन-नवकुञ्जमन्दिर-द्वारि ।
सह राधयोपविष्टं सरससखीजुष्टमाश्रये कृष्णम् ।।१८।।

श्रीयमुना के पुलिन-वन में मोहन-नवकुञ्ज-मन्दिर के द्वार पर श्रीराधा के साथ बैठे हुए एवं रसवती सखियों से सेवित श्रीकृष्ण का मैं आश्रय लेता हूँ।।१८।।

तदनंगकेलिरंगान्नर्म विनिर्माय मण्डित प्रतिभम् ।
गौरश्याम-सुनागरकिशोर-मिथुनं भजामः कुञ्जेषु ।।१६।।

कुञ्ज कुञ्ज में कामकेलिरंग के वश परिहास्य वाक्यरचना में प्रत्युत्पन्नमति (चतुर) गौरश्यामवर्ण चतुरशिरोमणि श्रीयुगल-किशोर का मैं भजन करता हूँ।।१६।।

मिथोऽनंगक्रीड़ा-रसजलनिधेरूर्मि-निबहैः
प्रियद्वन्द्वेत्यान्दोलित-वपुषि तीव्रस्मरमदे ।
न शक्ताः श्रीवृन्दावनभुवि सुवेशादिकरणे
बलादप्यानन्दं किमपि रसयन्त्यः प्रजहसुः ।।२०।।

श्रीवृन्दावन में परस्पर कामक्रीड़ा के रस समुद्र की तरंगों से जिनके विग्रह झूम रहे हैं एवं जो तीव्र कामोन्मत्त हो रहे हैं, ऐसे प्रियतम युगलकिशोर को सखीगण ने बलपूर्वक भी वेषभूषा कराने में असमर्थ होकर कोई एक (अनिर्वचनीय) आनन्द आस्वादन करते हुए परिहास किया।।२०।।

श्रीवृन्दावनवैभवं भव-विरिञ्चाद्यैर्मनागप्यहो
दुर्ज्ञेयं परमोज्ज्वलन्मदरसोदारश्रियामाकरम् ।
श्रीराधा-मुरलीमनोहर-महाश्चर्यातिसम्मोहनं
श्रीमूर्त्तिच्छविकेलिकौतुकभरैश्चाश्चर्यमन्तः स्मर ।।२१।।

अहो ! श्रीवृन्दावन के वैभव को शिव, ब्रह्मादि भी नहीं जान सकते, यह परम उज्ज्वल उन्मादकारी श्रेष्ठ रस की महासम्पत्ति की खान है, यह श्रीराधा–मुरलीमनोहर को भी महा–आश्चर्यभाव से सम्मोहन करने वाला है एवं श्रीमूर्त्ति के कान्ति–केलि–कौतुक आदि के आधिक्य में भी आश्चर्यजनक है–इसका (श्रीवृन्दावन का) मन में स्मरण कर।।२१।।

वृन्दाकानन ! काननस्य परमा शोभा परातः परा–
नन्द ! त्वद्‌गुणवृन्दमेव मधुरं येनानिशं गीयते ।
हा वृन्दावन ! कोटिजीवनमपि त्वत्तोऽतितुच्छं यदि
ज्ञातं तर्हि किमस्ति यत्तृणकवच्छक्येत नोपेक्षितुम् ।।२२।।

हे श्रीवृन्दावन ! आपकी वनशोभा सर्वोत्कृष्ट है, हे परानन्द ! आपके मधुर गुणों को जो निशिदिन गान करता है, एवं हे वृन्दावन ! जो कोटि जीवन भी आपके लिए अतितुच्छ जानता है, फिर उसके लिए संसार में ऐसी क्या वस्तु है, जिसकी तृण के समान उपेक्षा वह नहीं कर सकता ?।।२२।

(नोट–यह श्लोक दो बार कहा गया है–द्वितीय शतक का २८ श्लोक देखिए।)

श्रीवृन्दावनमण्डले यदि शिरः श्रीराधिका–कृष्णयोः
सत्प्रेमैकरसात्मनोः पदतले न्यस्याभये स्थीयते ।
तर्ह्यास्ते मम लोकतो न हि भयं नो धर्मतो नो दुर–
न्ताधिव्याधिशतात् किमन्यदखिलाधीशाच्च मे नो भयम् ।।२३।।

श्रीवृन्दावन मण्डल में एकमात्र सत्प्रेम के रसस्वरूप श्रीराधाकृष्ण के अभय पदतलों में मस्तक अर्पण कर यदि अवस्थान कर सकूँ–तो लोकभय, धर्मभय किंवा सौ–सौ भयानक आधि–व्याधियों से और तो क्या अखिल (ब्रह्माण्ड) के अधिपति से भी मुझे कोई भय नहीं है।।२३।।

श्रीराधा–मुरलीधरातिमधुर–श्रीपाणिपादाम्बुज
स्पर्शोज्जृम्भित–पूर्णहर्षजलधावत्यन्तमग्नान्तराः ।
सौभाग्यं रमयापि मृग्यमतुलं सम्प्राप्तवत्यो महा–
भागानां शिरसि स्थिता व्रततयो नन्दन्ति वृन्दावने ।।२४।।

श्रीराधामुरलीधर के अति मधुर श्रीहस्त एवं चरणकमलों के स्पर्श से जो प्रफुल्लित हो रही हैं, तथा जिनका चित्त पूर्ण हर्ष के समुद्र में निमग्न है, स्वयं

सुश्रोणीश्चारुमध्या रुचिरकुचतटीः कञ्चुकोद्भासिहारा
लोलद्वेण्यग्रगुच्छाः स्मर कनकरुचीर्दासिका राधिकायाः ।।४०।।

जो मेखला, नूपुर, बाजूबन्द, कंकण एवं अनेक रत्न जटित अँगूठी आदि भूषणों से सुशोभित हैं, जिनके सुन्दर नासाग्र भाग में मणि एवं सुवर्णयुक्त मुक्ता डोलायमान हैं, परिधान में विचित्र साड़ी है, कटिदेश अति सुन्दर एवं जिनकी कञ्चुकी पर चमकते हुए हारों की छटा है, वेणियों के गुच्छे आन्दोलित हो रहे हैं—ऐसी स्वर्णवर्ण विशिष्ट श्रीराधिका की दासियों को स्मरण कर।।४०।।

त्रिभंगीमुत्तुंगीकृत—रसतरंगैर्नवनवो—
न्मदानंगे नीलोज्ज्वलघननिभांगे दधदहो ।
लसद्वर्होत्तंसी मणिमयवतंसी ब्रजकुला—
बला—नीविस्रंसी स्फुरतु मम वंशीमुख—हरिः ।।४१।।

अहो ! उच्च उच्चरस—तरंगमय नित्यनवीन उन्माद करने वाली काम—क्रीड़ा में चञ्चल, उज्ज्वल मेघ के सदृश अंगों से जो त्रिभंग हो रहे हैं, मोरपुच्छ एवं मणिमय कुण्डलधारी ब्रज की अबलाओं का नीवि—बन्धन शिथिल करने वाले मुख पर वंशीधारी श्रीहरि हृदय में स्फुरित हों।।४१।।

राधाकृष्णानंगतृष्णा—महाब्धिं निर्मर्यादं वर्द्धयन्नित्यमेव ।
सान्द्रानन्दापार—सर्वोद्र्ध्वपार—श्रीमद्वृन्दाकाननं प्रीणनं नः ।।४२।।

जो श्रीराधाकृष्ण की कामतृष्णा के महासमुद्र की निरन्तर ही असीम वृद्धि करता है एवं जो आनन्दघनराशि के अपार सर्वोत्तम सौन्दर्य तथा सौभाग्य से युक्त है—वही श्रीवृन्दावन ही हमारा प्रीतिस्थल है।।४२।।

केकाभिर्मुखरीकृताखिलदिशो नृत्यन्त्यहो केकिन—
श्चूतानां विटपे कुहूरिति मुहुः कूजन्त्यहो कोकिलाः ।
गायन्ति प्रतिपुष्पवल्लिमधुरं भृंगांगनाः सर्वतः
प्रोन्मीलन्ति विचित्रदिव्यकुसुमामोदाश्च वृन्दावने ।।४३।।

अहो ! श्रीवृन्दावन में मोर अपनी केका—ध्वनि से दशों दिशाओं को मुखरित कर नृत्य करते हैं, कोकिलाएँ आम्रवृक्षों पर बार—बार कुहु कुहु शब्द कर रही हैं, भँवरे इधर—उधर प्रति पुष्पलता पर मधुर गान कर रहे हैं, विचित्र दिव्य फूलों की सुगन्ध चारों दिशाओं को सुवासित कर रही है।।४३।।

मुक्तिर्याति यतो वहिर्वहिरहो सम्मार्जनीघातत–
स्त्रस्तास्ता वरसिद्धयो विदधते काक्वादि यत् सेवितुम् ।
यन्नाम्नैव विदूरगापि विलयं मायापि यायादहो
तद्वृन्दावनमत्यचिन्त्यमहिमा देहान्तमाश्रीयताम् ।।४४।।

जहाँ से मुक्ति सन्मार्जनी (बुहारी) की चोट खाकर दूर से अति दूर जा पड़ती है, जिसकी सेवा करने के लिए श्रेष्ठ अष्टसिद्धियाँ विनय–प्रार्थना करने में भी भयभीत होती हैं, अहो ! जिसका नाम सुनते ही माया दूर जा पड़ती है एवं नाश हो जाती है, उस अति अचिन्त्य महिमायुक्त श्रीवृन्दावन का देहपात–पर्यन्त आश्रय कर।।४४।।

अहो वृन्दारण्यं प्रतिपदविनिस्यन्दि–परमो–
न्मदप्रेमानन्दामृतजलधि लोभाकुलयति ।
रमेश–ब्रह्मादीनथ भगवतः पार्षदवरा–
नतो धीरा नीराञ्जलिमपि निपीयात्र वसत ।।४५।।

अहो ! श्रीवृन्दावन पद–पद में ही परम उन्माद उत्पन्न करने वाले प्रेमानन्द–समुद्र को प्रवाहित कर रहा है, लक्ष्मी, शिव, ब्रह्मादि को एवं श्रीभगवान् के श्रेष्ठ पार्षदों को भी लालायित कर आकुल किए रखता है, अतएव हे धीर पुरुषो ! अञ्जलि भर पानी पीकर भी श्रीवृन्दावन में वास करो।।४५।।

त्वयाकण्ठं पीतं यदि परमपीयूषमपि किं
ततो यद्युर्वश्याः स्तनयुगलमाश्लेषि किमतः ।
यदि ब्रह्मानन्दामृतमपि समास्वादि किमतो
यतस्थुत्कृत्येदं व्यसृजदपि वृन्दावनतृणम् ।।४६।।

यदि तुमने पेट भरकर अमृत भी पान कर लिया, तो उससे क्या ? यदि उर्वशी के स्तनयुगल का तुमने आलिंगन कर लिया, तो क्या ? और यदि ब्रह्मानन्द–अमृत का भी भली प्रकार आस्वादन तुम्हें मिले, तो भी उससे क्या फल ? क्योंकि श्रीवृन्दावन के तो तृण ने भी इन समस्त वस्तुओं को थुत्कार कर त्याग दिया है।।४६।।

न तापः साधूनामकृतिषु तथा साधुकृतिषु
प्रकम्पः कालाहेरपि न हि न वा देहदलने ।

प्रहर्षो न ब्रह्माद्यधिकविभवे नापि परमा–
मृत–ब्रह्मानन्दे समधिगत–वृन्दावनभुवः ।।४७।।

जिन्होंने श्रीवृन्दावन भूमि को भली प्रकार प्राप्त कर लिया है, उनको सत्कर्मों के करने या न करने में कुछ भी दुःख नहीं, एवं काले सर्प से शरीर के नाश होने में भी उन्हें कुछ भय नहीं है, ब्रह्मादि से अधिक सम्पत्ति के प्राप्त होने में और परमामृत ब्रह्मानन्द की प्राप्ति में भी उनको कुछ आनन्द नहीं मिलता।।४७।।

अलमलमतिघोरानर्थकारीन्द्रियाणा मतिशयपरितोषैर्दुष्करैर्दुस्तरैश्च।
विदधदिव सशोको येन केनापि देह–स्थितिमधिवस वृन्दारण्यमेकान्तरत्या।।४८।।

अति घोर अनर्थ करने वाली इन्द्रियों को दुष्कर तथा दुस्तर उपायों से सन्तुष्ट करने का अब कोई प्रयोजन नहीं। देहयात्रा निर्वाह करने के लिए जिस किसी उपाय का अवलम्बन करके शोकातुर होते हुए एकान्त भाव से इस श्रीवृन्दावन में निवास कर।।४८।।

लुठन् रासस्थल्यां निरवधि पठन् कृष्णचरितं
रटन् हा कृष्णेति प्रतिपदमटंश्चापि परितः ।
त्रुटन्नानाग्रन्थिः स्फुटदमलभावोऽश्रुनिबहै–
र्नटन् गायन् वृन्दावनमतिमहान् पंकिलयति ।।४९।।

जो (व्यक्ति) निरन्तर रासस्थली में लुण्ठन करता है, श्रीकृष्ण के चरित्रों का पाठ करता है, "हा कृष्ण" रटता है एवं (श्रीवृन्दावन के) सर्वस्थानों पर भ्रमण करता है, उसके हृदय की नाना ग्रन्थियाँ (अविद्या, काम, कर्मादि) नाश होकर विशुद्ध भाव की स्फूर्त्ति होती है एवं वही अति भाग्यवान् महापुरुष नृत्य तथा संकीर्त्तन करते–करते अश्रु–धारा से श्रीवृन्दावन को पंकयुक्त (कीचयुक्त) कर देता है।।४९।।

उद्दामः काम एवेतररसलवक–स्पर्शमात्रासहिष्णु
नित्यं वर्धिष्णुरत्युच्छलित–रसमहाम्भोधि नित्यं च यत्र ।
यत् किञ्चिज्जंगमं स्थास्नु च परममहाश्चर्यनाना–समृद्ध्या
शश्वद्वृद्ध्या स्वयं चानिशमुदितमिदं भातु वृन्दावनं मे ।।५०।।

जो (स्थान) उत्कट काम स्वरूप है, अन्य रसों के थोड़े स्पर्श मात्र को भी जो सहन नहीं करता, जिस स्थान पर नित्य वर्द्धनशील रति के द्वारा उच्छलित रसमहासमुद्र नित्य प्रवाहित होता है, जहाँ स्थावर जंगम समस्त वस्तुएँ परम महाश्चर्यमय अनेक समृद्धि और निरन्तर वृद्धि के साथ रात–दिन प्रकाशित होती हैं—वही यह श्रीवृन्दावन मेरे हृदय में प्रकाशित हो।।५०।।

तथा परमपावनं भुवि चकास्ति वृन्दावनं
यथा हरिरसे मनः स्वयमनङ्कुशे धावति ।
परन्तु यदि तद्गतस्थिरचरेषु नो कायवाङ्
मनोभिरपराधिता भवति बाधिता तत्त्वधीः ।।५१।।

जैसे स्वतन्त्र हरिरस में स्वयं ही धावित होता है, वैसे ही परम पावन श्रीवृन्दावन पृथ्वीमण्डल में प्रकाशित होता है—परन्तु यदि श्रीवृन्दावन के स्थावर जंगमात्मक वस्तुओं के प्रति काय–मन–वाक्य से अपराधी होकर तत्त्व (विचार) बुद्धि बाधित न हो। (अर्थात् अपराधी होने में तत्त्व बुद्धि नाश हो जाती है जिससे श्रीवृन्दावन के प्रकाश का अनुभव नहीं होता)।।५१।।

मग्नं श्रीराधिका–श्रीमुरलिधर–महाप्रेमसिन्धौ निमग्नं
तद्गौरश्यामगात्रच्छबिमयजलधौ प्रोज्झितावारपारे ।
शोभामाधुर्यपूर्णार्णव–बुड़ितमहो मत्तमेतन्ममान्तः
श्रीवृन्दारण्यमेव स्फुरतु न कलितं माययाऽविद्यया च ।।५२।।

अहो ! श्रीराधा एवं श्रीमुरलीधर के महाप्रेमसिन्धु में मग्न एवं उस गौरश्याम विग्रह के कान्तिमय आर–पार–विहीन समुद्र में जो निमग्न है, तथा उनकी शोभा और माधुर्य के सागर में डूबा हुआ मत्त यह श्रीवृन्दावन—जो माया एवं अविद्या का रचा नहीं, मेरे अन्तःकरण में स्फुरित हो।।५२।।

वृन्दावनमनुविन्दाम्यहमपि देहं श्वशूकरादीनाम् ।
न पुनः परत्र सच्चित् सुखमयमपि दुर्लभं देवैः ।।५३।।

श्रीवृन्दावन के कूकर शूकरादि का शरीर भी मैं धारण करूँगा, किन्तु और जगह देवताओं के लिए भी दुर्लभ सच्चिदानन्दमय शरीर को मैं नहीं चाहता।।५३।।

श्रीवृन्दावनमध्ये बहुदुःखेनापि यातु जन्मैतत् ।
लोकोत्तरसुखसम्पत्त्यापि न चान्यत्र मे निमिषः ।।५४।।

श्रीवृन्दावन में अत्यन्त दुखों में ही मेरा यह जन्म बीत जाए, तथापि अन्य स्थान पर अलौकिक सुखसम्पत्ति हेतु एक निमिषकाल के लिए भी प्रार्थना नहीं करूँगा।।५४।।

करतलकलितकपोलो गलदश्रुलोचनः कृष्ण कृष्णेति ।
विलपन् रहसि कदा स्यां वृन्दारण्येऽत्यकिञ्चनो धन्यः ।।५५।।

हथेली पर कपोल धर कर अश्रुपूर्ण नेत्रों से "कृष्ण" "कृष्ण" कहकर विलाप करते–करते कब श्रीवृन्दावन के निर्जन स्थान पर अति दीन–भाव से रहकर मैं कृतार्थ होऊँगा।।५५।।

मानापमानकोटिभिरक्षुभितात्मा समस्तनिरपेक्षः ।
वृन्दावनभुवि राधा–नागरमाराधये कदा मुदितः ।।५६।।

कोटि–कोटि मानापमान होने पर भी क्षुभित न होकर, किसी की भी अपेक्षा न करते हुए कब श्रीवृन्दावन में श्रीराधानागर की आनन्दपूर्वक मैं आराधना करूँगा।।५६।।

वृन्दावनैकशरणस्त्यक्तश्रुति–लोकवर्त्मसञ्चरणः ।
भावाद्धरिचरणान्तर–परिचरणाद्व्याकुलः कदा नु स्याम् ।।५७।।

अहो ! एकमात्र श्रीवृन्दावन की ही शरण ग्रहण करके वेदमार्ग एवं लौकिक समस्त आचरण त्याग कर, कब भावपूर्वक श्रीहरि के चरणों की मानसी सेवा करके मैं व्याकुल होऊँगा।।५७।।

इह न सुखं न सुखमरे क्वापि वृथा न पत मोहजालेऽस्मिन् ।
अनुदिनं परमानन्दवृन्दावनं हि समाश्रयाद्यैव ।।५८।।

इस संसार में सुख नहीं है, अरे ! कहीं भी सुख नहीं है। वृथा इस मोह जाल में मत फँस। आज ही नित्य परमानन्दमय श्रीवृन्दावन का सम्यक् प्रकार से आश्रय ग्रहण कर।।५८।।

स्त्री–पुत्र–देह–गेह–द्रविणादौ मैव विश्वसीर्मूढ़ ।
क्षणमपि नैव विचारय चारय वृन्दारण्यमुखं चरणौ ।।५९।।

हे मूर्ख ! स्त्री, पुत्र, देह, घर, सम्पत्ति आदि का विश्वास मत कर, एक क्षण भी विचार न करके श्रीवृन्दावन की ओर पाँव बढ़ा।।५९।।

राधाकृष्णविलासरञ्जित–लता–सद्मालिपद्माकर–
श्रीकालिन्दितटीपटीरविपिनाद्यद्रीन्द्रसत्कन्दरम् ।
जीवातुर्मम नित्यसौभगचमत्कारैकधाराकरं
नित्यानङ्कुशवर्द्धमान–परमाश्चर्यर्धि वृन्दावनम् ।।६०।।

श्रीराधाकृष्ण के विलास से रञ्जित लतागृहों एवं तड़ागों से, श्रीकालिन्दी के किनारों पर स्थित चन्दन–वनादिकों से, एवं श्रीगिरिराज की सुन्दर–सुन्दर गुफाओं से जो सुशोभित है, जो एकमात्र सौभाग्य एवं चमत्कार की वर्षा करता है, तथा जो नित्य स्वतन्त्ररूप से वर्धनशील परम आश्चर्य की समृद्धि से पूर्ण है ऐसा श्रीवृन्दावन मेरी जीवन–औषध है।।६०।।

शरीरं श्रीवृन्दावनभुवि सदा स्थापय मनः,
सदा पार्श्वे वृन्दावनरसिकयोर्न्यस्य भजने ।
वचस्तत्केलीनामनवरतगाने रमय तत्–
कथा–पीयूषादौ श्रवणयुगलं प्रीतिविकलम् ।।६१।।

शरीर को सदा श्रीवृन्दावन भूमि में स्थिर रख, मन को श्रीवृन्दावन रसिकयुगल (श्रीराधाकृष्ण) के निकट भजन में लगा, उनकी लीला गान में निरन्तर वाणी का प्रयोग कर एवं प्रेम से व्याकुल कानों को उनके कथामृत से तृप्त कर।।६१।।

प्रसीद श्रीवृन्दावन ! वितनु मां स्वैकतृणकं
यदङ्घ्रिस्पर्शात्युत्सवमनुभवेत्त्वय्युदितयोः ।
तयोर्गौरश्यामाद्भुतरसिकयूनोर्नवनव
स्मरोत्कण्ठाभाजोर्निभृतवनवीथ्यां विहरतोः ।।६२।।

हे वृन्दावन ! अपना एकमात्र क्षुद्र तृण कृपाकर मुझे दान करो, जो तुम्हारे बीच विराजमान नव–नव कामोत्कण्ठायुक्त निर्जन वनपथ में विहार करने वाले उन गौरश्यामवर्ण अद्भुत रसिकयुगल के चरणकमलों के स्पर्श का सुख अनुभव करता रहता है।।६२।।

न कालिन्दीमिन्दीवरकमलकह्लारकुमुदा–
दिभिर्नित्योत्फुल्लैर्मधुपकुलझंकारमधुरैः

सहालिश्रीराधा–मुरलिधर–केलिप्रणयिनी–
मपश्यन् यो वृन्दावनपरिसरे जीवति स किम् ? ।।६३।।

नीलोत्पल, कमल, कह्लार और कुमुदनी आदि पुष्पों से प्रफुल्लित, भँवरों की गुञ्जार से मधुर एवं जिसमें सखियों के सहित श्रीराधा–मुरलीधर केलि करते हैं–ऐसी श्रीयमुना जी के, श्रीवृन्दावन में जो व्यक्ति बिना दर्शन किए जीवित रहता है–उसे क्या लाभ ? अर्थात् उसका जन्म वृथा है।।६३।।

वृन्दारण्यमिलत्कलिन्दतनयां वन्देऽरविन्देन तां
नानारत्नमयेन नित्यरुचिरामानन्दसिन्धु–स्नुताम् ।
रम्यां चान्यविचित्रदिव्यकुसुमैर्गम्यां न सम्यक् त्रयी–
मौलीनामपि मत्तषट्पद–खगश्रेणी–सुकोलाहलाम् ।।६४।।

श्रीवृन्दावन से संयुक्त उस श्रीयमुनाजी को मैं नमस्कार करता हूँ, जो अनेक प्रकार के रत्नमय कमलों से नित्य मनोहर हो रही है, एवं आनन्द–समुद्र की कन्या है, अन्यान्य विचित्र दिव्य कुसुमों से सुशोभिता है, ऋग्, साम, यजु–वेदत्रय–शिरोमणि भी जिसकी सम्यक् महिमा को नहीं जान सकते एवं मत्त मधुकरों तथा विविध पक्षियों के कोलाहल से मुखरित हो रही हैं।।६४।।

श्रीवृन्दावनवाहिनी तरणिजा स्वानन्दसन्दोह–वाः
पूरा रत्नघटामय–द्वयतटा सामोत्तरंगध्वनिः ।
आवर्तायितमृग्गणं विदधती हंसैश्च कारण्डवै
र्दात्यूहैरथ सारसादिभिरपि ध्येया हरेः प्रेयसी ।।६५।।

श्रीवृन्दावन में बहने वाली श्रीयमुना स्वानन्दराशिरूप जल के प्रवाह से युक्त है, इसके दोनों तीर रत्नमय हैं, उच्च–तरंगों की ध्वनि सामवेद का गानस्वरूप है, और यह जल के आवर्त्त (चक्र) में घिरे हुए पक्षियों की भी रक्षा करने वाली है, एवं हंस, कारण्डव (हंस विशेष) दात्यूह (पक्षी विशेष) सारस आदि पक्षी जहाँ विहार कर रहे हैं–ऐसी श्रीहरि की प्यारी श्रीयमुना ध्यान करने योग्य है।।६५।।

जलक्रीड़ा–काले कनककमलिन्येकविपिने
निलीना श्रीराधा यदधिकमलं चुम्बति हरौ ।

स्ववक्त्राब्जभ्रान्त्या हसितमथ नालं स्थगयितुं
हसित्वा कान्तेनाध्रियत हसिताली–परिकरा ।।६६।।

जलक्रीड़ा के समय श्रीराधा एक स्वर्णकमलों के वन में छिप गईं, जब श्रीहरि अपनी श्रीराधा के सुन्दर मुखकमल के भ्रम से प्रति कमल को चुम्बन करने लगे, तब श्रीराधा हँसी को न रोक सकीं, सखियाँ एवं सब परिकर जब हँस पड़े तब कान्त श्रीश्यामसुन्दर ने हँसते–हँसते प्रियतमा (श्रीराधा) को पकड़ लिया।।६६।।

विदूरं सिन्दूरं गतमपि विलेपाञ्जनमभूत्
स्रजोऽत्रुट्यन्मुक्तावलिरपि दृशोर्द्वन्द्वमरुणम् ।
बिहारैः कालिन्द्यम्भसि यदपि वृन्दावन–वने
तथाप्यासीद्राधा हरिवपुषि काऽप्येकसुषमा ।।६७।।

श्रीवृन्दावन में श्रीकालिन्दी के जल में विहार करते–करते श्रीराधा जी का सिन्दूर दूर हो जाने पर भी वह अञ्जन से विलिप्त सो रही हैं, माला के मुक्ता टूट जाने पर भी, दोनों के नेत्र लाल हो रहे हैं, तथापि (भूषणादि छिन्न–भिन्न हो जाने पर भी) श्रीहरि के वक्ष्यस्थल पर श्रीराधा किसी एक अनिर्वचनीय शोभायुक्त विराजमान हैं।।६७।।

सिञ्चनुच्चैः स्वयं श्रीब्रजनृपतिसुतो वल्लभा–स्वप्रियाली–
वृन्दैः सम्भूय तत्सेचनभरमसहं मन्यमानः स मग्नः ।
स्फीत–श्रोण्यूरु–जंघा–चरणयुग–परामर्शलब्धाति–हर्षः
कालिन्द्यामिन्दुकोटिच्छवि–बहुहसितो दूर उन्मज्ज्य रेजे ।।६८।।

श्रीब्रजराजनन्दन के स्वयं जोर से जल फेंकने पर वल्लभा (श्रीराधा) और उनकी प्रिय सखियों ने इकट्ठा मिल कर जल फेंका, उसे सहन न कर सकने पर श्यामसुन्दर ने जल में डुबकी लगा ली। पृथु नितम्ब, विशाल जंघा एवं चरणयुगल का स्पर्श प्राप्त कर अति प्रसन्न होकर यमुना जल पर कोटि चन्द्रों की कान्ति को निन्दित करने वाली मुस्कान को विस्तार करते हुए कुछ दूर जल से बाहर आकर (श्यामसुन्दर) शोभा पा रहे हैं।।६८।।

राधाकृष्णावतिरतिरसौत्क्येन मग्नौ सहैव
कालिन्द्याप्राकृत–निजजले देश आस्तीर्णपद्मे ।

दीर्घं कालं सुरतसमरावेशतस्तौ यदास्तां
चक्रुः प्राणद्वयविचयनं कातरास्तर्हि सख्यः ।।६६।।

अतिशय रति–रस की उत्कण्ठा में श्रीराधाकृष्ण ने कालिन्दी के अप्राकृत निज–जल में इकट्ठे निमग्न होकर एक कमलों से घिरे हुए स्थान पर सुरत समरावेश में बहुत समय जब व्यतीत कर दिया, सखीगण कातर होकर प्राणप्रियतम–युगलकिशोर को ढूँढ़ने लगीं।।६६।।

मिथः कमलकैरवाद्युदितहासमंगे क्षिपन्
मुखेन दृशि मुद्रणायुजि कृताम्बुगण्डूषकम् ।
समुक्ष्य जितकाशि तत् क्वचन मग्नमुत्थापयद्–
द्वयं तरणिजाम्भसि स्फुरति गौरनीलं महः ।।७०।।

(कभी) हँसते–हँसते कमल कैरवादि पुष्प एक दूसरे के अंगों पर मारते हैं, (कभी) निमीलित नेत्रों से एक (दूसरे पर) जल वर्षा कर जीत जाता है और किसी एक के जल में डुबकी लेने पर दूसरा उसे उठाता है–इस प्रकार गौरश्यामवर्ण दो ज्योतियाँ यमुना जल में प्रकाशित हो रही हैं–लीला विस्तार कर रही हैं।।७०।।

हैमाद्यम्बुजकोरकादिसलिलं पीयूषसारैक्षव–
द्राक्षाक्षीररसादिमत्तटयुगं नानामणीनिर्मितम् ।
खेलद्दिव्यसुरत्नमीननिकरास्फालेन चित्रायितं
नानारत्नविचित्रतीर्थविलसत्सोपानमत्यद्भुतम् ।।७१।।

जल में स्वर्ण रंग के पद्म एवं कलियाँ आदि शोभित हैं, अनेक प्रकार के मणि–रत्नों से बने हुए दोनों तट अमृतसार उन्मत्त करने वाले द्राक्षादि के क्षीर–रसादि से सने हुए हैं एवं क्रीड़ामय दिव्य सुन्दर मछलियों के उछलने से आश्चर्यजनक प्रतीत होते हैं, अनेक रत्नमय विचित्र घाट बने हुए हैं एवं उनमें अति अद्भुत सीढ़ियाँ शोभा दे रही हैं।।७१।।

नानाश्चर्यसुपुष्पित–द्रुमलता–कुञ्जैर्महामञ्जुलं
कर्पूरोज्ज्वलबालुकं च पुलिनं विस्तारसत्सौरभम् ।
तीरे तीर इतस्ततः सचकितोन्मीलन्मृगीयूथकं
दिव्यानेक–कदम्बचम्पकवनामोदः प्रसृप्तोऽभितः ।।७२।।

अनेक प्रकार के आश्चर्यजनक सुन्दर पुष्पों से लदे हुए वृक्ष–लताओं की कुञ्जों से श्रीयमुना मनोहर हो रही है, पुलिनों में कर्पूर की भाँति उज्ज्वल बालू शोभा दे रही है एवं (चारों दिशाओं में) सुन्दर सौरभ फैल रही है। तीर–तीर पर इधर–उधर चकित होकर हरिणीगण घूम रही हैं, चारों दिशाओं में दिव्य कदम्ब, चम्पक के वृक्षों की सुगन्धि छा रही है।।७२।।

अत्युच्चैः प्रसरत् परागपटलं प्रोड्डीयमानद्विजं
वातोन्मादमितस्ततोऽति–मधुरोदारान्तरीयोज्ज्वलम् ।
यस्या गाधमगाधमन्तरुदयत् कुञ्जाम्बु सा राधिका–
कृष्णानन्दविवर्धिनी बहुसुखं कृष्णा प्रपुष्णातु वः ।।७३।।

(जिस श्रीयमुना के किनारे पर) पुष्पधूलि बहुत ऊँची उड़ रही है जिससे पक्षी समूह उड़ने लगते हैं। वायु के द्वारा आगे–पीछे हिलोर लेने से अति मधुर उदार एवं उज्ज्वल वस्त्र के रूप में जो प्रतीत होती है एवं जिसके (कहीं) थोड़े और (कहीं) अगाध जल से (किनारे की) कुञ्जें प्रतिबिम्बित हो रहीं हैं–वही श्रीराधाकृष्ण के आनन्द को बढ़ाने वाली श्रीयमुना बहुत सुखपूर्वक तुम्हारा पालन करें रक्षा करें।।७३।।

कूजद्भिः कलहंस–सारसकुलैः कारण्डवैर्मण्डितं
सप्रीणन्नव–पुण्डरीकनिकरामोदेन दिङ्मण्डलम् ।
कह्लारोत्पल–पंकजादिक–वने भृंगीभिरंगीकृतं
गीतं मत्तमधुव्रतैः सह मनाक् कर्णे जगन्मोहनम् ।।७४।।

(श्रीवृन्दावन) शब्दायमान कलहंसों, सारसों एवं कारण्डवों से शोभित हो रहा है, दशों दिशाएँ नवीन–नवीन श्वेत कमलों के समूह की सौरभ से सुवासित हो रही हैं, कह्लार, उत्पल, पंकजादि के वन में भ्रमरीगण मत्त मधुकरों के साथ मिलकर मधुर एवं जगत् को मोहित करने वाला संगीत अलाप रही हैं।।७४।।

श्रीमद्वृन्दावनेऽस्मिन् कति कति नु सरः–सिन्धु–वापी–तड़ागा
राधाकृष्णांगरागाञ्चितमधुरजला दिव्यदिव्या न सन्ति ।
आश्चर्याः केलिसाराः कति कति न मणिस्वर्णभूभृत्किशोराः
प्रोज्जृम्भन्ते न भासः क्षितिषु कति महामोद–मेदस्विनीषु ।।७५।।

इस श्रीवृन्दावन में श्रीराधाकृष्ण के अंगराग से सने हुए मधुर जल से पूर्ण कितने–कितने दिव्य–दिव्य सरोवर, सिन्धु (नदी) वापी और पुष्करणियाँ नहीं हैं ? अर्थात् अनेक ही हैं। कितने–कितने आश्चर्यजनक विलास करने योग्य मणिमय एवं स्वर्णमय छोटे–छोटे पर्वत विराजमान नहीं हैं ? इस महानन्दरूप मेदस्विनी पृथ्वी पर कितनी–कितनी ज्योतियाँ इधर–उधर विकीर्ण नहीं हो रही हैं ? ।।७५।।

प्रेमान्धं पशु–पक्षि–भूरुहलता–कुञ्जाद्रिसत्कन्दरा–
वापी–कूप–तड़ाग–सिन्धु–सरसी–रत्नस्थलीवेदिभिः ।
कालिन्द्याः पुलिनेन तत्स्थ–सकलेनाशेषवृन्दावनं
राधामाधवरूपमोहितमहं ध्यायामि सच्चिद्घनम् ।।७६।।

पशु, पक्षी, वृक्षलता, कुञ्जादि, कन्दरा, वापी, कूप, तड़ाग, सिन्धु, सरोवर एवं रत्नस्थली–वेदी के सहित कालिन्दी, पुलिन एवं सब कुछ जो भी वहाँ विद्यमान है–श्रीराधामाधव के रूप में मोहित एवं प्रेम में बेसुध हो रहा है–सच्चिद्घन समस्त श्रीवृन्दावन का मैं ध्यान करता हूँ।।७६।।

अभ्यंगं वसनान्तराण्यभिषवं किञ्चच्च तीर्थक्रियां
संभुक्तिं वरगन्धमाल्य–विलसत्ताम्बूल–पर्णग्रहम् ।
संगीतानुभवं सहैव शयनं श्यामेन सम्वाहनं
श्रीसख्या पदयोः स्मर ब्रजवधूत्तंसस्य वृन्दावने ।।७७।।

तैलादि मर्दन, बिना वस्त्र स्नान, तीर्थ क्रियादि, भोजन, उत्तम सुगन्धि–माल्यादि तथा मधुर पान–वीठिकादि का ग्रहण संगीतानुभव एवं श्यामसुन्दर के साथ एकत्र शयन तथा ब्रज–वधू–शिरोमणि श्रीराधा के चरणों की श्रीसखियों के द्वारा सेवा आदि–श्रीवृन्दावन की इन लीलाओं का स्मरण कर।।७७।।

मोहिन्यामपि नास्ति मेऽद्भुतमतिः का पार्वती कोर्वशी
का वान्या वरवर्णिनी रतियुता यच्चेटिकांगच्छटाम् ।
एकामप्यनुपश्यतो हृदि महासम्मोहनश्यामल–
स्वान्तात्यन्तविमोहिनी स्फुरतु मे वृन्दावनाधीश्वरी ।।७८।।

जिसकी दासी की एक बार अंग छटा को देखकर पार्वती, उर्वशी तथा और किसी रतिमती सुन्दरी की तो बात ही दूर–स्वयं मोहिनी में भी मेरी बुद्धि आश्चर्य नहीं मानती, महा सम्मोहन श्रीश्यामसुन्दर के मन को भी मोहित करने वाली वह श्रीवृन्दावनाधीश्वरी (श्रीराधा) मेरे हृदय में स्फुरित हों।।७८।।

श्रीराधाचरणच्छटाम्बुधिघनं तद्भक्तिभावोदयद्–
रोमाञ्चं तत एव शिक्षितमभिव्यञ्जत् सुसंगीतकम् ।
चित्रं तत्–प्रिय–तत्प्रसादवसनालंकार–हारस्रजं
श्रीवृन्दाविपिने कदान्वनुभवाम्यात्मेष्टतत्त्वं वरम् ।।७६।।

श्रीराधाजी के चरण, जो कान्ति के समुद्रघन हैं उनकी भक्ति एवं भाव उदय होने से पुलकित शरीर होकर, उनसे सीखी हुई सुन्दर संगीत विद्या को प्रगट करता हुआ एवं उनके प्रियतम श्रीश्यामसुन्दर तथा उनके (श्रीराधा के) प्रसाद, वसन, अलंकार, हार और माला को (अथवा श्रीराधा के विचित्र प्रसादी वसन, अलंकार, हार और मालादि को) धारण करता हुआ मैं अपनी अभीष्ट वस्तु को कब इस श्रीवृन्दावन में अनुभव करूँगा ?।।७६।।

स्निग्धस्वर्णसुगौरसुन्दरवपुर्लावण्यवन्याकृता–
द्वैतं नूतनयौवनप्रतिपदाश्चर्यांगभंगीशतम् ।
श्यामेन्दुप्रथमानुराग–वहलोर्मीभिर्महान्दोलितं
श्रीवृन्दावनकुञ्जवीथिषु कदा दिव्यं तदीक्षे महः ।।८०।।

स्निग्ध–स्वर्ण–सुगौरकान्तियुक्त सुन्दर देहधारी, लावण्य–वन्या के साथ अद्वय–भाव को प्राप्त, (मूर्त्तिमती लावण्यवन्या) नूतन यौवन के प्रतिपद में ही आश्चर्यमय शत–शत अंग भंगी प्रकाश करने वाली, श्यामचन्द्र के नवीन अनुराग के आधिक्य रूप तरंगों से जिनका चित्त महा आन्दोलित हो रहा है, उस दिव्य ज्योति (श्रीराधा) के श्रीवृन्दावन के पथ–पथ में मैं कब दर्शन करूँगा ?।।८०।।

एकं वीक्ष्य जिहेति यस्य कवरीमन्यन्मुखं मोहनं
किञ्चिद् वक्षसिजौ दृशौ किमपि यद्दन्ताधरं किञ्चन ।
किञ्चिद् यद्द्युतिमञ्जरीरिति महाश्चर्यं निकुञ्जोदरे
श्यामोरःस्थलभूषणं स्फुरतु मे तद्धेमगौरं महः ।।८१।।

किसी एक (श्रीश्यामसुन्दर) के केशों को देखकर कोई दूसरा (श्रीराधा) लज्जित होता है, और कोई किसी के मनोहर मुख को देखकर लज्जित होता है—इसी भाव में एक के स्तनयुगल, दूसरे के नेत्रयुगल एक के दसन व अधर एवं दूसरे की कांति—मञ्जरी (को देखकर एक दूसरे को लज्जा होती है) इस प्रकार निकुञ्ज में श्रीश्यामसुन्दर के अंक में भूषणस्वरूपा महा—आश्चर्यमय हेमगौरी (श्रीराधा) मेरे चित्त में स्फुरित हों।।८१।।

व्यञ्जत् कैशोरमंगं कनकरुचिनवानंगभंगीतरंगं
नित्याश्चर्यैकशोभा—प्रसरमतिमहाप्रेमवैवश्यमुग्धम् ।
दिव्यस्रग्वस्त्रभूषाद्यहह सुभगयत् स्वीयलक्ष्म्या दधत्त—
च्चित्रीभूतालिवृन्दं मिलतु निजधनं धाम वृन्दावनान्तः ।।८२।।

जिसके अंग नवकिशोर हैं, जिसकी स्वर्णवत् कांति है, जो नवीन काम की भंगी की चञ्चलता युक्त है, जिसकी नित्य ही आश्चर्यमय शोभावृद्धि है एवं जो अति महान प्रेम—वैवश्य से मन को हरण करती है—अहो ! जिसने अपनी शोभा से दिव्य माला, वस्त्र, भूषणादिकों को अशेष सौभाग्य मण्डित किया है एवं सखियों को भी जिसने चित्रवत् कर दिया है, वह मेरा सर्वस्व—धन श्रीराधा जो श्रीवृन्दावन धाम में मुझे दर्शन दें—यही प्रार्थना है।।८२।।

नवरसिककिशोरे नूतनप्रेमपूरे नवरसमयवृन्दारण्यवीथिविहारे ।
नवनवपुरुशोभामाधुरीणां धुरीणे कनकमरकताभे ज्योतिषी मे हृदि स्ताम्।।८३।।

नवीन प्रेम प्रवाह करने वाले नवीन रसमय श्रीवृन्दावन के पथ में विहार करने वाले, नित्य नवीन महा आश्चर्यमय शोभा—माधुर्यराशि के धारण करने वाले, स्वर्ण एवं मरकत—मणिवत् प्रभा वाले—ज्योतिर्मय नवरसिक श्रीयुगलकिशोर मेरे हृदय में बसे रहें।।८३।।

बहुविरचितवेशस्योरुदेशे निवेश्य
स्फुटपुलकमजस्रं चुम्बतः श्लिष्यतश्च ।
ननु कथमपि तल्पे न्यस्यतोऽगं प्रियायाः
परिचर चरणाब्जं राधिका—नागरस्य ।।८४।।

बहुविधि वेशधारी श्रीराधानागर प्रिया को किसी तरह शय्या पर सुलाकर उरुदेश में स्थापन करके रोमाञ्चित होकर (प्रियाको) निरन्तर चुम्बन और

आलिंगन कर रहे हैं—उनके चरण कमलों की सेवा कर।।८४।।

व्रततिभवनमध्ये गन्ध–ताम्बूल–माल्यै–
रतिमृदुलविलेपैः साधु संबीजनेन।
तदतिमदनमुग्धं धामयुग्मं किशोरं
परिचर हृदि गौरश्यामलं दास्यलास्यः।।८५।।

लतागृह में विराजमान अत्यन्त काममुग्ध गौरश्याम युगलकिशोर की—गन्ध–ताम्बूल–माला आदि अर्पण के द्वारा अति मृदुल विलेपनादि एवं उत्तम बीजना के द्वारा दास्यरस में आविष्ट होकर सेवा कर।।८५।।

कैशोराद्भुतरूपभंगिमधुरैरंगैरनंगात्मकं
कुर्वद् विश्वमतिप्रमुग्धमुरलीवक्त्रेण नित्याद्भुतम् ।
सिञ्चत् कोमलकाञ्चनद्रवरुचां वीचीभिराशा दश
प्रेमोत्कण्ठ्यभरेण तद्भज मनः श्रीधाम वृन्दावनम् ।।८६।।

हे मन ! जो (श्रीवृन्दावनधाम) किशोर अवस्थायुक्त अद्भुत रूप भंगी व माधुर्ययुक्त अति मनोहर मुरलीवदन (श्रीश्यामसुन्दर) के द्वारा विश्व को नित्य ही अद्भुत कामात्मक कर रहा है एवं जो धाम (श्रीराधा की) कोमल तप्त–स्वर्ण कान्ति की तरंगों से दशों दिशाओं को सिञ्चन कर रहा है—प्रेम–उत्कण्ठापूर्वक उसी श्रीधामवृन्दावन का ही भजन कर।।८६।।

अयं वृहदधीश्वरो न गणितावतारोऽप्यसौ
श्रितो यदुपुरीमयं मधुपुरीञ्च दिव्याकृतिः ।
ब्रजे च मधुपुरी–वनवरे न गो–गोपिका–
सुहृद्भिरहरन्मनो मम तु राधिका–कुञ्जगः ।।८७।।

यह (श्रीवृन्दावनचन्द्र) अगणित अवतारों के अवतारी महाधीश्वर ही हों अथवा दिव्य मूर्त्ति धारण कर द्वारका और मथुरा में रहें—(मेरा मन उनमें हरण नहीं होता) और मथुरापुरी के श्रेष्ठ वन—ब्रज में भी जब गौओं, गोपिकाओं एवं सखाओं से घिरे रहते हैं, (तब भी मुझे इतना आनन्द नहीं मिलता) किन्तु ये जब श्रीराधा की कुञ्जों में जाते हैं—तब ही मेरा मन हरण हो जाता है।।८७।।

कामात्मज्योतिरेकं सुविमलविमलं प्रोज्ज्वलप्रोज्ज्वलं य–
न्माधुर्यापारसिन्धोरपि मधुरतरं मादकं मादकानाम् ।

पारावारातिशून्यं सकलसुखचमत्कारविस्मारकं त–
न्मध्ये वृन्दावनं तद्व्रततिगृहगतौ पश्य मुग्धौ किशोरौ ।।८८।।

श्रीवृन्दावन–एकमात्र कामात्मक–ज्योति का ही प्रकाशक है, सुविमल से भी सुविमल है, प्रोज्ज्वल से भी प्रोज्ज्वलतर है, माधुर्य के अपार समुद्र से भी मधुरतर है, मादकता को भी उन्मत्त करने वाला है, पारावार (सीमा) रहित है, समस्त सुखों की चमत्कारिता को भुला देने वाला है, इसके लतागृहों में विराजमान परम मनोहर श्रीयुगलकिशोर के दर्शनकर।।८८।।

मधुरमधुरपूर्णप्रेमपीयूषसिन्धो–
र्धनमिदमतिरम्यं भाति वृन्दावनाख्यम् ।
तदधिललितगौरश्यामधाम स्मरामः
स्मर–विवशकिशोरद्वन्द्वमानन्दकन्दम् ।।८९।।

मधुर से सुमधुर, पूर्णप्रेमामृत–समुद्र का घनीभूत स्वरूप अति रमणीय यह श्रीवृन्दावन धाम प्रकाशित हो रहा है। इसमें काम विवश, आनन्दकन्द सुललित गौरश्याम श्रीयुगलकिशोर के हम दर्शन करते हैं।।८९।।

आत्मेश्वरी–परमगूढ़तरेङ्गितज्ञं तत्तत्प्रियप्रणय–लौल्यभरस्वभावम् ।
स्वात्मैकपक्षरचनाचरणप्रवीणं वृन्दावने स्मर निजं स्मर–खेल तत्त्वम् ।।९०।।

श्रीवृन्दावन में प्राणेश्वरी के परमनिगूढ़तर इंगित को समझने वाले, प्रियप्रियतम के उस प्रणय की चञ्चलतामय स्वभावयुक्त अपने यूथ के (परिकर के) वचनानुकूल आचरण करने में चतुर, निज काम लीला–परायण तत्त्व (स्वरूप) को स्मरण कर।।९०।।

उत्फुल्लद्रुमवल्लिमञ्जुलतरं शिञ्जत्षड़ङ्घ्रिज्जवलन्
नानारत्नमयस्थलीततिलसच्छ्रीपुञ्जकुञ्जावलि ।
नृत्यन्मत्तमयूरवृन्दमभितः पक्षीन्द्र–कोलाहलं
राधाकृष्ण–विहारकौतुकमयं ध्यायामि वृन्दावनम्।।९१।।

प्रफुल्लित वृक्षलताओं की शोभा से जो मञ्जुलतर हो रहा है, जहाँ भ्रमर–समूह गुञ्जार कर रहे हैं, जाज्वल्यमान नाना रत्नमय स्थलों से जो भूषित है, अनेक सौन्दर्ययुक्त कुञ्जों से जो मण्डित है, जहाँ मत्त मयूरगण

इधर–उधर नृत्य एवं पक्षिराज कोलाहल कर रहे हैं तथा जो श्रीराधाकृष्ण के अशेष विहार–कौतुक से परिपूर्ण है—ऐसे श्रीवृन्दावन का मैं ध्यान करता हूँ।।६१।।

तत् कालिन्दीविपुलपुलिनं सा च वृन्दावनश्रीः
सा सुच्छाया निबिड़निबड़ा श्रीकदम्बद्रुमाणाम् ।
सा वैदग्धीमयनववयः श्रीसखीमण्डली ते
गौरश्यामे रसिकमहसी कस्य नो मोहनाय ? ।।६२।।

वह कालिन्दी के विशाल पुलिन, वह वृन्दावन की शोभा, वह सुन्दर कदम्ब वृक्षों की घनी घनी सुशीतल छाया, वह वैदग्धीमय यौवनयुक्त शोभामय सखी–मण्डली, एवं वह गौरश्याम रसिक युगलकिशोर किसका मन नहीं मोहित करते—सबका मन मोहित करते हैं।।६२।।

प्रत्यंगं दिव्यवासः प्रसरति मधुराश्चातिनिर्भान्ति भासः
प्रेम्णो नाना–विकाराः प्रतिपदमधिको माधुरीणां प्रवाहः ।
सौन्दर्याम्भोधिभूमा निरवधिरतिवर्धिष्णु–कन्दर्पलौल्यं
वृन्दारण्येशयोर्ये हृदि दधति पदं तान्नमो भूरिभागान् ।।६३।।

जिनके प्रति अंग से दिव्य सुगन्धि फैल रही है अति मधुर प्रभा–राशि का प्रकाश हो रहा है, प्रति पद में ही प्रेम के नाना विकार और माधुर्य का प्रवाह वर्द्धमान हो रहा है, सौन्दर्य समुद्र की पराकाष्ठा एवं निरन्तर रति को बढ़ाने वाला कन्दर्प–चाञ्चल्य प्रकट हो रहा है, जिन्होंने इन श्रीवृन्दावन के अधीशयुगल (श्रीराधाकृष्ण) के चरणकमलों को हृदय में धारण कर लिया है—उन भाग्यवान् पुरुषों को मैं नमस्कार करता हूँ।।६३।।

गौरश्याम–सुनागर–दिव्यकिशोरद्वयं सदा यत्र ।
नवनवकेलिविलासैर्विहरति वृन्दावनं तदेव भज ।।६४।।

जहाँ गौरश्याम चतुरशिरोमणि दिव्य युगलकिशोर सदा नवीन नवीन केलि–विलासादि से विहार कर रहे हैं—उसी श्रीवृन्दावन का ही भजन कर।।६४।।

वृन्दावनमिव वृन्दा–वनमतिमधुरं तदेव वन्देऽहम् ।
राधाकृष्णाविव तौ राधाकृष्णौ सदा रतौ यत्र ।।६५।।

जहां श्रीराधाकृष्णवत् ही (अतुलनीय) श्रीराधाकृष्ण सदा रमण करते हैं (अथवा आसक्तचित्त होकर विराजते हैं) उसी अति मधुर श्रीवृन्दावनवत् श्रीवृन्दावन की मैं वन्दना करता हूँ।।६५।।

ज्योतिः किञ्चन जाज्वलीति परमं मायागुणेभ्यः परं
सान्द्रानन्दमनन्तपारममलं विद्यारहस्यं महत् ।
आद्यप्रेमरसात्मिकाञ्च सुचमत्कारां महामाधुरी–
धारां विभ्रदुदेति धाम परमभ्राजिष्णु वृन्दावनम् ।।६६।।

मायिक तीन गुणों से पार कोई एक (अनिर्वचनीय) परम (ब्रह्म) ज्योति प्रकाशित है, वह (ब्रह्म) गाढ़ानन्दात्मक है, अपार है, अमल है, विद्यारहस्य से पूर्ण एवं महत् है। उसके ऊपर आद्यप्रेम रसात्मक (श्रृंगारसात्मक) सुचमत्कार–जनक महामाधुर्यराशियुक्त परम दीप्तिमय श्रीधाम वृन्दावन विराजमान हैं।।६६।।

तत्राश्चर्यफलप्रसूनभरितैराश्चर्यखेलत्खग–
व्रातानां परितो महाकलकलैः कर्णामृतौघोपमैः ।
माध्वीमत्त–मधुव्रतावलिकलध्वानैर्मनोहारिभि–
र्दिव्यानेकलतामहीरुहगणैः कृष्णप्रियैर्मण्डिते ।।६७।।•

आश्चर्यमय फल फूलों से पूर्ण चारों ओर आश्चर्यमय क्रीड़ा–परायण पक्षियों की कानों को अमृततुल्य महा कलकल ध्वनि से मुखरित, मकरन्दपान करने में उन्मत्त भँवरों की मनोहारी मृदुल मधुर ध्वनि संयुक्त, श्रीकृष्ण के प्रिय दिव्य दिव्य अनेक वृक्ष लताओं से भूषित–।।६७।।

श्रीकृष्णप्रिय–दिव्यगन्धतुलसीभेदैरनन्तैस्तथा
सन्तानैर्हरिचन्दनैरगणितैःकल्पद्रुमाणां वनैः ।
दिव्यानेक–सुपारिजात–विपिनैर्मन्दारवृन्दैरपि
भ्राजिष्णौ हरिवल्लभैश्च बहुशो नीपैः कदम्बैर्वृते ।।६८।।

अनन्त अनन्त श्रीकृष्णप्रिय दिव्य सुगन्धियुक्त नाना प्रकार के तुलसी वृक्षों से, अगणित सन्तान, हरिचन्दन तथा कल्पवृक्षों के वनों से, दिव्य दिव्य अनेक सुन्दर पारिजात कानन व मन्दार वृक्षों के द्वारा शोभित एवं श्रीहरिवल्लभ नीप–कदम्ब आदि वृक्षों से मण्डित–।।६८।।

तत्तत् काञ्चनहैर—मारकतसद्वैदूर्यवर्यस्थली—
रंगे मत्तशिखण्डिमण्डलमहानन्दस्फुरत्ताण्डवे।
नानाचित्रमृगीगणैः सचकितालोकेन चेतोहरैः
शोभां विभ्रति सर्वतः प्रसृमरानन्तच्छटा—सौरभे ।।६६।।

स्वर्ण, हीरा, इन्द्रकान्त खचित वैदूर्य मणियों से बने हुए सुन्दर रंगमञ्चों से, मत्त मयूरों के महा—आनन्दजनक ताण्डवनृत्य से, विचित्र हरिणीगण के मनोहारी सचकित दृष्टिपात से, सब दिशाओं को सुवासित करने वाले अनन्त सुगन्धित द्रव्यों से शोभित—।।६६।।

कह्लारोत्पल—पुण्डरीक—कुमुदाद्याश्चर्यपुष्पश्रिया
माद्यच्चित्रविहंगयूथरचितात्यानन्दकोलाहलैः ।
दिव्यानेकसरित्सरोभिरसकृच्छ्रीराधिका—कृष्णयो—
राश्चर्यैः कलकेलिभिः सुमधुरे तत् प्रेमसारात्मभिः ।।१००।।

कह्लार, उत्पल, पुण्डरीक कुमुदादि आश्चर्यमय फूलों से शोभित होने के कारण मत्त विचित्र पक्षियों के आनन्द कोलाहल से मुखरित, दिव्य दिव्य अनेक नदी सरोवरों से युक्त एवं श्रीराधाकृष्ण के प्रेमसारात्मक अति आश्चर्यजनक रसमय केलिविलासादि के द्वारा सुमधुर—।।१००।।

जाति—काननयूथिका—वन—नवप्रोत्फुल्लमल्लीवनै—
र्वासन्ती—नवकेतकीवन—नवश्रीमालतीकाननैः ।
जीवन्तीवनझिण्टिका—नव—लसच्छेफालिका कानने
रुन्मीलन्नवमालिका—नववनैः सुस्वर्णयूथीवनैः ।।१०१।।

जाती वन, यूथिकावन, नवीन प्रफुल्लित मल्लिका के वनों से, वासन्ती वन, नव केतकी वन एवं नव सुन्दरता पूर्ण मालती के वनों से, यावन्त्या वन, झिण्टी वन, नवशोभित शेफालिका वन, विकसित होने वाले नव मल्लिका के नवीन वनों से एवं सुन्दर स्वर्णयूथिका के वनों से शोभित—।।१०१।।

पुन्नागैः करवीरकैर्मरुवकैःसत्कर्णिकारैर्लसत्
कुब्जैः कुन्दवनैरशोक—वकुलै—र्भूचम्पकैश्चम्पकैः ।
अम्लानैः स्थलपंकजैर्दमनकैर्दिव्यैः शिरीषद्रुमैः
सर्वर्त्तु—प्रविकाशिभिर्नवनवामोदैर्मनोहारिणि ।।१०२।।

पुन्नाग, करवीर, मरुवक, सुन्दर कर्णिकार, मनोहर कुञ्ज, कुन्दवन, अशोक, वकुल, भूमिचम्पक, चम्पक, अम्लान, स्थलपद्म, दमनक, दिव्य दिव्य शिरीष वृक्ष, सब ऋतुओं में खिलने वाले नवीन नवीन सुगन्धियुक्त पुष्प वृक्षों के द्वारा मनोहारी।।१०२।।

कह्लारोत्पलपद्मकैरवमुखासंख्यप्रसूनैः स्फुटै–
हंसैः सारसचक्रवाकमिथुनैः कारण्डवाद्यैः खगैः ।
अत्यानन्दमदोरुखेलन–कलध्वानैर्महारम्यया
भृंगीयूथशतैर्भ्रमद्भिरभितो गुञ्जद्भिरामञ्जुले ।।१०३।।

कह्लार, उत्पल, पद्म, कैरव आदि असंख्य प्रफुल्लित पुष्पों की सुगन्धि से एवं हंस, सारस व चक्रवाक–दम्पति तथा कारण्डव आदि पक्षियों की अति आनन्द मदयुक्त अनेक क्रीड़ा जनित कलकल ध्वनि से महारमणीय, तथा इधर–उधर उड़ते हुए भंवरों के शतशत यूथों की गुञ्जार से भली प्रकार मञ्जुल–।।१०३।।

आश्चर्यैर्हरिराधिका–विहरिणैः कन्दर्पदर्पोद्धुरैः
शुद्धश्यामरसप्रवाहलहरी–विस्फूर्जदावर्तया ।
पीयूषाधिकमाधुरीभरधुरीणास्वाद्यशीताम्भसा
कालिन्द्या वररत्नबद्धतटया क्रोड़ीकृते दिव्यया ।।१०४।।

श्रीराधाकृष्ण के आश्चर्यजनक कामदर्पमय अनेक विहारों से युक्त, विशुद्ध शृंगाररस से प्रवाह, तरंग एवं आवर्त्त समूह युक्त, अमृत से भी अधिक माधुर्यमय अति उत्कृष्ट आस्वादन करने योग्य शीतल जल से पूर्ण एवं श्रेष्ठ–२ रत्नों से जड़ित तटों वाली दिव्य श्रीकालिन्दी के द्वारा अंक में लिये हुए।।१०४।।

आश्चर्यैर्मणिपर्वतैरतिमहाशोभाढ्य–सत्कन्दरै
श्चिज्ज्योत्स्नामृतनिर्झरैः कनकरत्नाम्भः सरिच्छोभितैः ।
प्रत्यग्राद्भुतवल्लिमण्डपवरैराश्चर्यरत्नद्रुमै–
र्नानारत्नमयस्फुरत्खग–मृगैरन्याद्भुतैः शोभिते ।।१०५।।

आश्चर्य युक्त मणिमय पर्वतों, अति महाशोभापूर्ण कन्दरों दिव्य ज्योत्स्ना के अमृतमय झरनों एवं स्वर्णरत्नमय जल की नदियों से शोभित, नवीन अद्भुत लतागृहों, आश्चर्यजनक रत्नमय वृक्षों, नाना रत्नमय पशुपक्षियों एवं इस प्रकार

की अन्यान्य अद्भुत वस्तुओं से शोभित– ।।१०५।।

उन्मीलत्तादुपत्यकोदित–रहोवल्लीगृहैर्भूषिते
भ्राजन्मोहनपुष्पवाटिक उरुश्रीमत्स्थलीचित्रिते ।
प्रोन्मीलद्रसपुञ्जरञ्जित–महाकुञ्जावलीमञ्जुले
श्रीश्यामेन सहालि–तद्दयितया क्लृप्ते च दिव्ये वने ।।१०६।।

प्रकाश्यमान पर्वत की तलहटियों में निर्जन लतागृहों से भूषित, दीप्तिशील मनोहर पुष्पवाटिकाओं एवं अनेक शोभामय स्थानों से विचित्रित, उज्ज्वलरसों से रञ्जित, महा कुञ्जावलि से मनोहारी, सखियों के सहित श्रीश्यामसुन्दर एवं उनकी प्रिया श्रीराधाजी से अंगीकृत उस दिव्यवन में (श्रीवृन्दावन में)– ।।१०६।।

नानादिव्यविचित्रवर्णतनुभिर्दिव्यांगरागस्रगा–
कल्पैर्दिव्यकिशोरमोहनवयःशोभाचमत्कारिभिः ।
दिव्यानेककलातिकौशलकृतानन्दैर्निजप्रेयसोः
प्रेमान्धैः परिमण्डितेऽतिललिते राधासखीमण्डलैः ।।१०७।।

नाना दिव्य विचित्रवर्ण देह, दिव्य अंगराग, माल्यवेशादि के द्वारा, दिव्य किशोर मोहनकारी वयस की शोभा–चमत्कारिता के द्वारा, दिव्य नाना प्रकार की विद्याओं के अति कुशलता जनित आनन्द के द्वारा निज प्रियतम दम्पत्ति के प्रेम में विमुग्ध श्रीराधा की सखी मण्डली से शोभित, (उस श्रीवृन्दावन में....और फिर) अति ललित– ।।१०७।।

चारुश्रोणिभरैर्वलीत्रयवलत्क्षामोदरैर्मोहना–
कारश्रीस्तनयुग्मकञ्चुक–लसन्मुक्तावलीमण्डितैः ।
ताटंकद्युतिदीप्तगण्डमुकुरैः श्रीनासिकाग्रस्फुरद्
रत्नस्वर्णनिबद्धमौक्तिकवरैः कान्त्या जगन्मोहनैः ।।१०८।।

उन सखियों का कटिदेश अति सुचारु है, त्रिवलीयुक्त क्षीण उदर है, मोहनाकार सुन्दर स्तनों पर काञ्चुलि के ऊपर मुक्तावली की शोभा है, कुण्डलों की चमक से उनके कपोल प्रकाशित हो रहे हैं, सुन्दर नासिका के अग्रभाग में स्वर्णरत्न जटित सुन्दर मुक्ता डोलायमान है, उनकी छटा जगत् को मोहन करने वाली है।।१०८।।

प्रेष्ठद्वन्द्वमहाप्रसाद–वसनाकल्प–स्रगाद्युज्ज्वलै–
स्तप्तस्वर्णसुगौरमोहनतनुज्योतिर्जगत्पूरकैः ।
राधाकृष्ण–पदारविन्द–परमप्रेमैकजीवातुभि–
स्तत्तद्दिव्यनिजाधिकारकलया प्राणद्वयप्रीणनैः ।।१०६।।

वे प्रियतम युगलकिशोर के महाप्रसाद, वस्त्र, वेश, माल्यादि धारण कर उज्ज्वल हो रही हैं, तप्त स्वर्णवत् सुगौर मोहन शरीर की कान्ति से जगत् को पूर्ण कर रही हैं, श्रीराधाकृष्ण–पदारविन्द में परम प्रेम ही उनकी एकमात्र जीवनमूरी है एवं वे अपनी अपनी अधिकृत कलाविद्या के द्वारा प्राणप्रियतम्–युगल को प्रीति विधान करती हैं।।१०६।।

श्रीप्रबोधानन्द सरस्वति–विरचित श्रीवृन्दावन–महिमामृतम् का
तृतीय शतक समाप्त हुआ।।३।।

चतुर्थ शतकम्

कूजन्नूपुरकाञ्चिदाम–ललितैः पादाङ्गुलीयैःस्फुर–
च्छ्रीपादांगदशोभितैर्वरमणीकेयूरचूड़ागणैः ।
श्रीमत्पीननितम्बदोलित–शिखा–सद्गुच्छवेणीलता–
मूलावेष्टित–फुल्लमल्लिविपुलस्रग् विभ्रमत्षट्पदैः।।१।।

बजते हुए नूपुरों एवं मेखलारज्जु के द्वारा उनकी (श्रीराधा–सखियों की) पादांगुलि अति मनोहर हो रही हैं, वे श्रेष्ठ मणिमय केयूर व चूड़ाओं के साथ अति सुन्दर नूपुरों की शोभा से विभूषित हो रही हैं, एवं उनके सुन्दर स्थूल नितम्ब देश पर केश–गुच्छबद्ध वेणी लतारूप से डोलायमान हैं, उसके नीचे प्रफुल्लित मल्लिका की विशाल माला है, उस पर मधुकर विचर रहे हैं।।१।।

विभ्राजद्वरकम्बुकण्ठपदकैः श्रीहस्तरक्ताम्बुज–
स्फुर्जद्रत्नमयाङ्गुलीय–रुचिभिः कैशोरनित्योदयैः ।
वैदग्धीपरपारगैरति–महासंगीतविद्यामयैः
श्रीराधानुचरीगणैः श्रुतिशिरो–दूरातिदूरेहितैः ।।२।।

श्रीराधा–दासीगण सुन्दर शंखवत् त्रिरेखायुक्त कण्ठ में हार धारण कर रही हैं, उनके श्रीहस्त लाल कमलवत् हैं, उनमें रत्नमय अंगुलियों की कान्ति विच्छुरित हो रही है, वे नित्य किशोर अवस्थायुक्त हैं, निपुणता की परमकाष्ठा को प्राप्त हैं एवं रतिविलासादि की महा संगीत विद्या जानने वाली हैं, (अथवा–महासंगीतविद्या में अति निपुण हैं) श्रुति–शिरोमणिगण उनकी चेष्टा को अणुमात्र भी नहीं जान सकते–।।२।।

सर्वाभीरकिशोरसुन्दरवधूदुष्प्राप–पादाम्बुज–
च्छायैः सर्व विदग्धतानिधि–लसद्दासीगणैः सेव्यया ।
तद्द्वन्द्वप्रणयोत्थ–सान्द्रपुलकश्रीमत्सखीमण्डलैः
कामावेश–सदामुदाकुलतया रात्रिन्दिवं लाल्यया ।।३।।

समस्त गोपकिशोरों की सुन्दर वधूएं जिनके चरणकमलों की छाया भी नहीं देख पातीं, ऐसी सर्वनिपुणता की निधि दासियों से (श्रीराधा) सेवित हो रही हैं। उन युगल–किशोर की प्रणयजात गाढ़ पुलकावलीरूप शोभाशालिनी सखियों के द्वारा वह (श्रीराधा) कामावेश से महानन्द में आकुल होने के कारण दिनरात सेवित हो रही हैं–।।३।।

स्वालीस्वप्रियकिंकरीगणलसत्तारावलीमध्यतः
स्फुर्जत्सौभगसान्द्रचन्द्रकलयेवात्यद्भुतज्योतिषा ।
एकैकांगतरंगिताद्भुत–महागौरच्छटैकाम्बुधे–
र्वीचिभिः स्वरसोत्सवात्मभिरहो संप्लाविताशेषया ।।४।।

(श्रीराधा) अपनी सखी एवं प्रियदासीगण स्वरूप तारागणों में मानों अति अद्भुत ज्योतिपूर्ण सौभाग्यघन पूर्णकला चन्द्ररूप से प्रकाशित हो रही है। अहो ! प्रति अंग से उच्छलित अद्भुत महा गौरकान्ति के ही एकमात्र समुद्र की निज रसोत्सवात्मक तरंगों से निखिल जगत् को सम्यक् रूप से प्लावित कर रही हैं।।४।।

कैशोरांकुरकोमलांगवलना–माधुर्यविस्मापक–
स्निग्धस्वर्ण–सुगौरसुन्दररुचिप्रेमोर्मिपूर्णाशया ।
सम्पूर्णातिविशुद्धमादकमहास्वाद्यैकरत्यात्मना
कुर्वन्त्या पशु–पक्षि–भूरुह–लतादीनां मुहुर्मोहनम् ।।५।।

वह किशोरावस्था के आरम्भकाल में ही कोमल अंगों की गठनादि के माधुर्य से विस्मयजनक स्निग्ध–स्वर्ण सुगौर–सुन्दर कान्तिमय प्रेम–तरंगों के द्वारा सब दिशाओं को पूर्ण कर रही हैं, सम्पूर्ण अति–विशुद्ध मत्तताकारी महा आस्वादन योग्य श्रृंगार स्वरूप के द्वारा पशु–पक्षी, वृक्षों–लतादिकों को भी बार–बार मोहित करती हैं।।५।।

श्रीगौर्यादि–समस्तदिव्यवनितारूपैकविप्रुन्महा–
रूपैकाम्बुधिकोटिकोटिसुचमत्काराकरांगश्रिया।
दिव्यानेकविचित्रमन्मथकला–चातुर्यसीमान्तया
श्यामप्रेमरसान्मुहुर्मुहु–रतिप्रोदञ्चि–रोमाञ्चया।।६।।

लक्ष्मी, गौरी आदि समस्त दिव्य नारीगणों का रूप जिनके महारूप सागर के एक बिन्दु के समान है वह उसी रूप–सागर के कोटि–कोटि गुणाधिक सुचमत्कारजनक अंगसौन्दर्य को धारण कर रही हैं। वह अनेक दिव्य दिव्य विचित्र कामकलाचातुरी की सीमा हैं, एवं श्यामसुन्दर के प्रेम–रस में बार बार रोमाञ्चित हो रही हैं।।६।।

काञ्ची–नूपुर–हार–कंकणमणीताटंकचूड़ावली
केयूरावलिमुद्रिका–प्रविलसन्नासाग्र–सन्मुक्तया ।
श्रीमत्पीननितम्बदोलित–महावेण्यग्र–सद्गुच्छया
सीमन्तोज्ज्वलरत्नया सुकुसुमश्रीवेणीमूलस्रजा ।।७।।

(श्रीराधा) काञ्ची, नूपुर, कंकण, मणिमय कुण्डल, चूड़ासमूह केयूर, अंगूठी आदि भूषणों से भूषित हो रही हैं, उनकी नासिका के आगे मुक्ता डोलायमान है एवं स्थूल नितम्ब देश पर गुच्छेदार विशाल वेणी लटक रही है, सीमन्तदेश में उज्ज्वल रत्न शोभा दे रहा है, वेणी के मूल देश पर सुगन्धित पुष्पों की माला है–।।७।।

सिन्दूरोज्ज्वलविन्दुसुन्दरदलस्वर्णेन्दुभालश्रिया
भ्रूभंगीभिरनंगकोटिमतिमर्यादां सृजन्त्या मुहुः ।
खेलल्लोचनखञ्जरीट–कलया स्तब्धीकृतप्रेयसो
लीलालोलकटाक्षकामविशिखैर्मूर्च्छां ददत्या मुहुः ।।८।।

भाल में उज्ज्वल सुन्दर सिन्दूर–विन्दु स्वर्णचन्द्र की शोभा प्रकाश कर रही है, वह बार बार भ्रूभंगी समूह से अनन्त कोटि कामदेवों की सृष्टि करती हैं, उन्होंने नृत्यपरायण लोचन खञ्जनों की कलाविद्या पर अधिकार पा लिया है एवं लीला से चञ्चल कटाक्ष–कामबाणों के द्वारा स्तब्ध प्रियतम को बार बार मोह प्रदान करती हैं– ।।८।।

सव्रीड़स्मितचन्द्रिकाङ्कुरचमत्कारैर्मनश्चोरय–
न्त्यालापैश्च सुशीतलामृतरसस्यन्दाधिकस्वादुभिः ।
द्योतद्दाड़िमपुष्परोचिरधरामर्याद–माधुर्यया
लावण्यामृतपूर्णचारुचिबुक–श्यामैकबिन्दुश्रिया ।।६।।

जो लज्जायुक्त मृदु मधुर मुसकानरूप ज्योत्स्ना प्रकाश की चमत्कारिता के द्वारा एवं सुशीतल अमृतरस–बिन्दुओं से भी अधिक स्वादिष्ट आलापादि के द्वारा मन को हरण करती हैं, प्रकाश्यमान दाड़िम के फूल की भाँति कान्तिमय अधरों के असीम माधुर्य से मण्डित हो रही हैं, एवं लावण्यामृतपूर्ण सुन्दर चिबुक पर एक श्याम–बिन्दु धारण कर परम शोभायमान हो रही हैं– ।।६।।

स्निग्धस्निग्ध–सुकोमलायत–महालावण्यवन्यामय
स्फूर्जत्स्वर्णविनिर्मितैकमुकुरोन्मीलत्कपोलत्विषा ।
विभ्रत्यातिसुपक्वदाड़िम–लसद् बीजावलीसुन्दर–
श्रीमन्मौक्तिकदन्तपंक्तिमतुलां ताम्बूल–कल्कांकिताम् ।।१०।।

अति स्निग्ध सुकोमल विशाल महालावण्य–वन्यामय गण्डस्थलों की शोभा स्वर्ण से जड़ित दर्पण में प्रतिबिम्बित होकर प्रकाशित हो रही है। जिनकी मुक्तावत् अनुपम सुन्दर दन्तपंक्ति ताम्बूल की लालीयुक्त होकर अति सुपक्व दाड़िम (अनार) के दानों की भाँति अति सुन्दर शोभा दे रही है– ।।१०।।

श्रीनासातिलपुष्पशोभितमणिस्वर्णाक्तसन्मौक्तया
कन्दर्पाद्भुत हेमतूणयुगलश्रीनासिकाशोभया ।
ताम्बूलैकरसाक्त–रेख–रसद–प्राणेशदन्तक्षता–
लक्ष्य–श्यामिक–मोहनाधरजवापुष्पातिशोणत्विषा ।।११।।

जिनकी तिल के पुष्पवत् सुन्दर नासिका में मणि तथा स्वर्ण खचित सुन्दर मुक्ता शोभित हैं एवं कामदेव के अद्भुत दो स्वर्णभाथों (तरकसों) की

भाँति नासिका की सुन्दर शोभा है, मोहन–अधर एकमात्र ताम्बूल के रस की रेखाओं से रञ्जित हैं एवं इसलिये रसमय प्राणेश्वर के दन्तक्षत से हुआ श्याम–चिह्न भी नहीं दीखता, इन मोहन अधरों से वे जवापुष्प से भी अधिकतर लालवर्ण धारण कर शोभित हैं– ।।११।।

नानारत्नविराजमानपदकैर्ग्रैवेयकेणाद्भुते–
नात्यन्तोज्ज्वलकम्बुकण्ठतटया सत्कण्ठिकाग्रैरपि ।
सौन्दर्याकरकुट्नलाकृतिरसश्रीकूटवक्षोजयोः
संवीतोज्ज्वलकञ्चुकोपरि लसद्धारावलीरोचिषा ।।१२।।

नाना रत्नों से जटित पदक, अद्भुत कण्ठहार एवं एक लड़ी कण्ठिका धारण करने से उनका शंखवत् त्रिरेखायुक्त कण्ठ अतीव उज्ज्वल हो रहा है। समस्त सौन्दर्य की खान, मुकुलाकृति (बिना खिले पुष्पवत्) रस से भरपूर एवं उच्च शोभामय स्तनों के साथ मिलित कञ्चुकी के ऊपर चमकते हुए हारों की शोभा से जो अति मनोरम हो रही हैं– ।।१२।।

लावण्योर्मिवलीविभंग–ललित–क्षामोदरश्रीभृता
शोभाराशि–नितम्बबिम्बविलसद्दिव्यारुणक्षौमया ।
सुस्निग्धोज्ज्वलदिव्यहेम कदलीकाण्डोरुयुग्मोज्ज्वल–
न्माधुर्यैकरसच्छटोर्मिरचितप्रेयश्चमत्कारया ।।१३।।

जो लावण्यमय तरंगयुक्त त्रिवली–विभंगी सहित सुललित क्षीण उदर के महासौन्दर्य को धारण कर रही हैं, (जिनके) शोभाराशिपूर्ण नितम्बों पर दिव्य लाल वसन शोभा दे रहा है, सुस्निग्ध उज्ज्वल दिव्य स्वर्ण कदलीखम्भ के सदृश जंघाओं की दीप्तिमय एकमात्र माधुर्य रसमय कान्ति–तरंगों के द्वारा प्रियतम को चमत्कार जन्माती हैं– ।।१३।।

ज्योतिःपुञ्ज–सुजानुबिम्बविलसज्जङ्घामृणालश्रिया
निर्मर्याद–पदाम्बुजोदित–महामाधुर्यसौन्दर्यया ।
अंगेऽङ्गेऽद्भुतरूपसौभग–महामाधुर्यसुस्निग्धता–
श्यामप्रेमविकार–कान्तिसुचमत्कारातिधारापुषा ।।१४।।

ज्योतिराशिमय सुन्दर जानुओं के एवं अति सुन्दर जंघारूप मृणालों के सौन्दर्य को धारण कर रही हैं; प्रफुल्लित पादपद्मयुगल असीम महामाधुर्य

सौन्दर्य से शोभित हो रहे हैं, उनका प्रतिअंग अद्भुत रूप, सौभाग्य, महामाधुर्य सुस्निग्धता एवं श्रीश्यामसुन्दर के प्रेमजनक अनेक विकारों के कारण अतीव कान्ति चमत्कारिता की वर्षा कर रहा है–।।१४।।

सर्वांगीण मुहुर्मुहुः पुलकया नित्योन्मदश्यामलो–
त्तुंगाभंगरतिप्रसंग–मुदितानंगालसांगश्रिया ।
किञ्चित् किञ्चिदुदञ्चदाकुलगिरा माधुर्य धाराकिरा
कुर्वन्त्याऽनवकाशि–वेशकरणेऽप्यालीकुलं व्याकुलम् ।।१५।।

उनके सर्वांगों में बार बार पुलकावली होती है, नित्य उन्मादकारी श्यामसुन्दर के अति उन्नत अभंग (कुटिल, नित्य स्थायी) रतिप्रसंग में ही आनन्दित होकर वह प्रतिअंग में कामालस्य सौन्दर्य धारण कर रही हैं, माधुर्यधारा वर्षणकारी अनिर्वचनीय किसी किसी महाव्याकुलतापूर्ण वाक्य के द्वारा वेशरचना कार्य में भी सखियों को असमय पर व्याकुल कर देती हैं–।।१५।।

ताम्बूल–व्यजनादिभिर्मृदु मृदु प्रेम्णाङ्घ्रिसंवाहनैः
श्यामांगे निहितालसांगलतया दासीभिरासेव्यया ।
प्राणेशाननचन्द्रगं मधु तथा ताम्बूल संचर्वितं
गृह्णत्या स्वमुखेन्दुगं च विहसन्त्यास्मै ददत्या मुहुः ।।१६।।

श्रीश्यामसुन्दर के अंग (अंक) में वह आलसयुक्त अंग अर्पण कर ताम्बूल प्रदान, व्यजनादि सेवा तथा प्रेमसहित धीरे–धीरे पाद सम्वाहनादि के द्वारा दासीगणों से सम्यक् प्रकार सेवित हो रही हैं, प्राणेश्वर (श्रीश्यामसुन्दर) के मुखचन्द्र का मधु तथा चर्वित ताम्बूल बार बार स्वयं ग्रहण करती हैं एवं मृदु मधुर हास्यपूर्वक अपने मुखचन्द्र का मधु तथा संचर्वित ताम्बूल उनको पुनः पुनः देती हैं–।।१६।।

कोऽपि श्यामकिशोरचन्द्र उरुभिः कन्दर्पलीलाकला–
चातुर्यैरतिसौभगोऽपि च चमत्कारानपारान् दधत् ।
श्रीराधैकमहानुरागविभवैर्लावण्य–माधुर्ययोः
पूरैः सन्ततदुर्मद–स्मरवशः श्रीराधया खेलति ।।१७।।

कोई एक (अनिर्वचनीय) श्यामकिशोरचन्द्र अनेक प्रकार की कन्दर्प लीला की कला चातुरी से अतिशय सौभाग्यवान् होते हुए भी अपार चमत्कारिता

धारण कर श्रीराधा की महानुराग विभूति के द्वारा लावण्य एवं माधुर्य प्रवाहसहित निरन्तर दुर्दमनीय काम के वशीभूत होकर—उसी श्रीराधा के साथ क्रीड़ा करता है।।१७।। (३० श्लोकों में कुलक समाप्त हुआ)

तावेवाद्भुतदम्पती—नवनवानंगैक—रंगाकुलौ
गौरश्यामल—दिव्यमोहनतनू कैशोर एव स्थितौ ।
श्रीवृन्दावनमण्डलेऽतिनिभृत—श्रीकुञ्जपुञ्जे मुहुः
प्रमोत्कण्ठ्यभरात् स्मरामि पुलकोद्भेदैः कदम्बायितौ ।।१८।।

नव नव अनंगरंग में आतुर गौरश्याम दिव्यमोहन तनुधारी नित्य किशोर अवस्थायुक्त वे अद्भुत श्रीयुगलविग्रह श्रीवृन्दावन मण्डल के अति निभृत कुञ्जों में बार बार प्रेमोत्कण्ठा से पुलकावलीवश कदम्बाकृति धारण करते हैं—उनका मैं स्मरण करता हूँ।।१८।।

तत् कैशोरकमद्भुतं पुरुचमत्कारा च सा श्यामिका
तत्सौन्दर्यमशेषमोहनमहो कन्दर्पलीलाश्च ताः ।
भावास्ते च महाद्भुताश्रुपुलक—स्तम्भादयः सात्त्विकाः
सा राधावशता च चेतसि चमत्कुर्वन्तु मे श्रीहरेः ।।१९।।

अहो ! वही अद्भुत किशोर—अवस्था एवं वही सुचमत्कारमयी श्यामा (श्रीराधा), वही अशेष मोहन—सौन्दर्य और वही लीलाएं एवं वही महा अद्भुत अश्रु, पुलक, स्तम्भादिभाव और श्रीहरि की वही श्रीराधा—वश्यता आदि मेरे चित्त में चमत्कार विधान करें—यही प्रार्थना है।।१९।।

सा वृन्दावनमाधुरी मधुरिमा स श्रीनिकुञ्जावले
गौरश्यामकिशोरयोरहह सा कामान्धयोर्माधुरी ।
माधुर्यञ्च महाद्भुतं खलु तयोरन्योन्यगोष्ठीक्षण—
व्याजस्पर्श—सुनर्मकेलिलहरीवृन्दस्य भायान्मम ।।२०।।

अहो ! वही श्रीवृन्दावन—माधुर्य, वही निकुञ्जों की मधुरिमा—अहह !! वह कामान्ध गौरश्याम श्रीयुगलकिशोर की माधुरी एवं दोनों का परस्पर वार्तालाप—उत्सव, छलपूर्वक स्पर्श, परिहास एवं केलिसमूह का महाअद्भुत माधुर्य ही मेरे चित्त में स्फुरित हो—यही प्रार्थना करता हूँ।।२०।।

सर्वानन्दकदम्बसारपरमापाराम्बुधौ राधिका-
दासीनामनुनेतरि स्मरकलापारं परं गन्तरि ।
नित्यं प्राप्तरि कामविप्लवदशां श्यामे किशोरे महा-
श्चर्या कापि रतिर्ममास्तु सततं वृन्दावने वस्तरि ।।२१।।

समस्त आनन्द राशियों के सार का जो परम असीम समुद्र हैं, श्रीराधिका-दासियों के आगे जो अनुनय करते हैं, कामकला-विद्या के जो पारगामी हैं, जो नित्य काम-विप्लव दशा को प्राप्त हैं, श्रीवृन्दावन में निरन्तर विहार करने वाले उन श्यामकिशोर में मेरी कोई अनिर्वचनीय आश्चर्यमय रति हो-यही प्रार्थना है।।२१।।

श्रीमद्वृन्दावनमिव वनं भाति वृन्दावनाख्यं
राधाकृष्णौ मधुररसमात्राकृती यत्र भातः ।
राधाकृष्णाविव वरसखीमण्डलं तद्द्वयैक-
न्यस्तप्राणं तदुभयरसेनात्मवन्मोमुदीति ।।२२।।

श्रीवृन्दावन-नामक वन श्रीवृन्दावन ही की भाँति शोभा दे रहा है, जहाँ श्रीराधाकृष्ण के सदृश ही एकमात्र मधुर रसाकृति श्रीराधाकृष्ण निरन्तर विराजमान हैं एवं उन युगल-किशोर में ही गतप्राण तथा उन ही का आत्म-स्वरूप श्रेष्ठ सखियां दोनों के रस में सराबोर होकर निरन्तर आनन्द प्राप्त कर रही हैं।।२२।।

वृन्दारण्यं निरधिकसमं धाम सारं रसानां
राधाकृष्णौ निरधिकसमौ शेखरौ सद्गती नः ।
क्रीड़ारंगं तदुभयनिजप्राणयोः पुष्णती सा
वैदग्धीभिर्निरधिकसमा मण्डली मोहिनीनाम् ।।२३।।

श्रीवृन्दावन अनूर्ध्वसमान (जिसके समान एवं जिससे अधिक कोई नहीं) धाम है, समस्त रसों के सार अनूर्ध्व समान श्रीराधाकृष्ण सर्व शिरोमणि ही हमारी एकमात्र गति हैं। अपने प्राणेश्वर युगलकिशोर के क्रीड़ारंग को वह अनूर्ध्व समान मोहिनी सखी मण्डली वैदग्धी (चतुरता) के द्वारा निरन्तर परिपुष्ट कर रही है।।२३।।

अहो मौढ्यमहो मौढ्यमहो दुर्भाग्यमीदृशम् ।
महनपि महानन्दे यन्न वृन्दावने रतः ।।२४।।

अहो मूर्खता ! अहो अज्ञता !! अहो ऐसा दुर्भाग्य !!! जो (सांसारिक) महान् व्यक्ति होते हुए भी महानन्द स्वरूप इस श्रीवृन्दावन में मेरा प्रेम नहीं हुआ।।२४।।

अहो तादृङ् महानन्दकन्दं वृन्दावनं न चेत् ।
महात्तमोऽपि श्रयते वाच्यो नीचतमो हि सः ।।२५।।

अहो ! महत्तम व्यक्ति होकर भी इस प्रकार महानन्द–कन्द श्रीवृन्दावन का जो आश्रय नहीं करता, उसे नीचतम ही कहा जायेगा।।२५।।

सान्द्रानन्दरसे वृन्दावनेऽपि नानुरज्यतः ।
किंवा मम करिष्यन्ति ज्ञान–भक्ति–विरक्तयः ।।२६।।

आनन्दघनरस के मूल श्रीवृन्दावन में भी यदि मेरा चित्त अनुरक्त नहीं होता, तो ज्ञान, भक्ति तथा वैराग्य आदि मेरा क्या करेंगे ?।।२६।।

धिग् धिङ्मामपि सद्विद्या–कुल शील–गुणोज्ज्वलम् ।
वृन्दावनरतिप्राणहीनो हि स्याद्यतः शवः ।।२७।।

विद्वान्, कुलीन, सुशील, गुणी एवं रूपवान होते हुए भी मुझे धिक्कार है ! धिक्कार है !! क्योंकि श्रीवृन्दावन के प्रेम–रूप प्राणों से रहित व्यक्ति तो शव (मृतक) ही है।।२७।।

शोच्यशोच्यातिशोच्योऽहं महामूढ़ातिमूढ़धीः ।
हठात् सर्वं परित्यज्य यन्न वृन्दावनं श्रये ।।२८।।

महाशोचनीय से भी अति महाशोचनीय मैं हूँ ! महा मूर्ख से भी अति महामूर्ख बुद्धि मैं हूँ !! क्योंकि जो शीघ्र ही सब कुछ त्याग करके श्रीवृन्दावन का आश्रय नहीं करता।।२८।।

दूरे चैतन्यचरणाः कलिराविरभून्महान् ।
कृष्णप्रेमा कथं प्राप्यो बिना वृन्दावने रतिम् ।।२९।।

श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु के चरण तो दूर हैं (उनकी प्राप्ति मेरे लिये कठिन है), महा कलियुग आ गया है !! इसलिये श्रीवृन्दावन की रति के बिना श्रीकृष्ण–प्रेम कैसे प्राप्त होगा ?।।२९।।

अहो ! विट्शूकरप्रायोत्फुल्लदशपशुस्ततः ।
न मूढः श्रयते वृन्दावनमानन्दसागरम् ।।३०।।

अहो ! विष्ठाभोजी शूकर–पशु की भाँति उत्फुल्ल–दशा (प्रसन्नता) को प्राप्त वही हो सकता है, जो मूर्ख आनन्दसागर श्रीवृन्दावन का आश्रय नहीं करता।।३०।।

हा हा ! वृन्दावनं त्यक्त्वा यदन्यत् कर्त्तुमुत्सहे ।
जानन्नपि विषं भुञ्जे थुत्कृत्य परमामृतम् ।।३१।।

हाय ! श्रीवृन्दावन त्यागकर जो और कार्यों में मेरा उत्साह होता है तो जानबूझ कर परमामृत को थुत्कार कर विष का ही भोजन करना चाहता हूँ।।३१।।

यशोभिः पूरिता आशाः कृतं विश्वानुरञ्जनम् ।
हा हन्त दिङ् मात्रमपि नेक्षे वृन्दावनेशयोः ।।३२।।

अनेक यश–कीर्ति से दशों दिशाएं पूर्ण हो चुकीं, विश्व का अनुरञ्जन (प्रसन्न करना) भी कर लिया, किन्तु हाय ! श्रीवृन्दावनाधीश (श्रीयुगल–किशोर) की ओर देख मात्र भी नहीं सका।।३२।।

किं करोम्यहमुन्मत्तो यत् किञ्चित् प्रलपाम्यलम् ।
ज्ञान–भक्ति–विरक्त्यादि व्यर्थं वृन्दावनं विना ।।३३।।

क्या करूँ ? मैं तो पागल हो गया हूँ। जो कुछ प्रलाप करता हूँ–उससे ही क्या होगा ? श्रीवृन्दावन के (आश्रय) बिना ज्ञान, भक्ति, वैराग्य आदि सब व्यर्थ हैं।।३३।।

चौरोऽयं पतितोऽयमित्यतिवदन् सन्तर्जयंस्ताड़यन्
वध्नन् सर्वजनोऽप्यनागसमिमं सर्वत्र चोद्वेजयेत् ।
अन्तः क्लेशमतीव–दुःसहतरं प्राप्नोति नानाविधै–
र्दुःखैर्द्यत एव चेत्तदपि मे देहोऽस्तु वृन्दावने ।।३४।।

कोई यदि मुझे "यह चोर है", "पतित है" इत्यादि वाक्यों से कठोर भर्त्सना करे, तर्ज्जना गर्ज्जनपूर्वक अच्छी तरह ताड़ना करे, बाँध दे, सब लोग निरपराधी मुझको सर्वत्र उद्विग्न करें अथवा यदि मुझको अतीव असह्य मनःपीड़ा ही प्राप्त हो, किंवा अनेक प्रकार के दुःखों के द्वारा उत्पीड़ित भी होऊँ, फिर भी

मेरा यह शरीर तो इसी श्रीवृन्दावन में ही पात हो—यही मेरी प्रार्थना है।।३४।।

प्रेमानन्दमहारसाब्धिसुघनो वृन्दाटवीचन्द्रमा—
मुख्यां रात्यमलां रतिं निरवधिं वृन्दावनाधीश्वरी ।
श्रीवृन्दाविपिनञ्च तद्रसमयं तादात्म्यभावाद्भुत—
स्नेहावेशसदोद्यदश्रुपुलकं श्रीमत्सखीमण्डलम्।।३५।।

श्रीवृन्दावनाधीश्वरी प्रेमानन्दमय महारस—सागर के सुघनीभूत श्रीवृन्दावनचन्द्र की मुख्य अमला—रति निरन्तर दान करती हैं—श्रीवृन्दावन भी तद्रसात्मक हो रहा है, और सौन्दर्यमयी सखीमण्डली भी तादात्म्यभाव में अद्भुत स्नेहावेश के कारण सदा सर्वदा अश्रुपुलकादियुक्त होकर विराज रही है।।३५।।

कालिन्दी—पुलिने सुरद्रुमतले श्रीमल्लतामण्डपे
संसेव्यं ललितोपहारनिकरैर्दिव्यैः किशोरीगणैः ।
गौरश्यामकिशोरधामयुगलं तत् कर्हि वृन्दावने
तद्भाव—स्फुरदाकृतिः परिचराम्याश्चर्य लीलामयम् ।।३६।।

श्रीवृन्दावन के कालिन्दी—पुलिनों में कल्पवृक्ष के नीचे सुन्दर लता—मण्डप में दिव्य किशोरीगणों से सुन्दर उपहारों के द्वारा भली प्रकार सेवित उन आश्चर्य—लीलामय गौरश्याम—युगल की कब मैं तद्भावित आकृति—स्फूत्ति के साथ नित्य परिचर्या करूँगा ?।।३६।।

शिञ्जन्मञ्जीरपादा विपुलकटितटप्रस्फुरत्—काञ्चिदामा
मध्ये क्षामा किशोरी कुचमुकुलयुग—प्रोल्लसत्तारहारा ।
लोलद्वेण्यग्रगुच्छा कनकमणिलसच्चारुनासाग्रमुक्ता
चित्रक्षौमं वसाना मम कनकरुचिर्भातु राधैकदासी ।।३७।।

जिनके चरणों में नूपुर बज रहे हैं, विशाल कटिदेश में मेखला शोभित है, मध्यदेश जिनका क्षीण है, जो किशोर अवस्थायुक्त हैं, जिनके मुकुलस्तनों पर उज्ज्वल तारों के हार डोलायमान हैं, वेणियों के गुच्छे इधर उधर लटक रहे हैं, सुन्दर नासिकाओं में स्वर्णमणि जटित मुक्ता हैं, विचित्र पतले वस्त्र धारण कर रही हैं—ऐसी स्वर्ण—वर्ण कान्तियुक्त श्रीराधा दासियां मेरे हृदय में स्फुरित हों।।३७।।

यां यां रूपवतीं नवीनतरुणीं लावण्यलीलाकला–
माधुर्येर्मुनिमोहनीमनुरतां भावोत्सव–व्यञ्जिनीम् ।
तां तां वीक्ष्य स थुत्करोति परमां दिव्यामपि स्फूर्तिमान्
श्रीराधा–पदकिंकरी–पदनखप्रान्तोऽपि यस्यात्मनि ।।३८।।

जिसके हृदय में श्रीराधा की चरण–किंकरी का पदनखप्रान्त भी स्फुरित होता है, वह–रूपवती नवीन तरुणी को, जो सौन्दर्य एवं लीलामाधुर्य से मुनियों को भी मोहित कर सकती है, तथा जो अपने प्रति अनुरक्तचित्त है, भावोत्सव प्रकाश करने वाली है एवं परम दिव्या है–ऐसी उस नारी को भी थुत्कार देता है।।३८।।

वृन्दारण्याधीश्वरीपादपद्म–ज्योतिःसिन्धोराद्य–रत्येकवृत्तेः ।
व्यक्तं लीला–रूपकैशोरकाद्यैस्तद्दासीनां वृन्दमीक्षेऽतिदिव्यम् ।।३९।।

श्रीवृन्दावनाधीश्वरी के चरण–कमलों के ज्योति समुद्र के श्रृंगार रसमूलक लीला–रूप–कैशोरादि द्वारा अभिव्यक्त अति दिव्य उन श्रीदासीवृन्द के दर्शनों की मैं इच्छा करता हूँ।।३९।।

द्रुतकनकसुगौरीमंगवल्लीं दधानां
नवतरुणिमलीलाकान्तिपूरैरपाराम् ।
विपुलजघनखेलद्वेणिमाश्चर्यरोचि –
र्नवकनक महीध्रप्रेक्ष्य–वक्षोजलक्ष्मीम् ।।४०।।

जो तप्त स्वर्णवत् सुन्दर गौरवर्ण अंगलता धारण कर रही हैं, जो नवीन यौवनमण्डित अपार लीला एवं कान्तियुक्त हैं, जिनकी वेणी विशाल जंघाओं पर खेल रही है जो आश्चर्यमय कान्तियुक्त हैं, एवं नव स्वर्णपर्वत अर्थात् सुमेरु के द्वारा भी दर्शन करने योग्य स्तनों की शोभा धारण कर रही हैं–(४० से ४५ श्लोक तक कुलक है)।।४०।।

नवनवरससारास्वाद–सुस्मेरवक्त्रां
नवनवरसखेलत्–खञ्जरीटायताक्षीम् ।
रुचिरवलयराजी–दिव्यकेयूरराजत्
सुवलित–रुचिपूर्ण–स्निग्धदोर्वल्लियुग्मम् ।।४१।।

नव नव रस–सार आस्वादन करके जिनका मुख सुहास्ययुक्त है, नवीन नवीन रस में क्रीड़ा करने वाले जिनके विशाल नेत्र खञ्जनवत् शोभित हो रहे हैं, जिनकी सुवलित शोभापूर्ण बाहु–लताओं में सुन्दर कंकणों सहित दिव्य बाजूबन्द विराजमान हैं–।।४१।।

श्रवणतटविराजद्दिव्य–ताटंकरत्नां
रुचिरकनकरत्नोद्भासि–नासाग्रमुक्ताम्।
विविध–कनकहार–प्रोल्लसत्कम्बुकण्ठी–
मुरुमणिगणविभ्राजिष्णु–केयूरचूड़ाम् ।।४२।।

जिनके कानों में दिव्य रत्नमय कुण्डल शोभित हैं, जिनकी नासिका में सुन्दर स्वर्ण–रत्न–खचित मुक्ता लटक रहा है, जिनके कम्बुकण्ठ में अनके प्रकार के स्वर्ण हार चमक रहे हैं, जिनके केयूर एवं शिखा में अनेक मणि–माणिक्य शोभा दे रहे हैं।।४२।।

रुचिरमणिविराजन्मुद्रिकाढ्याङ्गुलीका
मुरुसिजरुचिपूरां चोलिकामावहन्तीम् ।
परमरुचिरमुष्टिग्राह्यमध्यां नितम्बो
ज्ज्वलमणिमयकाञ्चीं मञ्जुमञ्जीरपादाम् ।।४३।।

जिनकी अँगुलियों में सुन्दर मणिजटित मुद्रिकाएं शोभित हैं, जो स्तनों की कान्ति से उद्भासित चोलिका पहर रही हैं, जिनका मध्यदेश (कटि) परम रमणीय एवं मुष्टिग्राह्य (अति पतला) है, जिनका नितम्बदेश उज्ज्वल मणिमय मेखला से एवं चरणकमल मनोहर नूपुरों से विभूषित हैं–।।४३।।

मुहुरुरसि–दधानां वीक्ष्य सव्रीड़हासं
प्रियमतिरसलोलं लीलयात्ताम्बरान्तम् ।
प्रतिपद नवरंगानन्द–मन्दस्मितोर्मि
स्तवकितमुखचन्द्रामुल्लसद्रोमहर्षाम् ।।४४।।

जो लीलाक्रम से वस्त्र खींचने वाले अतीव रस–चञ्चल प्रियतम को देखकर लज्जायुक्त मुसकाती हुई उसे (वस्त्र को) बार बार वक्षस्थल पर धारण करती (जोड़ती) हैं, प्रतिपद में नवीन रंग की आनन्दमय मन्दमुसकानरूप तरंग में जिनका मुखचन्द्र प्रफुल्लित होता है एवं जो उल्लास में आकर पुलकित हो रही हैं–।।४४।।

किमपि किमपि सख्या भाषमाणां सहासं
किमपि किमपि दृष्टेश्चापलं प्रोद्वहन्तीम् ।
किमपि किमपि लोलद्गात्रवल्लीं कदान्तः
किमपि किमपि राधां सम्यगाराधयामि ॥४५॥

हास्य सहित सखीगण जिनको कुछ कुछ (अनिर्वचनीय) कहती हैं एवं जो नेत्रों से कोई कोई चाञ्चल्य प्रकाश करती हैं, जिनकी देह लता (रस में, भाव में) कुछ कुछ झूमती हैं—ऐसी श्रीराधाजी की कब मैं सम्यक् प्रकार से मन में कुछ कुछ भी आराधना कर सकूँगा ?॥४५॥ (इति कुलक)॥४५॥

वाग्वाणाः प्रपतन्तु मर्मसु शतं पादप्रहाराः शिरो—
देशे सन्तु शतं शतं ध्रुवमनाहाराः शतं सन्तु वा ।
स्मारं स्मारमथापि जीवनधनं तद्गौरनीलं महो—
द्वन्द्वं सान्द्ररसाब्धिमूर्तिमुदितो वत्स्यामि वृन्दावने ॥४६॥

हृदय पर शत शत वाक्य—बाणों के प्रहार हों, चाहे सिर पर शत—शत पद—प्रहार ही हों, शत शत उपवास निश्चय ही होते रहें, तो भी उन जीवन—धन गौर नील रसघन—समुद्र मूर्ति श्रीयुगल किशोर को स्मरण करते हुए श्रीवृन्दावन में आनन्दपूर्वक वास करूँगा॥४६॥

भुक्तं जन्मनि जन्मनि प्रियवधू—स्रक्—चन्दनाद्यं त्वया—
ऽहंकारस्तु न शान्त एव सुयशो वह्वर्जितं नाद्य तत् ।
अभ्यस्ता च समस्तशास्त्रविततिर्मोहस्तु नास्तं गत—
स्तन्निर्विद्य समस्ततो भज महानन्दाय वृन्दावनम् ॥४७॥

तुम ने जन्म जन्म में प्रिय वधू के माला—चन्दनादि का भोग किया है—किन्तु अहंकार तो शान्त नहीं हुआ, बहुत सुयश प्राप्त कर लिया—तथा समस्त शास्त्रों का भी तुमने अभ्यास या अध्ययन कर लिया है, किन्तु मोह तो नाश हुआ नहीं, अतएव समस्त विषयों से वैराग्य करके महानन्द की प्राप्ति के लिये श्रीवृन्दावन का भजन कर॥४७॥

सुक्षीणा धमनी ततोऽमृजवपुः केशो जरत्—कन्थया
कौपीनेन च चीरखण्डककृतेनाढ्योऽतिसौम्याकृतिः ।
तूष्णीकः सकलाधमाधम इवात्यन्तं विदूरे चरन्
श्रीराधापददास्यलीनहृदयो वृन्दावने स्यां कृती ॥४८॥

क्षीण नाड़ीयुक्त (अतिदुर्बल) एवं अमार्जित शरीर युक्त जटा एवं कन्था—फटे वस्त्रों की कौपीन धारण करते हुए, अति शान्तस्वभावयुक्त एवं चुपचाप रहकर तथा समस्त अधमों से भी महा अधमवत् बहुत दूर रहते हुए श्रीराधाजी के चरणों की सेवा में विलीन—हृदय होकर श्रीवृन्दावन में कृतार्थ होऊं—यही मेरी प्रार्थना है।।४८।।

कौवेरी धनसम्पदस्ति किमतो वाचस्पतेर्वाग्मिता
लब्धा किं नु ततो महेन्द्रभवनैश्वर्यं स्थितं किं ततः ? ।
किं कन्दर्पवपुः श्रियाद्भुततपोयोगादि—सिद्धया च किं
श्रीवृन्दावन—नाम—धाम—विमुखे सर्वो विडम्बो यतः ।।४९।।

यदि कुबेर का धन प्राप्त हो जाय, तो उसका क्या फल ? यदि वृहस्पति जैसी सुवाणी प्राप्त हो, तो उससे क्या ? महेन्द्र के लोक का ऐश्वर्य मिले, तो उससे क्या लाभ ? कामदेव जैसा सुन्दर शरीर मिले तो क्या ? तपस्या, योगादि की सिद्धि से क्या प्रयोजन? क्योंकि श्रीवृन्दावन—नामक धाम से जो व्यक्ति विमुख है, उसी के लिये ये सब विडम्बना मात्र हैं।।४९।।

सदा खेलन्नित्यस्मर तरलराधा—मधुपति
स्फुरद्विद्याविद्यामय—सकलधामोपरि सदा ।
स्वमाधुर्योज्ज्वल्यादिभिरितरसर्वाभिभवकृद्
भुवि प्राप्तं वृन्दावनमिदमहो को न भजते? ।।५०।।

जहां सदा काम—चञ्चल राधामधुपति नित्य क्रीड़ा करते हैं, जो धाम विद्यामय एवं अविद्यामय समस्त धामों के ऊपर प्रकाशित है, अपने माधुर्य, उज्ज्वलता आदि के द्वारा जिसने और सब धामों को पराजित कर दिया है—अहो ऐसे भौम श्रीवृन्दावन को कौन नहीं भजता ?।।५०।।

यत् स्वात्मप्रभ—शुद्धचिद्रसघनं यत्राखिलं तादृशं
कृष्णप्रेमरसाब्धिमग्नमखिलं एय्यन्त—दृग् दूरगम् ।
तस्मिन् भूप्रकटेऽविचिन्त्यमहिमानन्त्येऽत्र वृन्दावने
पश्येयुर्यदि दूषणानि कुधियः किं स्यात्ततोऽन्तर्दृशाम्? ।।५१।।

जो स्वयं प्रकाश एवं शुद्धचिद्—रसात्मक है, जिसमें स्थित समस्त (स्थावर—जंगमादि भी) उसी की भाँति (स्वयं प्रकाश व शुद्ध चिद्रसघन) है एवं

कृष्ण–प्रेम–रस समुद्र में मग्न है, जो वेदान्तियों की दृष्टि के अगोचर है, ऐसी अविचिन्त्य–महिमायुक्त इस भौम–श्रीवृन्दावन में यदि मूर्ख लोग दोषों को देखें तो उससे अन्तर्दृष्टियुक्त (हृदय के नेत्र जिनके खुल चुके हैं) पुरुषों की क्या हानि ?।।५१।।

सुरूपेणानन्तं मधुरिमभरेणान्तरहितं रुचानन्तं
कृष्णप्रणयरसतोऽप्यन्तरहितम् ।
कृपौदार्यानन्तं निजपरमहिम्नान्तरहितं
तदानन्तं भाग्यं भजति यदि वृन्दावनमिदम् ।।५२।।

(यह श्रीवृन्दावन) सौन्दर्य में अनन्त है, माधुर्यपूर्णता में अनन्त है, ज्योति विस्तार करने में अनन्त एवं कृष्ण–प्रीतिरस में भी अनन्त है–कृपा और उदारता में अनन्त है, अपनी महिमा में भी अनन्त है–इस श्रीवृन्दावन को यदि कोई भजता है, तो उसके भाग्य अनन्त हैं।।५२।।

वीक्षे दिव्याक्षिलक्षैः स्थिरचरसुषमां सौरभं घ्राणलक्षै–
र्जिघ्राम्याकर्णये च श्रवणविततिभिस्त्वद्गुणानत्युदारान् ।
पत्कोट्या त्वय्यटेयं यदि च करशिरः कोटिभिस्त्वां नमेयं
नो तृप्तिर्मे तथापि प्रियतमपरमानन्द–वृन्दावनाद्य ।।५३।।

हे प्रियतम् परमानन्दमय श्रीवृन्दावन ! यदि आज मैं लाख दिव्य नेत्रों से तुम्हारे स्थावर–जंगमों की शोभा दर्शन करूँ, लाख नासिकाओं के द्वारा तुम्हारी सुगन्धि सेवन करूँ, अनेक कानों से यदि तुम्हारी अति उदार गुणावली श्रवण करूँ, करोड़ों चरणों से यदि तुम्हारे बीच भ्रमण कर सकूं तथा कोटि कोटि हाथों एवं मस्तकों से तुम्हें नमस्कार करूं–तो भी मेरी तृप्ति नहीं होगी।।५३।।

कर्णे शङ्कुः प्रवेश्यः किमपि यदि शृणोत्येतदीयस्य दोषान्
जिह्वा च्छेद्या प्रमादाद् यदि वदति समुत्पाट्यमक्षीक्षते चेत् ।
प्राणाः संत्यागयोग्या यदि मनसि तथा निश्चयस्तच्छ्रवाद्या–
श्चाण्डालीकृत्य वर्ज्याः परमतममिदं धाम वृन्दावनं यत् ।।५४।।

यदि कान इस (श्रीवृन्दावन) के दोषों को सुनें, तो उनमें कील गड़वा देना उचित है, यदि जिह्वा भूल कर उन (दोषों) का उच्चारण करे, तो वह काट देने योग्य है, यदि नेत्र उन (दोषों) को देखें, तो उनको निकलवा देना चाहिये,

यदि मन में इन (दोषों) का विश्वास जम जाये, तो प्राण त्याग करना ही कर्तव्य है, वे समस्त कानादि (इन्द्रियगण) चण्डालीवत् अस्पृश्य एवं त्यागने योग्य हैं—क्योंकि यह श्रीवृन्दावन—धाम तो परमतम—महत्तम वस्तु है।।५४।।

न हि वृन्दावन विन्दाम्यहमिन्दावप्यमीदृशीं सुखताम् ।
तुच्छीकृत—सुरगणिकासुखजनिका ते यतो रजःकणिका ।।५५।।

हे श्रीवृन्दावन ! मैं चन्द्र में भी ऐसा सुख प्राप्त नहीं करता हूँ—क्योंकि तुम्हारा एक रजकण भी स्वर्ग की वेश्यागणों के (संग) सुख को भी अति तुच्छ बना देता है।।५५।।

वृन्दारक—नुत—वृन्दाविपिनलता—शाखि—गुल्मानाम् ।
वृन्दारक इह नन्दत मन्दा मन्दारकोटिभिः किं वः ? ।।५६।।

हे कुबुद्धि मनुष्यो ! देवताओं के द्वारा भी वन्दनीय इन श्रीवृन्दावन के लता, वृक्ष, गुल्मादि का भली प्रकार आनन्द प्राप्त करो—कोटि—कोटि मन्दार (स्वर्ग के पाँच प्रकार के वृक्षों में से एक वृक्ष का नाम है) वृक्षों से तुम्हें क्या लाभ होगा ?।।५६।।

श्रीराधामुरलीधर—वरधन—वृन्दावने वरं कृमिकः ।
भगवत्—पार्षदमुख्योऽप्यन्यत्राऽहं न चोत्सहे भवितुम् ।।५७।।

श्रीराधामुरलीधर के परमधन इस श्रीवृन्दावन में क्षुद्र कृमि होना अच्छा है, परन्तु अन्य स्थान पर भगवत्—पार्षद—श्रेष्ठ होने का भी मैं उत्साह नहीं करता।।५७।।

वृन्दावनगुणवृन्दान्यनिशममन्दानुरागेण ।
यो वर्णयति समाकर्णयति हरिं सोऽधमर्णयति ।।५८।।

जो प्रबल अनुराग से श्रीवृन्दावन के गुणों को वर्णन करता है एवं सुनता है, वह श्रीहरि को ही ऋणी करता है।।५८।।

राधापति—रतिरञ्जित—निकुञ्जभवने वने परमे ।
श्रीवृन्दावननाम्नि प्रणयप्रणयं समस्तगुणसीम्नि ।।५९।।

समस्त गुणों की खान श्रीवृन्दावन नामक इस परम (श्रेष्ठ) वन में श्रीराधापति के रतिरञ्जित निकुञ्ज भवन में प्रीति स्थापन कर।।५९।।

यदि वृन्दावन विन्दाम्यपि तृणतां ते वनान्तेषु ।
न तदा विकुण्ठलक्ष्मीमपि करमिलितां निभालये ललिताम् ।।६०।।

हे वृन्दावन ! यदि तुम्हारे वन में तृण बन कर भी रह सकूँ, तो हाथ पै रखी सुललित वैकुण्ठलक्ष्मी को भी मैं आँख उठाकर नहीं देखूँ।।६०।।

सर्वदुःखदशा घोरा वरं वृन्दावनेऽस्तु मे ।
प्राकृताऽप्राकृताऽशेषविभूतिरपि नान्यतः ।।६१।।

श्रीवृन्दावन में मेरी घोरतर दुःख–दशा भले हो जाय, फिर भी अन्यत्र प्राकृत एवं अप्राकृत समस्त ऐश्वर्यों को मैं नहीं चाहता।।६१।।

कुर्वत्यपि महारौद्रमुपद्रवमनुक्षणम् ।
भक्तिर्वृन्दाटवीसत्त्वे तत्त्वेक्षातः सदाऽस्तु मे ।।६२।।

श्रीवृन्दावन के प्राणी यदि हर क्षण मेरे लिये महा घोर उपद्रव भी करें, तो भी तत्त्व की ओर देखते हुए मेरी उनके प्रति सदा भक्ति बनी रहे।।६२।।

समस्त पुरुषार्थाणां चिन्तामणय एव ते ।
श्रीशादि–मृग्यसंस्पर्शा ये वृन्दावन–खर्पराः ।।६३।।

श्रीवृन्दावन के चोर भी सर्वपुरुषार्थ–चिन्तामणि स्वरूप हैं एवं लक्ष्मी, विष्णु आदि देवतागण भी उन्हें स्पर्श करने की (पाने की) इच्छा करते हैं।।६३।।

पशुरेकः खग एकस्तृणमेकं रेणुरेको वा ।
श्यामरसादभुत–वन्ये वृन्दारण्ये भवाम्यहं धन्यः ।।६४।।

श्यामरसमय अद्‌भुत वनों युक्त श्रीवृन्दावन में एक पशु, एक पक्षी, एक तृण अथवा एक रजकण होकर भी मैं कृतार्थ हो जाऊँगा।।६४।।

राधा–मुरलिमनोहर–चरणविलासेन धन्यायाम् ।
वृन्दावनभुवि मन्ये परमपुमर्थो मनागपि प्रणयः ।।६५।।

श्रीराधामुरलीमनोहर के चरणविलास से धन्य हुई इस श्रीवृन्दावन भूमि में यदि किञ्चिन्मात्र भी प्रीति हो तो मैं उसे ही परम पुरुषार्थ मानता हूँ।।६५।।

श्रीवृन्दाविपिनेऽतिकौतुकभरात्तौ पर्यटन्तौ महा–
श्चर्यश्रोत्ररसायनातिमधुरान्योऽन्य–प्रणादोदये ।
अन्योऽन्याधिक–रम्यवस्तु–सुचमत्कारं सदा राधिका–
कृष्णौ ध्यायत पश्य पश्य शृणु शृण्वित्यादृतोक्ती मिथः ।।६६।।

वे श्रीयुगलकिशोर अति कौतुकवश श्रीवृन्दावन में घूम रहे हैं–महाश्चर्य

कर्णरसायन अति मधुर परस्पर सुन्दर वाणी बोलते हैं, एक दूसरे को अधिक रमणीय वस्तु की सुचमत्कारता दिखाते हैं एवं "देखो" ! "देखो !!" "सुनो !" "सुनो !!" इस प्रकार प्रीतिपूर्वक कहते हैं–मैं श्रीराधाकृष्ण के इस स्वरूप का ध्यान करता हूँ।।६६।।

कृष्णानुरागस्य परं प्रकर्षं तद्रूपशोभाद्युतिभूमसीम ।
श्रीराधिकायाः परमाधिक–श्रि श्रयाम वृन्दावनमेकधाम ।।६७।।

श्रीकृष्णानुराग की परम पराकाष्ठा–प्राप्त एवं उनके रूप शोभादि से परम कान्तियुक्त तथा श्रीराधिका के परम अधिक सौन्दर्य से मण्डित मुख्यधाम श्रीवृन्दावन का ही मैने आश्रय कर लिया है।।६७।।

वृन्दाटवीमोहनकुञ्जपुञ्जे कलिन्दकन्या पुलिनैकसीम्नि ।
श्रीराधिका–कृष्णपदारविन्ददास्यैकदास्ये बलतां ममाशा ।।६८।।

श्रीयमुना पुलिन में श्रीवृन्दावन की मोहिनी कुञ्जों में श्रीराधाकृष्ण के चरणकमलों में एकमात्र दास्य भाव में मेरी आशा वृद्धि हो।।६८।।

सहैव राधा–मुरलीमनोहरौ कन्दर्पलीलामय–दिव्यमूर्तिकौ ।
वृन्दाटवी मञ्जुलकुञ्जमण्डले कस्यास्ति नाशाऽतिरसा नु सेवितुम्? ।।६६।।

श्रीवृन्दाटवी के मञ्जुल कुञ्जमण्डल में कन्दर्पलीलामय दिव्यमूर्ति श्रीराधामुरलीमनोहर की एक साथ ही सेवा करने के लिये किसकी परम रसमयी आशा नहीं होती ?।।६६।।

आशापि नासाद्यत एव राधा–पादारविन्दार्चन इन्दिराद्यैः।
अहं तु वृन्दावन ! ते प्रभावाद्भावानुबन्धे स्पृहयालुरस्मि।।७०।।

लक्ष्मी आदि देवीगण भी श्रीराधा के चरणकमलों की सेवा की आशा तक भी नहीं कर सकतीं, किन्तु हे वृन्दावन ! मैं आपके प्रभाव से किसी भी भाव–योग से प्रबल इच्छुक हो रहा हूँ।। ७०।।

विहाय वृन्दावनमिन्दिरादिभिः सुदुर्लभं कुत्र विमूढ़ यासि रे !।
सर्वेश्वरैश्वर्यमथामृतं परं सुदुर्लभाश्चात्र मिलन्ति भक्तयः ।।७१।।

हे विमूढ़ ! लक्ष्मी आदि के लिये भी सुदुर्लभ इस श्रीवृन्दावन को त्यागकर कहाँ जाता है? यहाँ ही तो सर्वाधीश्वर का ऐश्वर्य, परम अमृत एवं सुदुर्लभ भक्ति समूह मिलते हैं।।७१।।

हरि हरि हरिराधा–भङ्गुरानंगरंगं
मधुर–मधुर–सान्द्रानन्दसिन्धूत्तरंगम् ।
क इह विशतु वृन्दाकानने कुञ्जपुञ्जं
स्फुरदुरुनिजरूपाद्यन्तरेणान्तरेऽपि? ।।७२।।

हरि ! हरि !! (आश्चर्य में) श्रीहरि तथा श्रीराधा की नित्यस्थायी कामरंगमय, मधुरातिमधुर आनन्दघन उच्च तरंगों युक्त इस श्रीवृन्दावन की कुञ्जों के भीतर आपके (वृन्दावन के) बहुविध रूपादि की स्फूर्त्ति के बिना भी कोई प्रवेश कर सकता है ?।।७२।।

राधाकृष्ण–विचित्रमन्मथकलानन्दाश्चमत्कुर्वते
यस्मिन् सौख्यचमत्कृतिः परतरा यत्रत्यदीक्षादितः ।
तद्द्वन्द्वे ममकारतोऽद्भुततमाद् यस्याद्भुतानुक्षणो–
ल्लासाः श्रीवनराजसीम–सुमहाभावं तमेव स्तुमः ।।७३।।

जहाँ श्रीराधाकृष्ण का विचित्र काम–कलासमूह आनन्द–राशि की चमत्कारिता विधान करता है, जहाँ (निवास करने की निष्ठारूप) दीक्षादि लेने से परमसुख की चमत्कारिता प्राप्त होती है और वहां श्रीयुगलकिशोर में जिसको परम अद्भुत ममताबुद्धिवश प्रतिक्षण ही उल्लास होता है, उस श्रीवृन्दावन सीमा में रहने वाले अति सुमहा–उदार पुरुष की मैं स्तुति करता हूँ।।७३।।

कलिन्दतनया–तटीस्फुरदुदारवल्लीकुटी
विहारि रतिलम्पटीभवदनुक्षणं धाम तत् ।
द्वयं कनकचम्पकं कुवलयञ्च निन्दद्रुचा
सुचारुपरिचर्यया मनसि तोषयेत् स्वात्मभूः ।।७४।।

श्रीयमुना–तटवर्त्ती सुमनोहर लताकुटी में विहार करने वाले प्रतिक्षण ही रतिलम्पट जो श्रीयुगलकिशोर हैं, जो अपनी कान्ति से स्वर्णचम्पक एवं नीलकमल को भी तिरस्कार करते हैं–उनके मन को सुन्दर परिचर्या से कामदेव ही तुष्ट कर सकता है।।७४।।

स्मर स्मरवशं गतौ कनकचम्पकेन्दीवर
द्युति नवकिशोरकौ मधुरधाम–वृन्दावने ।

ययोर्नयनवाग्वपुर्विलसितैश्चमत्कारिभि
र्महामधुरिमाकरैर्मुमुहुरेव धन्यालयः ।।७५।।

काम के वशीभूत स्वर्ण चम्पक एवं नीलकमलवत् द्युति वाले, मधुर श्रीवृन्दावन में विराजमान नवीन श्रीयुगलकिशोर को स्मरण कर, जिनके नेत्र, वाक्य एवं देह–विलासादि के चमत्कारी महा–माधुर्य समूह में धन्य सखीगण भी मूर्च्छित हो जाती हैं।।७५।।

तीर्त्वा त्रैगुण्यसिन्धुं जड़मलिन–महादुःखसारं समस्तं
सन्तीर्य ज्योतिरेकार्णवमथ भगवल्लोकवृन्दानि पश्य ।
आस्वाद्यास्वाद्य तत्तत् सुखमहह जहद्याहि वृन्दावनाख्यं
सर्वोर्ध्वं धाम तस्मिन्मृगय रसमयीं राधिका–कुञ्जवाटीम् ।।७६।।

जड़, मलिन, महादुःखसार, समस्त सत्–रज–तमोगुणमय समुद्र के पार जाकर एवं ज्योतिर्मय महासमुद्र को भी उल्लंघन करके श्रीभगवत्–धामों का दर्शन कर, अहो ! वहाँ के सुख को आस्वादन करते करते श्रीवृन्दावन नामक सब से ऊँचे धाम में प्रवेश कर एवं श्रीराधिका जी की रसमयी कुञ्जवाटी का अन्वेषण कर।।७६।।

निरवधि हृदि राधाकृष्ण–कन्दर्पलीला
वलित–ललितकुञ्जं मञ्जुवृन्दावनान्तः।
अधिवस निजनाथद्वन्द्वसेवास्वजस्रं
चतुरचतुरबुद्धिः प्रेमसौख्याद्भुतर्द्धिः।।७७।।

यदि तू अति सुचतुर एवं प्रेम–सुख की अद्भुत सम्पत्ति युक्त होना चाहता है, तो निरन्तर हृदय में मनोहर श्रीवृन्दावन में श्रीराधाकृष्ण की कन्दर्पलीलामण्डित सुन्दर कुञ्ज में रहकर अपने स्वामी श्रीयुगलकिशोर की निरन्तर सेवा का सुख आस्वादन कर।।७७।।

राधाकृष्णौ नित्यकन्दर्पतृष्णौ संसेवन्ते निर्भरप्रेमपूर्णाः ।
प्रेष्यात्मानः केऽपि तन्मुख्यसख्या श्रीमद्वृन्दारण्यकुञ्जोत्तमेषु ।।७८।।

कोई कोई (महाभाग्यवान्) गाढ़–प्रेमभक्तिपूर्ण भक्त, उनकी (श्रीयुगलकिशोर की) मुख्य–सखी (यूथेश्वरी) के साथ श्रीवृन्दावन के उत्तम–उत्तम कुञ्जों में नित्य कामतृष्णामय श्रीराधाकृष्ण की सम्यक् सेवा करते हैं।।७८।।

किं विद्या–कुल–शील–रूपविभवैः किं दान–यज्ञादिभिः
किं विख्यातिशतैः किमुग्रतपसा किं न्यासयोगादिभिः।
किं तत्त्वानुभवेन विष्णुभजनैः किं तस्य वात्यद्भुते
यो वृन्दावन ईशमोहनरसेऽप्यासीन्न सर्वस्वधीः।।७६।।

जिसकी इस अति अद्भुत एवं ईश्वर को भी मोहित करने वाले रसमय श्रीवृन्दावन में सर्वस्व–बुद्धि (श्रीवृन्दावन ही मेरा सर्वस्व है–ऐसी निष्ठा) नहीं हो सकी तो–उसके विद्या, कुल, शील, रूप एवं सम्पत्ति आदिकों का क्या प्रयोजन ? उसके दान यज्ञादिक का क्या लाभ ? बहुत यश–कीर्त्ति–प्राप्ति का क्या फल ? उग्र तपस्या किंवा संन्यास, योगादि का क्या प्रयोजन ? यदि उसने तत्त्व का अनुभव भी कर लिया तो क्या ? और विष्णु–भजन से ही उसे क्या फल प्राप्त होगा ?।।७६।।

श्रीवृन्दारण्य ! धन्योऽस्म्यतिपरम महात्वत्कृपा–पात्रितोऽस्मि
यतोऽहं येन दत्तो विधि–शुक–सनकाद्यर्थनीयः स्ववासः ।
गौरश्यामे महामोहन–वरमहसी नित्यकैशोरवेशे
नित्यैकानंगरंगे अपि परिचरितुं यन्ममाशापि दत्ता ।।८०।।

हे श्रीवृन्दावन ! मैं धन्य हूँ ! आपके अति महाप्रेम का पात्र हुआ हूँ !! क्योंकि ब्रह्मा, शुकदेव, सनकादि भी जिसके लिये प्रार्थना करते हैं–वह अपना स्थान मुझे (वास करने के लिये) दिया है एवं नित्यकैशोर वेश से भूषित तथा नित्य एकमात्र काम–रंग–परायण गौरश्याम महामोहन श्रीयुगल–किशोर की सेवा करने की आशा भी मुझे प्रदान की है।।८०।।

श्रीवृन्दाटवि ! कोटिमातृ–परमस्निग्धस्वभावे ! रमे–
शाद्यैर्नित्यविचार्यमाण–परमाश्चर्यप्रभावे ! पदम्
स्वं चेल्लोचनगोचरीकृतवती वासञ्च सर्वोत्तमै–
र्मृग्यं दत्तवती तदा निजजने किंवा विलम्बादिह ।।८१।।

हे श्रीवृन्दाटवि ! आप कोटि मातृवत् परम स्निग्ध–स्वभावा हो। आपके परम–आश्चर्यमय प्रभाव को रमा, शिव आदि देवतागण नित्य चिन्तन करते हैं, आप अपने पद (स्थान) का यदि दर्शन कराती हैं एवं सर्व श्रेष्ठजन भी जिस स्थान की खोज करते हैं–वह वासस्थान भी यदि देती हैं, तो फिर अपने दासों

को सेवा दान करने में आप क्यों देर करती हो ?।।८१।।

राधाकृष्णावनधिकसमौ रूपलावण्यलीला–
वैदग्ध्याद्यैर्निरवधि–मिथोवर्द्धि–गाढ़ानुरागौ ।
सान्द्रानन्दाम्बुधि–रसचमत्कारधारां वहन्तौ
वृन्दारण्ये परिचर मुदा नित्यसत्ताप्रकाशौ ।।८२।।

अनधिकसम रूप–लावण्य, लीला–वैदग्धी आदि के द्वारा निरन्तर एक दूसरे का गाढ़ानुराग बढ़ाने वाले, आनन्दघन समुद्र की चमत्कारी रस–धारा बरसाने वाले, नित्य श्रीवृन्दावन में विराजमान श्रीराधाकृष्ण की आनन्दपूर्वक सेवा कर।।८२।।

अनन्तैश्चिज्ज्योत्स्ना–रसजलधिपूरस्तत इतो,
वहद्भिर्गोलोकावधि सकलसंप्लावनकरम् ।
अहो सर्वस्योपर्यतिविमल विस्तीर्णमधुर–
स्फुरच्चन्द्रप्रायं स्फुरति मम वृन्दावनमिदम् ।।८३।।

अनन्त चित् ज्योत्स्नामय रससमुद्र का प्रवाह इधर–उधर फैलकर गोलोक से अखिल (विश्व को) संप्लावित कर रहा है। अहो ! यह श्रीवृन्दावन सबके ऊपर विराजमान होकर अति विमल विशाल मधुर चन्द्र के समान मेरे निकट प्रतिभात हो रहा है।।८३।।

प्रलीनैवात्यन्तं त्रिगुणमय–मायोदयकथा
न रेजुः खद्योता इव च हरिलोकाः सुखमयाः ।
किमन्यत् स्वान्यत् स्फुर्त्यखिलसुखभावाभिभवकृत्
स्वभासा सर्वोच्चेर्ज्वलति ननु वृन्दावनमिदम् ।।८४।।

त्रिगुणमयी माया–विरचित जगत् की बात तो सर्वथा लुप्त हो चुकी है, सुखमय विष्णुलोक भी खद्योतवत् और नहीं सुहाते; और क्या कहूँ ? अपने सिवा अन्यान्य समस्त धामों के सुखमय भावों को पराजय करने वाला यह श्रीवृन्दावन ही अपनी कान्ति से अतिशय देदीप्यमान हो रहा है।।८४।।

यदि हरिचरणप्रेमा–नन्दकदम्बं विडम्बयति ।
राधापदरसवन्यं वृन्दारण्यं तदान्यवार्त्ता का? ।।८५।।

यदि श्रीहरि–चरण के प्रेमानन्दराशि से पूर्ण श्रीराधा पदरसाभिषिक्त

वनराज श्रीवृन्दावन ही विडम्बना (तिरस्कार) करे, तो फिर और क्या कहा जाये?।।८५।।

अपि मम कोटि–भवान्ते भवतु परं तादृशो देहः ।
वृन्दावनमधिवसता–मुच्छिष्टैकस्पृहा भवेद् यत्र ।।८६।।

अहो ! करोड़ों जन्मों के पश्चात् भी मुझे एक ऐसा शरीर प्राप्त हो, जिसमें मैं श्रीवृन्दावन–वासियों की एकमात्र उच्छिष्ट (झूंठन) ही के लिये स्पृहायुक्त हो सकूँ।।८६।।

हरि हरि धिगस्तु मामिह यदतिसुतुच्छेषु लोकधर्मेषु ।
अस्वार्थेष्वतिसक्तो विहन्मि वृन्दावनेऽप्यहो वासम् ।।८७।।

हरि ! हरि !! मुझे धिक्कार है !!! क्योंकि अति तुच्छ एवं अपना स्वार्थ (अभीष्ट) विनाश करने वाले लोक–धर्मों में अति–आसक्त होकर मैं श्रीवृन्दावन वास को भी नष्ट कर रहा हूँ।।८७।।

प्रायश्चित्तमघानां महदपराधे परं शरणम् ।
सकलस्वधर्म–मौलिः पुमर्थमौलिश्च राधिकाविपिनम् ।।८८।।

सब पापों का प्रायश्चित–महत्–पुरुषों का अपराध हो जाने पर परम शरण लेने योग्य–समस्त स्वधर्मशिरोमणि एवं पुरुषार्थ चूड़ामणि केवल श्रीराधिका–विपिन (श्रीवृन्दावन) ही है।।८८।।

अपि तुच्छलोकरञ्जन–मासञ्जनमत्र–विड्भाण्डे ।
प्रिय! वृन्दावनजीवन जनसंगं स्वार्थ भञ्जनं मुञ्च ।।८९।।

हे प्रिय ! हे वृन्दावन जीवन !! अति तुच्छ लोक–रञ्जन एवं इस विष्ठापात्र–शरीर में आसक्त तथा स्वार्थ–नाश करने वाले लोगों का संग त्याग कर।।८९।।

वृन्दावन–तृणगुल्माद्यनिशं सच्चिद्रसात्मकं कलयन् ।
प्रणमन्नतिभक्तिभरादय इह वसेत्तं नमन्त्यहो धन्याः ।।९०।।

जो श्रीवृन्दावन के तृण–गुल्मादि का सच्चिदानन्दघन मूर्तिरूप में निशिदिन दर्शन करता है एवं उनको भक्तिपूर्वक निरन्तर प्रणाम करते हुए यहाँ (श्रीवृन्दावन में) वास करता है, उसको भाग्यवान् पुरुष भी नमस्कार करते हैं।।९०।।

मृदु मधुर शीतल दिव्य–सुगन्धियुक्त वायु रन्ध्रों में से प्रवेश कर जिसकी अन्तरंग भाव से सेवा कर रहा है; जो दोनों की प्रिय वस्तुओं से सुसज्जित होने के कारण लोभनीय हो रहा है–ऐसे अति मनोहर कुञ्ज–मन्दिर में काम–विह्वल उन गौर–नील–छवि श्रीयुगलकिशोर को स्मरण कर।।९९।।

अदूरे श्रीगोवर्द्धनगिरिवरान् मोहनमहा
महःसिन्धुर्विन्दूकृत–सकल–सच्चिद्रसरुचिः ।
सुधासिन्धोः कोटीमधुरिम्–मुधाकारि–कणिक
स्तदन्तः श्रीवृन्दावन–वनमहामण्डनवनम् ।।१००।।

श्रीगोवर्द्धन गिरिराज के निकट मोहन महाज्योति–सिन्धु उत्थित हो रहा है; उसके सामने सब सच्चिदानन्दमय ज्योति–समूह बिन्दुवत् प्रतीत होते हैं, उसका एक कण सुधा–समुद्र के कोटि माधुर्य को भी हरण करता है; उसके भीतर श्रीवृन्दावन का महाशोभामय वनराज विराजमान है।।१००।।

सर्वानन्दरसैकविन्दु–परमानन्दाम्बुधि–स्यन्दनं
सर्वाश्चर्यवनं श्रियोऽपि हृदयाक्ष्याकर्षणश्रीभरम् ।
शुद्धानन्दरसैकसार–सुचमत्कारैकधाराकरं
सौरभ्योज्ज्वलताच्छतामसृणता–माधुर्यवत्ताद्भुतम् ।।१०१।।

जिसके एक बिन्दु में ही सर्वानन्द–रस भरा हुआ है–ऐसे एक महा आनन्द के समुद्र को प्रवाहित करने वाला, साक्षात् लक्ष्मीदेवी के भी हृदय एवं नेत्रों को आकर्षण करने वाले सौन्दर्य से मण्डित, एवं विशुद्धानन्द–रस के एकमात्र सार की सुचमत्कारी वर्षा करने वाला–सुगन्धि, उज्ज्वलता, स्वच्छता, कोमलता एवं माधुर्य के आधिक्य में सर्वाश्चर्यमय यह श्रीवृन्दावन अद्भुत है।।१०१।।

प्रफुल्लदिव्यमल्लिका–लवंग–जाति–यूथिका
कदम्ब–चम्पकावली–स्थलारविन्द–वीथिभिः ।
शिरीष–कुन्द–केतकी–कुरुम्भ–किंशुकादिभि–
र्मनोज्ञ–माधवीलताद्यनन्तपुष्पवल्लिभिः ।।१०२।।

प्रफुल्लित दिव्य मल्लिका, लवंग, जाति, यूथिका, कदम्ब, अनेक चम्पक एवं स्थलपद्म समूह, शिरीष, कुन्द, केतकी तथा केशू आदि मनोहर माधवीलतादि

अनन्त पुष्पलता समूह।।१०२।।

प्रियंगु–नागकेशरैरशोककर्णिकारकैः
स्फुटातिमुक्त–सप्तला–सुवर्णयूथिकादिभिः ।
विचित्रभेद–झिण्टिका–सुगंधबन्धुजीवकै–
र्हयारि–कुब्जकादिभिः प्रफुल्लितैर्विचित्रितम् ।।१०३।।

प्रियंग, नागकेशर, अशोक, कर्णिकार एवं प्रफुल्लित माधवीलता, नव गल्लिका, स्वर्ण–यूथिका आदि नानाविध झिण्टिका, सुगन्धित बन्धूक–पुष्प तथा प्रफुल्लित हयारि, कुब्जक आदि पुष्पमयवृक्षों से (यह श्रीवृन्दावन) सुसज्जित हो रहा है।।१०३।।

विचित्रपल्लवोद्गमैर्विचित्रपुष्पसम्भृतै–
र्विचित्रपत्रमञ्जरीविचित्रगुच्छजालकैः ।
विचित्रसौरभोदयै र्विचित्रसीधुवर्षिभि–
र्विचित्ररोचिरुज्ज्वलैः परैश्च शाखिभिर्वृतम् ।।१०४।।

जिनमें विचित्र पल्लव निकल रहे हैं, जो विचित्र पुष्पों से लदे हुए हैं, जो विचित्र पत्र, मञ्जरी एवं विचित्र गुच्छ–स्तवक–युक्त हैं एवं विचित्र सुगन्धिपूर्ण, विचित्र मधु वर्षणकारी एवं विचित्र कान्तियुक्त हैं–ऐसे उज्ज्वल वृक्षों से (यह श्रीवृन्दावन) मण्डित है।।१०४।।

राधाकृष्ण–रहःकथानुवदनादाश्चर्यमाधुर्यवद्'
ध्वानैः श्रीशुकसारिका–व्यतिकरैरानन्दसर्वस्वदम् ।
कर्णाकर्षि–कुहूः कुहूरिति कलालापैर्वृतं कोकिलै–
र्नृत्यन्मत्तमयूरमन्यविहगैश्चानन्दकोलाहलम् ।।१०५।।

(यह श्रीवृन्दावन) श्रीराधाकृष्ण की गुप्त कथा–पाठ करने के कारण आश्चर्यमय माधुर्यपूर्ण श्रीशुकशारिकाओं की उच्चध्वनि से अत्यधिक आनन्द प्रदाता है, कानों को आनन्द देने वाले "कुहु" "कुहु" का अव्यक्त मधुर आलाप करने वाली कोकिलाओं से मण्डित है, नृत्य करने वाले मत्त मयूरों से एवं नानाविध पक्षियों के आनन्द–कोलाहल से मुखरित हो रहा है।।१०५।।

तन्मध्ये नवमञ्जुकुञ्जवलयं शोभाविभूत्याऽसमा–
नोर्ध्वं दिव्यविचित्ररत्नलतिकाद्यानन्दपुष्पश्रिया ।

अन्तस्तल्पवरं वरोपकरणैराढ्यं समन्ताद्दधद्–
राधामाधवभुक्तभोग्यमखिलानन्दैकसाम्राज्यभूः ।।१०६।।

उसमें (श्रीवृन्दावन में) मनोहर कुञ्ज समूह हैं, जो शोभा–सम्पत्ति एवं दिव्य विचित्र रत्नलतिकादिकों की आनन्दमय पुष्प लक्ष्मी से असमोर्ध्वता को प्राप्त हो रहा है और उसमें उत्तम उत्तम उपकरणों से सुसज्जित अति उत्कृष्ट शय्या विद्यमान हैं एवं चारों ओर श्रीराधामाधव की भोजन एवं भोग्य की वस्तुएं शोभित हैं, इस प्रकार सर्वत्र केवल आनन्द का ही साम्राज्य प्रतीत होता है।।१०६।।

मध्ये–तादृश–कुञ्ज–मण्डलमहो कुण्डं महामोहनं
सान्द्रानन्दमहारसामृतभरैः स्वच्छैः सदा संभृतम् ।
रत्नाबद्धचतुस्तटीविलसितं सद्रत्नसोपानव–
त्तीर्थं श्रीतटसत्कदम्बक–तलच्छायामणीकुट्टिमम् ।।१०७।।

अहो ! इस प्रकार कुञ्जमण्डल के भीतर महामनोहर कुण्ड है, जो आनन्दघन महारसरूप निर्मल अमृत (जल) से सदा पूर्ण रहता है; उसके चारों तीर रत्नों से बंधे हुए हैं; घाट भी उत्तमोत्तम रत्नमय सीढ़ियों से मण्डित हैं–उसके किनारे पर कदम्बवृक्ष की छाया पर मणिमय दीवार (जंगला) शोभित है।।१०७।।

गाधागाधतया तयोरतिमुदं कुर्वत् परप्रेष्ठयो–
र्नानादिव्यरसोत्तमानवसरे व्यञ्जत्तयोः प्रीतये ।
आश्चर्यं कमलोत्पलादिकुतुकायोन्मीलयन्मीलयन्
नानारत्नमयच्छटाम्बुधिजलं व्यञ्जन्निकुञ्जादिकम् ।।१०८।।

परम प्रियतम श्रीयुगलकिशोर को आनन्द देने के लिये उसमें (कुण्ड में) कहीं गम्भीर एवं कहीं थोड़ा जल है, उनकी प्रीति के लिये स्थल स्थल पर अनेक प्रकार के दिव्य रस (पान करने के लिये) विद्यमान हैं; उनके कौतूहल के लिये आश्चर्य–जनक कमल–उत्पलादि भी बारम्बार खुलते एवं मुंदते हैं नाना मणि–कान्तिमय जल में निकुञ्जावलि प्रतिबिम्बित हो रही है।।१०८।।

निर्मर्याद–महासुसौरभचमत्कारैर्विवर्धिष्णुभि–
र्माधुर्यैश्च पदे–पदेऽद्भुततमै रोम्णां मुहुर्हर्षणैः ।

नानारत्नसरोजिनीकुमुदिनीमुख्यैर्महासुन्दरं
कीर्णं पुष्पचयैस्तटक्षितिरुहां स्यन्दैर्मधूनामपि ।।१०६।।

असीम महासुगन्धि के चमत्कारयुक्त निरन्तर वर्द्धनशील माधुर्ययुक्त, पद पद पर अद्भुततम रोमाञ्च उदयकारी अनेक प्रकार के रत्नपद्म, कह्लार आदि मुख्य मुख्य पुष्पों से समाकीर्ण एवं महासुन्दर तथा तीर के वृक्षों की मधुधारा से सींचे हुए–।।१०६।।

मध्येवारि रतोत्कयोः रसिकयोर्व्यञ्जन्–निकुञ्जोत्तमं
यद्वा रत्नमयातिसुन्दरगृहं सर्वालिविस्मापकम् ।
अम्भः सम्भवदेव वाथ परितश्चोर्ध्वं तले स्वच्छसद्–
रत्नक्षौणि–समीहितोपकरणे दिव्यप्रसूनान्तरे ।।११०।।

जल में क्रीड़ा परायण रसिकयुगल की उत्तम निकुञ्ज शोभित हैं; अथवा सखीमण्डली को भी विस्मित करने वाला रत्नमय अति सुन्दर गृह है; मानो वह जल से ही उत्पन्न हुआ है; और चारों दिशाओं में ऊपर नीचे स्वच्छ सुन्दर रत्नभूमि पर अभीष्ट उपकरण (सामग्री) सुसज्जित है एवं भीतर भी दिव्य पुष्पों से पूर्ण हो रहा है।।११०।।

महामणिमयोज्ज्वलत्तटचतुष्टयेऽत्युल्लसद्–
विचित्र–बहुमण्डनाद्भुत–महो–लतामण्डपे ।
विचित्र–बहुपंक्तिक–स्फुटकदम्बमुख्याद्भुत–
च्छटामृतमय–द्रुमावलिसमृद्धि–शोभाद्भुतम् ।।१११।।

अहो ! महामणिमय उज्ज्वल चारों तटों पर लतामण्डप में विचित्र अलंकारों के द्वारा (वह कुण्ड) अत्यन्त आश्चर्यजनक हो रहा है, एवं विचित्र अनेक पंक्तिमय प्रफुल्लित कदम्ब की भाँति अद्भुत छटारूप अमृतमय वृक्षों की समृद्धि–शोभा से अद्भुत प्रतीत हो रहा है।।१११।।

राधाकृष्णापारकन्दर्पतृष्णा सिन्धोर्वृद्धिं तन्वदत्यन्तमेव ।
अत्याश्चर्यं केलिवैदग्ध्यवृन्दं वृन्दारण्यानन्दिनोः सन्दिशैतत् ।।११२।।

(वह कुण्ड) श्रीराधाकृष्ण की कामतृष्णा के अपार सिन्धु की महावृद्धि करता है। (हे कुण्ड !) श्रीवृन्दावन–विनोदी युगलकिशोर का अत्याश्चर्यमय केलि–वैदग्धिसमूह मुझे (भी) बताओ–दिखाओ–यह मेरी प्रार्थना है।।११२।।

मधुर मधुर–गुञ्जन्मञ्जुरोलम्बपुञ्जे–
कनक कमलिनीनां कानने यत्र राधा ।
प्रियमधिगतवक्त्र–भ्रान्तिकं पद्मचुम्बे–
ष्पपि निजमुखचुम्बेनाश्वसन्तं जहास।।११३।।

श्रीवृन्दावन में–मधुर मधुर गुञ्जनकारी मनोहर भंवरों से संव्याप्त स्वर्णकमलिनियों के वन में श्रीराधा के मुख (कमल) की भ्रान्ति में कमलों को चुम्बनकारी प्रियतम को श्रीराधा अपने मुख–चुम्बन की आश्वासना देते हुये हंसीं।।११३।।

श्रीप्रबोधानन्द सरस्वति–विरचित श्रीवृन्दावन–महिमामृत का
चतुर्थ शतक समाप्त हुआ।।४।।

पञ्चमं शतकम्

किंचिच्चन्दनकोटिजित्वरमहो कस्तूरिका–कोटिजित्
किंचित्किंचिदुदारसौरभमयं कर्पूरपूरादपि।
किंचित्कुङ्कुमपंकरंकणमहामोदं किमप्युल्लसत्–
सौरभ्येण विनिर्ज्जितागुरु महापूर्वं किमप्युद्भवत्।।१।।

अहो ! इस श्रीवृन्दावन का कोई कोई स्थल कोटि–२ चन्दन–वनों को पराजित करने वाला है एवं किसी–किसी स्थल ने कोटि–कोटि कस्तूरी की राशियों को भी जीत लिया है तथा कोई स्थान कर्पूर के प्रवाह से उत्तम सौरभमय हो रहा है, कहीं कुंकुम की पंक का लेप हो रहा है, जो महा आनन्दकारी है। कहीं–कहीं तो अगरु को लज्जित करने वाली महा अद्भुत अपूर्व सुगन्ध छा रही है।।१।।

नानापुष्प सुवासवृन्दमनिशं दिव्यं समुन्मीलय–
न्नानापानकरूपतां प्रकटयन्नाना–सुभक्ष्योदयम्।
नानासान्द्ररसोल्लसत्फलभरं श्रीराधिकामाधव–
क्रीड़ावेशवशात्त्रुटन्मणिसरस्रङ् मेखलाद्यैर्युतम्।।२।।

श्रीवृन्दावन में दिन रात अनेक प्रकार के पुष्पों की सुगन्धि इधर–उधर छा रही है। कहीं अनेक प्रकार के मकरन्द प्रवाहित हो रहे हैं एवं अनेक प्रकार के सुन्दर स्वादयुक्त भोज्य पदार्थ उपस्थित हैं। कहीं मधुर रसपूर्ण अनेक फलों से लदे हुए वृक्ष शोभायमान हैं और कोई स्थान श्रीराधामाधव के क्रीड़ा करते समय टूटे हुए मुक्ताहारादि तथा माला–मेखलादि से परिशोभित हो रहे हैं।।२।।

अन्तरीयगसुरत्नमण्डपे स्वीयकुण्डमनु वार्षभानवी।
श्यामलेन सहगानकौतुकं कुर्वती स्फुरतु मे सखीवृता।।३।।

श्रीराधाकुण्ड के निकट अन्तरंग सुन्दर रत्नमण्डप में सखिवृन्द के साथ श्रीवृषभानुनन्दिनी श्रीश्यामसुन्दर के सहित गान–कौतुक कर रही हैं–ऐसी छवि मेरे चित्त में स्फुरित हो।।३।।

सखीभिः सम्भूय स्वकरकमलद्वन्द्वकलितै–
र्जलैः सेकं राधा बहु विदधती नागरमणेः।
सुधापूर्णान् वर्णान्नमित वदनेन्दोरलमलं
जितोऽस्मीत्याकर्ण्याहसदुपरता यत्र किमिति।।४।।

श्रीराधाजी सब सखियों के साथ मिल कर नागरमणि (श्रीश्यामसुन्दर) के शरीर पर अपने दोनों कर–कमलों से जब अनेक जल सिञ्चन करने लगीं, तब श्रीश्यामसुन्दर अपने मुख–चन्द्र को झुकाकर "और नहीं, और नहीं, मैं हार मानता हूँ" ऐसा कहने लगे। श्रीश्यामसुन्दर के ये अमृतमय वचन सुनकर श्रीराधाजी जल फैंकना बन्द कर क्या अद्भुत हँसी।।४।।

स्वल्पातिमंजुलनिकुञ्जपरीतह्रस्वै–
र्विस्तीर्णशाखिवर पुष्प–सुकल्पवृक्षैः।
वीते कदापि कुसुमाभरणं विचित्रा–
यत्राततान विह्रती रसमूर्त्तियुग्मम्।।५।।

थोड़े और अति मनोहर निकुञ्जों से परिवेष्टित, छोटे तथा विस्तीर्ण सुन्दर वृक्षों के फूलों से सुसज्जित एवं कल्पवृक्षों से मण्डित इस श्रीवृन्दावन में पुष्प–भूषणों से भूषित होकर रसमूर्त्ति श्रीयुगलकिशोर विचित्र–विचित्र विहार करते हैं।।५।।

परस्पर–विलोचनाञ्चल चमत्कृतै सस्मितं
परस्पर मुरुच्चलात् सपुलकांगकस्पर्शनैः।
परस्पर–कथासुधारससरितप्रवाहैः सदा
परस्पर–महारतिर्जयति राधिका–कृष्णयोः।।६।।

परस्पर नैनों के कटाक्षों की चमत्कारिता में मृदु मधुर मुसक्यान के सहित अनेक छल पूर्वक एक दूसरे के पुलकित विग्रह को स्पर्श करने के लिए तथा एक दूसरे की कथामृत–रस–भरी नदी के प्रवाह द्वारा उमड़ी हुई श्रीराधाकृष्ण की परस्पर महारति जय युक्त हो।।६।।

व्यञ्जत्कैशोरदिव्यद्रुतकनकनिभ–श्रीमदंगच्छटौघैः
शश्वन्नाना–चमत्कारिभिरतिमधुरानंगभंगीतरंगैः।
श्यामप्रेम्णो विकारैर्घनपुलकततीर्गद्‌गदोक्त्यश्रुकम्पै–
रालीर्विस्मापयन्ती स्वरतिवनचरीः सैव राधेश्वरी मे।।७।।

जो श्रीराधाजी, अपने यौवनयुक्त दिव्य तप्त स्वर्ण की भांति सुन्दर कांति समूह के द्वारा, पुनः पुनः अनेक प्रकार की अति चमत्कारी मधुर कामभंगी तरंगों के द्वारा, एवं श्रीश्यामसुन्दर के प्रेमविकार जनित गम्भीर पुलकावलि, गद्‌गद् वाणी तथा अश्रु कम्पादि के द्वारा स्वानन्दमय वनचारिणी सखीगण को विस्मित करती हुई श्रीवृन्दावन में विराजमान हैं, वही मेरी स्वामिनी हैं।।७।।

व्रजाद्याता वृन्दावनमतिमहाश्चर्यमधुर–
स्फुरल्लीलारूपच्छबिसुरतवैदग्ध्यलहरी।
स्वकुण्डस्थल्यान्तः शतशतगुणव्यञ्ज़िसुषमा–
चमत्कारादिर्मे स्फुरतु हृदि राधा सदयिता।।८।।

अत्यन्त महाश्चर्यमय मधुर स्फूर्ति प्राप्त लीला–रूप–सौन्दर्य–सुरत–वैदग्धलहरीयुक्त श्रीराधा ब्रज से श्रीवृन्दावन आती हैं–एवं श्रीराधाकुण्ड स्थलि की शत–शत गुण–शोभा एवं चमत्कारिता आदि का प्रकाश करती हैं, श्रीश्यामसुन्दर के सहित वह मेरे हृदय में स्फुरित हों।।८।।

श्रीवृन्दाविपिनप्रसारि–परमाश्चर्योल्लसत्सौरभं,
माधुर्य्यामृतसिन्धु–बन्धुर–महाज्योतिस्तरंगाद्भुतम्।

नानाभूमिभिरुत्तरोत्तरचमत्कारातिरेकं मम,
श्रीराधाद्भुतकेलिकुण्डमुदयैस्तुण्डं कदा मण्डयेत्।।६।।

श्रीवृन्दावन में परम आश्चर्यजनक उल्लासमय सुगन्धियुक्त जो श्री राधाकुण्ड या श्रीराधा–केलि वर्णन है, वह माधुर्यामृत सिन्धु की मनोहर अद्भुत महाज्योतिर्मय तरंगोंयुक्त है, अनेक लोकों को उत्तरोत्तर महाचमत्कृत करने वाला है, वह श्रीराधाकुण्ड या श्रीराधा–केलि–वर्णन मेरे मुख में प्रकट होकर कब मेरी शोभा को बढ़ायेगा ?।।६।।

वृहद्विकचकाञ्चनाम्बुरुहकर्णिकायां स्थितौ,
तदीय–दलकेशरैरहह यत्र तो युज्यतः।
परस्परमतिस्फुरत्कनकनीलरत्नच्छबी
महारसिकदम्पती किमपि दोलितांगौ मुहुः।।१०।।

बहुत बड़े प्रफुल्लित स्वर्णकमल में विराजमान होकर, अहो ! उसके केसर दल समूह से मिलकर परस्पर एक दूसरे की अति सुन्दर स्वर्ण एवं नीलमणि कांति को प्रकाश करते हुए जब महा रसिक श्रीयुगलकिशोर अपने अंगों को बार–बार डोलायमान करते हैं, तब कैसी आश्चर्यमय शोभा होती है ?।।१०।।

अनन्त–हरिराधिका–मधुरकेलिवृन्दैः सदा
महाद्भुतमहो महारसचमत्कृतीनां निधिम्।
महोज्ज्वलं महासुसौरभतमं च वृन्दावने
स्मरोन्मद–तदीश्वरीदयित–दिव्यकुण्डं नुमः।।११।।

अहो ! श्रीराधाकृष्ण का अनन्त मधुरकेलिसमूह द्वारा जो सदा महा अद्भुत हो रहा है, एवं चमत्कारी महारस का समुद्र है तथा महान उज्ज्वल एवं महान सुगन्धिपूर्ण है, श्रीवृन्दावन में विराजमान केलि–उन्मत्त वृन्दावनेश्वरी श्रीराधाजी के प्रिय उस दिव्यकुण्ड (श्रीराधाकुण्ड) की मैं स्तुति करता हूँ।।११।।

यद्वारि स्पृशतां सतो रसमयी काऽप्यद्भुता चेतसो
वृत्तिः सद्य उदेति तत्र विहरत्यानन्दमूर्त्तिद्वयम्।
शुद्धानंगरसैकलास्य–परमोत्कर्ष सुगौरोज्ज्वल–
श्यामं कुण्डमिदं श्रयेम परमं वृन्दाटवी मण्डनम्।।१२।।

जिसका जल स्पर्श करने से शुद्धचित्त में किसी एक अद्भुत रसमयी वृत्ति का तत्काल ही उदय होता है, जो केवल विशुद्ध अनंग रस के प्रवाह से सुशोभित है एवं सुन्दर गौर–उज्ज्वल कांति युक्त है, उसमें आनन्दमय श्रीयुगलकिशोर नित्य विहार करते हैं, अतएव परम रमणीय श्रीवृन्दावन के भूषणस्वरूप श्रीश्यामकुण्ड की मैं शरण लेता हूँ।।१२।।

श्रीगोवर्द्धन–मौलिमण्ड़न–महारत्नोत्तमं राधिका–
कुण्डं मोहनपुण्डरीकनयन–प्राणेश्वरीवल्लभम्।
घूर्णन्मौलिविलोलकुण्डलवरं तुण्डेन्दुविम्बोल्लसद्–
वंशं शंसति यत्र मादकगुणान् रोमांचितोमाधवः।।१३।।

जहाँ माधव पुलकित होकर मस्तक आन्दोलन करते हुए डोलामय कुण्डलों से एवं मुखचन्द्र की छटा से चारों दिशाओं को प्रकाशित करते हैं तथा अपनी वंशी में उन्मादनकारी गुणों का अलाप करते हैं एवं जो कमलनयन प्राणेश्वरी वल्लभ श्रीमोहन को एकान्त प्रिय है, श्रीगोवर्द्धन का मुकुटमणि महारत्न–श्रेष्ठ, यही श्रीराधाकुण्ड है।।१३।।

श्रीवृन्दावन शोभयाऽपि परयाश्लाघ्यां हरेर्वल्लभ–
श्रीगोवर्द्धन शैलराजशिरसाऽप्यत्यादरेणानताम्।
राधाकृष्ण महाद्भुतस्मरकला–माधुर्य्यशोभाभरां
वल्लीमण्डपमण्डलीं स्मर सखे! श्रीराधिका–कुण्डगाम्।।१४।।

हे सखे! परम उत्कृष्ट श्रीवृन्दावन शोभा के द्वारा भी जो प्रशंसनीय है, श्रीहरि–प्रिय श्रीगोवर्द्धन गिरिराज भी उसकी आदर से वन्दना करता है, श्रीराधाकृष्ण की काम कलाओं की माधुर्य शोभा से परिपूर्ण श्रीराधाकुण्ड स्थित उस लता–मण्डप समूह को स्मरण कर।।१४।।

असमोर्द्ध्व स्मरवर्द्धिनि राधाकुण्डे महारसाविष्टौ।
गौरश्यामकिशोरौ स्मर तौ रसविह्वलौ सखीवलये।।१५।।

असमोर्द्ध कामवर्द्धनशील श्रीराधाकुण्ड में सखीसमाज सहित महारस में आविष्ट एवं विह्वल उन गौरश्याम युगलकिशोर को स्मरण कर।।१५।।

दिव्यानन्तविचित्र–वैभवरसान्मुह्यद्वैकुण्ठेश्वरं
गान्धर्व्वाहृदयैकबन्धु मधुर प्रेमोन्मदान्धाऽखिलम्।

विद्यानन्दसुधैकसिन्धुपरतो जाज्वल्यमानं क्षितौ
तद्वृन्दावनमप्रमेयरसदं प्राप्याऽन्यदीक्षेत कः? ।।१६।।

जो श्रीवृन्दावन अपने अनन्त विचित्र वैभवरस से वैकुण्ठपति को भी मोहित करता है, एवं श्रीराधा–हृदय–बन्धु श्रीश्यामसुन्दर के मधुर प्रेम द्वारा निखिल वस्तुओं को उन्मत्त तथा मदान्ध कर देता है और इस पृथ्वी पर विद्यानन्द–सुधा के एकमात्र समुद्र के परे परम उज्ज्वल जो यह असीम रसदायक श्रीवृन्दावन है–उसे प्राप्त करके कोई फिर अन्य वस्तुओं को देखना चाहता है क्या? ।।१६।।

रूपाणि व्रजभीरुसीम–भगवत् प्रेष्ठैर्निषेव्याणि ते
मुक्तैश्चारुविधानि सन्तु परमानन्दात्मवृन्दावन !।
श्रीराधामुरलीमनोहर रसोदारे तु रूपे महा–
माधुर्यान्तिम–सीमनिस्मृति पथं यातेऽपि धन्यस्त्वहम् ।।१७।।

हे परमानन्द स्वरूप श्रीवृन्दावन ! आपके अनेक मनोरम रूप समूह मुक्त और ब्रज–गोपीगणों पर्यन्त भगवत्प्रिय भक्तों से सेवित हों, किंतु श्रीराधामुरलीमनोहर के महामाधुर्य की चरम सीमा को प्राप्त हुआ अतिरसमय जो अत्युत्कृष्टरूप है, उसकी स्मृति आने पर भी मैं कृतकृत्य हो जाता हूँ।।१७।।

राधाकृष्ण–सुगानशिक्षणपरा गायन्ति यत्रोन्मदा।
नानाश्चर्यविधं रसालशिखराण्यारुह्य पुंस्कोकिलाः।।
यन्नृत्यानि च वीक्ष्य शिखिनो नृत्यन्ति चित्रं व्यधु–
स्तद्गोष्ठीं शुकसारिका यदधि तद्ध्यायामि वृन्दावनम् ।।१८।।

जहाँ आम्र वृक्षों की शाखाओं पर बैठे हुए पुंस्कोकिलाओं के समूह श्रीराधाकृष्ण–विषयक सुन्दर गान शिक्षा में संलग्न हुए उन्मत्त होकर अनेक आश्चर्यमय गान कर रहे हैं, एवं जिनकी नृत्य–कलाओं को देखकर मोरगण विचित्र नृत्य करते हैं, तथा शुक सारिका जिनके संलाप का अनुवाचन करते हैं, उस श्रीवृन्दावन का मैं ध्यान करता हूँ।।१८।।

संगीतोत्सवरंगिकोकिलगणं नाट्योल्लसद्वर्हि सद्
भृंगीझंकृत दिव्यवादमधुरं स्फुर्जल्लतामण्डपम्।

राधाकृष्णनिषेवणातिरसवद् दासीजनापेक्षिता–
र्थापूरि द्रुमवल्लिवृन्दमुदियाद्वृन्दावनं सुन्दरम्।।१६।।

संगीत–उत्सव में निमग्न कोकिलाओं से जो मुखरित हो रहा है, नृत्य परायण मोरवृन्दों से जो उल्लसित है, एवं सुन्दर मधुकरों की दिव्य मधुरध्वनि से जो गूँज रहा है, जो लताओं के मण्डपों से शोभित है तथा श्रीराधाकृष्ण की सेवा परायण जो रसमय सखीवृन्द हैं उनके वांछित प्रयोजन की सम्यक् पूर्ति करने वाली वृक्षलता वृन्दों से सुशोभित सुन्दर श्रीवृन्दावन है–वह मेरे हृदय में स्फुरित हो।।१६।।

अपारावारात्मप्रभविमल–चिज्ज्योतिरमृता–
म्बुधिद्वीपे वृन्दावनमतुलरोचिः स्मर सखे !।
कदम्बानां वाटीपरिवृतमनन्तद्रुमलता–
निकुञ्जैर्मञ्जु श्रीरसिकयुग–सर्वस्वनिलयम्।।२०।।

हे सखे ! पारावार रहित स्वयंप्रकाश विमल चिज्ज्योतिर्मय अमृत–समुद्र के द्वीप में अतुलनीय कांतियुक्त श्रीवृन्दावन को स्मरण कर। वह श्रीवृन्दावन अनन्त कदम्ब–वाटियों से परिवेष्ठित है एवं अनन्त वृक्षलता–निकुञ्जों से सुशोभित है तथा श्रीरसिकयुगलकिशोर का सर्वस्व निवास स्थान स्वरूप है।।२०।।

नमो नित्यं वृन्दावनतरुलताभ्यः करुणया
किरन्तीभ्यः सर्वानपि च पुरुषार्थान् सकृदपि।
विलोकात् संस्पर्शाच्छ्रवणकथनाच्च स्मरणतो
विभांतीभ्यः पाबे प्रकृतिरससारात्ममहसः।।२१।।

जिनको एक बार मात्र स्पर्श करने से एवं जिनकी कथा एक बार मात्र सुनने, कहने या स्मरण करने से ही वे करुणावश होकर (धर्म–अर्थ–काम–मोक्षादि) सब पुरुषार्थों को प्रदान कर देते हैं और जो प्रकृति रस सारात्मक ज्योति से परे विराजमान हैं, श्रीवृन्दावन के उन तरु–लताओं को मैं नित्य नमस्कार करता हूँ।।२१।।

अतिस्वच्छेऽत्यन्तोज्ज्वल उरुविधोद्यत् परिमले
परागाणां पुञ्जैः श्रुतनवमरन्दैश्च सुभगे।

सुशाखाद्यैर्नीरन्धित उपरि वृन्दावनभुव–
स्तले राधाकृष्णाङ्घ्रिणि रससमयस्निग्धमधुरे।।२२।।

अति स्वच्छ अत्यन्त उज्ज्वल, बहुविधि सुगन्धि से सुवासित, परागपुञ्ज से एवं वृक्षों से चुचाई हुई नव मकरंद से शोभायमान श्रीवृन्दावन की भूमि के ऊपर सुन्दर वृक्ष–शाखाएँ घटाटोपवत् छाई हुई हैं एवं नीचे तलदेश रसमय स्निग्ध मधुर है, वहाँ श्रीराधाकृष्ण के युगलचरण विहार कर रहे हैं।।२२।।

यत्रश्रीराधिका तद्रसविवश–सदानन्दयोः सर्वकाल–
स्थेमा प्रेमामृताब्धिः परमरसचमत्कारसीमाऽस्ति यत्र।
यत्रैवाश्चर्यसीमा यदधि परतरो दिव्यसौभाग्यसीमा
श्रीवृन्दारण्यनामा जयति भगवतः सर्वधामातिधामा।।२३।।

जहाँ तद्रसविवश सदानन्दस्वरूप श्रीराधिका सर्वदा स्थिर–प्रेमामृत–समुद्र के समान विराजमान हैं, जहाँ परमरस की चमत्कारी सीमा है, जहाँ आश्चर्य की एवं दिव्य सौभाग्य की सीमा सर्वातिशायी है, समस्त भगवत्–धामों में शिरोमणि उस श्रीवृन्दावन नामक धाम की जय हो।।२३।।

पञ्चार्थान् प्रेमभक्त्यन्तान् विचिन्वन्ति बुधा मुधा।
कृतार्थाः किल तिष्ठन्ति वृन्दारण्य–तृणाश्रिताः।।२४।।

पण्डितगण प्रेमभक्ति पर्यन्त पञ्च पुरुषार्थों का वृथा ही अन्वेषण कर रहे हैं, वे तो श्रीवृन्दावन के तृण मात्र का आश्रय ग्रहण करने से ही कृतार्थ हो सकते हैं।।२४।।

जीवन्नेव मृतप्रायो देहादौ निरहंममः।
कदा प्रेमरसस्यन्दे विन्दे वृन्दावने स्थितिम्।।२५।।

जीवित अवस्था में ही मृतप्राय होकर सब देहादि का 'अहं मम' भाव त्याग करके प्रेमरस वर्षाकारी श्रीवृन्दावन में कब मैं वास पा सकूंगा।।२५।।

पुनन्ति ब्रह्मरुद्रादीन् येषां चरणरेणवः।
सर्वभावेन मे सेव्यास्ते वृन्दावनवासिनः।।२६।।

जिनके चरणों की रज ब्रह्मा शिवादिकों को भी पवित्र करती है, वे श्रीवृन्दावन–वासी सब भाव से मेरे सेव्य हैं।।२६।।

श्रीराधाकाननस्पर्शाच्छुद्धचिद्रसमूर्त्तयः ।
अप्यमी स्वपरादृश्या नमस्याः श्रीशुकादिभिः ।।२७।।

जिन्होंने श्रीराधाजी के तन का स्पर्श किया है, वे शुद्ध चिद्रस–मूर्त्ति हो गए हैं एवं उनमें अपने–पराये का भाव अदृश्य हो गया है अतः उन्हें श्रीशुकादि महापुरुष भी नमस्कार करते हैं।।२७।।

सापराधाश्चे ये राधापदमाधाय चेतसि।
वसन्ति वृन्दाविपनेऽनन्यान् धन्यान् नमामि तान् ।।२८।।

जो अपराधी होकर भी चित्त में श्रीराधापदपद्मों को धारण करते हुए श्रीवृन्दावन में वास करते हैं, उन बड़भागी भक्तगणों को मैं नमस्कार करता हूँ।।२८।।

तद्भ्रूभंग महानंगतृष्णकृष्ण मुहुः स्तुतम्।
वृन्दावनेश्वरी–दास्यलास्यमेवाभिलष्यते।।२६।।

श्रीराधाजी की भ्रूभंगी मात्र से महा कामातुर श्रीकृष्ण, जिसकी बार बार प्रशंसा करते हैं, मैं उस श्रीवृन्दावनेश्वरी के दास्य–लास्य की अभिलाषा करता हूँ।।२६।।

मधुरमधुरकेलिं कुर्वदुद्वेलकामा–
म्बुधिरसवरसिन्धुस्यन्दि वृन्दावनान्तः।
प्रतिपद सुषमेकाम्भोधि मज्जत्तनुश्रि
स्फुरतु किमपि गौरश्यामधामद्वयं नः।।३०।।

मधुर से सुमधुर केलिपरायण, श्रीवृन्दावन में उमड़े हुए काम समुद्र के श्रेष्ठ रस–सागर की उत्पत्ति करने वाले एवं प्रतिपद में ही शोभासिन्धु में मज्जनशील देहधारी कोई गौरश्याम युगल–किशोर हमारे हृदय में स्फुरित हों।।३०।।

अन्योऽन्यं रूपशोभाललितरतिकलाचातुरीमाधुरीणां
विभ्राणावालिवृन्द–प्रतिपद–सुचमत्कारकारिप्रवाहान्।
गौरश्यामो किशोरौ मिथ उदितमहानंगरंगैकरम्या
वुद्यद्रोमांचपुञ्जौ स्मरति सरसधीः कोऽपि वृन्दावनान्तः।।३१।।

प्रतिपद में सखीगण के सुचमत्कारी परस्पर रूप–शोभा एवं ललित रति–कला–चातुर्य–माधुर्यादि के प्रवाह को धारण करने वाले, तथा एक दूसरे के प्रति उदित महा कामरंग के वशीभूत हुए अति रमणीय एवं पुलकित विग्रह श्रीगौरश्याम युगलकिशोर श्रीवृन्दावन में विराजमान हैं। रसिकपुरुष ही उनका स्मरण करते रहते हैं।।३१।।

अनन्तसुषमानिधिः स्फुरदपारमाधुर्यभू–
रनन्तमति चन्द्रिकानिधिरनन्तसौभाग्यभूः।
अनन्तभगवद्रसोत्तम रहस्यमूलस्थली
मदीहितमनन्तयत्विदमनन्त–वृन्दावनम्।।३२।।

अनन्त सुषमा समुद्र, अनन्त माधुर्य भूमि अनन्त चित् चन्द्रिका समुद्र, सौभाग्यभूमि एवं अनन्त भगवत् रस के सर्वश्रेष्ठ रहस्य की मूलस्थली यह अनन्त श्रीवृन्दावन मेरी सब चेष्टाओं को अनन्तत्व दान करे अर्थात् मैं अनन्त भाव से श्रीवृन्दावन का आस्वादन कर सकूँ।।३२।।

येषां मन्मथकौतुकोत्तरलयोः श्रीराधिकाकृष्णयोः
स्वच्छोदारतलस्थलीमिलितयोरानन्दमग्नात्मनाम्।
आसारा निपतन्ति दिव्यमधुनो दिव्यैः प्रसूनैः फलै–
राकीर्येत मही खगैः कलकलं त्यक्त्वाऽचलैः स्थीयते।।३३।।

आनन्दरस में मग्नचित्त हुए जिन कल्पवृक्षों के नीचे स्वच्छ एवं विशाल स्थलों पर मन्मथ–कौतुक–चञ्चल श्रीराधिकाकृष्ण मिलकर विराजते हैं, उनमें से दिव्य मकरन्दधारा वर्षित होती है दिव्य कुसुम और फलों से पृथ्वी ढक जाती है तथा पक्षी समूह कलरव छोड़कर अचलरूप से अवस्थान करते हैं।।३३।।

महामधुर गुल्मकद्रुमलता–महामाधुरी–
धुरीण–धरणीतलं सुमधुरालि पित्सम्मृगम्।
महामधुरता धुरोब्धुरसवः सरिद्भूधरं
महामधुरभावदं मधुरिमैव वृन्दावनम्।।३४।।

महामधुर वृक्ष गुल्म, लतादि एवं महामाधुर्य से मण्डित जिसका धरणीतल है, सुमधुर भ्रमर, पक्षी एवं मृगों से जो गुञ्जायमान हैं, जहाँ के सरोवर नदी, एवं पर्वत महामाधुर्य के श्रेष्ठ साररूप हैं, ऐसा महामधुर भावदानकारी यह श्रीवृन्दावन

साक्षात् माधुर्यरूप से ही प्रकट हुआ है।।३४।।

दिव्यानन्तरसात्मकप्रियफलैः पुष्पैश्च दिव्यामिता–
मोदैर्दिव्यपराग दिव्यमधुभिर्दिव्यैः खगानां कुलैः।
दिव्यैः पल्लवकौरकादिभिरपि श्रीराधिकाकृष्णयोः
सन्तोषं समुपार्जयामि तरवो भूत्वाऽपि वृन्दावने।।३५।।

दिव्य दिव्य अनन्त रसमय फूलों–फलों से शोभित होकर दिव्य अपरिसीम सुगन्ध से दिव्य पराग से, दिव्य मधु से तथा पक्षियों से व्याप्त होकर एवं दिव्य पल्लव कोरकादि से मण्डित होकर मैं इस वृन्दावन में अनेक वृक्षों का शरीर धारण करके भी श्रीराधाकृष्ण को सन्तोषित करूँगा।।३५।।

आमूलद्रुमजातिविस्तृतमहासुस्निग्धशाखावतां
वृक्षाणामतिदिव्यपुष्पफलसम्भारैर्मनोहारिणाम्।
आरुह्य द्वयमेव कौतुकभरात्तद्गौरनीलं महः
शाखा यत्र चिनोति खेलति तदेवाऽध्येमि वृन्दावनम्।।३६।।

जिस श्रीवृन्दावन में अति दिव्य पुष्प फलादि द्वारा मन को हरण करने वाले, मूलपर्यन्त विशाल पारिजातादि जाति के महा सुन्दर एवं स्निग्ध शाखाओं युक्त वृक्षों पर आरोहण करके गौर–श्याम श्रीयुगलकिशोर कौतुकवश पल्लव पुष्पादि चयन करते हैं, खेल करते हैं, उस श्रीवृन्दावन का मैं सम्यक्‌रूप से ध्यान करता हूँ।।३६।।

या राधाया वरतनु नटेत्युक्तिमात्रेण नृत्येद्
गायेत्युक्ता मधुकररुतैर्विज्ञगानं तनोति।
क्रन्देत्युक्त्या विसृजति मधूत्फुल्लिता स्याद्धसेति
प्रोक्ताश्लिष्य द्रुममिति गिरा सस्वजे घृष्ट्गुच्छा।।३७।।

जो लता 'हे वरांगिणि–नृत्य कर'–श्रीराधा की इस उक्तिमात्र से ही नृत्य करने लगती है, "गान कर" ऐसा कहने से भ्रमर की झंकारवत् मनोमद गान करती है, "क्रन्दन कर"–इस वचन से मधु बरसाने लगती है एवं "हास्य कर"–इस वाक्य से प्रफुल्लित हो उठती है और "वृक्ष को आलिंगन कर" इस उक्ति से पुलकित गुच्छ होकर वृक्ष को आलिंगन करती है–।।३७।।

मत्प्राणेशं नम निगदितेत्यापतत्येव भूमा–
वित्थं तत्तद्वचनवशगा स्यामहं कापि वल्ली।
श्रीराधायाः स्वकरविहित स्वम्बुसेकादि पुष्टा
वृन्दारण्ये मुदितहरिणा दत्तकान्तावराशी।।३८।।

"मेरे प्राणेश्वर को प्रणाम कर"–यह वाक्य सुनते ही भूमि पर पड़ जाती है, इस प्रकार श्रीराधा की आज्ञावशवर्त्तिनी होकर मैं श्रीवृन्दावन की कोई एक लता बनूँगी, जिससे श्रीराधा के अपने कर कमलों से सुन्दर जल द्वारा सिंचित होकर पुष्टिलाभ करूँगी एवं श्रीहरि सन्तुष्ट होकर मुझको "मेरी कान्ता बनो" बोल कर श्रेष्ठ आशीर्वाद करेंगे।।३८।।

या श्रीर्नन्दनपुष्पभद्रप्रमुखे या वाथनैः श्रेयसे
तत्कोटि प्रगुणश्रियातिमधुरं देदीप्ति वृन्दावनम्।
केलि श्रीमदनन्तचित्रसुरसं श्रीराधिकामाधवौ
नित्यं वेदशिरोऽतिदूरपदवीं यद्वैभवं गायतः।।३६।।

नन्दनवन, पुष्पभद्र आदिवनों का जो सौन्दर्य है, अथवा मुक्ति–पद में जो वैभव है उससे कोटि गुण अधिक सौन्दर्य एवं वैभव से युक्त होकर अति मधुर श्रीवृन्दावन कांति विस्तार कर रहा है केलि सौंदर्ययुक्त, अनन्त वैचित्री–रसयुक्त है एवं वेदशिरोमणि–गण भी इसकी महिमा नहीं जानते–इस वृन्दावन के वैभव को श्रीराधामाधव नित्यगान करते हैं।।३६।।

ये नैः श्रेयसमाश्रितास्तुलसिकाद्यामोद संमोदिनो
ये मत्सौरभ–पारिजातकुसुमैर्ये नन्दिनो नन्दने।
ये चान्येषु वनेषु सन्ति मुदिताः पुष्पन्धयानांगणा–
स्ते यत्राभिपतन्ति नित्यममितास्तां नौमि वृन्दाटवीम्।।४०।।

ये समस्त भ्रमर नित्य मुक्तिपद में अवस्थान करते हैं, जो तुलसी आदि की सुगन्धि में अतिशय आनन्दास्वादन करते हैं, जो नन्दनवन में महा सुगन्धियुक्त पारिजातादि कुसुमसमूह में आनन्दलुब्ध रहते हैं एवं जिन्हें कहीं दूसरे वनों में भी आनन्द प्राप्त होता है– वे समस्त भ्रमरवृन्द अनन्त अनन्त यूथों में नित्य जिस वृन्दावन में मुग्ध होकर पड़ते हैं, उस श्रीवृन्दावन को मैं नमस्कार करता हूँ।।४०।।

धन्येऽस्मिन् धरणीतले तनुभृतां दातुं महोच्चं पदं
प्रादुर्भूतमतिप्रभूतमधुरानन्दाब्धि वृन्दावनम्।
ये संसारमहाऽवटे निपतिता ये सर्वसंत्यागिनो
ये मुक्ताश्च य ईश्वराः सकृदपि प्रेक्ष्यैव मुह्यन्त्यहो।।४१।।

अहो ! इस धन्य पृथ्वीतल पर जीवों को महोच्च पद देने के लिए अतिशय मधुर महानन्द–समुद्र श्रीवृन्दावन प्रादुर्भूत हुआ है–जो संसाररूप महागर्त में पड़े हुए हैं, जो सर्वत्यागी हैं, और जो मुक्त एवं जो ईश्वर हैं, वे भी इस श्रीवृन्दावन का एक बार दर्शन करते ही मुग्ध हो जाते हैं।।४१।।

येऽत्यन्त विषयाविष्ट ब्रह्मनिष्ठाश्च ये मताः।
प्रेक्ष्यानन्देन मूर्च्छन्ति सकृद् वृन्दावनश्रियम्।।४२।।

जो लोग विषयों में अत्यन्त आविष्ट हो रहे हैं और जो ब्रह्म–निष्ठ कहे जाते हैं, वे भी केवल एक बार ही इस वृन्दावन की शोभा दर्शन कर आनन्द से मूर्छित हो जाते हैं।।४२।।

श्रीमद्वृन्दावनस्यैव प्रभावोऽयं महाद्भुतः।
यत् स्वसम्बन्धगंधेऽपि बन्धकृद्रससिन्धुदः।।४३।।

श्रीमद्वृन्दावन का यही अद्भुत प्रभाव है कि, जहाँ उसके सम्बन्ध की लेशमात्र भी गन्ध है वहां वह रस, समुद्र प्रदान करने के लिए उसे चिर बन्धन में आबद्ध किए रखता है।।४३।।

वृन्दावनस्य महिमा न हि मादृशगोचरः।
बबन्ध स्वगुणैर्दिव्यैर्यच्छ्रीमत्पुरुषोत्तमम्।।४४।।

श्रीवृन्दावन की महिमा मुझ जैसे व्यक्ति के गोचरीभूत नहीं है, क्योंकि इसने अपने दिव्य गुणों द्वारा श्रीमत्पुरुषोत्तम को भी वशीभूत कर रखा है।।४४।।

अत्युन्मद–महाप्रेम–रससारैः सुसम्भृतम्।
आत्मवत् स्वीयसकलं भज वृन्दावनं वनम्।।४५।।

अत्यन्त उन्मद महाप्रेमरससार से सुसज्जित एवं अपनी समस्त वस्तुओं के प्रति आत्मवत् व्यवहारशील श्रीवृन्दावन नामक वन का भजन कर।।४५।।

धनपुत्रकलत्रादिममता मम तापदा।
इति व्यक्त्वाखिलं वृन्दावनमेव च मे वरम्।।४६।।

धन, पुत्र कलत्रादि के प्रति जो मेरी ममता है, वही मुझे तापित करने वाली है। अतएव वह समस्त त्यागकर यह श्रीवृन्दावन ही मेरे लिए सर्वश्रेष्ठ है।।४६।।

महासहानि दुःखानि सुखान्युन्मादकानि वा।
वृन्दावनदृढ़प्रीतिं नालं चालयितुं हि माम्।।४७।।

महा असहनीय दुखराशि और उन्मत्त करने वाले अनेक सुख भी मेरी श्रीवृन्दावन के प्रति दृढ़ प्रीति को चलायमान नहीं कर सकते।।४७।।

श्रीमद्वृन्दाटवी कुञ्जपुंजे नित्यविहारिणौ।
गौरश्याममहाश्चर्यकिशोरौ मम जीवनौ।।४८।।

श्रीवृन्दावन के निकुंजों में नित्य–विहार करने वाले गौरश्यामात्मक महाश्चर्यमय श्रीयुगलकिशोर ही मेरे जीवन हैं।।४८।।

मन्दप्रज्ञास्त एवात्र मन्दभाग्यास्त एव हि।
ये वृन्दावनमाश्रित्य राधाकृष्णौ न भेजिरे।।४६।।

वे मन्दबुद्धि हैं एवं वे मन्दभागी हैं, जो श्रीवृन्दावन में रह कर भी श्रीराधा का भजन नहीं करते।।४६।।

इदं महच्छोचनं मे महांश्च वत विस्मयः।
न यद्वृन्दावनस्थोऽपि राधाकृष्णौ भजेद्रसात्।।५०।।

यही मुझे बड़ा शोक है और यही मुझे बड़ा भारी आश्चर्य है कि श्रीवृन्दावन में वास करते हुए भी लोग प्रेमपूर्वक श्रीराधा–कृष्ण का भजन नहीं करते।।५०।।

लोकचिन्ता न नो धर्म चिन्ता न देहगा।
श्रीमद्वृन्दावने राधाकृष्ण भावभृतो मम।।५१।।

श्रीवृन्दावन में श्रीराधाकृष्ण की भावनायुक्त हुआ, मुझे न लोक चिंता है और न धर्म चिंता और न देहादि की चिंता है।।५१।।

ये नित्या निर्विकारा निरतिशयगुणा निष्प्रपञ्चस्वभावा
निर्दोषा नित्यमुक्ता निगमगण–समुद्गीत–दिव्यानुभावाः।
आनन्दापार–सम्विद्रसघनवपुषः कृष्णभावैकमग्ना–
स्तान् वन्दे श्रीलवृन्दावनतरुनिकरान् सर्वसर्वार्थदातृन्।।५२।।

जो नित्य, निर्विकार असमोद्र्ध्व गुणवान् एवं अप्राकृत स्वभाववान् निर्दोष नित्यमुक्त हैं तथा जिनके दिव्य अनुभाव समूह को वेदगण नित्य समुच्च स्वर से गान करते हैं, जो आनन्द तथा असीम ज्ञान–रसघन विग्रह धारण करने वाले हैं और कृष्णभावैक मग्न हैं, तथा निखिल जगत् के सर्व पुरुषार्थों को देने वाले हैं, ऐसे श्रीवृन्दावन के वृक्षों की मैं वन्दना करता हूँ।।५२।।

दिव्यानेकविचित्रपुष्पफलभारानम्रशाखान् महा–
विस्तीर्णान् परमोच्छ्रितान् खगकुलैः संरावकोलाहलान्।
नीरन्ध्रान् दलपल्लवैस्तत इतो मत्तालिमालाकुलान्
वन्दे स्यन्दिमरन्दसान्द्रसुसुधान् वृन्दाटवीशाखिनः।।५३।।

दिव्य दिव्य अनेक विचित्र पुष्प–फलों के भार से जो झुक रहे हैं, बहुत दूर तक विस्तृत एवं बहुत ऊँचे हैं, पक्षियों के कोलाहल से जो मुखरित हो रहे हैं एवं पत्र–पल्लवों के द्वारा जो छिद्ररहित हैं, जिनके चारों ओर अलिगण गुञ्जार कर रहे हैं, ऐसे उत्कृष्ट रसघन–सुधाराशि बरसाने वाले श्रीवृन्दावन के वृक्षों की मैं वन्दना करता हूँ।।५३।।

ऊद्र्ध्वप्रेक्षणमोहनाक्षिवदनं श्रीराधिका तर्जनी–
मुत्तोल्यामृतभाषितेन तलगा सन्दर्शयेन्मोहिनी।
येषां दिव्यफलानि नागरवरः संपातयेत् सादरं
स्वामिन्येवमवाचिनोति भज तान् वृन्दावनशाखिनः।।५४।।

मोहिनी श्रीराधिका जिन वृक्षों के नीचे अवस्थान करके तर्ज्जनी को उठाते हुए अमृतमय वाक्य विन्यास, द्वारा श्रीश्याम सुंदर को अपने मोहनकारी नेत्रों को, जो ऊपर देखने से अपूर्व छवि धारण करते हैं, तथा अपने मुखचन्द्र को दिखाती हैं–नागरवर उन बताये हुए दिव्य फलों को नीचे फैलाते हैं एवं श्रीराधा उन समस्त फलों को संग्रह करती हैं–श्रीवृन्दावन के उन वृक्षवृन्दों का भजन कर।।५४।।

महाज्योतीरूपाः प्रतिपद महानन्दमधुरा
महातुंगा शाखावितितिषु महाविस्तृतियुताः।
महार्थान् वर्षन्तो निरवधि महापुष्पफलिनो
महीयांसो वृन्दाविपिनतरवो भान्ति महताम्।।५५।।

महाज्योतिस्वरूप, प्रति पद पद में महानन्द मधुर, महोच्च शाखा विस्तारपूर्वक महार्थ अर्थात् धर्म, अर्थ, काम मोक्ष एवं प्रेमादि को वर्षण करने वाले महा महातम श्रीवृन्दावन के वृक्ष शोभित हो रहे हैं।।५५।।

श्रीमद्वृन्दावनविटपिनः सच्चिदानन्दसान्द्रा–
श्चन्द्रादित्यप्रमुखनिखिलज्योतिरेकाणुभासः।
शाखापत्रादिभिरविमिताः सर्वदिव्यर्त्तुसेव्याः
सर्वोत्तापच्छिदुरशिशिरच्छाययाढ्या जयन्ति।।५६।।

श्रीनववृन्दावन के वृक्षराज सच्चिदानन्द घन स्वरूप हैं, चन्द्र सूर्यादि निखिल ज्योति समूह उनकी ज्योति का एक कण मात्र हैं अथवा वे समस्त इनके ज्योति कण से प्रकाशित होते हैं। वे असीम शाखा–पत्रादि द्वारा युक्त हैं तथा समस्त दिव्य ऋतुओं द्वारा सेवित हैं, वे सर्व तापों को छेदन करने वाली शीतल छाया संयुक्त होकर सर्वोत्कर्ष से विराजमान हैं।।५६।।

एता वल्लीवितितय उरुस्नेहविक्लिन्नचित्ताः
श्रीमद्वृन्दावनभुवि महा भूतयो मातृभूताः।
आश्रीयन्ते हरि हरि बहिर्वस्तुबुद्धिं विधूय
यैर्धीमद्भिः सततमिह वाऽमुत्र वा ते कृतार्थाः।।५७।।

हरि ! हरि !! इस श्रीवृन्दावन में महाविभूतिशाली एवं माता के सदृश अतिशय स्नेहार्द्र चित्तयुक्त इन लताओं में बाह्य वस्तु बुद्धि त्याग कर जो बुद्धिमान पुरुष इनका निरन्तर आश्रय ग्रहण करते हैं वे सब इस लोक में एवं परलोक में कृतार्थ हो जाते हैं।।५७।।

कैवल्याद्यखिलार्थथुत्कृतिकृतः केचिन्महाबुद्धयो
योगीन्द्राः खगरूपतामुपगता नन्दन्ति यच्छाखिषु।
सम्यक् प्रस्फुरितैश्च युक्तिनिवहैः सर्वार्थतत्साधना–
त्यन्तोच्छेदकृदुच्चकैः कलकलास्तां नौमि वृन्दाटवीम्।।५८।।

कैवल्य मुक्ति आदि समस्त पुरुषार्थों को थुत्कार करके कोई कोई महाबुद्धिमान योगीन्द्रगण पक्षीरूप धारण कर जिस श्रीवृन्दावन के वृक्ष–वृक्ष पर आनन्द प्राप्त करते हैं और सम्यक् रूप से प्रस्फुरित युक्ति द्वारा धर्म–अर्थ–काम मोक्षादि समस्त पुरुषार्थों को एवं उनके साधनों को सर्वथा नाश करने वाली

उच्च कल–कल ध्वनि करते हैं–उस श्रीवृन्दावन को मैं नमस्कार करता हूँ।।५८।।

श्रीवृन्दावनमवनी–प्रकटं प्रकृतेः परात्परं सुरसम्।
राधामाधवनित्याक्रीड़ं संत्यज्य सर्वमाश्रयत।।५६।।

पृथ्वी पर प्रकटित अप्राकृत एवं परात्पर सुरसशाली श्रीराधामाधव के नित्यक्रीड़ावन इस वृन्दावन का सर्वत्यागी होकर आश्रय ग्रहण कर।।५६।।

वृन्दारण्यमगण्य–प्रभावमनुभावयन्महाभावम्।
गौरश्यामल दम्पत्यविचल कन्दर्प केलि भजेत्।।६०।।

अगणित प्रभावशील महाभाव के अनुभव को दान करने वाले एवं श्रीगौरश्याम युगल किशोर के अविचल कन्दर्पकेलि स्थल इस श्रीवृन्दावन का भजन कर।।६०।।

अत्यवशेन्द्रियमपि मां सकल विधातोऽपि संशोच्यम्।
अंगीकरोति राधाकेलिवनं चेन्महाकृतार्थोऽस्मि।।६१।।

इन्द्रियों के अति वशीभूत हुए और सर्व प्रकार से शोचनीय मुझको श्रीराधा केलिवन यदि अंगीकार करें, तो मैं महा कृतार्थ हो जाऊँगा।।६१।।

आस्तां दुर्मतिकोटिर्दुश्चेष्टा कोटिरप्यास्ताम्।
परिभूतिकोटिरस्तु श्रीवृन्दारण्य माऽस्तु ते विरहः।।६२।।

कोटि–कोटि दुर्बुद्धि आवें अथवा कोटि–कोटि दुश्चेष्टाएँ हो जाएँ या कोटि–कोटि अपयश ही क्यों न हो जाएँ, तथापि हे श्रीवृन्दावन ! मुझे आपका विरह कभी न हो–यही मेरी प्रार्थना है।।६२।।

स्त्रीनाम्नि दुष्टनरके विम्मूत्रश्लेष्मपूयाद्यैः।
पूर्णे गतेऽपि कर्णे स्ववान्तवन्निवस राधिकारामे।।६३।।

विष्टा, मूत्र, श्लेष्मा और पीवादि से पूर्ण स्त्री–नामक दुष्ट नरक के विषय में सुनकर भी उसे त्याग पूर्वक श्रीराधा के उपवन (श्रीवृन्दावन) में वास कर।।६३।।

हरिरति वृन्दावनरति–विवेक विरतीश्च दुरमुक्तिरति।
स्त्रीरूपा हरिमाया तदुपरमायातिदूरतोऽपायः।।६४।।

स्त्रीरूपा हरिमाया–हरिभक्ति को, वृन्दावन–प्रीति को एवं विवेक वैराग्यादि को दूर फैंक देती है। उससे बचने का उपाय यही है कि उससे दूर रहना चाहिए।।६४।।

उन्मत्तमेव कुरुते योषिद्दृष्ट्यैव दुष्टमदिरेव।
अति वनवसतिरशक्या हा वृन्दारण्य किन्तु मे भविता ?।।६५।।

स्त्री जाति का दर्शन ही दुष्ट मदिरा के समान उन्मत्त ही कर देता है। इस वृन्दावन में वास करना भी बहुत असाध्य है हा श्रीवृन्दावन ! मेरे लिए क्या उपाय है।।६५।।

अति दुर्वारा इन्द्रियवैरिण आमर्दयन्ति सततं माम्।
बध्वा बध्वात्यार्त्तिदकारायां हा हरे परित्राहि।।६६।।

मुझे अत्यन्त पीड़ा देने वाले कारागार में बार–बार बाँध करके ये अत्यन्त दुर्दान्त इन्द्रिय–वैरीगण निरन्तर पीड़ा देते हैं, हे हरे ! मेरी रक्षा करो।।६६।।

कन्दर्प सविषविशिखैर्निरवधि मम दह्यमानस्य।
वृन्दावनेऽपि निवसन् हरि हरि न हि निर्वृणोमि किं कुर्वे।।६७।।

कामदेव के विषैले वाणों से निरन्तर मैं जल रहा हूँ हाय ! हाय !! वृन्दावन वास करके भी मुझे शांति न मिली !!! अब मैं क्या करूँ।।६७।।

तरुणीतनुविड्भाण्डं हृदयं विदुषामपीह मादयति।
तच्छ्रवणदर्शनाद्यै रहितो वृन्दावनं तद्ध्यायस्व।।६८।।

तरुणी–शरीररूप विष्टा का पात्र विद्वान् गुणों के हृदय को भी उन्मत्त कर देता है, अतएव उसके देखने एवं उसकी बात सुनने से रहित होकर श्रीवृन्दावन का ध्यान कर।।६८।।

प्रज्ज्वालयति समस्तं देहं कामाग्निना प्रमोहयति।
दृष्ट्यैव च नवतरुणीकुतस्तर्हि स्वार्थसिद्धिं प्रत्याशा ?।।६९।।

नव तरुणी की कामाग्नि सर्वांग को जलाए जाती है, दृष्टिपात से ही मोह उत्पन्न कर देती है, फिर और स्वार्थ सिद्धि की आशा कहाँ रही ?।।६९।।

कामक्रोधात्यन्धो लोभवशोऽहं वसामि राधायाः।
केलिवने परमिच्छुर्भावमहो नास्ति मे लज्जा!!।।७०।।

अहो ! काम–क्रोध से तो मैं अति अन्ध हो रहा हूँ, लोभ के वशीभूत हूँ–श्रीराधा केलिवन में वास करता हूँ, और परम श्रेष्ठ भाव की इच्छा करता हूँ ! मुझे लज्जा भी नहीं आती ?।।७०।।

कामादिगाढ़मूढ़ो लिप्सुरहं निगमगूढ़सद्भावम्।
वृन्दारण्य उषित्वा तत्करुणैकैव तत्र मे शरणम्।।७१।।

मैं कामादि द्वारा गाढ़ता से मोहित हो रहा हूँ, किंतु वेदगूढ़ सद्भाव के पाने का इच्छुक हूँ, अतः श्रीवृन्दावन में वास करते हुए एकमात्र इसी की करुणा की शरण ग्रहण करता हूँ।।७१।।

कृत्वा पाणितले कपोलमसकृन्नेत्राम्भसां धारया
धौतं हा मुरलीधरेति करुणं कुर्व्वन् मुहुः क्रन्दनम्।
आसीनो विजने क्वचित्तरुतले वृन्दावनान्तः कदा
वत्स्याम्येकरसाश्रयः शिथिलित प्राणस्थिति व्यापृतिः।।७२।।

हथेली पर धरे हुए कपोल को अश्रुधारा से निरन्तर धोता हुआ, "हा मुरलीधर", पुकारते हुए बार–बार रुदन करता हुआ श्रीवृन्दावन के किसी एक निर्जन वृक्ष के नीचे बैठकर–मैं श्रृंगार रसाश्रय होकर प्राणों की रक्षा करने की चेष्टा भी कुछ न करके कब श्रीवृन्दावन वास करूँगा।।७२।।

यो व्याघ्रीरिव योषिता विषमिव स्वाद्वन्नमर्थं महा–
नर्थप्रायमसाधुलोकमिलनं सर्वार्थविभ्रंशवत्।
किञ्चिन्मात्र परिग्रहं ग्रहमिव स्वात्मेन्द्रियं शत्रुवत्।
मन्येत प्रणयी हरौ स हि वसेत् साध्वत्र वृन्दावने।।७३।।

जो (मनुष्य) श्रीहरि की प्रीति में स्त्री जाति को व्याघ्रिवत्, स्वादिष्ट–अन्न को विष के समान धन को महा अनर्थवत् और, असाधु लोगों के संघ को सर्वस्व नाश करने वाले के तुल्य थोड़े मात्र संग्रह को भी (महानिष्टकारी) ग्रहवत् एवं अपनी इन्द्रियों को शत्रु के समान जान सकता है–वही इस श्रीवृन्दावन में उत्तमरूप से वास कर सकता है।।७३।।

कामिन्यालोकमात्रात् क इह न विसृजेल्लोकलज्जादि सर्वं
तत्सक्तं शास्त्रगुर्वादिकमहह किमप्यत्र रोद्धुं न शक्तम्।

तस्मात् कामप्रदाहैर्यदि मरणभयं दुःसहा वा स्वगर्हा-
वर्हापीड़ाद्यभावं तद्नुभव हठात् प्रोह्य वृन्दावनेङ्गम्।।७४।।

इस संसार में कामिनी के दर्शनमात्र से ही लोक लज्जादि सब कुछ कौन नहीं त्याग कर सकता ? अहो ! शास्त्र गुरु आदि भी स्त्री-आसक्त पुरुष को किसी भी प्रकार रोक नहीं सकते ! अतएव कामाग्नि से यदि मरने का भय लगता है, एवं अपनी निन्दा को सहन नहीं कर सकते, तो इस शरीर को बलात् से श्रीवृन्दावन में लाकर मोर-पुच्छधारी श्रीकृष्ण के आद्य-मधुर भाव का अनुभव कर।।७४।।

योषित्सूचकशब्दतोऽपि मदनोमामन्धबुद्धिं करो-
त्येष क्रोध उपैति चान्धतमसी कुर्वन् समस्ता दिशः।
लोभः क्षोभयते मनो निरवधि श्रीधाम्नि वृन्दावने
नाशस्तत्र घटिष्यते ध्रुवमतो जह्यामिहांगं हठात्।।७५।।

"स्त्री" सूचक शब्द से भी काम मुझे अन्ध बुद्धि कर देता है, इस क्रोध ने समस्त दिशाओं में अन्धकार कर रखा है, एवं लोभ निरन्तर ही मन को क्षुब्ध किए रखता है। हाय! श्रीधाम श्रीवृन्दावन में भी इनका नाश हुआ नहीं ! अतः बलपूर्वक इस शरीर का पात ही करना होगा।।७५।।

सर्वोपेक्षामयबलदयः श्रृंखलाभंगदक्षो
रक्षो वीक्ष्योन्मृतवदवलामात्रमक्षोभचित्तः।
सर्वाध्वं स्वाशनमुपनयन् देहरक्षोपयोगि
क्षौणीवत् स्यामहह सहनः कर्हि वृन्दावनेऽहम्।।७६।।

हाय ! बल, दया आदि से समस्त उपेक्षामय बुद्धि धारण करते हुए, माया की श्रृंखलाओं को ताड़ने में निपुण हुआ, तथा राक्षस को देखने से जैसे कोई अति मृतकवत् हो जाए, उसी तरह नारी दर्शन करने से मृतकवत् होकर एवं क्षोभ-रहित चित्त से हर स्थल पर देह-रक्षा उपयोगी अन्नादि पदार्थों को संग्रह कर, पृथ्वी की भांति सर्व सहनशील हो कर कब मैं श्रीवृन्दावन में वास कर सकूँगा ?।।७६।।

गायन् राधामुरलिधरयोः सुन्दरं केलिवृन्दं
विन्दन्नन्तस्तदनुभवानन्द निष्पन्दभावम्।

निन्दन् भोगानहह सकलान् हा प्रिय श्यामलेति
क्रन्दन्नुच्चैः परमविकलः कर्हि वृन्दावने स्याम्।।७७।।

श्रीराधामुरलीधर के सुन्दर केलिवृन्द का गान करते करते, हृदय में उसके अनुभवानन्द जनित निष्पन्द भाव को प्राप्त होकर समस्त भोग–विलासादिकों की निन्दा करते हुए "हा प्रिय श्यामल !!" कह कर उच्च स्वर से रुदन करता हुआ कब इस श्रीवृन्दावन में परम विकल होकर मैं वास कर सकूँगा ?।।७७।।

महापतितपावनं भवमहाहिभीतावनं
समस्तनिजसंगतस्वमुखचिद्घनीभावनम्।
महामुनिवरैः सदा विहितभावनं जीवन्
ममैकमिह राधिकारमणधाम वृन्दावनम्।।७८।।

महा पतित–पावन, भवरूप महासर्प से भयभीत जनों के रक्षक, अपने समस्त सौहार्द प्रयोग करने के लिए अपनी ओर उन्मुख करके चिद्घन भाव में भावित करने वाला, महामुनि गणों के नित्य ध्यान का विषयीभूत और मेरा एकमात्र जीवनभूत यह श्रीराधिकारमण–धाम श्रीवृन्दावन ही है।।७८।।

नित्यं रत्युत्सुकान्तः करणमतिरसासक्तितः सन्नभावं
कांतां हस्ते गृहीत्वा मुहुरुरुपुलकं गूढ़कुञ्जेषु यान्तम्।
श्रीमद्वृन्दावनान्तः सततमधिवसन् कंचन श्यामलांगं
राधैकप्राणमात्मन्यनुसर ललिताद्यात्मभावं किशोरम्।।७९।।

नित्य रतिरस में उत्सुक चित्त, एवं रति आशा में व्याकुल होकर कांता को हाथ से पकड़कर बार–बार अति रोमांचित विग्रह से गुप्त कुञ्जों में जाने वाले–श्रीराधा के महाप्राण स्वरूप, ललितादि (नायक) भावाविष्ट अथवा ललितादि सखीवृन्द के आत्मस्वरूप किसी श्यामकिशोर का श्रीमद्वृन्दावन में निरन्तर वास करते हुए आत्मा से (स्वरूपदेह) से अनुसरण कर।।७९।।

वीथ्यां वीथ्यां भ्रमदतिरसादुन्मदानंगलोलं
रोलम्बानां पथि पथि घटाः क्षिप्यदंगे पतन्तीः।
संघट्यांगं मुहुरतिहसद्धेलयाऽयोन्यमंगे
वृन्दारण्ये निवस भज तद् गौरनीलं द्विधाम।।८०।।

अतिशय रसवश गलीगली में भ्रमणशील, उन्मादमय आनंद के लिए चंचल, पथ–पथ में बार–बार अंगों पर पतनशील भ्रमरों को दूर करने वाले, पुनः–पुनः हास्य युक्त हाव–भाव से एक दूसरे के अंग पर अंग धारण करने वाले गौरनीलद्युति श्रीयुगल–विग्रह (श्रीराधाकृष्ण) का भजन कर एवं श्रीवृन्दावन में वास कर।।८०।।

तं नैवात्र कृताकृते वितपतस्तं नैव मायास्पृशे–
त्तं सर्वेऽपि गुणा भजन्ति महतां कांक्षन्ति तं सम्पदः।
तं सर्वेस्तुवते विरिञ्चिप्रमुखास्तं राधिकामाधवौ
स्वासन्नैकतमं मुदा गणयतो वृन्दावनं यः श्रितः।।८१।।

जिसने श्रीवृन्दावन का आसरा लिया है, उसे कर्म या अकर्म तापित नहीं कर सकते, उसे माया स्पर्श नहीं कर सकती, एवं सकल महागुण राशि उसका भजन करते हैं। सब सम्पदा उसी की आकाँक्षा करती हैं, ब्रह्मादि देवता उसकी स्तुति करते हैं और श्रीराधामाधव आनन्दपूर्वक उसे अपने निकटवर्ती गणों में अन्यतम गणना करते हैं।।८१।।

सान्द्रानन्दसुधामयैर्दशदिशः शीतच्छटामण्डलैः
सिंचद्भिः फलपुष्पपल्लवदलाद्याभारवल्लीद्रुमैः।
कृष्णप्रेमरसाकुलैः खगकुलैरानन्दकोलाहलै
रम्यं रत्नमयस्थलीविलसितं ध्यायामि वृन्दावनम्।।८२।।

दशों दिशाओं में सान्द्रानन्दामृतमय शीतल कांति मण्डलों का जहाँ विस्तार है, फल–पुष्प पल्लव–पत्रादि के भार से झुके हुए लता–वृक्षादि से शोभायमान, एवं कृष्णप्रेम रसाकुल आनन्द–कोलाहल में मस्त पक्षी समूह द्वारा जो रमणीय है, रत्नस्थली से भूषित उस श्रीवृन्दावन का मैं ध्यान करता हूँ।।८२।।

यत्रैगुण्यमये समुज्ज्वलमथ प्रद्योति विद्यामये।
सर्वस्योपरि जाज्वलीति मधुराश्चर्येण यज्ज्योतिषा।।
श्रीवृन्दावनमप्रमेयमधुर श्रीमत् समस्तं सदा
राधाकृष्णविचित्रकेलिवलितं तन्मे मनो गाहते।।८३।।

जो त्रिगुणमय जगत् में समुज्ज्वल है, जो विद्यामय (ब्रह्म विद्यामय) जगत् में भी देदीप्यमान है एवं जो मधुर आश्चर्यमय ज्योति द्वारा सबके ऊपर प्रकाशमान है, वही श्रीवृन्दावन असीम शोभायुक्त समस्त द्रव्यों से निरन्तर परिपूर्ण है और श्रीराधाकृष्ण की विचित्र केलिविलास से वलित है—उसी में ही मेरा मन अवगाहन करता है।।८३।।

यद्दिव्यैः सकलर्तुभिः सुमधुरैरासेवितं यल्लता
वीरुद् भुरुहगुल्मकादिभिरनाद्यन्तैर्घनं चिद्घनैः।
यद्दिव्याम्बुसरः सरिन्मणिगिरिश्रीरत्नवल्लीगृहै
र्दिव्यैर्यच्चविचित्रवत् खगमृगैस्तत् पश्य वृन्दावनम्।।८४।।

जो श्रीवृन्दावन समस्त सुमधुर दिव्य दिव्य ऋतुओं से सेवित हो रहा है, अनादि आनन्द चिद्घन विस्तृत लता–गुल्मादि से पूर्ण हो रहा है, जो दिव्य जलपूर्ण सरोवरों और नदियों तथा मणिमय पर्वतों तथा श्रीरत्नलतागृहों से शोभित हो रहा है, एवं जो दिव्य पक्षि–मृगों में विचित्रता को धारण कर रहा है—उस श्रीवृन्दावन का दर्शन कर।।८४।।

श्रीवृन्दावनमेव पावनतमं विज्ञानमुख्याखिलात्
श्रीवृन्दावनमेव साधनतमं सर्वार्थलब्धौ हठात्।
श्रीवृन्दावनमेव साध्यपरमोत्कर्षैकविश्रामभूः
श्रीवृन्दावनात्मकोटिपरमप्रेष्ठं न सेवेत कः।।८५।।

श्रीवृन्दावन ही निखिल मुख्य–विज्ञानों से पावनतम है श्रीवृन्दावन ही अनायास सर्व अर्थों (धर्म–अर्थ–काम एवं मोक्ष) की प्राप्ति का महा साधन है, एवं श्रीवृन्दावन ही सर्वोत्कृष्ट साध्यों का एकमात्र अधिष्ठान है ऐसे कोटि प्राणतुल्य परम प्रियतम श्रीवृन्दावन का कौन सेवन नहीं करेगा।।८५।।

या प्राचीनभवौघसञ्चित महादुर्वासनाच्छेदिनी
या श्रीश–द्रुहिणादि–दुर्गम–महामाधुर्य सम्वेदिनी।
यात्मानन्यजनापराधविततेर्मातेव नो वेदिनी
सा राधापदमोदिनी विजयते वृन्दाटवी मोहिनी।।८६।।

जो अनेक जन्मों की संचित दुर्वासनाओं को नाश करने वाला है, जो लक्ष्मी–नारायण, ब्रह्मादि देवताओं को दुर्गम महा–माधुर्य भली प्रकार ज्ञापन

कराने वाला है, जो मातृवत् अपने अनन्य भक्तों के अपराधों को क्षमा करने वाला है, वह मनोहर श्रीवृन्दावन श्रीराधा के चरण–कमलों को (हृदय में) धारण कर आनन्द प्राप्त कर रहा है, उसकी जय हो।।८६।।

औज्ज्वल्यस्यपरावधिर्मधुरिमैकांतप्रकर्षो महा–
नन्दौघान्त्य चमत्कृतिर्हरिकृपा स्नेहादि पूर्णोदयः।
सर्वाश्चर्य कदम्बमौलिरचल श्रीराधिकामाधवो–
त्तुंगानंगरसोत्सवं विजयते वृन्दावनं मोहनम्।।८७।।

उज्ज्वलरस की परम सीमा, माधुर्य का एकान्त प्रकर्ष आनन्दराशि की परम चमत्कृति, हरिकृपा–स्नेहादि के पूर्ण उदय युक्त, सर्वाश्चर्य शिरोमणि, अविचल सौंदर्यमय श्रीराधामाधव को उत्तुंग अनंग रसोत्सव दान करने वाले इस मनोहर श्रीवृन्दावन की जय हो।।८७।।

तीर्त्त्वा मायामयाब्धिं तर किमपि परब्रह्मचिज्ज्योतिरब्धिं
स्वादं स्वादं ततः सन्तर नर! भगवज्ज्योतिरानन्दसिन्धुम्।
संप्राप्य प्रेमसारोज्ज्वलविमलरसाम्भोधिमस्यैव दिव्य
द्वीपेऽध्याश्चर्यवृन्दाटवि कुरु ललिते प्राणमेवोपहारम्।।८८।।

हे मानव ! मायामय–समुद्र के पार होकर किसी एक अनिर्वचनीय परब्रह्म की चिज्ज्योति का आस्वादन करने के पश्चात् भगवज्ज्योति के आनन्द–समुद्र को सन्तरण कर। इसी भगवदानन्द समुद्र में ही सुरम्य आश्चर्य श्रीविमल रस समुद्र को प्राप्त करके वहाँ अपने प्राणों का उपहार दान कर।।८८।।

स्थूलं सूक्ष्मं कारणं तत्तुरीयं श्रीवैकुण्ठं कृष्णपूर्य्यो ब्रजञ्च।
त्यक्त्वा सर्वानर्थजातार्थजातं वृन्दारण्यं पश्य भावाग्रदृष्ट्या।।८९।।

स्थूल, सूक्ष्म, कारण, तुरीय, श्रीवैकुण्ठधाम, श्रीकृष्णपुरी समूह (श्रीद्वारिका, मथुरादि) ब्रजलोक एवं सकल अनर्थ और विषयों को त्यागकर भाव–प्रवण दृष्टि से श्रीवृन्दावन के दर्शन कर।।८९।।

श्रीवृन्दावनवासविघ्नजनकान्यारुध्यखान्यन्तरे
पश्यन्नावस शुद्धचिद्रसघनं तद्धाम संमोहनम्।
काङ्क्षन् नित्यमिहैव मंक्षु वपुषः पातं महामंगलं
दूरे भोगकथा प्रयत्नमपि च प्राणस्थितौ सन्त्यजन्।।९०।।

वृन्दावन में विघ्न पैदा करनेवाली इन्द्रियों को अन्तर निरुद्ध करके, इस सम्मोहन धाम को शुद्ध चिद्रसघन विवेचना करते हुए, एवं यहाँ इस शरीर का महामंगलकारी पतन (मृत्यु) व्याकुल प्राणों से नित्य आकांक्षा करते हुए, प्राणों की रक्षा के निमित्त भी भोगादि प्रयत्नों को त्याग कर इस श्रीवृन्दावनधाम में सम्यक् रूप से वास कर।।६०।।

दिव्यानन्तस्फुटित–कुसुमामोद मत्तालिमाला
झंकारेण प्रतिपद महानन्द–माध्वीकवृष्ट्या।
उड्डीयानैर्दिशि दिशि महारम्यरागैः परागै
र्वन्दे वृन्दाविपिन उदितं दिव्यशाखीन्द्रवृन्दम्।।६१।।

दिव्य दिव्य अनन्त प्रस्फुटित पुष्पों की सुगन्धि से, मत्त भ्रमरों की झंकार से, प्रति पद पद पर महानन्द सुधारस वर्षण करने से, दशों दिशाओं में उड़ने वाली महा रमणीय रंग–बिरंगी पराग से–परम शोभित श्रीवृन्दावन के दिव्य वृक्ष–श्रेष्ठों की मैं वन्दना करता हूँ।।६१।।

दिव्यानन्ताद्भुततम–महारम्य–जातिद्रुवल्ली–।
र्दिव्याशेषर्त्वनुगम–महासत्फलोरुप्रसूनाः।।
राधाकृष्णप्रणय–परमाश्चिद्घनाः कामरूपा
वृन्दारण्ये सकलपुरुषार्थात्युदाराः स्मरामि।।६२।।

दिव्य अनन्त अद्भुततम महा रमणीय अनेक प्रकार के वृक्ष तथा वल्लीसमूह समस्त दिव्य ऋतुओं में अति उत्तम महाफल एवं अनेक कुसुम प्रदान करते हैं। ये श्रीराधाकृष्ण के प्रधान प्रीतिपात्र हैं, ये चिद्घनरूप एवं अपनी इच्छानुरूप रूपधारण करने वाले हैं, श्रीवृन्दावन में समस्त पुरुषार्थों को दान करने में परम उदार हैं, मैं इन वृक्षवल्ली–समूह को स्मरण करता हूँ।।६२।।

नानारत्नमयैर्विलक्षणफलैर्नानाप्रसूनोद्गमै
र्नानापल्लवपत्रगुच्छकलिकावृन्दादिभिः सुन्दरैः।
नानाश्चर्यविसारिसौरभभरैरानन्दखेलारुतै
र्नानाश्चर्यखगैर्मनो मम हृतं वृन्दाटवी शाखिभिः।।६३।।

श्रीवृन्दावन के वृक्षराजों ने–अनेक प्रकार के विलक्षण (सुलक्षण) फलों से, नानाविधि पुष्पों के विकास से, सुन्दर–सुन्दर नाना विधि पल्लवगुच्छ

कलिकाओं से, एवं नाना प्रकार की आश्चर्य जनक इधर–उधर सञ्चारित सौरभ से तथा आनन्द–क्रीड़ामत्त कोलाहल–मुखरित नाना विधि आश्चर्यमय पक्षी–समूह से, मेरे मन को हरण कर लिया है।।६३।।

नानारत्नमयोरु शाखिरुचिरै र्नानामणिपक्षिभि
र्नानारत्नमयप्रसूननिचयै रत्नामृतांगैः फलैः।
नानारत्नसुधामरन्दलहरी निःस्यन्दिभिः शाखिभि–
र्नानारत्नमयस्थलीषु लसितैर्देदीप्ति वृन्दावनम्।।६४।।

अनेक विधि रत्नमय बहु वृक्षों से शोभित होकर, नाना मणिमय पक्षियों से भूषित होकर, नाना विधि रत्नमय पुष्पों से सुसज्जित होकर, अनेक रत्नमय अमृत फलों से समुल्लसित होकर एवं नाना रत्नमय सुधा–मधु लहरी वर्षणकारी नानाविधि वृक्षों से तथा नाना रत्नमय स्थलों से शोभित होकर श्रीवृन्दावन देदीप्यमान हो रहा है।।६४।।

सखि! तरुणतमालः कश्चिदस्मिन्निकुंजे
वरकनकलतावत् कौतुकात् पर्यरम्भि।
अहह स तु बलान्मे पश्य नाकारि किंवा
कथमिव कुटिला मे प्रत्ययं यान्तु सख्यः?।।६५।।

हे सखि! इस निकुञ्ज में किसी तरुण–तमाल ने मुझसे श्रेष्ठ कनकलतावत् परिरम्भन किया। अहो! देख, उसने मुझ से क्या नहीं किया है ? किंतु मेरी कुटिल सखी इस बात का कैसे विश्वास करेंगी ?।।६५।।

अन्यानन्यान् केशवन्ध–प्रकारान् अन्यानन्यान् पत्रभंगीविभेदान्।
अन्या–अन्या माल्यवस्त्रादिभूषाः कुर्वन्नास्ते रात्र्यहस्त्वत् सखा मे।।६६।।

तुम्हारा सखा दिव्यरात्रि में बहुविधि से मेरा केश–बन्धनादि करता है, बहुविध पत्र–भंगी रचना और अनेक प्रकार के भावों से माल्य–वस्त्रादि भूषा रचना किया करता है।।६६।।

नित्यं सम्मुखसम्मुखं मुखविधुं धत्तेऽनिमिषेक्षणो
नित्यं सन्मुखमेव पश्यति मयैवाजस्रगोष्ठीपरः।
आधायैव शयीत मां हृदि मयैवावर्त्तयेत् पार्श्वकं
सख्युस्ते सखि सर्वनागरमणेः प्रीतिः कथं वर्ण्यताम्।।६७।।

दिव्यै पक्षिमृगैः सरोवरसरिच्छैलादिभिश्चाद्भुते
श्रीवृन्दाविपिने कदानु ललितैकात्मयं किशोरं भजे।।१०।।

हाय ! प्रेमानन्दरस में अति विह्वलतम, नाना चमत्कारशील दिव्य दिव्य मणिमय स्थलों से शोभित उत्तमोत्तम अनेक गुल्मद्रुमादि से भूषित, दिव्य पक्षी मृगों से संव्याप्त, सरोवर, नदी, पर्वतादिकों से पूर्ण अद्भुत श्रीवृन्दावन में कब मैं अति ललित एकात्म श्रीयुगलकिशोर का भजन करूँगा ?।।१०।।

राधाकृष्णौ परमकुतुकात् खेलतो यत्तलेषु
भुञ्जाते यत्फलमतिरसं यत्प्रसूनादिभूषौ।
यच्छाखास्थैः सुरुचिरखगैर्मौनिभिर्निर्निमेषैः
पीतालापामृतरुचिसुधौ तांस्तरुंश्चिन्तयामि।।११।।

जिन समस्त वृक्षों के नीचे श्रीराधाकृष्ण परम कौतुकवशतः क्रीड़ा करते हैं, जिनके अति रसाल–फल भोजन करते हैं, जिनके पुष्पों के भूषणादि धारण करते हैं, जिनकी शाखाओं पर बैठे हुए मौनी मनोज्ञ पक्षीगणों द्वारा किए अलापामृत एवं लावण्यामृत को पान करते हैं, मैं श्रीवृन्दावन के उन वृक्षों का ध्यान करता हूँ।।११।।

नानाकारान् दिव्यनानाफलादीन् राधाकृष्णप्रीतये ये वहन्ति।
नानासंस्थानोद्भवान्तर्धिभाजो वन्दे वृन्दारण्यधन्यद्रुमांस्तान्।।१२।।

नाना आकृतिवाले नाना प्रकार के दिव्य दिव्य फलों को जो श्रीराधाकृष्ण की प्रीति के लिए धारण करते हैं, एवं जो नाना प्रकार के भावों में सन्निविष्ट होकर आविर्भाव एवं तिरोभाव करते हैं, श्रीवृन्दावन के उन धन्य तरुओं को मैं नमस्कार करता हूँ।।१२।।

राधाकृष्णानुरागान्मुकुलपुलकिनो माकरन्दौघवाष्पान्
तत्तादृग् वातचञ्चत् किशलयकरतो दिव्यनित्यं दधानाः।
सत्पुष्पश्रेणिहासाः खगकुलविरुतैः संस्तुवन्तः फलादे–
र्भारैर्नम्रा द्रुमास्ते मम परममुदे सन्तु वृन्दावनीयाः।।१३।।

श्रीराधाकृष्ण के प्रति अनुरागवश वे (वृक्ष) मुकुलरूप से पुलकित हो रहे हैं, मकरन्द प्रवाह के मिस वे अश्रु बहा रहे हैं, मृदुमन्द वायु–प्रवाह से डोलायमान पल्लवों से मानों वे हस्त–भंगी द्वारा दिव्य नृत्य कर रहे हैं। उत्तम पुष्प–विकास

छल से हंस रहे हैं, पक्षी–गणों की कोलाहल ध्वनिरूप से सम्यक् प्रकार से वे स्तव गान कर रहे हैं, फलादि के भार से झुके हुए वे श्रीवृन्दावन के वृक्षराज मेरे लिए परमानन्द प्रदान करें।।१३।।

ये द्राघिष्टातिह्रस्वा अतिघनविरलाश्छायया शीतलोष्मा
निःश्वभ्राः कोटराढ्या अतिशिशुतरुणास्तानवाढ्याः स्थविष्ठाः।
श्रीराधाकृष्णयोः कामपि रसलहरीं सन्ततं वर्द्धयन्तः
शाखीन्द्रास्ते तदिच्छामयतनुविभवा भान्ति वृन्दावनीयाः।।१४।।

श्रीवृन्दावन के श्रेष्ठ वृक्ष श्रीराधाकृष्ण की इच्छानुकूल विग्रह–वैभव धारण कर श्रीयुगलकिशोर की अनिर्वचनीय रस–लहरी की निरन्तर वृद्धि करते हुए प्रकाशित हो रहे हैं–कभी तो वे अति दीर्घ और कभी वे अति लघुरूप धारण कर लेते हैं। अति घने हैं एवं छाया में शीतलता और उष्णता मिलती रहती हैं, छिद्र–हीन होते हुए भी बड़े कोटरवाले हैं। अत्यन्त छोटे होते हुए भी तरुण हो जाते हैं एवं सूक्ष्म होकर भी समय विशेष पर अति स्थूल हो जाते हैं।।१४।।

एकान्तेषु विचिन्तयन्निरवधि श्रीराधिकाकृष्णयो–
स्तद्रूपं सकलाद्भुतं रसमयीर्लीलाश्च सर्वाद्भुताः।
प्राप्तैकांतनिरन्तरोज्ज्वलमहाभावो महाभाग्यतः
सर्वेहा–विनिवृत्ति–नित्यसुखभाक् कोऽप्यस्ति वृन्दावने।।१५।।

श्रीराधाकृष्ण के सर्वाद्भुत रूप–माधुर्य एवं सर्वाद्भुत रसमयी लीला का एकांत स्थान में निरन्तर चिन्तन करते–करते, महाभाग्यवश निरन्तर उज्ज्वल–रस की महाभावाख्य श्रेष्ठ दशा को प्राप्त होकर, सर्व चेष्टाओं से विरत एवं सुखी होकर कोई भाग्यवान व्यक्ति ही श्रीवृन्दावन में वास करता है।।१५।।

अन्नं मिष्टमिव क्षुधाऽतिविकलस्याम्भो यथा शीतलं
संक्लिष्टस्य पिपासया हिमह्रदस्तप्तस्य धर्मैरपि।
रंकस्येव महानिधिः परमिव ब्रह्मामृतं योगिनां
भूतानामिव जीवनं भवतु मे वृन्दावनं पावनम्।।१६।।

मेरे लिए यह पवित्र श्रीवृन्दावन–क्षुधातुर व्यक्ति के लिए सुन्दर मधुर अन्न के समान, प्यासे व्यक्ति के लिए सुशीतल जलवत्, धूप से तप्त पुरुष के लिए

शीतल सरोवर के सदृश, दरिद्र के लिए महाधनराशि के तुल्य, योगियों के लिए परम ब्रह्मामृतवत्, एवं निखिल प्राणियों के लिए जीवन तुल्य परम प्रियतम हो—यही मेरी प्रार्थना है।।१६।।

वांछातीत—महाफलानि दिशतः स्वोदारतावेशतो
दिव्यानल्पमहीरुहानगणितानत्यल्पकान् कुर्वतः।
स्वानन्दामृत—शुद्ध चिद्रसघनान् कृष्णानुरागाप्लुतान्
वन्देऽद्वन्द्वमुनीन्द्रवृन्दविनुतान् वृन्दाटवीशाखिनः।।१७।।

अपनी उदारता से वांछित फलों को प्रदान करने वाले, एवं अगणित दिव्य दिव्य महावृक्षों को भी अति तुच्छ करने वाले, स्वानन्दामृत शुद्ध चिद्रसघन स्वरूप कृष्णानुराग से प्लावित तथा द्वन्द्वातीत श्रेष्ठ मुनिगणों से भी अभिवन्दित—इन श्रीवृन्दावन वृक्षराजों की मैं वन्दना करता हूँ।।१७।।

स्वयं नित्योत्तीर्णास्त्रिगुणविभवापारजलधेः
परानप्युत्तार्योन्मदहरिरसाब्ध्याप्लुतिकृतः।
महार्थान् योगीन्द्रैरपि दुरुपलम्भान् वितरतो
भजानन्यप्रेम्णा दयिततम—वृन्दावनतरून्।।१८।।

जो स्वयं नित्य त्रिगुणमयी माया की विभूति के अपार समुद्र से पार उतरे हुए हैं एवं और सबको उसके पार करके उन्मादनकारी हरि—रस समुद्र में स्नान करा देते हैं, योगीन्द्रगणों के लिए भी जो दुर्लभ महापुरुषार्थ हैं—उनको जो वितरण कर रहे हैं—ऐसे प्रियतम श्रीवृन्दावन के वृक्षों का अनन्य प्रेम से भजन कर।।१८।।

ज्योतिः पूरैर्विचित्रैः परमसुविमलैः पूरयन्तोऽखिलाशा
माध्वीकासारवर्षैः सुसुरभिमधुरैर्मादयन्तो जगन्ति।
चित्रैः पुष्पैः प्रवालै रसमयसुफलैर्गुच्छकैर्जालकैश्च
श्रीवृन्दाकाननेऽस्मिन् विदधति परमानन्दवृन्दं द्रुमेन्द्राः।।१६।।

जो अपने परम सुविमल विचित्र ज्योति प्रवाह से दशों दिशाओं को आलोकित कर रहे हैं एवं अति सुगन्धित मधुर उत्कृष्ट मकरन्द—धारा बरसा कर चौदह भुवनों को उन्मत्त कर रहे हैं, वे श्रीवृन्दावन के वृक्षराज विचित्र पुष्प—पल्लव रसमय सुन्दर फलस्तवक और अस्फुट कलिकाओं द्वारा परमानन्द

राशि प्रदान कर रहे हैं।।१९।।

आयांतौ वीक्ष्य ये स्वं तलमतिरसिकौ राधिकाकृष्णचन्द्रौ
चन्द्रोघैर्दिव्यदिव्यैरपि किमपि न संस्पृष्ट वक्त्रेन्दुकान्ती।
सद्यः सन्त्यज्य सत्पल्लवकुसुमचयं तल्पकं कल्पयन्ति
श्रीवृन्दारण्य धन्यद्रुमतनु–भगवत्पार्षदांस्तान् भजन्तु।।२०।।

दिव्यातिदिव्य चन्द्र–समूह जिनकी मुखचन्द्र कांति का किसी प्रकार स्पर्श भी नहीं कर पाते, ऐसे श्रीराधिकाकृष्णचन्द्र–नामक अति रसिक–युगलकिशोर को अपने नीचे आया देख कर जो श्रीवृन्दावनवासी धन्य वृक्ष–शरीरधारी भगवत्–पार्षदगण सदा उत्तमोत्तम पल्लव और कुसुमों की वर्षा कर शय्या की रचना करते हैं–उनका भजन कीजिए।।२०।।

येषां छायासु शीतास्वति मधुरसुधा शीकरासारवर्षै–
र्मूले संसिक्तगात्रौ यदुदितकुसुमाद्यास्तरेषूपविष्टौ।
श्रीराधाकृष्णचन्द्रौ यदुपहृत महास्वादिम–श्रीफलानि
स्वादेते संस्तुवन्तौ मिथ उरुरसदौ नौमि वृन्दावनद्रून्।।२१।।

जिनके नीचे शीतल छाया में कुसुमादि–रचित आसन पर उपविष्ट श्रीराधाकृष्ण अति मधुर सुधा–बिन्दु–धाराओं से भीजते हैं, अनन्त रसदानकारी युगल किशोर जिनसे गिरे हुए महास्वादिष्ट फलों को परस्पर प्रशंसा करते–करते भोजन करते हैं, श्रीवृन्दावन के उन वृक्षों को मैं नमस्कार करता हूँ।।२१।।

अनन्तामोदाढ्यैर्विविध रुचिरानन्तकुसुमै–
रनन्तैरानन्दद्रवमय मरन्दौघनिवहैः।
अनन्तैः श्रीशाखाभरित फलगुच्छैः किशलयै–
रनन्तान् श्रीवृन्दावनवरतरुंश्चिन्तय मनः।।२२।।

हे मन ! अनन्त सुगन्धिपूर्ण, नाना प्रकार के अनन्त रुचिर कुसुमों से शोभित, अनन्त आनन्द द्रवमय मकरन्द–प्रवाह से युक्त अनन्त सुन्दर फलगुच्छ सम्वलित, अनन्तशाखा–पल्लवयुक्त श्रीवृन्दावन के अनन्त तरु–समूह का ध्यान करो।।२२।।

अस्ति स्वस्तिकरूपिणी क्वचिदहो कुत्रापि चक्राकृति–
र्वृत्ता क्वापि तथायता क्वचिदथोह्रस्वाथ चन्द्रार्द्धवत्।

क्वाप्याभाति चतुष्ककंकणकला रासायरत्नोज्ज्वला
क्वाप्यल्पोच्च विचित्रमण्डनकला वृन्दावनीयावनी।।२३।।

श्रीवृन्दावन की भूमि कहीं स्वस्तिकरूपिणी है एवं चक्राकृति है, कहीं वर्त्तुलाकार है तो कहीं छोटी है, अन्यत्र अर्ध–चन्द्राकार है, कहीं रास लीला के उपयोगी रत्नमयी उज्ज्वल चतुष्क–आकृति व गोलाकार एवं अति सूक्ष्म हैं, और कहीं थोड़ी ऊंची विस्तृत मण्डन कला विद्या–प्रकाश से शोभित हो रही है।।२३।।

सौपानैर्मणिनिर्मित्तैः सुरुचिरा वैचित्र्यकोट्योज्ज्वलै–
र्वद्धा रत्नचयैः सुतुंगसुभगा संशोभिता तूपरि।
रत्नस्वर्णमयद्रुवल्लि निबहैः शाखादिगुच्छादिभिः
श्रीमन्मण्डपरूपितान्तरयुक्ता भूर्भाति वृन्दावने।।२४।।

मणिमय सीढ़ियों से अति शोभित, अनेक प्रकार के विचित्र कोटि–कोटि उज्ज्वल रत्नों से बद्ध अति ऊंची अति सुन्दर एवं ऊपर के भाग से अति शोभित है, रत्न एवं स्वर्णमय वृक्षलताओं के गुच्छों द्वारा जगह जगह परम रमणीय मंडप–रूप धारण कर श्रीवृन्दावन की भूमि शोभायमान हो रही है।।२४।।

न्यस्योत्संगे पुलकितवपुः प्रेयसीं वेशयित्वा
बारं बारं स्वयमतिकृतश्लाघनो हासयंस्ताम्।
मध्ये मध्ये तरलतरलोऽनंगचेष्टा वितन्वन्
वृन्दारण्ये सुखयतु सदा राधिका–कामुको नः।।२५।।

प्रेयसी का वेश विन्यास कर उसे अपने क्रोड़देश में बिठाकर जो पुलकायमान हो रहे हैं, एवं बार–बार अनेक प्रशंसा करके उसे हंसा रहे हैं और पुनः पुनः अतिशय चंचल होकर विविध काम चेष्टाएं विस्तार करने वाले श्रीराधालम्पट श्रीकृष्ण हमें सदा सुख प्रदान करें।।२५।।

चिज्ज्योतिर्मयभूमि चिन्मयलतावल्लिद्रुमं चिद्घन–
स्फुर्जत्पक्षिमृगं चिदेकरसवार्यापूर्णफुल्लत्सरः।
चिद्रूपाद्रि–नदी तड़ाग–मणि–धात्वम्भोधरन्तुस्फुर–
न्नाना–मञ्जु–निकुंज पुंजमिह चिद्धामैव वृन्दावनम्।।२६।।

इस वृन्दावन की भूमि चित् ज्योतिर्मय है, लता–वल्लरी–वृक्षादि भी

चिन्मय हैं, पक्षी मृगादि भी सब चिद्घन हैं, प्रफुल्लित कुसुममय सरोवर भी चिदेकरस जल से पूर्ण हैं, पर्वत नदी तड़ाग मणि–धातु और मेघादि सब चिन्मय हैं, इस तरह अनेक मनोहर निकुंजों से संयुक्त यह श्रीवृन्दावनधाम चिन्मय ही है।।२६।।

नानाशक्तीः प्रकटयति योऽचिन्त्य–नानातनूभिः–
र्धत्ते ताश्च स्वयमपि कदाप्यत्यमर्यादरूपाः।
नानावस्था दधदुरुविधान् योऽभिवर्षेद्रसौघा–
स्तं श्रीराधारसवशमहं नौमि वृन्दावनेन्दुम्।।२७।।

श्रीराधा–रसवशवर्ती श्रीवृन्दावनचन्द्रको मैं नमस्कार करता हूँ–जो अनेक अचिंत्य मूर्त्ति धारण कर नाना विध शक्ति प्रकट करते हैं एवं जो कभी अपने आप भी अपरिसीम रूप माधुरी विस्तार कर अपने भावों में भावित होकर बहुविध रसधारा बरसाते हैं।।२७।।

अंके पंकेरुहवरमुखीं नित्यमेव स्फुरन्तीं–
प्रेमार्द्रात्मा पुलकिततनुर्लालयन् हृष्टरोमा।
कुर्वन् काञ्चिन्नवनवरतिं भिक्षितुं चित्रगोष्ठीं
वृन्दारण्यव्रततिनिलये भाति राधाविलासी।।२८।।

नित्य ही सुन्दरी श्रेष्ठ–कमलमुखी श्रीराधा को क्रोड़देश में रख कर प्रेमार्द्र चित्त से पुलकित होकर श्रीहरि लालन करते हैं एवं किसी अनिर्वचनीय नव नवायमान रति की भिक्षा करते हुए विचित्र संलाप रचना करते हैं, वही श्रीराधाविलासी श्रीश्यामसुन्दर श्रीवृन्दावन के लतागृह में शोभित हो रहे हैं।।२८।।

ये वृन्दावनमावसन्ति यदि वा स्पृष्ट्वाऽथ दृष्ट्वा गता
ध्यायन्ति प्रणमन्ति तद्गुणगणान् गायन्ति शृण्वन्ति वा।
मूर्ध्ना विभ्रति तद्रजः क्वचन तत्सम्बन्धसम्बधिन–
स्तानत्युन्नयते परं पदमहो वृन्दावनं पावनम्।।२६।।

अहो ! श्रीवृन्दावन–वासियों के दर्शन कर या उनका स्पर्श कर अन्यत्र जाकर जो पुरुष उनका ध्यान या उनको प्रणाम करते हैं तथा उनके गुणों का कीर्त्तन व श्रवण करते हैं, अथवा उनकी पद–धूलि को मस्तक पर धारण करते हैं, अथवा जो पुरुष किसी भांति भी श्रीवृन्दावन की सम्बन्धित वस्तु से

सम्बन्धित हैं—उन्हें पावन श्रीवृन्दावन परम पद प्रदान करता है।।२९।।

महाश्चर्यां रीतिं दृशि वचसि गत्यादिषु दध—
न्महाप्रेमावेशोन्मद मदनवैवश्य मधुरम्।
अहो यत्रैवानन्दति सहजकैशोरकमहो—
द्वयं गौरश्यामं तदुदयति वृन्दावनमिदम्।।३०।।

नयन वाक्य एवं गति में महाश्चर्य रीति धारण करके तथा महाप्रेमावेश में उन्मत्त मदन के वशीभूत होकर मधुर मूर्त्ति धारण करके हाय! सहज—किशोर गौरश्यामयुगल जहां आनन्द उठा रहे हैं—वह यही श्रीवृन्दावन है।।३०।।

विचिन्वन्तं नीलानलकनिकरांश्चारुकरजै—
र्विजिघ्रन्तं फुल्लद्वदनकनकाम्भोजमसकृत्।
विचुम्बन्तं बिम्बाधरमसकृदुन्नम्य चिबुकं
निधायांके राधां स्मर मदनमूर्तिं मधुपतिम्।।३१।।

सुन्दर अंगुलियों से नील अलकावलि सुविन्यस्त करते हैं, स्वर्ण—कमल के समान प्रफुल्ल वदन को बार—बार आघ्राण करते हैं, श्रीराधा को अंक में बैठाकर चिबुक ऊंचा उठाकर पुनः पुनः उसके बिम्बाधर को चुम्बन करते हैं, ऐसे जो मदनमूर्ति मधुपति हैं—उनका स्मरण कर।।३१।।

अहो गौरश्यामे मधुर मधुरे दिव्यमहसी
किशोरे सर्वांगोत्थित मदनबाधातिविवशे।
रतिक्रीड़ाम्भोधावतिविहरती पार—रहिते
सुभावैः श्रीवृन्दावन नवनिकुञ्जेषु भजत।।३२।।

अहो! मधुरातिमधुर दिव्य गौरश्याम युगलकिशोर सर्वांगों में उत्थित मदन—पीड़ायुक्त होकर अवश हो, असीम अपार रति—क्रीड़ा सागर में अतिशय विहार करते हैं—श्रीवृन्दावन के नव निकुंजों में स्थित इन युगलकिशोर का उज्ज्वलभाव से तुम भजन करो।।३२।।

सख्यग्रेऽतिरुषा निरस्य रमणं संकेतकुंजं प्रति
प्रोच्य प्रोषितमालिवृन्दमपि वाक्चातुर्यतोऽपास्य तत्।
यान्तीं मन्मथपीड़ितां रसयुतां राधामनु प्रस्थितां
भृंगारव्यजनादिना कुरु मनस्येकां रहःकिंकरीम्।।३३।।

सखियों के सामने नागरमणि (श्रीकृष्ण) को अति क्रोध से निरसन करके और संकेतकुंज के प्रति जाने का इशारा देकर तथा इस ओर प्रस्थित सखियों को वाक्‌चातुरी से समझाकर उन्हें वहीं छोड़कर, मन्मथ पीड़िता रसमयी श्रीराधा उनके पास जा रही हैं, उनके पीछे–पीछे एकांत में एक दासी शृंगार व्यजनादि देकर साथ चल रही है इस लीला का मन–मन में चिन्तन कर।।३३।।

गलद्वरपटं त्रुटत्स्रगुरुहारकांचीगुणं
श्लथच्चिकुरबन्धनं तिलक–कज्जलादिक्षयम्।
सदावहितकिंकरीनिकर सर्वसम्पादकं
स्मर स्मरविचेतनं द्विपरधाम वृन्दावने।।३४।।

सब सुन्दर वस्त्र खिसल पड़ते हैं, माला–हार कांचीदामादि भी टूट पड़ती हैं, केशबन्धन ढीले हो जाते हैं, तिलक एवं कज्जलादि का चिन्ह मात्र भी नहीं रहता किंतु नित्य अवहित चित्त से सखीवृन्द सब व्यवस्था कर देती हैं वृन्दावन में इस प्रकार कामविवश परमविग्रह युगलकिशोर का स्मरण कर।।३४।।

श्रीमद्‌वृन्दावनभुवि महानन्दसाम्राज्यकन्दे
वन्दे यं कञ्चनविरचितामृत्युवासप्रतिज्ञम्।
श्रीगांधर्वारसिकतिलकौ स्वेषु योग्यं यमेकं–
ज्ञात्वान्योन्यं विमृशत इदं कीदृशोन्वेष भाव्यः।।३५।।

महानन्द साम्राज्य के मूल श्रीवृन्दावन की भूमि पर जो मृत्युपर्यन्त वास करने की प्रतिज्ञा कर चुका है, उस किसी महापुरुष की मैं वन्दना करता हूं, क्योंकि श्रीराधा जी एवं रसिक चूड़ामणि श्रीकृष्ण अपने सेवकों में से उसे अन्यतम जानकर "वह कैसा है ?" इस विषय पर परस्पर परामर्श करते हैं।।३५।।

चन्द्राणां कोटिकोटेरुदयमिव नयन्नर्महासच्छटाभि–
र्भ्रु क्षेपाद्यैर्विचित्राः सृजदिव परमाश्चर्य कन्दर्पकोटिः।
मन्त्राक्षेपादिवाण्या स्रवदिव शिशिरानन्द–माधुर्यकोटि
राधाकृष्णाभिधानं भजत तदुभयंधाम वृन्दावनान्तः।।३६।।

जिनकी मन्द मुस्कान की छटा में कोटि–कोटि चन्द्रों का उदय होता है, भृकुटी कटाक्षादि से विचित्र परमाश्चर्य जनक कोटि–कोटि कामदेव उत्पन्न

होते हैं, जिनके मन्त्रणा एवं आक्षेप–वाक्यों द्वारा शीतलानन्द माधुर्यधारा का प्रवाह होता है। ऐसे श्रीवृन्दावन विहारी श्रीराधाकृष्ण युगलकिशोर का भजन कर।।३६।।

वृन्दावनं परमपावनमप्रमेय–
माधुर्य्यमुज्ज्वलचिदेकरसात्मभावम्।
श्रीराधिकामदनमोहन केलिकुञ्ज
पुंजैः सुरञ्जितसुमञ्जु चिरं जपामि।।३७।।

परम पावन, असीम माधुर्य्य मण्डित, उज्ज्वल चिन्मय रस घन मूर्ति श्रीराधिका मदनमोहन के केलि कुंज समूह से सुरंजित एवं सुमनोहर "श्रीवृन्दावन" नाम का मैं चिरकाल तक जप करता हूं।।३७।।

राधां नित्यं परिचर हरिप्रेमसारैरगाधां–
बाधां सर्वां स्मर न हि तनुं चापराधान्न रक्ष।
मा याह्यार्त्तः क्वचिदपि विना धाम राधारसान्धं
मा धावाज्ञ! क्वचिदसुलभं धाम वृन्दावनं हि।।३८।।

श्रीहरि के प्रेमसार से अति गम्भीर श्रीराधा की नित्य परिचर्या कर, बाधाओं की कुछ चिन्ता न कर, शरीर की अपराधों से भी रक्षा मत कर, आर्त्त होकर भी श्रीराधा–रसोन्मत्त श्रीवृन्दावन को त्याग करके कहीं मत जा। हे अज्ञ! कहीं मत दौड़, क्योंकि श्रीवृन्दावनधाम अति दुर्लभ है।।३८।।

अक्षैः कुत्रापि खेलत् क्वचन निलयनैः कुत्रचिच्चोरिकाभि–
र्वल्लीवृक्षानुकृत्या क्वचन ननु मिथः क्वापि हिन्दोलनेन।
क्वाप्याश्चर्यप्रहेल्या क्वचन खगमृगादीहितैः क्वेन्द्रजालै–
र्वृन्दारण्येतिदिव्यं किमपि विजयते गौरनीलं द्विधाम।।३९।।

कहीं चौसरादि खेलते हैं, कहीं दौड़ा–दौड़ी खेलते हैं कहीं फिर चोरी–चोरी खेलते हैं, कहीं लतावृक्षादि का अनुकरण करते हैं एवं अन्यत्र परस्पर हिंडोला झूलते हैं, एक स्थल पर आश्चर्य प्रहेलिका द्वारा और दूसरे स्थल पर पशु–पक्षियों की चेष्टा द्वारा और फिर कहीं अन्य स्थान पर इन्द्रजालादि का खेल–खेलते हुए अति दिव्य गौरनील युगलकिशोर श्रीवृन्दावन में उत्कर्ष को प्राप्त हो रहे हैं।।३९।।

सुखवपुरवताराः सन्ति शौरेः कियन्तुः
कति कति विजयन्ते मूर्त्तयो नातिदिव्याः।
न च रुचिरतमाः काः सन्ति साक्षादवस्था
स्तदपि मधुर एको राधिका–नागरो मे।।४०।।

श्रीहरि के अनेक आनन्दमूर्ति–अवतार हैं और कितनी–कितनी दिव्य मूर्तियां यहां से विजय भी कर चुकी हैं रुचिरतम साक्षाद्वस्तु के समान–स्वरूपधारी अनेक विग्रह विराजमान भी हैं, किंतु एकमात्र श्रीराधा नागर ही मुझे अति मधुर लगते हैं।।४०।।

राधा वृन्दावनाख्ये वन इति परमो भाति घोषः पुराणे
तेनास्या न व्रजेऽपि प्रकटमतिमहाश्चर्य पूर्णस्वरूपम्।
अस्याः प्रेमासमोर्ध्वः स हि परपुरुषः सर्वभावेन सिद्ध
स्तस्माद्राधेत्यभिख्या तदतिवशहरिं पश्य वृन्दावनेन्दुम्।।४१।।

पुराणों में यह घोषणा है कि श्रीराधा श्रीवृन्दावन नामक वन में अतिशय शोभायुक्त विराजमान हैं। श्रीराधा के अति महाश्चर्यपूर्ण स्वरूप को ब्रज में भी प्रकट नहीं किया गया है। श्रीराधा का कृष्णप्रेम असमोर्द्ध है और वे श्रीकृष्ण परम पुरुष हैं, इसलिए इनका 'राधा' नाम सर्वभाव से सार्थक हुआ है, इनके अति वशवर्त्ती वृन्दावनचन्द्र श्रीहरि के तू दर्शन कर।।४१।।

सर्वः प्रेमशिरोमणेः परचमत्कारः समुज्जृम्भते
राधायां परमुन्नतिर्मधुपतेस्तामन्वशेषश्रियाम्।
सा वृन्दावन एव सम्यगुदिता पूर्णैकमाधुर्यभू
स्तद्भावेन परेण चिन्तय मनस्तांतं तदत्युज्ज्वलम्।।४२।।

प्रेम शिरोमणि का परम–चमत्कार सर्वत्र सम्यक् प्रकाशित होता है, फिर भी श्रीश्यामसुन्दर श्रीराधा के निकट जब रहते हैं, तब अशेष सौन्दर्यशालिनी श्रीराधा में इसका प्रकाश अति अधिक उदित होता है, वह परिपूर्ण माधुर्यखानि श्रीराधा भी श्रीवृन्दावन में ही सम्यक्रूप से प्रकाशित हो रही हैं, हे मन ! पराकाष्ठा–प्राप्त उस अति उज्ज्वल रस की तद्भावभावित चित्त से चिन्ता कर।।४२।।

श्रीमद्वृन्दावनश्रीर्मम हृदि सकृदप्यस्तु सर्वेश्वराणां
सर्वानन्दातिसारं किमपि रसयतामप्यहो मोहदात्री।
साऽत्याश्चर्यं हरेः श्रीप्रकृतिरथ कृतिर्भातु मे वार्षभान-
व्येकाङ्घ्रि-श्रीनखेन्दुच्छबिमधुरिमणि स्वांतविश्रांतिरस्तु।।४३।।

अहो अनिर्वचनीय सर्वानन्दातिसार के रस को आस्वादन करने वाले सर्वेश्वरों को भी मोहित करने वाली श्रीमद्वृन्दावन की शोभा एक बार भी मेरे हृदय में उदित हो। वह अति आश्चर्यमय श्रीहरि की शोभा-सम्पत्तिशालिनी प्रकृति की कृति विशेष है-वह मेरे हृदय में प्रतिभात हो। अहो! श्रीवृषभानुनन्दनी के चरणों के श्रीनखचन्द्र के कांति माधुर्य में मुझे पूर्ण विश्राम प्राप्त हो यही मेरी प्रार्थना है।।४३।।

एकैकांगच्छटाभिर्भरितदशदिशो गौरनीलोज्ज्वलाभि-
र्नित्ये कैशोर एवाद्भुतवयसि सतो नित्यकामार्दितस्य।
अत्याश्चर्य्यैरनन्तैर्नवमदनकलाकौतुकै रात्र्यहानि
श्रीवृन्दारण्यकुञ्जे नयत उरुरतिं विन्द तदयुग्मधाम्नः।।४४।।

श्रीगौरश्याम प्रत्येक अंग छटा से दशों दिशाओं को पूर्ण कर रहे हैं। नित्य अद्भुत किशोर अवस्था युक्त हैं, नित्य कामपरायण हैं, अति आश्चर्यमय अनन्त नवकाम-कला-कौतुक में ही वे वृन्दावन में दिन-रात यापन करते हैं। अतः उन श्रीयुगल किशोर का प्रचुर प्रेम प्राप्त कर।।४४।।

नित्यं पीड़यतोऽपि नैव मनसाऽप्यापीड़यन् यद्गतान्
जन्तून् भक्तिभरान्नमंश्च सततं शक्त्या प्रियैः पूरयन्।
लाभालाभ-जयाजयोन्नति विपन्मानापमानादिके
तुल्यः कृष्णनिविष्टधीरधिवसन् वृन्दावनं वन्द्यताम्।।४५।।

श्रीवृन्दावन-धामवासी जीव समूह यदि नित्य पीड़ा दें तो भी उनको मन से भी पीड़ा न देकर, किन्तु भक्तिपूर्वक निरन्तर उनको नमस्कार करते हुए, शक्ति अनुसार प्रियवस्तु दान कर उनके अभाव को पूर्ण कर, जो पुरुष श्रीकृष्ण में चित्त लगाकर लाभ अलाभ में जय-अजय में, उन्नति अवनति एवं मान-अपमान में समबुद्धि रह कर श्रीवृन्दावन में वास करते हैं, उनको मैं प्रणाम करता हूं।।४५।।

दूर्वाच्यानि सहस्रशः परिभवान्नीचैः कृतान् कोटिशो–
भक्ष्याच्छादनवास कुट्यमिलनाद् दुखान्यलं कोटिशः।
कामाद्यैरतिपीड़या च मनसो वैकल्यमात्यन्तिकं
ये सोढ्वाऽपि वसन्ति केलिविपिने कृष्णस्य तेभ्यो नमः।।४६।।

सहस्र सहस्र दुर्वचन, नीच द्वारा कोटि–कोटि निन्दा, भोजन वस्त्र एवं रहने के लिए स्थान घरादि की अप्राप्ति में कोटि प्रकार के दु:खों को एवं कामादि की भारी पीड़ावश अति अधिक मानसिक विकलता को सहन करते हुए जो श्रीकृष्ण की विलास भूमि–श्रीवृन्दावन में वास करते हैं–उनको मैं नमस्कार करता हूं।।४६।।

दोषान्न स्थिर जंगमेषु कलयन् कस्यापि नोद्वेजयन्
किंचिद्यत्तदयत्नलब्ध–मितभुक् चित्तेऽपि न स्त्रीक्षणः।
श्रीराधा–मुरलीधरोज्ज्वलयशः शृण्वन् गृणन् संस्मरन्
यो वृन्दावनमावसेन्मधुरधीर्धन्याय तस्मै नमः।।४७।।

स्थावर–जंगम में दोष दृष्टि रहित होकर, किसी को भी उद्वेग न देकर बिना यत्न जो मिल जाय, उसे खाकर, चित्त से भी स्त्री जाति के प्रति न देखकर एवं श्रीराधामुरलीधर के उज्ज्वल यश का श्रवण–कीर्त्तन एवं स्मरण करते–करते जो मधुरबुद्धि पुरुष श्रीवृन्दावन में वास करता है, उस महाभाग्यवान् को मैं नमस्कार करता हूं।।४७।।

श्रीवृन्दाटवि ! हन्त संवृणु निजां मायां महाधीशितु–
र्मायातस्त्वयि नो विभेमि जनयेत् कम्पं त्वदीया पुनः।
स्वं स्वीयं सुखचिद्घनं वत यया सन्दर्श्यतेऽन्यादृशं
दूरादेव पतन्ति नष्टमतयो जातापराधा यतः।।४८।।

हे श्रीवृन्दावन ! आप अपनी माया का सम्वरण कीजिए, महाधीश्वर की कृपा से मुझे यहां और कोई भी भय नहीं है, किंतु आपकी माया मुझे कम्पायमान करती है, क्योंकि जो (माया) आपको एवं आप में अवस्थित जितनी सुख–चिद्घन वस्तुओं को अन्य प्रकार (प्राकृत) प्रतीयमान कराती है, उसे ही देखकर नष्ट बुद्धि पुरुष अपराध युक्त होकर दूर से ही अधोगति को प्राप्त होते हैं।।४८।।

हा वृन्दाटवि ! किं करोमि न मनाग् दुष्टेन्द्रियाणां गणा
उल्लंघ्याखिललोकधर्मपदवीमाधावतां कुत्सिते।
नाकर्षे मन शक्तिरस्ति घटतेऽक्षम्योऽपराधस्त्वयि
क्वाप्यन्यत्र न मे सुखं तदगतिं मा मुंच मा मुंच माम्।।४६।।

हे वृन्दावन ! मैं क्या करूं ? अखिल लोकधर्म–मार्ग का उल्लंघन करते हुए कुत्सित विषयों में प्रवेश करने वाली दुष्ट इन्द्रियों की संख्या भी थोड़ी नहीं है। उनको रोकने की शक्ति भी मुझमें नहीं है, इसलिए आपके प्रति अमार्ज्जनीय अपराध होता है और कहीं भी मेरे लिए सुख नहीं है, तुम्हारी शरणागत हूं, मुझे त्याग नहीं करना, त्याग नहीं करना।।४६।।

नैवान्यत्र क्षणमपि मया शक्यते स्थातुमत्रा–
मृष्यात्युच्चैरसम–कुधियो जायते मेऽपराधः।
हा हा वृन्दावन ! कुविषयैकाशया लोकधर्मौ
त्यक्त्वा स्वैरं विचरति मयि त्वत्कृपा भाविनी किम् ?।।५०।।

'अन्यत्र क्षणकाल भी मैं नहीं रह सकता।' इसको अति गम्भीर विवेचना करने से मुझ मतिमन्द को अपराध लगता है। हा हा श्रीवृन्दावन ! कुविषयों की आशा में लोक–घर्म त्याग करने वाले एवं यथेच्छाचारी मुझ पर क्या आप कृपा करेंगे ?।।५०।।

महाश्चर्योदार्याः परमकरुणार्द्रार्द्रहृदया
महादिव्यानन्तस्वरसविलसद् वैभवभराः।
हरिप्रेमावेश–प्रकट–पुलकाश्रुव्यतिकराः
परां वृन्दारण्ये विदधतु मयि स्वीकृतिमगाः।।५१।।

महाश्चर्य उदारताशील परम करुणामय, आर्द्र हृदय, महा दिव्य अनन्त स्वरस विलासमय सम्पत्तिशाली, हरि–प्रेमावेश में पुलक अश्रु आदि प्रगट करने वाले इस वृन्दावन के वृक्षराज मुझे परम उत्तम रूप से स्वीकार करें।।५१।।

अमी राधाकृष्णप्रणय–रसपूर्ण–विटपिन–
स्तयोः प्रीत्यै नानाद्भुतफलप्रसूनानि दधति।
तदिच्छातो हस्ते स्वयमुरु पतिष्णूनि विहगा–
रवैर्भृंगीगीतैरपि च मधुरैर्विभ्रति मुदम्।।५२।।

यहां के समस्त वृक्षगण श्रीराधाकृष्ण के प्रणय–रस से परिपूर्ण हैं, ये श्रीयुगलकिशोर की प्राप्ति के लिए अनेक प्रकार के फल–फूल धारण करते हैं और फल–फूल उनकी इच्छानुसार उनके हाथों में अपने आप पुनः पुनः गिरते हैं और ये वृक्षगण, पक्षी–समूह की सुन्दर ध्वनि एवं मधुकरों की गुञ्जार से भी युगल–किशोर को आनन्दित करते हैं।।५२।।

ये श्रीराधामुरलीधरयोः श्रीलपादारविन्द–
स्पर्शानन्दात् पुलकिततनु स्यन्दमानाश्रुधाराः।
यत्पुष्पाद्यैः स्वयमतिरसात्तौ मिथो वेशयेतां
वृन्दारण्यद्रुमतनु महाधन्यधन्यान्नमस्तान्।।५३।।

जो श्रीराधामुरलीधर के श्रीचरणकमलों के स्पर्शानन्द वश पुलकित शरीर से अश्रुधारा बरसाते हैं, जिनके पुष्पादि के द्वारा वे युगलकिशोर अति रसयुक्त होकर स्वयं एक दूसरे की वेशभूषा रचते हैं, उन श्रीवृन्दावन–वासी वृक्ष–स्वरूप महा धन्य धन्य महापुरुषों को मैं नमस्कार करता हूँ।।५३।।

किंचित् खर्परघर्षणेन विदधद्दिव्यांगरागं मिथः
स्यूतैर्दिव्यदलैः स्तुतैः कृतपटं पुष्पादिभिर्भूषितम्।
पीत्वा स्यन्दिमधूत्पुटैः स्थलशयं श्लिष्ट्वा प्रशस्य प्रियं
गौरश्याममहो द्वयं मम तदानन्दाब्धि वृन्दावने।।५४।।

खर्पर घिसने से परस्पर कोई दिव्य अंग राग करते हैं, सुन्दर रमणीय दिव्य पत्रादिकों को सिलाई करके वस्त्र रूप से धारण करते हैं, पुष्पादि द्वारा अलंकृत होते हैं, पत्रादि से रचित दोनों (पात्रों) में क्षरित मधुपान करके उनके नीचे शयन करते हैं, परस्पर एक दूसरे को आलिंगन और प्रशंसा करते हैं–वे मेरे प्रिय श्रीगौरश्याम युगलकिशोर आनन्द के समुद्र श्रीवृन्दावन में विराजमान हैं।।५४।।

विस्रस्तं वरकेशबन्धमुदयद्रोमांचपुंजं स्खलद्–
वाक्पीयूषभरं त्रुटन्मणिसरस्रक्खण्डितालेपनम्।
यत्तत्क्लृप्तपरिच्छदं रसमयीं यत्तद्विचेष्टां दधद्
धामद्वन्द्वमनंगविह्वलमुपैम्येकात्म वृन्दावने।।५५।।

युगलकिशोर के केशबन्धन खुले हैं, दोनों पुलकित हो रहे हैं, स्खलित गति है एवं वचनामृत का प्रवाह बरसाने वाले हैं, मणिमाला टूट रही है, कस्तूरी आदि के लेप से सर्वांग शोभित हो रहे हैं, बहुत सूक्ष्म सा वस्त्र कटि में धारण कर रहे हैं, इस प्रकार एक स्वभाव विशिष्ट कामातुर युगलकिशोर के श्रीवृन्दावन में दर्शन करता हूं।।५५।।

वृन्दारण्ये भ्रमदतिरसावेशतो घूर्णमानं
गौरश्यामं किमपि मधुरं धामयुग्मं किशोरम्।
मालावस्त्रादिकमपि ततः पूर्यमाणं मुहुस्तै
र्दासीवृन्दैरतिपुरुमुदा सेव्यमास्तां कदापि।।५६।।

श्रीवृन्दावन में भ्रमण करते–करते अतिशय रस–वश इधर उधर विहारशील कोई मधुर गौरश्याम युगलकिशोर विराजमान हैं। सदा दासीवृन्द माल्य वस्त्रादि द्वारा अति आनन्दपूर्वक उनकी शोभा संवर्धन करती हुई उनकी सेवा करती हैं।।५६।।

श्रीवृन्दावन नित्यकेलिकलया चाहर्निशं मन्मथा–
क्रान्तं नित्यकिशोरमोहनमहोद्वन्द्वं किमप्यद्भुतम्।
प्रत्यंगोच्छलदप्रमेय–मधुरश्रीगौरनीलोज्ज्वल–
ज्योतिः पूर्णसुधाब्धिलीन–चिदचिद्भेदप्रपंचं भजे।।५७।।

श्रीवृन्दावन की नित्य केलि–कला द्वारा दिन–रात कामातुर नित्य–किशोर जिस अद्भुत मनोहर जोड़ी के प्रति अंग से उच्छलित असीम मधुर शोभायुक्त गौरनीलात्मक उज्ज्वल ज्योतिपूर्ण अमृतसमुद्र में स्थावर जंगम भेदमूलक संसार विलीन हो रहा है, उस श्रीयुगलविग्रह का भजन कर।।५७।।

विटपे विटपे दले दले प्रतिपुष्पं फलपल्लवादिषु।
वहुसौरभ–सीधुरोचिषः स्मर वृन्दावन–दिव्यशाखिनः।।५८।।

प्रति शाखा में, प्रति पत्र में, प्रति फूल में, प्रति फल–पल्लवादि में ही अति सौरभामृत कांतियुक्त–श्रीवृन्दावन के दिव्य वृक्षगणों को स्मरण कर।।५८।।

पुलिने पुलिने यमस्वसुर्द्रुमवृन्दैर्हरिचन्दनादिभिः।
विहरन्नवकुंजमंजुले भजगौरासित–धामतद्द्वयम्।।५९।।

श्रीयमुना पुलिनों में हरिचन्दन आदि के वृक्षों से विरचित नवीन–नवीन मनोहर कुंजों में विहार–परायण उन श्रीगौरश्याम युगलकिशोर का भजन कर।।५९।।

कनकमरकत–श्रीहारि–दिव्यांगयोस्त–
न्मधुर मधुर धाम्नोः केलिवृन्दं कयोश्चित्।
अतिमधुरिमसान्द्रानन्दनिस्यन्दि वृन्दा
वनमनु रससिन्धोः सारमीक्षे कदा नु।।६०।।

हाय! मैं स्वर्ण व मरकत मणि की शोभा हरण करने वाले दिव्यांगी एवं अनिर्वचनीय मधुर से मधुरतर युगल–विग्रह के, श्रीवृन्दावन में प्रकटित अति मधुरसार–घनानन्द बरसाने वाले रस–समुद्र की सार–स्वरूप लीलाओं का कब दर्शन करूंगा।।६०।।

श्रीगांधर्वा–प्राणवन्धोः पदाब्जद्वन्द्वोन्मीलत् प्रेमपीयूषसिन्धोः।
स्वादन्तेऽत्याश्चर्यमाधुर्यधाराः श्रीमद्वृन्दाकानने केऽपि धन्याः।।६१।।

श्रीमद्वृन्दावनवासी कोई–कोई भाग्यवान् पुरुष ही श्रीराधा प्राणबन्धु के युगल–चरण–कमलों से विगलित प्रेमामृत समुद्र को अति आश्चर्यमय माधुर्य धारा का आस्वादन कर पाते हैं।।६१।।

सर्वानन्दाच्छादकानन्दसारा–सारान् वर्षन् प्रेमवर्षा प्रकर्षान्।
वृन्दारण्ये सद्रुमैर्दुर्दिने श्रीकृष्णाम्भोदो भाति राधा तड़ित्वान्।।६२।।

समस्त आनन्द राशियों को आच्छादन करने वाला जो आनन्दसार है उस प्रेम का वर्षा प्रवाह करते हुए इस श्रीवृन्दावन के वृक्षों के पीछे श्रीराधारूप तड़ितयुक्त श्रीकृष्णरूप घन उदित हो रहा है।।६२।।

विकच नवसुहेमचम्पकेन्दीवरदलवृन्द–सुगौरनीलभासोः।
स्फुरतु चरितवृन्दमेव वृन्दावनभुवि नूतनदिव्यगोपयूनोः।।६३।।

प्रफुल्लित नव हेम–चम्पक एवं नील कमलदलवत् उज्ज्वल गौरनील कांतियुक्त जो नव दिव्य गोप–गोपी श्रीवृन्दावन में प्रकाशित हो रहे हैं–उन दोनों की लीलाएं मेरे हृदय में स्फुरित हों।।६३।।

द्रुतकनक–महेन्द्रनीलरोचिर्द्वितयमहः स्फुरदाद्ययौवनश्रि।
निरवधि मदनोन्मदावघूर्णं परिचर चारुकदम्ब कुंजवीथ्याम्।।६४।।

तप्त स्वर्ण एवं इन्द्रनीलमणिवत् कांतियुक्त युगलविग्रह श्रेष्ठ यौवन–शोभायुक्त प्रकाशित हो रहे हैं, सुन्दर कदम्ब कुंज–वीथियों में निरतिशय मदन मत्तता में इतस्ततः भ्रमण कर रहे हैं–उन युगलकिशोर की सेवा कर।।६४।।

परररसवरवृन्दकन्दवृन्दाविपिन महाद्भुत पुष्पवाटिकायाम्।
विहरति मम गौरनीलमात्मद्वयमतिकामविमोहितं किशोरम्।।६५।।

परम रसमय श्रेष्ठ वस्तुओं के मूलीभूत श्रीवृन्दावन की महाद्भुतपुष्प वाटिका में मेरे प्राणस्वरूप श्रीगौरश्याम युगलकिशोर अतिशय काम–विमोहित होकर विहार करते हैं।।६५।।

कुसुमितवनराजिमंजुगुंजन्मधुप करन्वित कोकिलाकुहूभिः।
मुहरति विधुरौ स्मरामि राधामुरलिधरौ सहसा स्थितौ निकुञ्जे।।६६।।

प्रफुल्लित वनराजि, मधुकरों की मनोहर गुंजार, कोकिलाओं की कुहू–कुहू ध्वनि से बार–बार अति विधुर हुए श्रीराधामुरली धरहठात् निकुंज में विराजमान हो रहे हैं, मैं उनका स्मरण करता हूँ।।६६।।

माद्यद्भृंगवरांगनाभिरभितः संगीतमंगीकृतं
कुर्वन्ति स्वकुहूकुहूरिति मुहुः कोलाहलं कोकिलाः।
लीलातांडवितं शिखंडिभिरतिप्रावर्त्ति वल्लीद्रुमाः
सर्वेऽत्यन्तसुपुष्पितास्तव मुदे राधेऽद्य वृन्दावने।।६७।।

हे राधे! मत्त भ्रमरीगण इधर उधर संगीत कर रही हैं, कोकिलाएं अपना कुहू–कुहू कलरव कर रही हैं, मोर लीला–तांडव नृत्य कर रहे हैं, लता–वृक्षराज भी समस्त प्रफुल्लित होकर श्रीवृन्दावन में आज तुम्हारे आनन्द की वृद्धि कर रहे हैं।।६७।।

पश्चादेत्य प्रियमतिरसाद्यत्र नेत्रे पिधाय
ज्ञातं मुञ्चत्वमसि ललितेत्याह राधा हसन्तम्।
सत्यं ज्ञातं यदसि पुलकिन्येव मालीं हसन्तीं
सन्दर्श्यान्या शिशिरमरुतं पल्लवेनाजघान।।६८।।

प्रीतम ने पीछे से आकर रसाधिक्य में श्रीराधा के नेत्रों को आवृत्त किया एवं हँसने लगे–श्रीराधा ने कहा–"मैं जान गई हूं, अब छोड़ दो, तुम ललिता हो।" एक सखी ने हंस कर कहा "सत्य जान गई हो, जिससे तुम पुलकित भी

हो रही हो।"दूसरी सखी उसे दिखा कर पल्लव द्वारा शीतल वायु संचार करने लगी (इशारे से जनाया कि "वे श्यामसुन्दर हैं–ऐसा मत बताना)।।६८।।

यत्रानन्तरती रतिस्मर महाविस्मापि–रूपश्रियौ
श्रीराधातदनन्य नागरमणी रात्रिन्दिवं क्रीड़तः।
नित्याश्चर्यकिशोरवेशललितौ लोलैः सखीमण्डलै–
रेकात्म्योज्ज्वलभावनाश्रु पुलकैर्नित्योत्सवैः सेवितौ।।६६।।

अनन्त रति–कामदेव को भी महा विस्मय उत्पन्न करने वाले रूप शोभायुक्त श्रीराधा एवं उसके अनन्य नागरमणि वहां रात दिन अनन्त रतिक्रीड़ा करते हैं, एवं एकात्म–उज्ज्वल भावना युक्त अश्रु पुलकित गातयुक्त चंचल सखीगण द्वारा नित्योत्सव के अनुष्ठान में नित्य आश्चर्यमय किशोरवेशधारी ललितयुगल सरकार की सेवा होती है।।६६।।

राधाकृष्णसुगौरनीलवपुरुद्वेलच्छटाम्भोनिधिः
पूरैः प्रेमरसात्मकस्य चिदचिद्द्वैतप्रथा प्रोञ्जनः।
श्रीवृन्दावनमुज्ज्वलोज्ज्वलमनाद्यन्तोल्लसत्तन्महा–
नंगोत्तुंगविहाररंगमखिल–व्यासंगभंगं भजे।।७०।।

श्रीराधाकृष्ण का सुगौरनीलवपु मानों असीम कांति–समुद्र है, उसके प्रेम रसात्मक–प्रवाह द्वारा चिद्–अचिद् निखिल वस्तुओं की द्वैत–प्रथा (भेदमूलक व्यवहार) लुप्त हो रही है। अत्युज्ज्वल अनादि, अनन्त प्रकार से उल्लासशील महा–कामदेव की अति महा विहारस्थली एवं अपने सिवाय अखिल वस्तुओं की विशेष आसक्ति के नाशक श्रीवृन्दावन का मैं भजन करता हूं।।७०।।

स्वामिन्यास्स्व क्षणमिह मनाङ्मोहनात्रैव तिष्ठ
सम्यक् कुर्वे विततसुरताऽन्यादृगंगाम्बरादि।
प्राप्तप्राया इह हि ललिताद्यालयोऽन्वेष्यमाणा
हासं हासं सपदि ललितं लज्जयिष्यन्ति सर्वाः।।७१।।

हे स्वामिनि ! यहां क्षण काल के लिए बैठिए, हे मोहन ! यहां अवस्थान करो, जिसमें ढीले–ढाले वसनादिकों को उत्तमरूप से आपको पहिना सकूँ ललितादि सखीगण भी तुम्हें ढूंढ़ती हुई शीघ्र ही तुम्हारे पास आ रही हैं, वे हंस–हंस कर तुम्हें उत्तम रूप से लज्जित करेंगी।।७१।।

तत्सौन्दर्यं किमपि कलयत् सन्नवाणीमरन्द–
स्यन्दैःसान्द्रप्रसृमर–महाचन्द्रिकास्यारविन्दे।
सर्वांगेषु प्रकटपुलकानंगवैवश्यलोलद्
गौरश्यामांगकमविरहं यत्र भाति द्विधाम।।७२।।

गद्‌गद् वाणीरूप मधु–धारा वर्षणकारी एवं सान्द्र विस्तृत महा–चन्द्रिकामय मुख–कमल में अनिर्वचनीय सौंदर्य दर्शन करते हुए जिनके सर्वांग पुलकित हो उठते हैं एवं अनंग विवशता वश जो चंचल हो उठते हैं, वे नित्य मिलित गौरश्यामात्मक युगलविग्रह यहां (श्रीवृन्दावन में) नित्य विराजमान हैं।।७२।।

यत्राऽन्योन्यप्रणय सरसावेशपूर्णांगतांगं
हासं हासं रुचिरकलयाऽन्योन्य संघट्टितांगम्।
बारं बारं सुरस समरोत्साहसन्नद्धमूर्ति–
ज्योतिर्द्वन्द्वं विशति सहसा मंजुकुंजाजिरेषु।।७३।।

वहां युगल किशोर अपने अंगों को परस्पर प्रणय के रसमय आवेश से पूर्ण करते हैं, दोनों हास्य करते–करते मनोज्ञ–कला–विलास में परस्पर आलिंगन करते हैं। बार–बार रसाल–रतिरण उत्साह में सज्जित होकर सहसा मञ्जुल कुञ्ज–चबूतरे में प्रविष्ट होते हैं।।७३।।

वेणीचूड़ातिलकरचनैर्गन्ध–ताम्बूल–माल्यै–
र्दिव्यैः सूक्ष्मोज्ज्वलवरपटैर्दिव्यैर्दिव्यान्नपानैः।
सम्यक् सवबीजनमृदुपदाम्भोज सम्वाहनाद्यैः
सख्यो राधामुरलिधरणौ यन्निकुंजे भजन्ति।।७४।।

इस वृन्दावन की कुंज में सखीगण वेणी–चूड़ा एवं तिलक आदि रचना कर, गन्ध, तांबूल, माल्यादि अर्पण कर, दिव्य–दिव्य सूक्ष्म उज्ज्वल वस्त्रादि पहिना कर, दिव्य–दिव्य अन्न पानादि भोजन कराकर, सुन्दर संवीजन (पंखा) और मृदुपाद–सम्वाहन आदि के द्वारा श्रीराधामुरलीधर की सेवा करतीं हैं।।७४।।

काश्चित् कुञ्जान्निरवधि परिष्कुर्वते श्रीविभेदै–
र्ग्रथन्त्यन्या विविधकुसुमैर्दिव्यमाल्यादिकानि।
काश्चिद्‌युक्त्या विदधति मुदा दिव्यगन्धप्रकारान्
काश्चित् कुंचन्त्यतिवरपटं यत्र राधा–सुदास्यः।।७५।।

श्रीवृन्दावन में श्रीराधा की उत्तमोत्तम दासीगणों में कोई–कोई तो निरन्तर कुसुमों को परिष्कार करती हैं, शोभाभेद से विविध पुष्पों द्वारा कोई कोई दिव्य मालादि की रचना करती हैं, कोई आनन्दपूर्वक युक्ति से गन्ध–द्रव्यादि प्रस्तुत करती हैं और कोई अति सुन्दर रेशमी वस्त्र बुनने में नियुक्त हो रही हैं।।७५।।

तृणीकुर्वत् सर्वास्त्रिदशतरुणीर्नव्यवयसो
महामाधुर्य्यौघैरपि सुषमयैकांगगतया।
वधूवृन्दं वृन्दावनभुवि भजस्तद्रसमयं
महोद्वन्द्वं निष्पन्दयदपि मुनीन्द्रं स्मर मनः।।७६।।

हे मन ! महामाधुर्यराशि एवं एकांगस्थित–शोभा द्वारा समस्त दिव्य नवीन युवती देवीगणों को भी जो युगल–रसाविष्टचित्त वधूवृन्द (ब्रज गोपीगण) तृणवत् उपेक्षा करती हैं, उनका भजन कर और मुनीन्द्रगणों को भी चित्रवत् कर देने वाले श्रीयुगलकिशोर का इस श्रीवृन्दावन में भजन कर।।७६।।

सा वृन्दाकाननश्रीस्तदसमसुषमा–वैभवं गौरनील–
श्रीदम्पत्योरुदारे नववयसि सतोः केवलानंगरंगे।
तादृक् प्राणद्वयाराधनरसविवशा दिव्यलावण्यरूप–
श्रीभिः पूर्णाः किशोर्योज्ज्वलित–दशदिशो यूथशो मे स्फुरंतु।।७७।।

श्रीवृन्दावन की वही शोभा, गौरनील–कांति युक्त युगल सरकार की केवल अनंग–रंगमय उदार नवीन रस की वही अनुपम सुषमा–राशि एवं उसी प्रकार प्राण–प्रियतम युगलकिशोर के आराधन–रस से विवश हुई दिव्य लावण्य रूप–शोभा–सम्पन्ना वही किशोरीगण यूथ–यूथ में दशोंदिशाओं को प्रकाशित करती हुई मेरे हृदय में स्फुरित हों।।७७।।

अनन्तब्रह्माण्डावलि–वलित–मूलप्रकृतितः
सुदूरे स्वादीयो जयति भगवज्ज्योतिरमृतम्।
तदन्तर्वैकुण्ठं तदतिरहसि स्वादिम–महो,
मनोभु–बीजात्मद्युतिमदिह वृन्दावनमिदम्।।७८।।

अनन्त ब्रह्माण्ड–राशि सम्वलित मूल प्रकृति के परे अमृतमय आस्वादनीय भगवज्ज्योति जय युक्त हो रही है–उसके अन्तःस्थल में वैकुण्ठ है, उसके भी अतिगुप्त स्थान में काम बीजात्मक द्युतिशील आस्वादनीय श्रीवृन्दावन विराजमान है।।७८।।

स्थलं वृन्दारण्ये मृदुलविपुल स्वच्छमधुरं
महाचिन्तारत्नप्रचयमयमानन्द–सदनम्।
महादिव्यामोदं प्रणयरस–साराकरमहं
परागाणां पुञ्जोज्ज्वलमतिविचित्रच्छबि भजे।।७६।।

श्रीवृन्दावन–मृदुल, अति स्वच्छ, मधुर, महा चिन्तामणि–समूहयुक्त है, आनन्द निकेतन, महादिव्य सुगन्धि पूर्ण तथा रससार का घर है। पराग में उज्ज्वल तथा अति विचित्र कांति युक्त है, मैं इसका भजन करता हूं।।७६।।

इहैव श्रीराधामुरलिधरणौ स्वारसिक–स–
न्मिथो भावाविष्टौ नवनव–वयोरूपमधुरौ।
महाप्रेमानन्दोन्मद–रसचमत्कारनिकरौ
किशोर्योऽत्याश्चर्या निरवधि भजन्ते प्रणयतः।।८०।।

यहां श्रीवृन्दावन में अति आश्चर्यमय किशोरीगण–एक दूसरे के प्रति स्वाभाविक सुन्दर भावाविष्ट–चित्त, नव–नवायमान वयस एवं रूप माधुर्य–मण्डित तथा महा प्रेमानन्द की उन्मत्तता जनक रस–चमत्कारधारी श्रीराधामुरलीधर का निरन्तर प्रीतिपूर्वक भजन करती हैं।।८०।।

राधाकृष्णपदारविन्दमकरन्दास्वाद–माद्यन्मनो
भृंगाः सन्तत–मुद्गताश्रुपुलकास्तत्प्रेम तीव्रौघतः।
अत्यानन्दभरात् कदाप्यतिलये शोचन्त्य आत्मेशयोः
सेवाया विहतेः स्फुरन्तु मम ताः श्रीराधिकाराधिकाः।।८१।।

जिनका मन मधुकर श्रीराधाकृष्ण के चरण–कमलों के मकरन्द आस्वादन में उन्मत्त हो रहा है, युगल–प्रेम के तीव्रप्रवाह जिनमें निरन्तर ही अश्रु–पुलकादि उत्पन्न होते हैं, एवं प्राणेश्वर युगलकिशोर के कभी आनन्द वश अथवा लुब्ध होने पर उनकी सेवा में विघ्न आ जाने से जो अनुताप करती हैं–वे श्रीराधिका दासीगण मेरे हृदय में स्फुरित हों।।८१।।

स्वप्राणद्वयकार्यतस्तत इतो लोलाः कपोलस्थली–
वेलत् कांचनकुण्डलाः कटिरणत्कांचीक्वणन्नूपुराः।
चूड़ामंजूरणत्कृतैः सुमधुरा दिग्व्यापकांगच्छटा
राधाकर्मकरीः सुहेमलतिकास्तन्वीः किशोरीः स्मर।।८२।।

अपने प्राणेश्वर युगलकिशोर के कार्यवश इधर–उधर आने–जाने से जिनके कपोलों पर स्वर्णकुण्डल अति डोलायमान हो रहे हैं, कटि में कांची व नूपुरों की ध्वनि होती है, चूड़ा में अति मनोमद मधुर ध्वनि होती है, जिनकी अंग–कांति से दशों दिशाएं प्रकाशित होती हैं, इस प्रकार सुन्दर स्वर्ण लतावत् कृशांगी किशोरी श्रीराधा–दासीगण को स्मरण कर।।८२।।

पृथुकटितटशाटी–विस्फुरत्किंकिणीका–
श्चरणकमलसिञ्जन्मंजु मंजीरशोभाः।
कुचमुकुल–विराजत् कंचुली लोलहाराः
स्मरत कनकगौरी राधिकाकिंकरीस्ताः।।८३।।

स्थूल कटि देश में साड़ी पर किंकणी शोभायमान हो रही है, चरणकमलों में शोभायमान मनोज्ञ नूपुर विराजमान हैं, कुचमुकुलों पर चोली के ऊपर हारसमूह इधर–उधर डोलायमान होकर अति शोभित हो रहे हैं। इस प्रकार की स्वर्णगौरांगी श्रीराधादासीगण का स्मरण कर।।८३।।

मणिकनक–निबद्धानर्घ्य मुक्ताढ्यनासा
बहुलचिकुरवेणी विस्फुरद्रत्नगुच्छाः।
अमित कनकचन्द्रज्योतिसुस्मेरवक्त्रा
नवतरुणिम–लीलाः कांति सम्मोहनांगीः।।८४।।

मणि–स्वर्ण–जड़ित बहुमूल्य मुक्तादि से उनकी नासिका शोभित हो रही है, घने केशयुक्त वेणी में रत्नों के गुच्छे प्रकाशित हो रहे हैं, अनुपम स्वर्णचन्द्रज्योतिवत् मुख–मण्डल सुमधुर मृदु हास्य से उज्ज्वल हो रहा है, एवं नवीन तारुण्य, लीला और कांतिधारा से वे अनुपम जगन्मोहिनी मूर्त्ति धारण कर रही हैं।।८४।।

सहजमधुर–राधाकृष्ण–तीब्रानुराग–
प्रसरमुहुरुदञ्चच्चारुरोमांचपुञ्जाः।
प्रतिपदपरिवृद्धानन्दसिन्धावगाधे
प्रतिमुहुरतिमत्तोत् फुल्लितांगा हसन्तीः।।८५।।

श्रीराधाकृष्ण के प्रति सहज, मधुर, तीव्र अनुरागवश बार–बार उनमें सुन्दर रोमांच होता है, प्रतिपद में वर्धनशील अगाध आनन्द सिन्धु में प्रति–क्षण

अति उन्मत्त और प्रफुल्लित होकर वे हंसती हैं।।८५।।

नवकनक–सुगौरज्ज्योतिरंगच्छटौघैः
खचित–दशदिगन्ता दिव्यकैशोररूपाः।
तदतिरस–किशोरद्वन्द्व–भावोन्मदान्धा
विविध–वसनभूषा भान्ति राधानुचर्यः।।८६।।

नवगलित स्वर्णवत् सुगौर ज्योतिर्मय अंगों की कांति से वे दशोंदिशाओं को प्रकाशित करती हैं, दिव्य किशोरवयस, युगल किशोर के रसातिशय में एवं भाव मदान्ध विविध वसन–भूषणों से सुसज्जित श्रीराधिका दासीगण प्रकाशित हो रही हैं।।८६।।

श्रीमद्वृन्दावन नवलता–मन्दिरेष्विन्दिरेश–
ध्यानास्पन्दात्मनि परिचितेनाद्भुतेन्दिन्दिरेण।
केनाप्यन्वेषित–पररसामोद–सर्वस्वयोर्मे
श्रीगान्धर्वापदकमलयोर्दास्यमाशास्यमस्तु।।८७।।

श्रीमद्वृन्दावन के नवलता–मन्दिरों में लक्ष्मीकांत के भी ध्यान करने योग्य किसी एक अद्भुत मधुकर द्वारा अन्वेषित श्रेष्ठ रसानन्द के सब सारभूत श्रीराधा के युगलपद कमलों का दासत्व ही मेरे आश्वास की वस्तु हो–यही मेरी प्रार्थना है।।८७।।

चिन्तारत्नप्रकरविलसच्छर्करं सत्परागो–
न्मीलत्पुञ्जप्रकटरसवत्कृष्णराधापदांकम्।
नाना–वर्णोज्ज्वलमणिमयं चिद्रसापाररोचिः
श्रीमद्वृन्दाविपिनवरभूमण्डलं संस्मरामि।।८८।।

जहां के प्रति कंकड़ में चिन्तामणि समूह प्रकाशित होते हैं प्रति रजकण में रसिक श्रीराधाकृष्ण के पद–चिन्ह पुञ्ज प्रकट होते हैं, नाना वर्ण की उज्ज्वल मणियों से खचित चिद्रसमय अपार कांतियुक्त श्रीमद्वृन्दावन के श्रेष्ठ भूमि–मण्डल को मैं सम्यक्रूप से स्मरण करता हूं।।८८।।

वृन्दारण्यस्थलीयं सुविमलमृदुलाकांतकांतानितान्त–
विस्फुर्ज्जाद्दिव्यरत्नच्छविरतिमसृणानन्दसान्द्रातिवासा।

शाखौघैः पत्रपूर्णैरुपरिहिततुषारातपादिस्तरूणां
नात्रापेक्षास्तरादेस्तदुपरि विशतोः खेलनं किञ्चिदत्र।।८६।।

श्रीवृन्दावन की स्थली सुविमल एवं कोमल है, कांत (श्रीकृष्ण) और कांता (श्रीराधा) युगल की दिव्य रत्नकांति के आधिक्य से स्फूर्त्ति प्राप्त है, अति मसृणा एवं आनन्दघन का निवास स्थान है, जहां तहां वृक्षों की पत्रपूर्ण शाखाएं ही तुषार धूपादि ऊपर सहन करती है, यहां चन्दोआ आदि की कोई आवश्यकता नहीं है, यहां विराजमान होकर श्रीयुगलकिशोर अनुपम लीला करते हैं।।८६।।

वन्दे कांचन दिव्यकांचनमयीं कांचिन्महानीलम–
ण्युद्दीप्तां कुरुविन्दवृन्दलसितामन्यां परां वैद्रुमीम्।
वैदूर्योज्ज्वलितांच कामपि परां श्रीचन्द्रकांतोज्ज्वलां
श्रीवृन्दावनमूमिमेकरसचिज्ज्योतिर्मयीमद्भुताम्।।६०।।

कहीं दिव्य कांचनमयी, कहीं महा नीलकांतमणि से उद्दीप्त और कहीं कुरुविन्द से उल्लसित, तथा कहीं विद्रुममणिमय स्थल हैं, कहीं वैदूर्यमणि से प्रकाशित और कहीं चन्द्रकांत मणि से उद्‌भासित हो रही है इस प्रकार एक–रस चित्‌ज्योतिर्मय अद्‌भुत श्रीवृन्दावन–भूमि को मैं नमस्कार करता हूं।।६०।।

दिव्यानन्त–महारसाब्धिमधुरद्वीपायमानां सदा
भ्राजन्तीं सकलोपरि स्मरकलानन्दैश्चमत्कारिणीम्।
राधाकृष्ण–महारसान्ध्य–विलुठत् सर्वांगसंगाद्‌भुत–
श्रीसौभाग्यनिधिं स्मरामि सततं वृन्दावनीयावनीम्।।६१।।

वह भूमि दिव्य अनन्त महारस के द्वीपवत, सदा समस्त जगत के ऊपर विराजमान एवं कामकला आनन्द में चमत्कारी है। श्रीराधाकृष्ण.के महारस में मदान्ध होकर सर्वांगों से विलुण्ठन करने वालों के लिए अद्‌भुत शोभा सौभाग्यनिधि स्वरूपा इस श्रीवृन्दावन–भूमि को निरन्तर स्मरण कर।।६१।।

राधाकृष्ण–सुकेलितल्परचना–लोलालिवृन्दं रसा–
वेशोन्मत्त–मृग–द्विज–द्रुम–लतावृन्दं महामोहनम्।
दिव्यानेकनिकुंजपुंजरुचिरं दिव्योरुरत्नस्थली–
रम्यं दिव्यसरःसरिन्मणिगिरि ध्यायामि वृन्दावनम्।।६२।।

इस वृन्दावन में श्रीराधाकृष्ण की सुन्दर केलिशय्या रचने में सखी व्यस्त हैं, रसावेश में मृग, पक्षी, द्रुमलता–समूह उन्मत्त हो रहे हैं, दिव्य अनेक निकुंज–पुंज शोभित हैं, दिव्य अनेक रत्नस्थली द्वारा रमणीय, दिव्य–दिव्य सरोवर, नदी और मणिमय पर्वतों से भूषित–इस महामोहन श्रीवृन्दावन का मैं ध्यान करता हूं।।६२।।

माद्यच्छ्रीकृष्णराधं मद–कलसकलस्थास्नु सञ्चारिसत्वं
माद्यत्कन्दर्प प्रतिपद–गरिमोन्मत्त भूषाम्बरादि।
माद्यत्कालेन्दुताराद्यतिमदविवशस्निग्धगोपालबाला–
वृन्दं वृन्दावनं तत् स्वयमपि समदं भाति भूयो रसौघैः।।६३।।

जहां श्रीराधा–कृष्ण उन्मत्त रहते हैं, जहां के स्थावर जंगमात्मक जीवमात्र सब मत्त होकर मधुर ध्वनि करते हैं जहां उन्मत्त कामदेव का गर्व भी प्रतिपद में गरिमाव्यञ्जक उन्मादि वस्त्रभूषण द्वारा उद्भासित होता है, जहां तत्कालीन चन्द्रतारादि भी मत्तता जनक हैं, जो अति मद विवश गोपालबालाओं से सुशोभित एवं स्वयं भी मद–विह्वल हो रहा है, ऐसा यह श्रीवृन्दावन रसधारा वर्षण कर पुनः–पुनः शोभित हो रहा है।।६३।।

दिव्यश्रीपारिजाताद्यतिरुचिरवनैः शोभमानामनन्तै–
रश्रान्तस्त्वं लु सञ्चिन्तय हरिचरणैकांतभावं वहद्भिः।
श्रीमद्वृन्दाटवीं तां सकलसुरगणैर्वन्दितामिन्दुकोटि–
ज्योत्स्नैकाम्भोधि–मग्नामुरुभिरुपनिषद्वृन्द वृत्ताप्यगम्याम्।।६४।।

अनन्त दिव्य शोभामय कल्पवृक्षादिकों के अति मनोहर वनों से भूषित, श्रीहरिचरण में एकांतभाव–प्रवीण एवं अनन्त देवताओं से वन्दित इस श्रीवृन्दावन भूमि की तू निरन्तर चिन्ताकर। यह कोटि–कोटि चन्द्रज्योतिमय एक समुद्र में निमग्न है एवं उपनिषद् भी मुख्यभाव से इसकी महिमा जानने में असमर्थ हैं।।६४।।

अस्मिन् दुस्तरघोरसंसृतितरौ तापत्रयेणानिशं
भ्रातस्त्वं क्लिशितोऽस्यतीव न मनाक् प्राप्नोषि सन्धुक्षणम्।
नैकं साधनमस्ति शास्त्रमहदाख्यातं तवाख्यातुम–
प्यन्तश्चिन्तय तद्धरेः प्रियतनूर्वृन्दाटवीशाखिनः।।६५।।

हे भ्रातः ! इस दुस्तर घोर संसार रूप तरु से दिन–रात यदि त्रितापों में तू बड़ा क्लेश पा रहा है ? बिन्दुमात्र भी तुम्हें शांति नहीं मिल रही ? तुम्हारा कुछ साधन भी नहीं है ? और शास्त्र व महाप्रसिद्ध श्रीहरि कथादिक भी तुम नहीं जानते हो ? तो श्रीहरि की प्रियतनुरूपा श्रीवृन्दावन–भूमि के वृक्षगणों की मन में चिन्ता कर।।६५।।

श्रीप्रबोधानन्द सरस्वति–विरचित श्रीवृन्दावन–महिमामृत का
षष्ठ शतक समाप्त हुआ।।६।।

सप्तमं शतकम्

भज विमल–मनोभु–बीज–चिज्ज्योतिरेका–
ब्ध्युदित–सुरस–दीप्तद्वीप–वृन्दावनद्रुन्।
तदतिमधुरगौरश्यामधामद्वयोरु–
प्रणय–परम–पात्रीभूत–चित्रीयमाणान्।।१।।

श्रीगौरश्यामात्मक अति मधुर विग्रह श्रीराधा–कृष्ण के परम अनुपम प्रणय के परम पात्रस्वरूप में चित्रित एवं निर्मल काम–बीजात्मक चित्–ज्योति के समुद्र में प्रकटित उत्तमरस (मधुररस) से देदीप्यमान द्वीप–स्वरूप जो श्रीवृन्दावन है, उसमें उदित जो श्रीवृन्दावन है उसका भजन कर।।१।।

मुक्तान् प्रत्यपि कर्हिचिन्न ददती सन्दर्शनं शुद्धया
रीत्या नो शुक–नारदादिभिरपि प्राप्तांगसंगा मनाक्।
सा श्रीकृष्णपदाब्जभक्तिरहह श्रीधाम्नि वृन्दावने
यं कंचित प्रतिकामुकी तत इतो भावेन वंभ्रम्यते।।२।।

अहो ! जो मुक्तगणों को कदाचित् दर्शन नहीं देती, शुकनारदादि शुद्धभाव से अल्पमात्र भी जिसका अंग अंग प्राप्त नहीं कर पाते, श्रीकृष्ण के चरण–कमलों की वह भक्ति इस श्रीधामवृन्दावन में भावपूर्वक जिस किसी के प्रति कामुकी (इच्छावती) होकर इधर–उधर भ्रमण कर रही है ।।२।।

सर्वस्योत्कर्षदायी भव सततमये नीचनीचः स्वयं स्या
एवं वृत्त्यैव धीमन्नधिवस मधुरं धाम वृन्दावनाख्यम्।
तुल्यौ मानावमानौ कुरु भज समतां स्तोत्रदुर्वाच्यकोट्यो–
र्ग्रासालाभे महासम्पदि च भव समो द्विट्सुहृत्तुल्यभावः।।३।।

अहो ! सबको बड़ाई दे एवं स्वयं सदा नीचातिनीच होकर रह। हे बुद्धिमान ! इस भाव से श्रीवृन्दावन नामक श्रीराधाधाम में वासकर। मान और अपमान को समान जान, प्रशंसा एवं कोटि दुर्वचनों को एक समान समझ, भोजन की अप्राप्ति तथा महासम्पत्ति की प्राप्ति में तथा शत्रु और मित्र में समान भावना युक्त हो।।३।।

कांत त्वङ् मात्र–संच्छादित विकृततम–स्त्रीमयामेध्यपिण्डं
थुत्कुर्वर्थाननर्थान् विमृश सुतसुहृद्बान्धवान् विद्धि बन्धान्।
कष्टं मिष्टान्नपानादिषु भज वसनाद्युज्ज्वलत्वे त्रपेथाः
सर्वेषां शिष्य भृत्यादिवदतिविनतोऽध्यास्स्व वृन्दावनं भोः।।४।।

सुन्दर त्वचा द्वारा ही केवल आच्छादित विकृततम स्त्रीरूप अपवित्र देह पिण्ड को थुत्कार दे, अर्थ को (धन को) अनर्थरूप तथा पुत्र, सुहृद और बान्धवों को बन्धनरूप जान। मिष्ठान्नादि खाने में कष्ट मान, उज्ज्वल वस्त्रादिक से तुम्हारा शरीर कांप उठे, तथा सबके आगे शिष्य–भृत्यादि की तरह अति विनीत होकर श्रीवृन्दावन में वास कर।।४।।

राधारमणपदाम्बुज–मधुरिमसिन्धोरनन्तपारस्य।
अनुभवितैकः स परं वृन्दारण्यं भजेत योऽनन्यः।।५।।

जो अनन्यभाव से श्रीवृन्दावन का भजन करता है, एकमात्र वही श्रीराधारमण के चरण–कमलों के अपार माधुर्य–सिन्धु का अनुभव प्राप्त कर सकता है।।५।।

वृन्दावनगुणकीर्त्तिं प्रति रसना मे नरीनर्ति।
परिजरिहर्त्ति न यज्ज्ञः सकलोपरि यद्वरीवर्त्ति।।६।।

श्रीवृन्दावन की गुणकीर्त्ति गान करने में मेरी रसना नृत्य करती रहे। यह श्रीधाम सबसे ऊपर विराजमान है। इस बात को जानने वाला व्यक्ति इस श्रीवृन्दावन का कभी भी नहीं त्याग कर सकता।।६।।

वृन्दावनविधुरास्तामास्तां वृन्दावनेश्वरी तस्याः।
सन्तु च सख्यो वृन्दावनैकतरुपल्लवोऽपि मोहयति।।७।।

श्रीवृन्दावनचन्द्र की कथा तो दूर रही और श्रीवृन्दावनेश्वरी की तथा उनकी सखियों का तो कहना ही क्या है ? श्रीवृन्दावन के एक वृक्ष का एक पत्ता भी समस्त जगत को मुग्ध करने वाला है।। ७।।

रे मन्द मन्दयाखिल–साधनवृन्दानि सान्द्रमानन्दम्।
वृन्दावनभुवि वृन्दा–रकवृन्दानां च दुर्लभं विन्द।।८।।

हे मन्दगति ! समस्त साधनों को मन्द जानकर त्याग दे, इस श्रीवृन्दावन में देवताओं को भी दुर्लभ सान्द्रानन्द की प्राप्ति कर।।८।।

मा कुरुकर्म न योगं न विष्णुभजनं न वा श्रवणम्।
ध्रुवमवाप्स्यसि परपदं वृन्दारण्ये यथा तथा तिष्ठन्।।६।।

कर्म, योग एवं विष्णु–भजन मत कर, इनकी बात भी न सुन, श्रीवृन्दावन में जैसे–कैसे वास करने से ही तू परमपद को निश्चित् रूप से प्राप्त कर लेगा।।६।।

सत्कर्माणि कृतानि श्रीहरिराराधितः श्रुतोपनिषत्।
आमृति वृन्दारण्ये यदैव संकल्पितो वासः।।१०।।

"मृत्यु पर्यन्त श्रीवृन्दावन–वास करूंगा" यह संकल्प करते ही तुम्हारे समस्त सत्कर्म हो गए, श्रीहरि की आराधना भी हो गई और उपनिषदों का श्रवण भी हो गया।।१०।।

सन्तु विधर्माः शतशः सद्धर्मा यान्तु सर्वेऽस्तम्।
यदि वृन्दावनमंगी कुरुते मम का तदा चिन्ता।।११।।

शत–शत विधर्म होते रहें एवं समस्त सद्धर्म लुप्त हो जायें, यदि श्रीवृन्दावन मुझे अंगीकार कर ले, तो मुझे फिर क्या चिन्ता है ?।।११।।

आशा व्यधायि वृन्दाविपिने वासाय यत्नोऽधायि।
यदि मंदधीर्वहिः स्यां वृन्दाविपिनं कृपालु पालयेत्तदपि।।१२।।

श्रीवृन्दावन में वास करने के लिए तुमने आशा भी की है और चेष्टा भी की है, यदि मन्द बुद्धिवश तुम बाहिर भी चले जाओ तो भी दयालु श्रीवृन्दावन तुम्हारी रक्षा करेगा ही।।१२।।

धर्म्माधर्म्मविवेकशून्यमसतां गोष्ठीषु सक्तं सदा–
कामक्रोधमदादिभिः प्रतिपदं निष्पिष्यमाणं बलात्।
नैव–द्वन्द्वतितिक्षमीषदपि मां चेत् सक्षमा सत्कृपौ–
दार्यात्त्वं जननीव रक्षसि तदा नन्दामि वृन्दाटवि।।२२।।

हे वृन्दावन ! मुझे धर्माधर्म का विचार नहीं है, सदा दुर्जनों के संग में आसक्त रहता हूं, काम, क्रोध, मदादि प्रतिक्षण बलपूर्वक मुझे निष्पेषण कर रहे हैं, सर्दी, गर्मी मान–अपमानादि द्वन्द्व जरा भी मैं सहन नहीं कर सकता हूं। मुझ पर यदि कृपा कर अपनी उदारता से क्षमा–शील जननी की भांति मेरी रक्षा करो तो मुझे आनन्द प्राप्त होगा।।२२।।

इदमपि भविता किं राधिका–कृष्ण नित्या–
न्मद–मदनविनोद–व्यञ्जि–कुञ्जावलीषु।
अहनि निशि च वृन्दाकानने सञ्चरामि
प्रतिपदमतिभावोद्भिन्न रोमाश्रुधारः।।२३।।

श्रीराधाकृष्ण को नित्य उन्मत्त करने वाले एवं मदन–विनोद प्रदान करने वाले कुंजों में दिन रात परम भावपूर्वक अतिशय पुलकित होकर एवं अश्रुधारा प्रवाहित करते हुए श्रीवृन्दावन के प्रति स्थल पर विचरण करूं अहो ? ऐसा भाग्य मेरा कब उदय होगा ?।।२३।।

कदा वा कालिन्दीपुलिन–नवकुञ्जेषु कनको
ज्ज्वलं ज्योतिः कैशोरक–सहजमुन्मादि–मदनम्।
सदा खेलत् केनाप्यतुल हरिनीलाभ्रवपुषा
किशोरेणात्युच्चैर्मधुर परिपाट्या हृदि भजे।।२४।।

कालिन्दी पुलिन के नवकुञ्जों में सहजकिशोर अवस्थायुक्त मदनोन्मत्त कोई एक सुवर्णवर्ण ज्योति (श्रीराधाजी) किसी एक अतुलनीय इन्द्रमणि तथा मेघवर्ण किशोर (श्रीकृष्ण) के सहित अतिमधुरापरिपाटी से नित्य क्रीड़ा कर रही है, मैं कब उनका हृदय मन्दिर में भजन करूंगा।।२४।।

अद्वैतब्रह्मसज्ज्योतिषि जयति महानन्द–सज्ज्योतिरैशं
तस्मिन् स्वाद्यैक रत्यात्मक–मधुर–महाज्ज्योतिरेकं चकास्ति।

श्रीमद्वृन्दावनं तद्घनमिह तदधि–श्यामलेनास्ति राधा
नित्यक्रीड़ा–किशोरी स्मर मधुरतरं तत्पदद्वन्द्वरोचिः।।२५।।

अद्वैत ब्रह्ममय ज्योति में महानन्द की सुन्दर ज्योति जययुक्त हो रही है, उसके अन्दर और फिर महास्वादनीय मुख्य रत्यात्मक मधुर एक महाज्योति शोभित हो रही है। उसकी ही घनमूर्त्ति श्रीवृन्दावन की अधिष्ठात्री नित्या क्रीड़ाकिशोरी श्रीराधा श्रीश्यामसुन्दर के साथ विराजमान हैं, उनके ही चरण–कमलों की मधुरतर ज्योति का स्मरण कर।।२५।।

तद्दासीयूथ एतत्सुघन उरुभिदाश्चर्यवर्णाकृतिस्रग्–
वस्त्रालंकार–तत्तद्रसललितकलापारचातुर्यवृन्दे–।
सर्वाश्चर्यातिनूत्नोत्तम–वयसि महाश्चर्यलावण्यलास्ये
श्रीराधाकृष्णसेवा–सुखभर–सततोत्फुल्लवल्गुस्मितास्ये।।२६।।

श्रीराधाकृष्ण के लिए विभिन्न आश्चर्यवर्ण तथा आश्चर्याकृति माला, वस्त्र, अलंकारादि सामग्री रचना करने में प्रत्येक विषय में ही रसमय ललित–कला की अपार चातुरी प्रदर्शन करने वाली, तथा सर्वाश्चर्य्यजनक अति नवीन सुन्दर अवस्थायुक्त, महाश्चर्यमय लावण्यपूर्ण लास्ययुक्त, तथा श्रीराधा–कृष्ण के सेवा सुख में निरन्तर मृदुमुस्कान से प्रफुल्लित वदनी श्रीराधाजी के चरण–कमलों की कांति की सुघनमूर्त्तिमयी दासियों का यूथ शोभित हो रहा है।।२६।।

स्वां मूर्त्ति दिव्यकैशोरक–ललित नवस्वर्णवल्ली मनोज्ञा–
मानील स्निग्धवेणीकृतचिकुरशिखा लोलसद्रत्नगुच्छाम्।
श्रीमन्नासापुटोद्यत् कनकमणि–समासक्तदिव्यैकमुक्तां
सम्पूर्णस्वर्णचन्द्रच्छविमुखकमलामोद–माधुर्यधाराम्।।२७।।

(उस यूथ में) दिव्य किशोर ललित नव स्वर्णवत् मनोज्ञा स्वीयमूर्त्ति है, जिनके गाढ़ नीलवर्ण स्निग्ध वेणी के अग्रभागों में सुन्दर रत्नगुच्छ लटक रहे हैं, सुन्दर नासापुट में कनकमणि खचित दिव्य मुक्ताशोभित हैं। स्वर्णकांतिमय पूर्णचन्द्रद्युति के समान मुखकमल की सुगन्धि का माधुर्य प्रवाहित हो रहा है।।२७।।

संवीत–स्वर्णपद्माद्भुत–मुकुल–मनोहारि वक्षोजयुग्मा–
मत्यन्तक्षीणमध्यां नवपृथुल–महासुन्दर–श्रीनितम्बाम्।

कांचीमंजीर–हारावलि–वलयघटा हेमकेयूररम्यां
दिव्यंसूक्ष्मं निचोलं शिरसि कटितटे चित्रशाटीं दधानाम्।।२८।।

आवृत्त स्वर्णकमल में अद्भुत मुकुलवत् मनोहर युगल स्तनों से वे शोभित हो रही हैं, उनका मध्यदेश (कटि) अति क्षीण है।। उनके अति सुन्दर नवीन स्थूल नितम्ब हैं, कांजी, मंजीर, मुक्ता माला, वलयादि व सुवर्ण कुण्डलों से शोभित हैं, शिर पर दिव्य सूक्ष्म ओढ़नी और परिधान में विचित्र साड़ी धारण कर रही हैं।।२८।।

एकैकांगच्छटाच्छादित सकलदिशं दिव्यताटंककर्णां
कर्णार्द्धे चातिचित्रोज्ज्वलकनकमयं कर्णपूरं वहन्तीम्।
उन्मीलद्यौवनश्रीमधुर–मद–महाश्चर्य–लावण्यलास्यां
राधाकृष्णानुरागात्यवश–सपुलकोदश्रु–गौरांगवल्लीम्।।२६।।

वे अपने प्रति–अंग की छटा से दशों–दिशाओं को आच्छादन कर रही हैं, कानों में दिव्य ताटंक (बाली) और उनके ऊपर विचित्र उज्ज्वल स्वर्णमय अवतंस धारण कर रही हैं। उन्मेषित यौवन शोभा से मधुर मदयुक्त महाश्चर्य लावण्यता से पूर्ण है, श्रीराधा–कृष्ण के परम अनुरागवश अवश हो रही हैं, पुलकित एवं अश्रुओं से सिञ्चित गौरवर्ण लताओं के समान प्रतीत होती हैं।।२६।।

सर्वावस्थासु नित्यं स्मर सकल–कलापारगां नर्म्मनिर्मि–
त्यन्ताश्चर्यचातुर्यतिरमित–निजप्राणसर्वस्वयुग्माम्।
सांद्रानन्दैक–साराम्बुधि–रसवूड़ितां घोरघोरापदाम–
प्याक्रांतौ हन्त नाहं मम कृतिरिह ते गेहदेहादिकेऽस्तु।।३०।।

वे समस्त कलाओं में निपुणा हैं, एवं परिहास निर्माण करके और अति आश्चर्यजनक चातुरी द्वारा अपने प्राणसर्वस्व युगल–किशोर को अतिशय आनन्द दे रही हैं, तथा सान्द्रानन्द के एकमात्र सारमय समुद्र–रस में निमग्ना उन राधा–दासियों का सब अवस्थाओं में नित्य स्मरण कर। हाय ! अतिशय घोरतर आपत्ति में घिर कर भी इस देह एवं गेहादिक में जिससे तुम्हारी "अहं" "मम" बुद्धि न हो।।३०।। (यहां तक ५ श्लोकों में कुलक है)

यद्याद्यां रतिमिच्छसि प्रिय ! परप्रेमोल्लसत्सुन्दरा–
नन्दस्यन्द–महाप्रकर्ष–चरमाश्चर्यावधिं निर्मलाम्।
श्रीवृन्दावनमेव संश्रय तदा सर्वात्मभावेन त–
च्छुद्धप्रेमरसं किशोरमिथुनं तत्रैव यद्व्यज्यते।।३१।।

हे प्रिय ! परम–प्रेम विलासमय, सुन्दर आनन्द समूह संचारी महा प्रकृष्ट आश्चर्य की चरम सीमा, निर्मल आद्य (शृंगार) रति को यदि प्राप्त करने की इच्छा है, तो श्रीवृन्दावन का ही हर प्रकार से सर्वापर्णपूर्वक आश्रय कर, क्योंकि शुद्ध–प्रेमरस–मय वे श्रीयुगलकिशोर वहां ही सर्वोत्कृष्टरूप से प्रकटित हुए हैं।।३१।।

हासं भर्त्सन–ताड़नादिषु सदा कुर्वन् विषादं न हि–
ग्रासस्याप्यनुपस्थितौ व्यवहरल्लोकेऽतिमुग्धार्भवत्।
नैष्किञ्चन्य–महाधनो निजगुणानस्थापयन् कर्हिचित्–
सर्वांश्चिद्वपुषो नमन् प्रणयतः सेवस्व वृन्दावने।।३२।।

सर्वदा ताड़ना–भर्त्सनादि में हंसते हुए, एक ग्रास भी अन्न न मिलने पर विषाद रहित होकर, लोगों से अति मूढ़ बालकवत् व्यवहार करते हुए, निष्किञ्चनता को ही परम धन जानते हुए कहीं भी अपने गुणों को प्रकाश न करते हुए एवं श्रीवृन्दावन के सकल चिन्मय विग्रह की प्रेमपूर्वक नमस्कार करते हुए सेवा कर।।३२।।

अन्तर्दृष्टांतपारोज्झित–विमलसदानन्दसाम्राज्यसांद्र
स्वादिष्ट–ज्योतिराद्यप्रणयरसमहाब्ध्युत्थित–द्वीपमध्ये–।
अत्युच्चैर्जाज्वलीति प्रतिनवसुषमा माधुरीणां धुरीणा
श्रीमद्वृन्दाटवी तामधिवस भज च ज्योतिषी गौरनीले।।३३।।

अन्तःकरण में अनुभव किये जाने योग्य जो पारावार रहित विमल नित्यानन्द साम्राज्य है, उसके सारघन अतिशय आस्वादनीय ज्योति के श्रेष्ठ प्रणय–रस समुद्र से उत्थित द्वीप में श्रीमद्वृन्दाटवी नवीन–नवीन सुषमा और माधुर्य्यसार समूह प्रकाश करते हुए अतीव देदीप्यमान हो रही है, उसमें वास कर और उस गौरनील ज्योतियुक्त श्रीयुगलकिशोर का भजन कर।।३३।।

कदापि न गतं क्वचिन्न च कुतश्चिदप्यागतं
सदा नव–सुयौवनं स्मर–रसैकमग्नं सदा।
गुणैरसदृशाधिकैर्मधुरिमान्त्यसीमागतं
हिरण्य–हरिनीलरुङ मिथुनमस्ति वृन्दावने।।३४।।

कभी कहीं जाते नहीं और कहीं से वे कभी आते नहीं, सदा नव सुन्दर यौवनयुक्त, सदा काम–रस में मग्न, असमोर्द्ध गुणों सहित माधुर्य्य की अन्तिम–सीमा को प्राप्त, स्वर्णवर्ण एवं इन्द्रनील–मणि–कांतिधारी श्रीयुगलकिशोर श्रीवृन्दावन में ही विराज रहे हैं।।३४।।

अनंगरससीमनि प्रणयमाधुरीसीमनि
स्फुरत्तरुणिमांकुरद्युति–सुरूपता सीमनि।
सुसीमनि महाद्भुत–स्मरविलासवैदग्धयो–
र्मनोऽस्तु वनसीमनि क्वचिदपि धामनि।।३५।।

अनंगरस–सीमा प्रणय–माधुर्य्य, सीमा, स्फूर्त्तिशील तारुण्य–द्युति (श्रीकृष्ण) तथा सुन्दरस्वरूप की सीमा, महाद्भुत काम–विलास तथा वैदग्धी की सुसीमारूप (श्रीराधा) इन दोनों के धाम (गोलोक) में किसी वनप्रान्त (श्रीवृन्दावन) में मेरा मन लगा रहे।।३५।।

राधामाधव–मुग्ध–मन्मथ–कला–सर्वस्व कोषं सम–
स्तार्थानां कृतमोषमद्भुतयशोघोषं त्रयीमौलिषु।
सर्वस्वाश्रितपोषणव्रतमुपेताशेषदोषक्षमा–
श्रीलं प्रेमरसैकजोषणमहो जागर्ति वृन्दावनम्।।३६।।

अहो ! श्रीराधामाधव के काम–कलास्वरूप सर्वधन का भण्डार, समस्त पुरुषार्थों का प्रधान अवलम्बन स्वरूप ऋक्, यजुः एवं सामवेद तथा श्रेष्ठ गुणों में जिसके अद्भुत यश की कीर्ति वर्णन हो रही है और आश्रय ग्रहण करने वाले जीवों का सर्वस्वदान करके उनके पालन के व्रत का धारण करने वाला, समस्त दोषों को क्षमा करने वाला, प्रेमरस में प्रीतिशील श्रीवृन्दावन शोभित हो रहा है।।३६।।

यत्रैवाखिलकार्यकारणकथाप्यत्यन्तमस्तं गता
यत्रात्मप्रभ वैभवं न च चिदानन्दात्मकं भात्यहो।

कृष्णप्रेमरसात्म–सर्वविभवैर्माधुर्य्यसारैर्युतं
श्रीवृन्दावननाम धाम तदिदं वर्वर्ति सर्वोपरि।।३७।।

यहां अखिल कार्य–कारण की कथा भी अत्यन्त लय को प्राप्त हो गयी है, यहां स्वयं प्रभामय वैभव–विशिष्ट–वस्तु वा चिदानन्दात्मक कुछ भी प्रकाशित नहीं होता, माधुर्य सार के साथ कृष्णप्रेम–रसात्मक समस्त वैभवयुक्त यह श्रीवृन्दावन–नामक धाम सर्वोपरि विराजमान है।।३७।।

यद्भासासकलं विभाति चिदचिद्द्वैतं यदत्यद्भुत–
प्रेमानन्द महारसैकजलधेर्बिन्दोर्लवेन प्रियम्।
यत्सत्तामनुसत्त्वयोगि–सकलं यन्माधुरीवैभवा–
श्चर्य्याणामणुमात्र पात्रमखिलं वृन्दावनं तन्नुमः।।३८।।

जिसकी प्रभा से चित् एवं जड़ दोनों वस्तुएं प्रकाशित होती हैं, जिसके अति अद्भुत प्रेमानन्द महारस समुद्र के बिन्दु का लवमात्र ही जगत् का प्रियकर है, जिसकी सत्ता में सबकी सत्ता ग्रथित है, अखिल जगत् जिसके आश्चर्य माधुर्य व वैभवादि का अणुमात्र पात्र है, उस श्रीवृन्दावन को मैं नमस्कार करता हूं।।३८।।

आश्चर्यानन्तशक्तिश्रित–पदकमलच्छाययाश्चर्यलीला–
माधुर्यौघैः समाप्लावित–निज–सुमहाभावनिर्भग्नसेतु।
गौरश्यामं किशोरद्वयमतिमधुरानंगरंगेण दिव्यं
यत्रानाद्यन्तकालं नयति शरणदा सास्तु वृन्दाटवी मे।।३९।।

आश्चर्यमय अनन्त शक्तियुक्त चरण–कमलों की छाया द्वारा, आश्चर्यमय लीलामाधुर्य–प्रवाहमय अपने सुन्दर महाभाव के द्वारा मर्यादा लंघनपूर्वक जगत् समाच्छादनकारी अति मधुर अनंग रंगमय गौरश्याम युगलकिशोर जहां अनादि अनन्तकाल पर्यन्त क्रीड़ा करते हैं, वह श्रीवृन्दावन मुझे शरण प्रदान करे।।३९।।

रागद्वेषाद्यनर्थं जहि–जहि भगवन्नाम–मात्र प्रतापाद्
द्वैतं देहादि विस्मारय सकलमथ स्फोरयेस्तुर्यतेजः।
तद्विस्मार्य्याथ सन्दर्शय मधुरमहस्तद्रहस्यद्भुतौ प–
श्याविष्कृत्याथ वृन्दावनमुपनय मे नागरौ गौरनीलौ।।४०।।

भगवान् के नाममात्र के प्रताप से ही राग–द्वेषादि अनर्थों को त्याग कर, देहादि समस्त द्वैत–विषय भूल जा, फिर तुरीय तेज की स्फूर्ति कर, फिर उसे भूलकर उस तुरीय तेज के मध्यस्थ रहस्यस्थल में अनिर्वचनीय मधुर ज्योति का सन्दर्शन कर एवं उसमें अद्भुत श्रीवृन्दावनधाम का ध्यान करके गौरनील युगल नागर (श्रीराधाकृष्ण) के साक्षात् दर्शन कर।।४०।।

वीभत्से विषये निरंकुशमसावात्मेन्द्रियैर्धावति
क्वाप्याप्नोति सुखस्य गन्धमपि नात्यन्धस्तथाप्युन्मदः।
वाधिर्य्यंगुरु–शास्त्र–मित्र वचनेष्वाश्चर्यमेति श्रुति–
द्वन्द्वं मन्दमतिः कदा नु शरणं विन्दामि वृन्दाटवीम्।।४१।।

वीभत्स विषयों में अबाध गति से इस देह इन्द्रियों सहित मैं दौड़ रहा हूँ, कहीं भी सुख की गन्धमात्र प्राप्त नहीं होती, अतिशय अन्धा होकर भी मैं अति उन्मत्त हो रहा हू आश्चर्य यह है कि गुरु, शास्त्र, मित्रों के वचनों को सुनने में मेरे दोनों कान बधिर हो रहे हैं, हाय ! मन्दमति मुझको कब श्रीवृन्दावन प्राप्त होगा।।४१।।

दुःखैर्घोरतमैर्ध्रुवं परिवृतं यस्यादिमध्यांतिमं
योऽत्यन्ताशु विनश्वरोऽतिनिरता यत्रापि विट्शूकराः।
विण्मूत्रादिमलं क्षरत्यविरलं द्वारैर्मुहुर्वीक्ष्यते
तादृग्भोग–महास्पृहं कुविषये मां त्राहि वृन्दाटवि।।४२।।

घोरतम दुःख से ही जिसका आदि मध्य एवं अन्त परिवेष्टित है जो अति शीघ्र ही विनाश को प्राप्त होगा, जिसके लिए विष्ठाभोगी शूकर अतिशय आशा लगाये हुए हैं, जिसके द्वारों से मलमूत्रादि क्लेश निरन्तर निकल रहे हैं, हाय ! यह सब बार–बार देखते हुए भी मैं कुविषयों को भोग करने के लिए महास्पृहावान् हो रहा हूँ हे वृन्दावन ! मेरी रक्षा कीजिए।।४२।।

प्रेम्णा वृन्दावनस्य त्यजति यदि जनौ मादृशः सर्वधर्मान्
निर्म्मात्येवापराधान् यदि तु भगवतो दुर्निवारेन्द्रियौघः।
तेन स्याद्वासविघ्नो यदि भवतुतरां कृष्णसत्प्रेमसीम
श्रीमद्वृन्दावनं मां किमु निजकृपया नाविता यत्र कुत्र।।४३।।

श्रीवृन्दावन के प्रेम में यदि मुझसा व्यक्ति सर्व धर्म त्याग करे दुर्निवार इन्द्रिय समूह भी यदि श्रीभगवान् के प्रति अपराध समूह करें, एवं वृन्दावन–वास में यदि विघ्न हो जाय, भले सब कुछ हो जाये किन्तु श्रीकृष्ण प्रेम की चरम सीमा को प्राप्त जो यह श्री वृन्दावन है, क्या जहां तहां मेरी रक्षा नहीं करेगा ?।।४३।।

केचित् कुर्वन्ति विष्णोर्भजनमनुदिनं केचन ध्यानयोगा–
द्यन्ये कर्माणि केचिद्धन–सुत–वनिताद्येषु नित्यं सजन्ति।
श्रीराधाकृष्ण–नित्योन्मद–सुरतकला–रञ्जितादारकुञ्जे
प्रेम्णैकांतेन वृन्दाविपिनमधिवसंस्तेषु कोऽहं न जाने।।४४।।

श्रीराधा–कृष्ण को नित्य उन्मत्त करने वाली सुरत–कलाओं से रञ्जित उदार–कुञ्ज में कोई–कोई प्रतिदिन विष्णु का भजन करते हैं, कोई–कोई ध्यान योगादि का अनुष्ठान करते हैं कोई कोई यज्ञादि कर्मों को करते हैं और कोई धन, पुत्र, स्त्री आदिकों में ही एकांत आसक्त हो रहे हैं, किन्तु उनमें कौन सा भाग्यवान् एकांत प्रेमपूर्वक श्रीवृन्दावन–वास करता है, उसे मैं नहीं जानता।।४४।।

निस्त्रैगुण्यं स्फुरति किमपि ज्योतिरानन्दसान्द्रं
तस्यात्यन्तः प्रणयविभवं ज्योतिराभाति कार्ष्णम्।
तस्याप्यन्तर्मधुरमधुरं ज्योतिरस्त्यत्र वृन्दा–
रण्यं तस्मिन् भज रसखनी गौरनीलौ किशोरौ।।४५।।

सत्–रज–तम्–गुणों से परे कोई सान्द्रानन्द, ज्योति स्फुरण हो रही है, उससे बहुत परे प्रणय–विभवमय कृष्णवर्ण–ज्योति प्रतिभात हो रही है, उसके भीतर मधुर से भी सुमधुर श्रीवृन्दावनीय–ज्योति विद्यमान है, उसमें विराजमान रसखानि गौरनील श्रीयुगलकिशोर का भजन कर।।४५।।

निन्द्यात्मोचितनिन्दने हि न मनाङ्म्लानोऽपराध्यात्मनो
दण्डेऽकाकुपरोऽवजानति परे मत्वाधर्मं स्वं स्थिरम्।
दूराद्दुर्गतवत् स्थितोऽखिलजनस्यानुग्रहार्थी सदा
हीनोऽहं श्व–शृगालवत् सुखघने स्थास्यामि वृन्दावने।।४६।।

मेरा निन्दायोग्यस्वभाव होने से तदुचित निन्दा होने में जरा भी मलिन चित्त न होकर, अपराधी शरीर को दण्ड होने पर दुखी न होकर, किसी के द्वारा अवज्ञा होने पर अपना ही कोई पाप जानकर, दूर से ही दुर्गवत् रह कर नित्य सबकी कृपा की प्रार्थना करते हुए, श्वान एवं श्रृगाल की भांति हीन होकर मैं श्रीवृन्दावनवास करूंगा।।४६।।

घोरामापदमत्र सम्पदमिवावज्ञाञ्च सन्मानव–
न्निन्दां संस्तुववत् सखीनिव रिपून्नैः स्वं महामूर्तिमत्।
मात्सर्याणि सुमित्रतामिव हृदा गृह्णन् महादुर्लभ–
श्रीराधामुरलीधराङ्घ्रिरसदे स्थातास्मि वृन्दावने।।४७।।

यहां घोर आपदा को सम्पदा के समान, अवज्ञा को सन्मानवत–निन्दा को स्तुति के समान, बान्धवों को रिपुतुल्य, निःस्व अवस्था को महामूर्त्तिधारीवत एवं अपने विषयक दूसरे से मात्सर्य को सुमित्रता के समान, हृदय में धारण करके श्रीराधा–मुरलीधर के चरणकमलों में महादुर्लभ रसप्रदान करने वाले श्रीवृन्दावन में मैं वास करूंगा।।४७।।

श्रीवृन्दावनवन्दनाय सततं मूर्द्धास्तु वह्वादरो
जिह्वा विह्वलतामुपैतु सततं तत्सद्गुणोत्कीर्तने।
हस्तौ तन्नवकुंजमार्जनविधौ पादौ च तत्राटने
श्रोत्रे तन्महिमश्रुतौ दृशि–दृशौ नित्यं स्मृतो स्तान्मनः।।४८।।

मेरा मस्तक अति आदर सहित नित्य ही श्रीवृन्दावन की वन्दना करे, जिह्वा सद्गुणों का उच्च कीर्त्तन करने में विह्वल रहे, उसकी नव–कुञ्जों को मार्जन करने के लिए दोनों हाथ, तथा श्रीवृन्दावन की परिक्रमा करने के लिए पांव, उसकी महिमा सुनने में कान, उसके दर्शन करने में नेत्र तथा उसके स्मरण करने में मेरा मन नित्य ही लगा रहे।।४८।।

समस्तसुभगाद्भुतं सकलमंगलात्यद्भुतं
चिदात्मसकलोज्ज्वलाद्भुतमशेषरम्याद्भुतम्।
समस्तवरदाद्भुतं सकलकृष्णधामाद्भुतं
तदेतदखिलाद्भुतं भज रसेन वृन्दावनम्।।४६।।

समस्त सौभाग्यों से अद्भुत, सब मंगलों से अद्भुत, समस्त चिन्मय वस्तुओं से अद्भुत, सकल रमणीयता से अद्भुत, समस्त वरदानों से अद्भुत एवं समस्त श्रीकृष्ण–धामों से अद्भुत, यहां का समस्त ही अद्भुत है। अतः इस श्रीवृन्दावन का भाव–सहित भजन कर।।४९।।

कलिन्दसुतया युतं प्रणयमाधुरीधारया
प्रवृद्धसुखचन्द्रिका–जलधि फुल्लवल्लीद्रुमम्।
कपोत–शुक–शारिका–पिक–मयूरकालंकृतं
भ्रमद्–भ्रमरझंकृतं जयति धाम वृन्दावनम्।।५०।।

प्रणय–माधुरी की धारा प्रवाहित करने वाली कालिन्दी के द्वारा शोभित, सुख–चन्द्रिका–समुद्र की वृद्धि करने वाले प्रफुल्लित लतावृक्षादिकों से वेष्टित, कपोत, शुक, सारिका, कोकिला तथा मोरों से अलंकृतः इधर उधर भ्रमणशील भ्रमरों की झंकार से निनादित श्रीधामवृन्दावन की जय हो।।५०।।

महाज्योत्स्नारूपैः परम–परमानन्द–सुघनै–
र्महामाधुर्याणामिव परमसारेण घटितैः।
परीणामैः प्रेम्णामिव नवनवाश्चर्य–कुसुमा–
द्युपेतैः शाखीन्द्रैः स्मर सुभगवृन्दावनवनम्।।५१।।

अति परमानन्द सुघन महाज्योत्स्नारूप विस्तारकारी, महामाधुर्यराशि के परमसार द्वारा मानो निर्मित, प्रेम–समूह के परिपाक में ही मानो नव–नव आश्चर्य–कुसुमादिकयुक्त वृक्षों से शोभित सुन्दर तुलसीवनों–युक्त श्रीवृन्दावन का स्मरण कर।।५१।।

कृष्णप्रेमरसं सदा रसयते वृन्दावनान्तर्गतं
चेतः स्थास्णु चरिष्णु चिद्घन–महोरूपं तवापीदृशम्।
एवञ्चेन्न हि भाति तद्गुरुमुखाच्छ्रुत्वा सदा चिन्तय–
न्नारब्धांतमिहावसातिसहसा स्वादिष्यसे स्वं रसम्।।५२।।

श्रीवृन्दावन में रहने वाले व्यक्ति का मन सदा ही श्रीकृष्ण प्रेमरस का आस्वादन करता है, यहां की स्थावर–जंगम समस्त वस्तुएं चिद्घन–ज्योति स्वरूप हैं, तुम्हारा भी यही स्वरूप है, इस प्रकार यदि तुम्हें प्रतिभात नहीं भी होता, तो सद्गुरु के मुख से इस विषय को श्रवण करके निरन्तर चिन्ता कर

एवं प्रारब्ध के शेष पर्य्यन्त यहां वास कर, सहसा अपने आप इस रस का आस्वादन कर पाएगा।।५२।।

निरस्तत्रैगुण्यं हरिरसदपुण्यं स्वकृपया
धरण्यंतर्भातं विमलपरमानन्द सुघनम्।
इदं वृन्दारण्यं वहदतुल माधुर्य्य–सुषमा
महावन्यं धन्यः श्रयति बहुमान्यस्त्रिजगताम्।।५३।।

सत्–रज्–तम् गुणों से परे, हरि–रसदायी, पुण्यजनक, निज कृपा से पृथ्वी पर प्रकटित, एवं विमल परमानन्द सुघन–स्वरूप इस अतुलनीय महामाधुर्य्य–सुखसार–महारण्य सदृश श्रीवृन्दावन का जो भाग्यवान् व्यक्ति आश्रय करते हैं, वही त्रिभुवन में मान्यता को प्राप्त होते हैं।।५३।।

सांद्रानन्दाब्धिमध्ये लसति रसमयं चिन्मणिद्वीपमेकं
वृन्दारण्यं तदन्तः स्फुरति पुरु चमत्कारि वैचित्र्यधाम।
तत्रैवेकान्तरत्या निवस ननु सखे क्वापि कुर्या न खेदं
वेदांतानां सुदूरं किमपि हरिजनालभ्यमप्यत्र लभ्यम्।।५४।।

सान्द्रानन्द–समुद्र में एक अति रसमय मणिद्वीप शोभित हो रहा है, उसके अन्दर अति चमत्कारकारी वैचित्र्य धाम श्रीवृन्दावन विराजित है, हे सखे! इसी स्थान पर एकान्त–भाव से वास कर और कुछ खेद नहीं करना, क्योंकि वेदांतियों से बहुत दूर रहने वाली तथा हरि–भक्तों को भी अलभ्य कोई एक अनिर्वचनीय वस्तु यहां मिलती है।।५४।।

शश्वन्न्यस्तं वपुषि परमप्रेमहृष्टालिवृन्दै–
स्त्रोटं त्रोटं मिथ उरुमदान्माल्य–हाराम्बरादि।
अत्युद्वेल स्मरजलनिधी हासयन्तौ मुहुस्ता
वृन्दारण्ये स्मर रतिकलानागरौ तौ किशोरौ।।५५।।

एक दूसरे के परम आनन्द में माला हार–वस्त्रादि टूट जाने पर प्रिय प्रीतम को परम हर्षयुक्त सखीवृन्द पुनः–पुनः उन्हें धारण कराती हैं। अति असीम काम–समुद्र युगलकिशोर बार–बार सखीगणों से हास्य करते हैं, श्रीवृन्दावन में इन रतिकला–नागर श्रीयुगलकिशोर का स्मरण कर।।५५।।

उच्चावचाविगणित ब्रह्मांडावलि–मण्डिताम्
त्रिगुणां प्रकृतिं तीर्त्वा जड़दुखानृतात्मिकाम्।।५६।।
अपारावार–विस्तारमेकमानन्द–सागरम्
स्वप्रकाश–महास्वच्छ–ज्योतीरूपं परंपदम्।।५७।।

अनेक प्रकार अगण्य ब्रह्माण्ड समूहयुक्त जड़–दुख–मिथ्या स्वभाव वाली त्रिगुणमयी प्रकृति को उत्तीर्ण होकर पारावार–विहीन विस्तृत एक कामानन्द सागर प्रकाशित हो रहा है, वह स्वप्रकार है, महास्वच्छ ज्योतिस्वरूप एवं अति उत्कृष्ट स्थान है श्रीवृन्दावन।।५६–५७।।

चैतन्यगात्र निर्भासं निस्तरंगं निराकुलम्।
निरस्ताज्ञान–तत्कार्यं परं ब्रह्मेति यद्विदुः।।५८।।

चैतन्य–सत्ता, से आलोकित, तरंगहीन, चञ्चलता–हीन अज्ञान एवं अज्ञान के कार्य से जो रहित है, पण्डितगण उसे 'परमब्रह्म' कहते हैं।।५८।।

तदन्तः परमाश्चर्यं ज्योतिरैशं विचिन्तय।
चर्वणीय महानन्द–सांद्राब्धिमतिनिर्मलम्।।५९।।

उससे परे परमाश्चर्यमय ईश्वर–ज्योति की चिन्ता कर, वह अति आस्वादनीय एवं निर्मल महानन्दघन समुद्र स्वरूप है।।५९।।

महा–सुविस्तीर्णतमं महोज्ज्वलतमं परम्।
लोकादिभिर्घनीभावैर्महितं महदद्भुतम्।।६०।।

वह महा सुविस्तीर्णतम, परम महा उज्ज्वलतम, महाद्भुत है एवं घनसन्निविष्ट लोक समूह भी उसकी स्तुति करते हैं।।६०।।

तदन्तरे ततोऽप्यत्याश्चर्यं ज्योतिरनुस्मर।
कार्ष्ण्यं महास्वच्छतमं पारावार–विवर्जितम्।।६१।।

उसके परे उससे भी अधिक आश्चर्यजनक ज्योति का अनुस्मरण कर, वह कृष्ण वर्ण, महा स्वच्छतम एवं पारावार विहीन है।।६१।।

महादीप्तं महारम्यं महामोहनमद्भुतम्।
महाप्रेमातिसौंदर्यं महानन्दरसोत्सवम्।।६२।।

वह महादीप्त महारमणीय, महामोहन, महाद्भुत, महाप्रेममय अति सुन्दर, महानन्दमय रसोत्सवपूर्ण है।।६२।।

ततो दूरांतरे ज्योतिः सर्वाश्चर्योच्चतावधि।
सर्वोज्ज्वलाति सुमहोज्ज्वलं सर्वोत्तमोत्तमम्।।६३।।

उससे भी बहुत दूर सर्वाश्चर्य की चरम परिणति स्वरूप जो ज्योति है, वह प्रकाशित हो रही है, वह सर्वोज्ज्वल वस्तुओं को भी महा उज्ज्वलता विधान करने वाली है एवं सर्वोत्तम है।।६३।।

महावैमल्यसीमान्तः परानन्द–परावधिः।
कृष्णप्रेमरसर्धीनां चरमः परमोदयः।।६४।।

वह महा निर्मलता की शेष सीमा है, परमानन्द की शेष सीमा है, कृष्ण–प्रेम रस–सम्पत्ति–समूह का यहां ही चरम उदय है।।६४।।

कामान्यरसमात्रे यत् स्पर्शनित्यविवर्जितम्।
महाशुद्ध–कामबीज–राजात्मात्युन्मदं रसम्।।६५।।

वह नित्य–काम के सिवाय अन्य रसों के लव लेश स्पर्श से भी रहित है, एवं महाशुद्ध कामबीज–राजात्मक अत्युन्मद रसमय है।।६५।।

तदन्तस्तद्घनं भाति श्रीवृन्दावनं वनम्।
पूर्णमाधुर्यसाम्राज्यं पूर्णानन्द चमत्कृति।।६६।।

उसके बीच फिर श्रीमद्वृन्दावनीय वन घन–भाव से प्रतिभात हो रहा है, वह पूर्ण माधुर्य का साम्राज्य है एवं पूर्ण चमत्कारदायी है।।६६।।

पूर्णातिपूर्णमधुर–प्रकाशं पूर्णसद्रसम्।
सर्वसौभाग्य पूर्ण–द्रुलता–खल–मृगादिकम्।।६७।।

वह (श्रीवृन्दावन), पूर्णातिपूर्ण मधुर प्रकाशमय है, पूर्ण रसयुक्त एवं सर्व सौभाग्य पूर्ण वृक्ष–लता, पक्षी–पशु आदिकों से शोभित है।।६७।।

वापी–कूप–तड़ागाद्यैः प्रेमानन्द रसात्मभिः।
चिन्तामणिमयैर्दिव्यैः केलिशैलैः स्वलंकृतम्।।६८।।

वह प्रेमानन्द रस–विशिष्ट वापी, कूप, तड़ागादिकों द्वारा शोभित है, एवं चिन्तामणि समूहयुक्त दिव्य–दिव्य केलि–पर्वतादिकों के द्वारा सुन्दर स्वरूप से अलंकृत है।।६८।।

दिव्यकांचन–चिद्रत्न–स्थलीभिरतिभास्वरम्।
ज्योतिर्मयैर्लतावृक्षैर्नित्योद्यत्पुष्पपल्लवैः।।६९।।

वह दिव्य कांचनमय चित्स्वरूप रत्नस्थली द्वारा अतिशय दीप्ति प्रसार कर रहा है, नित्य पुष्प–पल्लवादि युक्त ज्योतिर्मय वृक्षलतादि से भूषित है।।६६।।

असंख्यफलवद् वृक्षैरानन्दघनमूर्त्तिभिः।
खेलत्खगकूलैर्मत्तैः कृतकोलाहलोत्सवम्।।७०।।

वहां आनन्दघन–मूर्ति असंख्य फलवान् वृक्ष समूह क्रीड़ा–परायण उन्मत्त पक्षियों के कोलाहल उत्सव से मुखरित हैं।।७०।।

इतस्ततो मदान्धालि–माला–मधुर–झङ्कृतम्।
प्रतिपल्लव–पुष्पोरुधार–स्यन्दि मरन्दकम्।।७१।।

(श्रीवृन्दावन में) इधर–उधर मदान्ध मधुकर पंक्ति मधुर झंकार कर रही है और प्रति पल्लव से, प्रति पुष्प से मधु–धारा प्रवाहित हो रही है।।७१।।

प्रोत्सर्पद्भिः प्रतिदिशं परागपटलैर्युतम्।
कुञ्जपुञ्जैर्महाश्चर्यै रसपुञ्जैरिवाद्भुतम्।।७२।।

यह दिशा–विदिशा में उड़ती हुई पराग से सुशोभित है, महाश्चर्य कुञ्ज समूह रह–पुञ्जों के समान अति अद्भुत प्रतीत होते हैं।।७२।।

स्थलीषु यूथशो मत्त–मयूर–कृत–ताण्डवम्।
रसालमुकुलोन्मत्त–कोकिलोद्गीतपञ्चमम्।।७३।।

श्रीवृन्दावनीय पृथ्वी पर झुण्डों के झुण्ड मोर ताण्डव नृत्य कर रहे हैं, आम्र–मुकुलों का आस्वादन कर उन्मत्त कोकिलाएं उदात्त पञ्चम स्वर में गान कर रही हैं।।७३।।

प्रफुल्लदिव्य कह्लार–कमलोत्पल–जातिभिः।
हंस–सारस– चक्राह्व–कारण्डव–कुलाकुलैः।।७४।।

प्रफुल्लित दिव्य कह्लार, कमल, उत्पल आदि विभिन्न जातियों के पुष्पों से यह शोभित है एवं हंस, सारस, चक्रवाक, कारण्डव आदि पक्षियों से परिव्याप्त हो रहा है।।७४।।

सरित्सरोभिः सुस्वच्छ–परानन्दामृताम्बुभिः।
रत्नबद्धतटैर्दिव्यैर्मणिसोपान – शोभिभिः।।७५।।

सुन्दर स्वच्छ परमानन्दामृतवत् जलपूर्ण नदी, सरोवर आदिके दिव्य मणिमय सोपानयुक्त रत्न–निबद्ध किनारों से यह श्रीवृन्दावन भूषित है।।७५।।

महाविदग्ध (प्राण–प्रियतम युगलकिशोर) के रस में मग्नचित्त सखीगणों के सर्वस्व जीवन हो रहे हैं।।८८।।

अथ स्वात्मेश्वरी राधा सुमहाभक्तिभावतः।
सदानुस्मर्यतां शुद्धस्वाद्यभाव रसाकृतिः।।८६।।

अतः निज प्राणेश्वरी श्रीराधिका को सुमहाभाव–भक्ति से नित्य ही अनुस्मरण कर, श्रीराधा शुद्ध आस्वादनीय भावरसाकृति हैं।।८६।।

सर्वासां नूतनाभीरसुन्दरीणां शिखामणिः।
सर्वलक्षण सम्पन्न – सर्वावयवसुन्दरी।।६०।।

वह सकल नूतन गोपी–मण्डली की शिरोमणि हैं, सर्व लक्षण सम्पन्ना एवं सर्वांग सुन्दरी हैं।।६०।।

शेषाशेषजगन्मूर्छाकारिण्याश्चर्यरूपिणी।
मोहिनी–पार्वती लक्ष्मी–रत्यादिरूपिणीर्वराः।।६१।।
कुर्वती यन्नखप्रान्तसौन्दर्यौघैरवाङ्मुखीः।
तप्तकांचनगौरांगी सुस्निग्धानन्तकांतिभृत।।६२।।

निज–निज ईश्वर सहित निखिल जगन्मण्डली की वह मूर्च्छाकारिणी एवं आश्चर्यरूप लावण्यवती हैं, मोहन करने वाली लक्ष्मी पार्वती तथा रति आदि श्रेष्ठ श्रेष्ठ रूपवती स्त्रियों को भी वह अपने नखप्रान्त–सौन्दर्य–प्रवाह में बहा देने वाली हैं, वह तप्त कांचन–सुस्निग्ध कांतियुक्त हैं।।६१–६२।।

दशदिङ्मण्डलाच्छादि 'सुगौरांगोच्छलच्छविः।
चिदचिद् द्वैतमामज्ज्यात्युच्छलन्मधुरच्छविः।।६३।।

अपने सुगौरवर्ण अंगों की कांति से दशोंदिशाओं को आच्छादन करने वाली हैं, चित्–जड़ आदि द्वैत वस्तु को अच्छी प्रकार रूपसागर में निमग्न करके अति मधुर छवि प्रकाश करने वाली हैं।।६३।।

महाप्रेमरसाम्भोधि जृम्भणैकाद्भुतच्छविः।
श्रीकृष्णात्मप्राणकोटि निर्म्मञ्छैकरसच्छविः।।६४।।

वह महा प्रेमरस–समुद्र में प्रकाशित एक अद्भुत शोभाशालिनी हैं एवं श्रीकृष्ण के कोटि प्राण निर्मञ्छनकारी एक मुख्यरस की शोभा धारण करने वाली हैं।।६४।।

स्वयंप्रभाच्छिदद्वैत – सत्प्रेमैकरसच्छबिः।
आश्चर्य–नवकैशोरव्यञ्जि–दिव्यतमाकृतिः।।६५।।

वह स्वयं प्रकाश एवं नित्य मिलनात्मक सुन्दर प्रेम की ही एक रसछवि हैं एवं आश्चर्य नवकैशोर में व्यञ्जित दिव्यतमाकृति युक्ता हैं।।६५।।

नवलावण्यपीयूषसिन्धुकोटिप्रवाहिनी ।
पदे पदे महाश्चर्य सौन्दर्याशेषमोहिनी।।६६।।

श्रीराधाजी अनन्त कोटि नव लावण्यामृत–सिन्धु प्रवाहिनी हैं एवं प्रतिपद में महाश्चर्य सौंदर्य राशि से अशेष चराचर को मोहन करने वाली हैं।।६६।।

महामाधुर्यौघरूप – मोहनांगोच्छलच्छबिः।
आकुलीकृत–भृंगालिर्मल्लीचम्पकदामभिः।।६७।।

उनके मोहनांग से महामाधुर्यराशि रूप एवं शोभा उच्छलित हो रहे हैं। मल्लिका–चम्पक रचित मालाओं पर भ्रमर–समूह आकुलित हो रहा है।।६७।।

वृतां मूले विचित्रोरुपुष्पैर्मध्ये सुगुम्फिताम्।
प्रचलद्रत्नगुच्छालिपुच्छां विश्वविमोहिनीम्।।६८।।
शिरोगतातिसूक्ष्मश्रीर्लोचनान्तर्विलक्षिताम्।
चारुवेणीलतां विभ्रत्यापीनश्रोणीलम्बिनीम्।।६९।।

उनकी वेणी का मूलदेश अनेक विचित्र पुष्पों द्वारा शोभित है, मध्यदेश सुन्दर भाव से ग्रथित है, एवं झूमते हुये रत्नों के गुच्छों के पश्चाद् भाव अलंकृत होकर विश्वविमोहन हो रहा है, और सिर पर अति सूक्ष्म सुन्दर ओढ़नी में से दीखती हुई पृथुजंघादेश पर्यन्त लम्बी सुन्दर वेणी–लता वे धारण कर रही हैं।।६८–६९।।

सुनीलायत–सुस्निग्ध–सुपीनमधुरोज्ज्वलाम्।
पन्नगीमिव चाम्पेय–वल्ल्याः पश्चाद्विलम्बिनीम्।।१००।।

वह ओढ़नी सुनील, आयत, सुस्निग्ध, सुपीन, मधुर एवं उज्ज्वल है, देखने से ऐसा लगता है मानो चम्पकलता के पीछे एक नागिन लटक रही है।।१००।।

जाम्बुनदमयानन्त – पूर्णचन्द्राननच्छबिः।
अनन्तचन्द्रिका–स्वर्णपद्मकोषमुखच्छबिः।।१०१।।

स्वर्णमय अनन्त पूर्ण चन्द्रों के समान श्रीराधाजी के मुख की शोभा है, अथवा अनन्त ज्योत्सना–मण्डित स्वर्णपद्म के भीतर की कांति के समान उनके मुख की शोभा है।।१०१।।

श्रीप्रबोधानन्द सरस्वति–विरचित श्रीवृन्दावन–महिमामृतम् का
सप्तम शतक समाप्त हुआ।।७।।

अष्टमं शतकम्

उद्बुद्धमुग्धकनकाम्भोजकोषनिभानना।
पक्वदाड़िम्ववीजाभ–स्फुरद्दशनदीधितिः।।१।।

(श्रीराधाजी) मनोहर प्रफुल्लित स्वर्ण–पद्म कोषवत् सुन्दरवदनी हैं एवं उनके दांतों की कान्ति पके अनार के दानों की चमक की भांति स्फुरित हो रही है।।१।।

चारुबिम्बाधरज्योतिर्वहन्मधुरिमाम्बुधिः।
सौंदर्यसार–चिबुक–श्यामबिन्द्वतिमोहिनी।।२।।

उनके सुचारु बिम्बाधर की ज्योति से माधुर्य का समुद्र प्रवाहित हो रहा है, परम सुन्दर चिबुक पर श्याम–बिन्दु होने से वह अति मोहिनी मूर्त्ति बन रही हैं।।२।।

सव्रीड़स्मेरचपल – खञ्चरीटायतेक्षणा।
भ्रूविलासविनिर्धूत–कामकार्मुक सौभगा।।३।।

लज्जायुक्त मृदु–मधुर–हास्य द्वारा उनके नेत्र खंजनवत् चंचल हो रहे हैं, एवं भ्रु विलास से कामदेव के बाणों को पराजित कर वह महा सौभाग्य–शालिनी हो रही हैं।।३।।

श्रीमन्नासापुटस्वर्णरत्नाक्तोज्ज्वलमौक्तिका।
सुरत्न – कर्णताटंक – कर्णपूरमनोहरा।।४।।

वह सुन्दर नासिका में स्वर्ण रक्ताभ उज्ज्वल मुक्ता धारण कर रही हैं, एवं सुन्दर रत्न–ताटंक, कर्णपूर आदि धारण कर मन को हरण कर रही हैं।।४।।

नवकांचनकम्बुश्रीकण्ठनिष्कमणिच्छटा।
सुजात–नववक्षोज–स्वर्णकुट्मलयुग्मकम्।।५।।

उनके शंखवत् सुन्दर कण्ठ में नवीन कांचनमय निष्कमाला की मणि छटा विस्तृत हो रही है, तथा मनोज्ञ–नव–कुचयुगल–स्वर्ण कलिकावत् प्रतीयमान हो रहे हैं।।५।।

परमाश्चर्यसौन्दर्य–महालावण्यमण्डलम्।
मूर्त्तमाधुर्यैकरसं पीनवृत्तपृथून्नताम्।।६।।

वे (कुचयुगल) परमाश्चर्यमय सौन्दर्य एवं लावण्य से मण्डित हैं, एवं माधुर्य रस की मूर्त्ति ही हैं तथा वे पीन, वृत्त, पृथुल तथा उन्नत हैं।।६।।

सम्वीत–कंचुकं चेलाञ्चलेनावृण्वती मुहुः।
रत्नचूड़ावली–'रत्नकेयूर–प्रसरच्छबिम्।।७।।

वे कांचुलि से आच्छादित हैं परंतु फिर भी बार–बार वस्त्राञ्चल से वह उन्हें आवृत करती हैं। रत्न–चूड़ावलि एवं रत्नकेयूर की शोभा इधर–उधर प्रसारित हो रही है।।७।।

दधानां चारुदोर्वल्लीं महासुवलितोज्ज्वलाम्।
सुस्निग्धहेमदलवद्वलिमत्पल्लवोदरीम्।।८।।

श्रीराधाजी की बाहु–लताएं महा सुगोल, उज्ज्वल एवं मनोज्ञ हैं, सुस्निग्ध स्वर्णकमल के पल्लववत् उनका उदर त्रिवली से शोभित हो रहा है।।८।।

अत्यन्तचारुसुकृश–मध्यदेश–मनोहराम्।
महासौन्दर्यसारातिपुष्यन्नवनितम्बिनीम्।।९।।

उनका अत्यन्त सुन्दर व सुकृश कटिदेश मनोहर है, नितम्ब देश महा सौन्दर्यसार से पुष्ट हो रहा है।।९।।

चित्रकुञ्चितकौशेय–मञ्जर्यागुल्फरञ्जिताम्।
सुहेमकदलीकाण्ड–सुस्निग्धोरुयुगोज्ज्वलाम्।।१०।।

मंजरी द्वारा विचित्र रेशमी वस्त्र से कुंचित उनका गुल्फदेश रञ्जित हो रहा है, तथा उरु युगल सुन्दर स्वर्ण–कदली के स्तम्भवत् सुस्निग्ध एवं उज्ज्वल हैं।।१०।।

जानुबिम्बमहाशोभां दिव्यजंघामृणालिनीम्।
चरणाम्बुजसौन्दर्य–संमोहित–चराचराम्।।११।।

उनके जानुबिम्ब की महा शोभा है, दिव्य मृणालवत उनकी जंघा हैं, चरण–कमलों से वह चराचर को सम्यक् प्रकार से मोहित कर रही हैं।।११।।

सलील–पदविन्यास–महामोहन–मोहिनीम्।
कांचीकलाप–वलितां क्वणत्कनकनूपुराम्।।१२।।

मनोहर चरणों की धरन से महामोहन को भी मोहित कर रही हैं, एवं काञ्चीकलाप तथा शब्दायमान स्वर्ण नूपुरों से शोभित हो रही हैं।।१२।।

दिव्यपादांगुलीयाढ्य लसदंगुलिपल्लवाम्।
माणिक्यपादकटकामुरुजंघाति शोभिताम्।।१३।।

हर एक अंगुली–पल्लव में दिव्य पादांगुली चमक रही है, वह दोनों चरणों में माणिक्यमय कटक धारण कर रही हैं।।१३।।

रत्नांगुलीयराजिभिर्विराजित–करांगुलीम्
पदे पदे महाशोभा–सिन्धुकोटि विमोहिनीम्।
महाश्चर्यानन्तपार केलिवैदग्ध्यवारिधिम्।।१४।।

वह प्रति हाथ की प्रति अंगुली में रत्नमयी अंगूठी धारण कर रही हैं, प्रति पद–पद पर कोटि महाशोभा समुद्रों को मुग्ध कर रही हैं, एवं वह महाश्चर्य पारावार रहित केलिवैदग्धी का समुद्र हैं।।१४।।

महाश्चर्यानंगरसमय भंगीतरंगिभिः।
सुगौर–सुकुमारांगैः सकृष्णाल्यादि–मूर्छनम्।।१५।।

श्रीराधाजी महाश्चर्य अनंग रसमयी भंगीरूप तरंगों से सुगौर कुमार अंगों से, श्रीकृष्ण एवं सखीगणों पर्यन्त मूर्छित कर देती हैं।।१५।।

अथ वृन्दावनेश्वर्या रत्ननूपुरशोभिते।
श्रीपादाम्बुजयोः पूर्णे ज्योतिष्यतिरसोज्ज्वले।
घनीभावात्मिका दासीयूथकोटीरनुस्मर।।१६।।

इस प्रकार श्रीवृन्दावनेश्वरी के रत्नमय नूपुरों सहित पादपद्म अति रसमय उज्ज्वल व पूर्ण ज्योति से घनीभावात्मिका कोटि–कोटि दासी यूथों का भी अनुसरण कर।।१६।।

तत्तद्यूथाधिनाथाभिः शिक्षितादृतलालिताः।
नानाविध–महाश्चर्य–कैशोरश्री–मनोहराः।।१७।।

वे दासीयूथ अपनी–अपनी यूथ नायिकाओं द्वारा शिक्षित आदृत तथा लालित हैं, एवं नाना विध महाश्चर्य कैशोरावस्था से मनोहर हैं।।१७।।

नानाविध–महाश्चर्य वस्त्रालंकार चर्चिताः।
नानाविध–महाश्चर्य–वर्णाकार–विचित्रिताः।।१८।।

वे नाना प्रकार महाश्चर्यमय वस्त्रों से भूषित हैं, एवं नानाविध महाश्चर्य वर्णों एवं आकृतियों से वैचित्री पूर्ण हैं।।१८।।

नानाविध–महाश्चर्य–कला–निर्माण–पण्डिताः।
स्व–स्व–संगीतशिक्षाभिः सन्तोषितप्रियद्वयाः।।१९।।

वे दासियां नानाविध महाश्चर्य कला–निर्माण में पण्डित हैं एवं अपनी–अपनी संगीत–शिक्षा द्वारा प्रियतम युगलकिशोर को संतोषित करती रहती हैं।।१९।।

वयःस्वभाव–प्रोन्मीलन्मधुरानेकचेष्टिताः
अंगभंगिम–सव्रीड़हसिताऽनृजुवीक्षितैः।।२०।।
सहजैरेव सकलं स्थगयन्तीः सहेश्वरम्
तत्र कांचित्तनुं सौम्यां श्रीराधात्यनुकम्पिताम्।।२१।।

किशोर वयस के स्वभाव से अनेक–अनेक मधुर चेष्टाएं करती रहती हैं, सहज अंग–भंगिमा, लज्जायुक्त हास्य और कुटिल कटाक्ष आदि से वे ईश्वर तथा सकल जगत् को स्थम्भित कर देती हैं, उनके बीच श्रीराधाजी की अति कृपा–पात्र किसी एक सुन्दरी का अनुस्मरण कर।।२०–२१।।

क्षणं चरणविच्छेदाच्छ्रीश्वर्याः प्राणहारिणीम्।
पदारविन्दसंलग्नतयैवाहर्निशं स्थिताम्।।२२।।

क्षण काल के लिए चरण–सेवा त्याग करने पर वह सुन्दरी श्रीईश्वरी की प्राण हारिणी हो जाती है, अतः दिनरात वह पद कमल के सन्निकट ही रहती है।।२२।।

बहुना किं स्वकान्तेन क्रीड़न्त्यापि लतागृहे।
पर्यंकाधिष्ठापितां वा वस्त्रैर्वाच्छादितां क्वचित्।।२३।।

और अधिक क्या कहा जाय ? लता–गृह में अपने कांत के सहित क्रीड़ा करते समय भी श्रीराधाजी उसे शय्या पर बैठाये रखती हैं एवं कभी उसे कपड़ों से आच्छादन कर देती हैं।।२३।।

सुस्निग्धललित–स्वर्णसुगौरीं मधुरच्छबिम्।
कान्त्यानन्तां श्रियानन्तां माधुर्यैरप्यनन्तकाम्।।२४।।

वह सुगौरी सुस्निग्ध ललित स्वर्णवत् मधुर शोभायुक्ता हैं, तथा अनन्त कांतियुक्त, अनन्त शोभा सम्पत्तियुक्त एवं माधुर्यराशि युक्त हैं।।२४।।

व्यञ्जद्भुतकैशोरां सुजात–मुकुलस्तनीम्।
तारा–हारावली–चारुचित्रकञ्चुकधारिणीम्।।२५।।

वह अद्भुत किशोरावस्था युक्त हैं, स्तन मुकुल सुन्दर भाव से उदित हो रहे हैं, एवं तारों की हारावली तथा विचित्र कांचुलि धारण कर रही हैं।।२५।।

स्निग्धच्छटा–कन्ददोःकन्दली–चूड़ांगदश्रियम्।
चारुश्रोणितटक्रीड़न्महावेणीलतोज्ज्वलाम्।।२६।।

स्निग्ध–कांति की आधार स्वरूप कदलीवत् बाहुओं में चूड़ा तथा अंगद की सुन्दर शोभा है, तथा सुमनोहर श्रोणितट पर महा वेणीलता इतस्ततः उछलने से अति उज्ज्वलता को प्राप्त हो रही है।।२६।।

अत्यन्तचारुसुकृश–मध्यदेश–मनोहराम्।
दिव्यकुञ्चितकौशेयेनागुल्फ–परिमण्डिताम्।।२७।।

उस (दासी) का मध्यदेश अत्यन्त सुन्दर है, सुकृश और मनोहर है, दिव्य रेशमी वस्त्र द्वारा कुञ्चित गुल्फदेश पर्यन्त सुसज्जित हो रही है।।२७।।

निचोलेनातिसूक्ष्मेण स्वगुच्छाञ्चल शोभिना।
अलकान्त परिवृतां मुहुर्मोहनवीक्षिताम्।।२८।।

पत्र–पुष्पादि के स्तवक–शोभित अति सूक्ष्म वस्त्रों में वह अलकावली पर्यन्त आवृत हो रही है एवं बार बार उसे श्रीश्यामसुन्दर विशेष भाव से निरीक्षण करते हैं, अथवा वह मोहनकारी नेत्रों युक्त है।।२८।।

सव्रीड़मधुरस्मेर–सलीलापांगवीक्षणाम्।
नानाश्चर्यकलोदारां नानाभंगीमयाकृतिम्।।२९।।

वह लज्जायुक्त मृदु–मधुर हास्ययुक्त है एवं विलासपूर्ण अपांग विक्षेप–कारिणी है, नानाविध आश्चर्य–कला–विशारद तथा नाना भंगीयुक्त आकृतिशील है।।२६।।

राधाकृष्ण–महाप्रेमोदञ्चि–रोमांचसञ्जयाम्।
श्रीश्वरीशिक्षिताशेष–कलाकौशलशालिनीम्।।३०।।

श्रीराधाकृष्ण के महाप्रेम में उसके रोमाञ्च समूह उल्लसित होते हैं, एवं प्राणेश्वरी द्वारा शिक्षित सर्व कलाओं में वह प्रवीण है।।३०।।

प्रेष्ठद्वन्द्वप्रसादस्रग्वस्त्रभूषादि मोहिनीम्।
महाविनय सौशील्याद्यनेकाश्चर्यसद्गुणाम्।।३१।।

प्रिया प्रियतम के प्रसादी माला–वस्त्र–भूषणादि धारण करने से मनमोहिनी हो रही है उसमें महाविनय एवं सुशीलतादि अनेक आश्चर्य सद्गुण विराजते हैं।।३१।।

श्रीश्वरीदृष्टिवागादि–सर्वेगित विचक्षणाम्।
श्रीकृष्णदत्तताम्बूल–चर्वितां तत्तदादृताम्।।३२।।

वह दासी श्रीराधाजी के नेत्र एवं वाक्यों के सब इशारों को समझने में समर्थ है। श्रीकृष्ण के चर्वित पानादि का वह आस्वादन करती है एवं श्रीयुगलकिशोर उसका आदर करते हैं।।३२।।

गूढ़श्यामाभिसारांग–भृंगारादिभिरन्विताम्।
राधा–प्रीत्यनुकम्पादि–प्रवृद्धप्रेमविह्वलाम्।।३३।।

श्रीश्याम के निगूढ़ अभिसारोपयोगी शृंगारादि सामग्री को वह धारण करती है, एवं श्रीराधा की प्रीति तथा अनुकम्पादि से अत्यन्त प्रेम–विह्वल हो जाती है।।३३।।

राधा–पदाब्जसेवान्यस्पृहा–कालत्रयोज्झिताम्।
राधा–प्रीतिसुखाम्भोधावपारे बुड़ितां सदा।।३४।।

वह श्रीराधा की चरण कमल सेवा के व्यतीत और कोई वासना कभी भी नहीं करती एवं श्रीराधा के अपार प्रीति सुख–समुद्र में नित्य निमग्न रहती है।।३४।।

राधा–पदाम्बुजादन्यत् स्वप्नेऽपि च न जानतीम्।
राधा–सम्बन्धसंधावत् प्रेमसिन्धौघशालिनीम्।।३५।।

श्रीराधा पादपद्म के सिवाय स्वप्न में भी वह और कुछ नहीं जानती एवं श्रीराधा के सहित सम्बन्ध रूप प्रेम समुद्र की तरंगों में वह प्लावित हो रही हैं।।३५।।

सेशाशेष–महाविस्मापक–कैशोररूपिणीम्।
क्षणे क्षणे रसास्वाद–प्रोदञ्चत्पुलकावलीम्।।३६।।

वह निखिल जगत् को महा विस्मय करने वाले कैशोर–रूप युक्त है एवं प्रतिक्षण ही रसास्वाद में पुलकित हो रही है।।३६।।

सर्वांगकांतिसौन्दर्यैरपारैः सर्वमोहिनीम्।
राधा–कर्माकुलतया तत्र तत्र विचालिनीम्।।३७।।

समस्त अंगों के सौन्दर्य–प्रकाश से सबको वह ही मोहन करने वाली है एवं श्रीराधाजी के सेवा–कार्य वश व्याकुल चित्त से इधर–उधर विचरण कर रही है।।३७।।

नरस्तवकिनीं स्वर्णलतां सञ्चारिणीमिव।
अंगच्छटा–तरंगौघैश्छादयन्तीं दिशो दश।।३८।।

वह मानो नवीन स्तवकिनी इतस्ततः सञ्चारण करने वाली स्वर्णलता है जो अपने श्रीअंगों के सौन्दर्य प्रकाश से दशोंदिशाओं को प्रकाशित कर रही है।।३८।।

चित्रयन्तीमिव दिशो विचित्रांगच्छटाचयैः।
सलील–पदविन्यासैः सुनूपुररणत्कृतैः।।३९।।
काञ्चीवलयनादैश्च मधुरैर्विश्वमोहिनीम्।
राधाकृष्ण रहोगोष्ठी–सुधा–मधुरशीलताम्।।४०।।

विचित्र अंग छटा से दशोंदिशाओं को वह विचित्र कर रही है, विलासमय पाद–विन्यास, सुन्दर नूपुरों की झंकार से तथा काञ्ची वलयादि के मधुर स्वर से वह विश्व को विमोहित कर रही है, श्रीराधाकृष्ण की निर्ज्जन वार्तालाप सुधा आस्वादन कर मधुर शीतल हो रही है।।३९–४०।।

तत्तद्वचनपीयूषैर्महामधुरशीतलैः।
श्रीराधामुखचन्द्रानुगलितैरभिनन्दिताम्।।४१।।

श्रीराधा के मुखचन्द्र से निकली हुई महा मधुर शीतल वचन सुधा के द्वारा वह हर्षित रहती है।।४१।।

श्रुत्वा श्रुत्वातिसुखितां पुनः श्रवणलालसाम्
एवमेव स्मरन्नित्यं सर्वावस्थासु सर्वथा।
अस्फूर्तितः कथातोऽपि श्रीमद्वृन्दावने वस।।४२।।

उन वाक्यों को अनेक बार सुन–सुन कर वह अतिशय सुखित होती है, एवं पुनः पुनः सुनने के लिए उत्सुक रहती है, इस प्रकार नित्य सकल अवस्थाओं में सब प्रकार से स्मरण कर, इस समस्त की यदि स्फूर्ति न हो तो भी इसकी कथादि स्मरण करते–करते श्रीवृन्दावन में वास कर।।४२।।

अत्यन्ताशुचि–वीभत्स–देहादौ नैव कर्हिचित्।
देहि दृष्टिं प्रमादादप्यत्यनर्थपरंपराम्।।४३।।

अत्यन्त अशुचि वीभत्स देहादिक में भूल कर भी अति अनर्थमूलक दृष्टिपात मत करना।।४३।।

विन्मूत्रश्लेष्मपूषादिक–भरितमिदं स्नायुमांसास्थि–मज्जा–
रक्ताद्यात्म–त्वचाच्छादितमहह रहिः स्वार्थनिर्मूलकारि।
एकं ब्रह्माद्यतार्य्यं युवतिरिति मतं स्वीयसंमोहजालं
त्यक्त्वा दूरेण वृन्दावनमतिपरमस्वार्थमद्धा श्रयन्तु।।४४।।

मल–मूत्र–श्लेष्मा–पूषादिपूर्ण, स्नायु, मांस, अस्थि, मज्जा, रक्तादियुक्त त्वचा से ढका हुआ, स्वार्थ निर्मूलकारी, ब्रह्मादिक से भी अजेय "युवति" नामक एक स्वीय संमोहजाल है, इसे दूर से ही त्याग करके अपने परम पुरुषार्थ श्रीवृन्दावन का आश्रय कर।।४४।।

सर्वात्मार्थोरुविघ्नं कलय यदि मनो योषितां भावनिघ्नं
निघ्नन्दुष्टेन्द्रियाणि प्रसभमुदयभाञ्जयुद्यतामर्षदण्डैः।
तद्रूपञ्चैव भूषादिकमपि नितरां दूरदूरेण कुर्वन्
प्रत्यूहाभासमन्यं तृणमिव गणयन्नास्स्व वृन्दावने भोः।।४५।।

यदि मन को सर्वात्मा और स्वार्थों में विघ्नकारी नारी के भावाधीन तू देखता है, तो बलपूर्वक उठती हुई दुष्ट इन्द्रियों को क्रोध रूप दण्ड से दमन कर। इसी प्रकार भूषादि बहुत दूर फैंक, विघ्नाभास आने पर उसे तृणवत् जानकर श्रीवृन्दावन में वास कर।।४५।।

आत्मारामेश्वर–श्रीहरिमिह न विना निस्तरेत् कोऽपि मायां
यासौ मायातिमायाद्यनुहसितकटाक्षांगभंगाभिरामा।
रामाख्या कालकूटादपि विषमतमा भाति सौधीव धारा
धारावत् कृष्णनामाभिदधदिह शमी तिष्ठ वृन्दावनेऽतः।।४६।।

इस पृथ्वी पर आत्मारामेश्वर श्रीहरि के बिना कोई भी इस माया से उत्तीर्ण नहीं हो सकता, जो माया अति कपट विस्तार करके हास्य, कटाक्ष और अंग भंगों आदि से अति सुन्दरी प्रतीत होती है, यदि इसका नाम रामा (रमणीया व तृप्तिदायिका) है एवं आपात् दृष्टि से सुधा–धारावत् लगती है, तथापि यह विष से भी बढ़कर विषतम है, अतएव 'राधा' नामक संयुक्त "कृष्ण" नाम (राधाकृष्ण) उच्चारण करते हुए इस श्रीवृन्दावन में शांतिपूर्वक वास कर।।४६।।

वृन्दारण्येऽद्भुतरसमयी चेतसः काप्यवस्था
प्रेमानन्दानपि च परमान् बिन्दुमात्री करोति।
मिथ्या–दुखात्मकविषयगैरिन्द्रियैर्वञ्चितस्तान्
नैव प्राप्तुं प्रभवति जनो देवमाया–स्त्रियान्धः।।४७।।

इस श्रीवृन्दावन में चित्त की ऐसी एक अद्भुत रसमयी अवस्था होती है जो परम प्रेमानन्द समूह को भी बिन्दुमात्र रूप में कर देती है, किन्तु हाय ! मिथ्या दुखात्मक विषयों में दौड़ने वाली इन्द्रियों से ठगे हुए लोग दैवी मायारूप स्त्री द्वारा अन्धे होकर उस आनन्द–राशि को प्राप्त नहीं कर सकते।।४७।।

द्वैतं प्रोज्जन्मधुरमधुरानन्तकान्तिप्रवाहैः–
सेशं समूर्च्छयदगजगद्दिव्यरूपांगभगैः।
सव्रीड़ोद्यंस्मितसुमधुरापांग दिग्धेषु विद्धे
श्यामे नानाजनितविकृति ध्याय राधाख्यमोजः।।४८।।

मधुर–मधुर अनन्त कांति प्रवाह में ही द्वैतमात्र को जो लोप करती है, दिव्य रूप एवं अंग भंगी द्वारा स्व–स्व ईश्वर सहित स्थावर जंगमादिक समस्त

को ही जो मूर्छित कर देती है, लज्जा युक्त मृदुहास्ययुक्त सुमधुर अपांग विक्षेप रूप विषाक्तवाणों द्वारा श्यामसुन्दर को घायल कर जो अनेकविध अज्ञात विचारों को प्राप्त हो रही है। उस श्रीराधा–नामक मूर्त्ति का ध्यान कर।।४८।।

स्त्रीराक्षस्याः सुविषमकृते रक्षतं रक्षतं च
क्रोधासूया–मदपिशुनता–दम्भ–लोभानृतादैः।
वृन्दाटव्या विरहभयतो रक्षतं न्यूनभावाद्–
राधाकृष्णौ निजकरुणया सर्वतो रक्षतं माम्।।४६।।

हे राधाकृष्ण ! स्त्री राक्षसी के सुविषम कार्य से मेरी रक्षा कीजिए, क्रोध, असूया, मद, पिशुनता, दम्भ, लोभ एवं कपटता आदि से रक्षा कीजिए। श्रीवृन्दावन का अल्पमात्र भी विरह जिससे हो, उससे भी मेरी रक्षा करें। अपनी करुणा से मेरी सर्वत्र रक्षा कीजिये।।४६।।

क्षुधा देहत्यागो वरमिह गृहस्थैर्न हि मिला–
म्यपि श्रेयःप्राप्तौ न युवतिसमीपं क्षणमये।
न जह्यां श्रीवृन्दावनमखिलनाशेऽपि मनसा–
प्यहो क्षुद्रस्यापि व्यवसितिमिमां कः सफलयेत्।।५०।।

यहां (श्रीवृन्दावन में) भूखा मर जाऊं सो अच्छा है तथापि गृहस्थियों से मैं नहीं मिलूंगा। श्रेय (आत्यन्तिक मंगल) की प्राप्ति उद्देश्य से भी किसी युवती के पास में क्षणकाल के लिए भी नहीं जाऊंगा, सर्वनाश हो जाने पर भी मन से श्रीवृन्दावन का त्याग नहीं करूंगा। अहो ! इस मुझ क्षुद्र व्यक्ति की यह चेष्टा कौन सफल कर सकता है ?।।५०।।

न शास्त्रगुरुकोटिभिर्न खलु लोकनिन्दाशतै–
र्महानरदृष्टिभिर्न हि विपत्तिसौख्येर्न हि।
मनागपि च नोत्सहे हतमनो युवत्याहृतं
निरोद्धुमत ईदृशं किमवितासि वृन्दाटवि।।५१।।

कोटि–कोटि बार शास्त्र एवं गुरु द्वारा तथा शत–शत बार लोकों द्वारा निन्दनीय जानकर, महानरक रूप देखकर तथा लेशमात्र सुख को न प्राप्त करके भी–हाय ! मैं अपने हत भाग्य मन को स्त्री द्वारा चुराये जाने से किसी

भांति भी न रोक सका, अतएव हे श्रीवृन्दावन ! क्या ऐसे मुझ पतित की आप रक्षा नहीं करोगे।।५१।।

जरीहर्त्ति स्वान्तं हरि हरि युवत्यादिविषयो
नरीनर्त्याक्रम्य त्वतिशिरसि माया भगवतः।
वरीवर्तीत्याशा चिरमिह तु वृन्दावन–वने
न जाने राधायाः कथमिव चरीकर्त्ति करुणा।।५२।।

हरि ! हरि ! युवति आदि विषय मेरे मन को बार–बार हरण करते हैं, भगवन्माया सिर पर आरोहण कर बार–बार नृत्य कर रही है, किन्तु इस श्रीवृन्दावन में वास करने की बहु–कालीन आशा भी है। मैं नहीं जानता, श्रीराधाजी की करुणा क्या व्यवस्था कर रही है।।५२।।

राधा–कीर्तिसुधा–रसेन–रसना–रात्रिन्दिवं पूर्य्यतां
श्रीवृन्दाविपिने तदीयपदयोः कैंकर्य्यमेवार्थ्यताम्।
धैर्यं स्वर्णमयीशितुर्नववयोरूपश्रिया हार्यतां
प्रेमाश्रुत्पुलकादिभावविभवव्यक्त्या जगत्तार्यताम्।।५३।।

श्रीराधाजी की कीर्ति–सुधा से दिनरात तू अपनी रसना की पूर्ति कर, श्रीवृन्दावन में उनके चरण कमलों की सेवा की प्रार्थना कर, सुवर्णमयी प्राणेश्वरी के नवीन वयस रूप–शोभा आदि से अधीर हो जा, प्रेम–अश्रु एवं उच्च पुलकावलि आदि भाव–सम्पत्ति से सम्पन्न होकर जगत् का उद्धार कर।।५३।।

अतिरसविवशं किशोरयुग्मं द्रुत–नवकांचननीलरत्नरोचिः।
सुविमल–वरभावमूर्त्ति वृन्दाविपिन–निकुंजगृहोदरे चकास्ति।।५४।।

अति रस के वशीभूत, द्रुत नवीन स्वर्ण एवं नील मणि की ज्योतियुक्त युगलकिशोर, सुविमल, श्रेष्ठ–भाव पूर्ण मूर्त्ति प्रकट कर श्रीवृन्दावन की निकुंजवाटिका में शोभित हो रहे हैं।।५४।।

नवनव–रतिलोल–गौरनीलद्वय मह एकरसात्मकं किशोरम्।
निरवधि भज सत्कलावलीभिर्नवरसपुंजनिकुंजवाटिकायाम्।।५५।।

नव–नव रतिलम्पट, एक रसात्मक, गौरनील कांति किशोर, युगल का सुन्दर कलाविलासादियुक्त नवीन रस–पुञ्ज–शालिनी निकुंज वाटिका में निरन्तर भजन कर।।५५।।

ब्रजजन–वरवर्णिनी–विवर्णीकृतमुखमोहन–मोहनांगरोचिः।
सपति–रतिरमादि–मूर्च्छनश्रीनखसुषमा हृदि राधिका ममास्तु।।५६।।

जो अपनी महामोहनकारी अंग कांति से ब्रज रमणियों के मोहन–मुख को भी विवर्ण कर देती है, एवं जिनके परम सुन्दर नख की छटा से पति सहित रति और लक्ष्मीदेवी आदि भी मूर्छित हो जाती है, वह श्रीराधिकाजी मेरे हृदय में विराजें।।५६।।

सर्वत्त्वद्भुत–सद्गुणैर्विलसितं सर्वोज्ज्वलात्युज्ज्वलं
सर्वस्मान्मधुरादतीव मधुरं सर्वार्थदात्यर्थदम्।
सर्वस्माच्च सुगन्धशीतलतरात् सद्गन्धवच्छीतलं
सर्वानन्दमयाच्चमत्कृत–महानन्दाब्धि वृन्दावनम्।।५७।।

समस्त ऋतुओं के समस्त सद्गुणों युक्त, समस्त उज्ज्वलता को उज्ज्वलता देनेवाला, समस्त मधुरों में मधुर समस्त पुरुषार्थ देनेवालों में भी महान दानकारी, समस्त सुगंधित शीतल वस्तुओं से भी अधिकतर सुगन्धित एवं शीतल करने वाला तथा सर्व आनन्दमय पदार्थों को भी चमत्कृति करने वाला महानन्द–समुद्र है–यह श्रीवृन्दावन।।५७।।

नित्यानन्दान्निरवधि विवर्द्धिष्णु–दिव्यावभासां
वासान् दिव्यान् प्रतिपदमनोहारिणः प्रोद्गिरन्तीम्।
नित्यं सुस्वस्तिकमुखमहादिव्य संस्थान–वृन्दां
श्रीमद्वृन्दावनभुवमहं भावगम्यां भजामि।।५८।।

नित्यानन्द–वश अतिशय वृद्धिशील दिव्य–प्रकाशयुक्त, प्रति स्थान पर दिव्य मनोरम गंध प्रकाश करनेवाली एवं नित्यसुन्दर गृहादि महा दिव्य वास–स्थान देनेवाली भावगम्य इस श्रीवृन्दावन की भूमि का मैं भजन करता हूं।।५८।।

श्रीराधामुरलीधरौ गुणनिधी श्रीमत्पदाम्भोरुह–
द्वन्द्वेनैव सुधा सुधाकर–महामाधुर्यनिस्यन्दिना।
आश्चर्यातुलसौकुमार्य परमावत्यन्तकौतूहलाद्
यस्यां संचरतः सदाधिवस तां वृन्दावनीयावनीम्।।५९।।

आश्चर्यमय अनुपम सुकुमारता के परम आश्रय, अमृत की निन्दा करने वाले महामाधुर्य को प्रदान करने वाले गुणनिधि श्रीमुरलीधर के मनोरम युगल–चरण

कमलों से अति कौतूहलाक्रांत श्रीवृन्दावन की भूमि में नित्य निवास कर।।५६।।

महाचिन्तारत्नप्रचयमय–कूर्पादि–वलितां
सुकर्पूरक्षोदैः सुकुसुमपरागैश्च निचिताम्।
षडूर्मीणां निर्मूलनकर सकृतस्पर्शनलवां
भवाब्धि श्रीवृन्दावनभुवमितः सन्तर सुखम्।।६०।।

महा चिन्ता–मणिमय स्थलों से युक्त, सुन्दर कर्पूरवत् चूर्ण द्वारा तथा पुष्पराग समूह द्वारा व्याप्त, लवमात्र स्पर्श करने से ही षड ऊर्म्मी अर्थात् शोक, मोह, जरा, मृत्यु क्षुधा तथा पिपासा को नाश करने वाले रस को प्रदान करने वाली श्रीवृन्दावन–भूमि को प्राप्त होकर सुखपूर्वक भव सागर से उत्तीर्ण हो।।६०।।

महाज्योतिरूपामतिविमल–नाना–मणिघटा–
च्छटाभिर्वैचित्र्यं किमपि दधतीं नित्यसुखदाम्।
समन्ताच्छ्रीराधा–मधुपति–पदांकैः सुमधुरां
स्मराम श्रीवृन्दावन भुवमनन्ताद्भुत–गुणाम्।।६१।।

महा ज्योतिरूपा, अति विमल नाना मणि–समूह की कांति से अनिर्वचनीय विचित्रता धारण करने वाली, नित्य सुखद सर्वत्र श्रीराधा–मधुपति के चरण–चिन्हों से सुमधुरा तथा अनन्त अद्भुत गुण–मण्डिता श्रीवृन्दावन की भूमि को मैं कब स्मरण कर पाऊंगा।।६१।।

भूरेषा हन्त सेशाखिलपरम–महाप्राज्ञ–दुर्ज्ञान सर्वा–
श्चर्यानन्तप्रभावा भगवति सहसोज्जृम्भितैकान्तभावा।
स्व ज्योतिर्भासमाना परमरसमयी तुर्यतुर्यातिधुर्या
माधुर्यौघैर्मनो मे रमयति परमानन्द वृन्दावनीया।।६२।।

हाय ! इस श्रीवृन्दावन की परमानन्दमय भूमि–अपने–अपने ईश्वरों सहित अखिल परम महा–विज्ञगणों को भी दुर्बोध्य है, आश्चर्यमय तत्व–स्वरूपा तथा अनन्त प्रभावयुक्ता है, सहसा ही भगवान् को एकान्तभाव दायिका है निज ज्योति से ही स्व–प्रकाश है, परम रसमयी, एवं तुरीय से भी तुरीया है, अति श्रेष्ठा है, माधुर्यराशि से यह मेरे मन को अति आनन्द प्रदान करती है।।६२।।

त्यक्ता सत्ख्यात्यपेक्षा न गणितमयशो नादृता धर्मनिष्ठा
त्यक्तं विद्याविनोदाद्यखिलमति तपोज्ञानयोगाद्युपैक्षि।
गुर्वादीनां वचो न श्रुतमति बहुना किं न देहोऽथवैक्षि
श्रीवृन्दारण्य ! गत्वा तव शरणमयं न ह्युपेक्ष्यः कदापि।।६३।।

जिसने सत्ख्याति की अपेक्षा त्याग दी है, अख्याति की कोई बात नहीं करता, धर्मनिष्ठा का आदर नहीं करता, विद्याविनोदादि जिसने सब त्याग दिये हैं, तप, ज्ञान, योगादि की भी जिसने उपेक्षा कर दी है, गुरु–आदि के वाक्यों को भी नहीं सुनता और अधिक क्या ? जिसको अपने देह की ओर भी ध्यान नहीं है, हे वृन्दावन ! ऐसा पुरुष जब तुम्हारी शरण ग्रहण कर ले तो आप कभी उसकी उपेक्षा नहीं करते।।६३।।

राधा तदेकालंकारौ प्रीत्येकरसविग्रहौ।
किं भक्तिरंकान् पंकाब्धीन् स्ववने नोऽपि पश्यतः।।६४।।

श्रीराधा तथा उनके मुख्य भूषण (श्रीश्यामसुन्दर) दोनों एकमात्र प्रीति–रस के ही विग्रह हैं, भक्तिहीन कंगाल एवं कीच के सागर समान मुझ पतित को क्या अपना श्रीवृन्दावन प्रदान करेंगे।।६४।।

राधापदारविन्द श्रीमञ्जुमञ्जीरशिञ्जिता।
महाश्चर्यातिमाधुर्य्यौ ध्येया वृन्दावनेऽस्तु नः।।६५।।

श्रीवृन्दावन में महाश्चर्यमय अति मधुर श्रीराधा–चरण कमल की मनोहर मञ्जीर ध्वनि हमारी ध्येय (ध्यान करने योग्य) हो।।६५।।

वीणा–मृदंग–तालादियुक्तैर्हासविहासिभिः।
उल्लासिभिः प्रियसखीमण्डलैः परिमण्डिता।।६६।।

वीणा, मृदंग, तालादियुक्त हास्य–विहासमयी उल्लासिनी प्रिय सखी–मण्डली से श्री राधाजी घिरी हुई हैं।।६६।।

रत्नभृंगार–ताम्बूलसम्पुट–व्यजनादिभिः।
गृहीत्वा किंकरीवृन्दैरनुयाता मनोहरैः।।६७।।

रत्न भृंगार, ताम्बूलसम्पुट, वीजना आदि हाथ में धारणकारिणी दासियां जिनके पीछे गमन कर रही हैं।।६७।।

समस्त चिदचिद्द्वैत प्रपञ्च प्रोच्छलच्छबि।
अनन्तमाधुरीपूर्णा स्वर्णवल्लीनिभाकृतिः।।६८।।

समस्त चिदचिद् द्वैत प्रपञ्च की वस्तुओं में कांति विस्तारिणी अनन्त माधुर्यपूर्णा, एवं स्वर्ण–लता की भांति आकृति वाली–।।६८।।

शिरीषपुष्पमृदुभिरंगैः सुस्निग्ध सुन्दरैः।
कैशोरमाधुरीकांतिभंगिमादि–चमत्कृतैः।।६६।।
उद्वेलमधुरानंगरसैकाम्बुधिवाहिभिः।
वृन्दावन–स्थिर–चर–सर्वसत्त्व विमूर्च्छनी।।७०।।

शिरीष के पुष्प की भांति कोमल, रंगीन, सुस्निग्ध तथा सुन्दर कैशोर की माधुर्य कांति तथा भंगिमादि के चमत्कार समूह से सम्वलित उत्तंग मधुर काम रसेकात्मक सागर प्रवाहित कर श्रीवृन्दावन के स्थावर–जंगमात्मक समस्त प्राणियों को मूर्छित करने वाली–।।७०।।

अनेकदिव्यालंकार–दिव्यमाल्यानुलेपना।
दिव्यकौशेयकूर्पासगुच्छांचल–निचोलिनी।।७१।।

श्रीराधाजी अनेक दिव्य अलंकार धारण कर रही हैं, दिव्य माला एवं चन्दन से चर्च्चिता हैं, दिव्य रेशमी कञ्चुक–स्तवकवत् कुञ्चित् अञ्चल युक्त निचोलिनी धारण कर रही हैं–।।७१।।

श्यामां सन्यस्त–रोमांचद्वामश्रीभुजवल्लरिः।
दक्षिणश्रीकराब्जेन लीलाकमल घूर्णनी।।७२।।

श्रीश्यामसुन्दर के स्कन्ध पर रोमांचित वाम भुजलता रख रही हैं, दक्षिण श्रीकरकमल में लीला–कमल घुमा रही हैं।।७२।।

किंकरीभिर्मुहुः पथि पथि वीज्यमाना निजांचलैः।
भोज्यमाना च ताम्बूलं भोजयन्ती स्वयं प्रियम्।।७३।।

मार्ग में दासीगण अपने–अपने अंचल से उनको वीजना कर रही हैं, एवं ताम्बूल अर्पण कर रही हैं और वह स्वयं भी अपने हाथों से प्रियतम को भोजन करा रही हैं।।७३।।

पाय्यमाना क्वचित् प्रेम्णा रत्नभृंगारसंस्थितम्।
अमृतं शीतलं स्वादु कर्पूरादि–सुवासितम्।।७४।।

कोई-कोई दासी प्रेमपूर्वक रत्नश्रृंगार में रखे हुए कर्पूरादि सुगंधित सुस्वाद अमृतमय शीतल जल को पान करा रही है।।७४।।

दृष्ट्वा दृष्ट्वाद्भुतं रूपम् श्रुत्वा श्रुत्वाद्भुतं रवम्।
किमेतदिति पृच्छन्ती विस्मयान्निजनागरम्।।७५।।

अद्भुत रूप देख-देख कर तथा अद्भुतशब्दों को सुन-सुन कर विस्मित होकर वह अपने नागर से पूछती हैं यह क्या है?।।७५।।

महामाधुरिमाश्चर्य-पादविन्यासलीलया।
रणन्नूपुरयोत्सर्पि-नखचन्द्रच्छटौघया।।७६।।
महामाधुर्यसौभाग्यघने वृन्दावने वने।
चरन्ती चारुपरमकौतुकाक्रान्तमानसा।।७७।।

उनके चरणों में शब्दायमान नूपुर शोभित हैं एवं नखचन्द्र इधर-उधर कांति का प्रसार कर रहे हैं। महा माधुर्यमय एवं आश्चर्यमय पाद-विन्यास लीला द्वारा महा माधुर्यघन श्रीवृन्दावन में परम चारु कौतुकक्रांत-चित्त होकर वे विचरण कर रही हैं।।७६-७७।।

तत्र तत्र महाश्चर्ये महारम्यतमस्थले।
उपविष्य प्रगायन्ती गापयन्ति प्रियं सखी।।७८।।

जहां-तहां महाश्चर्यमय महारमणीय स्थलों पर बैठकर सखी वृन्द गान करती हैं और कभी प्रियतमा श्रीराधाजी से गान कराती हैं।।७८।।

वृन्दारण्यानन्यगतेरन्तरेव दिवानिशम्।
इत्थम्भूतानन्तलीला सेव्या सास्तु ममेश्वरी।।७९।।

श्रीवृन्दावन में अनन्य शरण ग्रहण करने वाले के मन-मन्दिर में इस प्रकार की अनन्त लीला परायण मेरी प्राणेश्वरी श्रीराधा दिनरात सेवित हों।।७९।।

यो वृन्दावनमाधुरीं सकृदपि स्वांते समास्वादयेद्
राधा-माधव-शुद्धमन्मथरसोल्लासैश्चमत्कारिणीम्।
शास्त्रीयानपि लौकिकानपि जहच्चेष्टा-कलापानसा
नानाप्रेमविकार - मोहनतनूरुन्मत्तवद्दृष्यते।।८०।।

श्रीराधामाधव की अनंगरसोल्लासमयी चमत्कारी श्रीवृन्दावन माधुरी जिसने एक बार अपने अन्तःकरण स्वरूप में अवस्थित होकर सम्यक् प्रकार आस्वादन

की है, वह शास्त्रीय एवं लौकिक समस्त धर्म चेष्टाओं को त्याग कर, नाना प्रेम–विकारों के सहित उन्मत्तवत् दीखता है।।८०।।

योः राधामुरलीधराङ्घ्रिकमल–प्रेमैकमात्रीयति
मात्रीयत्यपरांगनां स्थिरचरं सत्त्वं सुपुत्रीयति।
गोत्रीयत्यतितर्ज्जनादिषु महामित्रीयति द्वेषिषु
श्रीवृन्दावनमावसेत् स खलु यः स्वांगेऽन्यगात्रीयति।।८१।।

श्रीराधामुरलीधर के चरण कमलों का प्रेम ही एकमात्र जिसका जीवन है, जो पर–स्त्री को मातृवत् तथा स्थावर जंगम जीवों को सुपुत्रवत् जानता है, अतिशय तर्जनादि करने वालों को स्वज्ञातिवत् एवं विद्वेषीगणों को महामित्रवत् मानता है और अपने शरीर के साथ पराये शरीरवत् आचरण करता है, वही श्रीवृन्दावन में वास करने के योग्य है।।८१।।

कृष्णप्रेम–सुधाम्बुधावतितरां मग्नः सदा राधिका
पदाम्भोरुहदास्यलास्यपदवीं स्वान्तेन सन्तानयन्।
वैराग्यैकरसेन विध्वमधुरां कांचिद्दशामुद्वहन्
श्रीवृन्दाविपिने कदा नु सततोदश्रुर्निवत्स्याम्यहम्।।८२।।

हाय ! श्रीकृष्ण–प्रेमामृत–समुद्र में अति मग्न होकर, श्रीराधा जी के चरण–कमलों को दास्य–लास्यता की आशा को स्व–स्वरूप में सम्यक् बढ़ाते हुए, एकमात्र वैराग्यरस द्वारा ही किसी एक विश्व–मधुर दशा को प्राप्त होकर एवं निरन्तर अश्रुधारा प्रवाह करता हुआ कब मैं श्रीवृन्दावन में वास करूंगा ?

कालिन्दी–पुलिने कदम्बविटपिच्छाया मणीमण्डपे
श्रीराधामुरलीधरौ प्रियसखीवृन्दैर्वहन्नर्मभिः।
स्रक्ताम्बूलविलेपनादिभिरहो दिव्यैः सदा सेवितौ
रूपौदार्य्यवयोविलासमधुरौ ध्यायामि वृन्दावने।।८३।।

श्रीवृन्दावन के यमुनापुलिन में कदम्बवृक्ष के नीचे मणिमण्डल में प्रिय सखीवृन्द नर्म्म–परिहास के द्वारा एवं दिव्य माला, ताम्बूल, विलेपनादि के द्वारा नित्य ही रूपौदार्य–वयस से एवं विलास से मधुर विग्रह श्रीराधामुरलीधर की सेवा कर रही हैं, मैं उसी का ध्यान करता हूं।।८३।।

कालिन्द्यानन्दसान्द्रामृतसुरससरित्कूलकल्पद्रुमूल–
प्रोन्मीलद्रत्नवल्लीमय–मधुरमहामण्डपे मण्डितांगौ।
आसीनौ चित्रतूले स्मरमधुर वयोरूपलावण्यलीला
वैदग्धीपूरमुग्धीकृत–सकलसखीवृन्द–वृन्दावनौ तौ।।८४।।

आनन्दघन–अमृत–सुरस–प्रवाहिनी कालिन्दी के किनारे कल्पवृक्ष के नीचे विराजित रत्नलतामय मधुर महा मण्डप में भूषित कलेवर श्रीयुगलकिशोर विचित्र तूल–गद्दा पर बैठे हैं, उनकी मधुर वयस, रूपलावण्यता, लीला वैदग्धी आदि के प्रवाह में समस्त सखीवृन्द और श्रीवृन्दावन मुग्ध हो रहे हैं, इस प्रकार श्रीयुगलकिशोर का स्मरण कर।।८४।।

चिज्ज्योतिश्चन्द्रिकात्म–स्फुरदमृतमयोत्फुल्लवल्लीद्रुवृन्दं।
वृन्दारण्यं विचित्रैः शुकपिकशिखिभिर्गीतनृत्यानुयातम्।।
माध्वीकास्वादमत्त–भ्रमदलिपटलीझङ्कृतं मंजु कुञ्जे।
व्यंजन्माधुर्य्यपुंजं स्मर विमलसरोवापिकाद्यैः सुहृद्यम्।।८५।।

चित्–ज्योति की ज्योत्स्ना से पूर्ण अमृतमय प्रफुल्लित लता वृक्षवृन्द शोभित हो रहे हैं, जो विचित्र शुक, कोकिला व मयूरगणों के नृत्य–गानादि से मुखरित हो रहे हैं, मनोहर कुञ्जों में मधुर–आस्वादन कर उन्मत्त भ्रमर–समूह गुञ्जार कर रहे हैं, विमल सरोवर–तड़ागादिकों में माधुर्य समूह प्रवाहित हो रहा है इस प्रकार सुन्दर श्रीवृन्दावन का स्मरण कर।।८५।।

स्वानन्दसान्द्रचिज्ज्योतिर्घनं वृन्दावनं वनम्।
सर्वञ्चात्र तथा ध्यायन् सुधीरोऽधिवसेत् सुखम्।।८६।।

यह श्रीवृन्दावन स्वानन्दघन–चिज्ज्योतिर्मय है एवं यहां समस्त वस्तुएं भी इसी प्रकार हैं। इस भाव से चिन्तन करते हुए सुधीर पुरुष सुख पूर्वक इस श्रीवृन्दावन में वास करते हैं।।८६।।

कामादीनां परवशो यशोऽर्थी त्यक्त–सत्पथः।
कथं वृन्दावने सिद्धिं न यायाद्यदि तत्कृपा ?।। ८७।।

कामादि के वशीभूत, यश चाहने वाला एवं सन्मार्ग को त्यागने वाला होकर भी यदि कोई वृन्दावन में श्रीवृन्दावन की कृपा प्राप्त कर ले, तो कौन सी सिद्धि है जो उसे प्राप्त नहीं हो सकती।।८७।।

अमर्यादकृपासिन्धोः पूर्णेन्दोरपि शीतलात्।
वृन्दारण्यादनन्याद्यभावं भावयसे न किम् ? ।।८८।।

असीम कृपा–सिंधु एवं पूर्णचन्द्र से भी सुशीतल इस श्रीवृन्दावन से एकात्म (वृन्दावनमय) श्रेष्ठ भाव की क्यों नहीं भावना करता।।८८।।

विशुद्धसत्त्वपरमे श्रीमद्वृन्दावन त्वयि।
कृतानन्तापराधस्य त्वमेव शरणं मम।।८९।।

हे श्रीमद्वृन्दावन ! परम विशुद्ध सत्वमय आप में यदि मैं अनन्त अपराध भी करूं तो भी आप ही एकमात्र मेरी शरण हैं।।८९।।

वृन्दारण्य ! तवास्मीति वदन्तमपि मां मृषा।
महापतितमप्यात्मकारुण्यादात्मसात् कुरु।।९०।।

हे श्रीवृन्दावन ! "मैं तुम्हारा हूं"—ऐसे मिथ्या वचन बोलने वाले महा पतित मुझको आप अपनी करुणा से ही अपना कर लीजिए।।९०।।

नित्योच्छृंखलकारुण्ये वृन्दारण्येऽधमोऽप्यहम्।
किमविघ्नं निवत्स्यामि वेत्स्यामि च रसं हरे।।९१।।

नित्य असीम कृपामय श्रीवृन्दावन में अधम होकर भी मैं क्या निर्विघ्नपूर्वक वास कर सकूंगा एवं क्या श्रीहरि के रस–विषय को जान सकूंगा ?।।९१।।

दिक्चक्रं प्रसरत्परागपटलैः सद्गंधचूर्णैरिवा
पूर्णं कुर्वदपूर्वसीधुजलधि – स्यन्दैर्महातुन्दिलम्।
आच्छन्नं चितिचन्द्रिका–लहरीभिः स्वानन्दकोलाहलै–
राक्रान्तं मदखेलिनः खगकुलस्याभाति वृन्दावनम्।।९२।।

दिशा–विदिशाओं में सुगंधित चूर्ण की भांति पराग विस्तृत हो रहा है, अपूर्व अमृत–समुद्र के बिन्दु–समूह द्वारा विशाल भाग जिसका पूरित हो रहा है चिज्ज्योत्सना के द्वारा जो आच्छादित है एवं मदमत्त क्रीड़ा–परायण पक्षियों के स्वानन्द कोलाहल से मुखरित इस श्रीवृन्दावन की महान शोभा हो रही है।।९२।।

नीरन्ध्रं तृणगुल्मपादप–लताद्यानन्दसच्चिद्घनैः
श्रीराधारतिकेलिकुंजनिकरैरानन्दपुञ्जैर्वृतम्।

दिव्यानेकसरःसरिद्गिरिवरं दिव्यैर्विहंगैर्मृगै–
श्चित्रं मंजुलगुञ्जभृंगपटलं पश्यामि वृन्दावनम्।।६३।।

सच्चिदानन्दघन–तृणगुल्म–वृक्षलतादि द्वारा आवृत्त, आनन्द पुञ्जमय श्रीराधा–रति केलि–कुञ्जों से परिवृत्त, दिव्य, दिव्य सरोवर, नदी, गिरि आदि से शोभित दिव्य पक्षी–पशुओं से संचित्रित, एवं मनोहर गुंजनकारी भँवरों से विलसित श्रीवृन्दावन के मैं दर्शन करता हूं।।६३।।

नानारत्नमयस्थलीभिरमितामोदाभिरत्यद्भुतं
फुल्लैर्वल्लिमतल्लिका तरुवरैर्वीतं रसोल्लासिभिः।
अत्यानन्दमदाकुलैःखगकुलैरावद्धकोलाहलं
कालिन्द्या रसधारया वलयितं ध्यायामि वृन्दावनम्।।६४।।

अतिशय आनन्ददायक अनेक रत्नस्थली से अति अद्भुत रसोल्लासी प्रफुल्लित लता–श्रेष्ठ एवं श्रेष्ठ वृक्षों से सुशोभित, निरतिशय कालिन्दी के रस–प्रवाह से वेष्ठित श्रीवृन्दावन का मैं ध्यान करता हूं।।६४।।

विना स्वात्मारामेश्वर–हरिममुग्धस्त्रिभुवने
युवत्या भावैः को वत सुरवरो वा मुनिवरः।
स्थितस्तस्मात्तस्याश्चकितचकितो दूरतरतः
सदा वृन्दारण्ये निवस रसनोपस्थ–विजयी।।६५।।

स्वात्मारामेश्वर श्रीहरि के बिना त्रिभुवन में ऐसा और कौन सुर श्रेष्ठ व मुनि श्रेष्ठ है, जो स्त्री के भावों में मुग्ध नहीं होता है इसलिए इस स्त्री से अत्यन्त सावधानी पूर्वक दूर रह कर जिह्वा तथा उपस्थ को जीत कर श्रीवृन्दावन में वास कर।।६५।।

महापापाचारे निरवधि महादुर्म्मतिशते
महाकामक्रोधाद्यतिपरवशे दम्भवपुषि।
न सत्संसर्गैकप्रणयिनि महद्धर्मविमुखे
मयि श्रीमद्वृन्दावन! कुरु कृपां नान्यशरणे।।६६।।

महा पापाचार, नित्य महा दुर्मति–परायण, महा काम–क्रोध आदि में बंधा हुआ, दम्भ–प्रकृति खोटे संग करने वाला, एवं महान धर्म के विमुख होते हुए भी हे वृन्दावन! मैं आपकी अनन्य शरण हूं, आप मुझ पर कृपा कीजिये।।६६।।

अत्यन्तोद्धत धावदिन्द्रियगणो यः सर्वदासत्पथे–
ष्वेकस्मिन्निमिषेऽपि न स्मृत–महानन्दाब्धिराधाप्रियः।
सद्धर्म्मैः सदुपासनैर्विरहितस्त्यक्तोऽखिलैः सद्‌गुणै–
र्हा हा सोऽहमनल्पमोह उपयाम्येकं तु वृन्दावनम्।।९७।।

हाय ! सदा सर्वदा असत्पथ–समूह की ओर ही उद्धत इन्द्रियां धावित हो रही हैं, एक निमेष के लिए भी महानन्द सागर श्रीराधापति का स्मरण नहीं करतीं, मैं सद्धर्म तथा सदुपाराना से रहित, अखिल सद्‌गुणों से रहित तथा महामुग्ध हो रहा हूं, किन्तु एकमात्र श्रीवृन्दावन की ही शरण ग्रहण करता हूं।।९७।।

वैराग्येण समुत्कटेन विषयस्पर्शं महादुर्विष–
ज्वालावत् कलयन्मनागपि न तैः संगेन रंगं दधत्।
पाणौ न्यस्य कपोलमश्रुसलिलैः संक्षालयन् राधिका
कृष्णापार–कृपावधारणधरोऽध्यासीय वृन्दावनम्।।९८।।

तीव्र वैराग्यव्रत अवलम्बन के विषय को स्पर्श करने को भी महा दुर्विष के समान जानकर, उसके साथ बिन्दुमात्र भी संबंध न रखकर कपोल पर हाथ रखकर आंसू बहाते हुए श्रीराधाकृष्ण की असीम कृपा अवधारण पूर्वक ही मैं किसी प्रकार श्रीवृन्दावन में वास कर सकूं यह मेरी प्रार्थना है।।९८।।

नैवालोकित लोकवेद पदविर्नापेक्षित स्वप्रिय–
द्वन्द्वैकांतरसाप्रविष्टहृदयाशेषातिधन्योत्तमः।
राधाकृष्ण रसान्मुहुः पुलकितोनित्याश्रुधाराधर
श्चित्रप्रेमविकारवान् वत कदा नन्दामि वृन्दावने।।९९।।

हाय ! लोक मर्यादा व वैदिकमत की ओर कभी भी ध्यान न देकर, अपने प्रियतम युगलकिशोर के एकान्तरस से रहित हृदय वाले व्यक्तियों की अपेक्षा छोड़कर अतीव धन्य भाग होकर एवं श्रीराधाकृष्ण रस में बार–बार पुलकित, नित्य अश्रुधारा प्रवाहित करता हुआ, तथा विचित्र प्रेम विकाशशील होकर मैं कब श्रीवृन्दावन में आनन्द प्राप्त करूंगा।।९९।।

श्रीप्रबोधानन्द सरस्वति–विरचित श्रीवृन्दावन–महिमामृतम् का
अष्टम् शतक समाप्त हुआ।।८।।

नवमं शतकम्

हसन्नृत्यन् गायन्नतिपुलकितोऽत्यश्रुनयनो
मुहुः स्तम्भ स्वेदाद्यतिमधुरभावैश्च वलितः।
कदा वृन्दारण्यं निजदयित–राधा–मधुपती
मुदा ध्यायं ध्यायं चिरमधिवसाम्युन्मदरसः।।१।।

हास्य, नृत्य तथा गान करते–करते, अतिशय पुलकित तथा अश्रुपूर्ण नेत्रों से बार–बार स्तम्भ, स्वेद आदि अति मधुर भावयुक्त होकर, अपने प्रियतम श्रीराधापति का ध्यान करते हुए रसोन्मत्त होकर मैं कब दीर्घकाल तक श्रीवृन्दावन में वास करूंगा।।१।।

श्रीगान्धर्वा चरणकमलद्वन्द्वलावण्यलीला–
माधुर्य्यैकाम्बुधिमतिमदं गाहतां कर्हि चेतः।
वृन्दारण्ये तृणमिव परित्यज्य सर्वामखर्वां
निर्वाणादि–श्रियमपि कदा वासनिर्वाहकः स्याम्।।२।।

श्रीराधा–चरण–कमलों के लावण्यलीला–माधुर्य सागर में मेरा चित्त कब अतिशय मत्त होकर अवगाहन करेगा ? समस्त महत् वस्तुओं को यहां तक कि मोक्षादि सम्पत्ति को भी तृणवत् परित्याग करके श्रीवृन्दावन में कब वास कर जीवन अतिवाहित कर सकूंगा।।२।।

श्रीमञ्जीर–ध्वनि मधुरया श्रीपदाम्भोजलक्ष्म्या
माधुर्य्यौघैरुपरि च तले रम्यया गौरशोणैः।
स्फूर्जत्पादांगदमणिरुचा दिव्यपदांगुलीयै–
र्भाजन्त्या ह्रन्निजवनचरद्राधया वै ह्रतं मे।।३।।

सुन्दर मधुर ध्वनि युक्त मंजीर–शोभित श्रीपाद–पद्म की शोभा से, ऊपरी–भाग में गौरकांति तथा तल–देश के रक्तवर्ण माधुर्यप्रवाह से स्फूर्तिशील पादांगद की मणिकांति से तथा दिव्य पादांगुली–समूह से रमणीय श्रीराधा ने निज वन में विचरण करते–करते मेरे मन को चुरा लिया है।।३।।

राधापादाम्बुजरस–महामाधुरीमत्त–चेतो
भृंगो निर्भंगुरपरिमिलल्लोक–वेद प्रसंगः।
कश्चिद्भावमधुरमधुरं भावयन् विश्वचेतो–
दृष्ट्याकृष्ट्याकृतिरपि भवान्यत्र वृन्दावने किम्?।।४।।

श्रीराधाजी के चरण–कमलों के रस के महामाधुर्य में भ्रमण को उन्मत्त करके, लोक–प्रसंग तथा वेद–प्रसंग को भी निरतिशय तोड़ कर, किसी मधुरातिमधुर भाव की निरन्तर चित्त में चिन्ता करते–करते एवं विश्व के चित्त एवं नैनों को आकर्षण करने वाली आकृति–विशिष्ट धारण कर क्या मैं श्रीवृन्दावन में रह सकूंगा।।४।।

तत् कैशोरं ताः सुगौरांगभंगी–।
स्तत् सौन्दर्य्यं ताः सुधाशीतसूक्तीः।।
तांस्तान् भावानश्रुरोमोद्गमादीन्।
श्रीराधायाः संस्मरन् को न मुह्येत्?।।५।।

श्रीराधाजी का वह कैशोर, वह सुगौर–अंगों की विविध भंगी, वह सौंदर्य, वह अमृतवत् शीतल सुन्दर–बोलिन तथा उन सकल अश्रु–रोमांच आदि भावों को स्मरण कर कौन नहीं मुग्ध होगा।।५।।

व्याकोश–कनकपंकज–कोशमिवाऽनन्तचन्द्रिकावर्षि।
स्मर राधामुखमिन्दीवररुचि–हरिलोभ्य–सान्द्रमकरन्दम्।।६।।

नीलकमल–वर्ण श्रीहरि जिसके सान्द्र मधुररस में लोभायमान रहते हैं, अनन्त प्रकाश्यमान् प्रफुल्लित स्वर्णपद्म के अन्तरीयकोशवत् श्रीराधा के मुखचन्द्र का स्मरण कर।।६।।

चिदचिद्द्वैत–प्रोञ्जन–कनकोज्ज्वलसान्द्रचन्द्रिकावर्षि।
श्रीराधामुखचन्द्रं कृष्णचकोरैकजीवनं स्मरत।।७।।

चैतन्य और जड़ के भेद को दूर करने वाले स्वर्णोज्ज्वल चन्द्रिका प्रसारित करने वाले, श्रीकृष्ण–चकोर के एकमात्र जीवन स्वरूप श्रीराधिका मुखचन्द्र का स्मरण कर।।७।।

परिपूर्णमधुरमधुर–प्रेमसुधासार–सुन्दराकृतये।
नित्यकैशोर्यै मम नम एतद्वृन्दावनेश्वर्यै।।८।।

परिपूर्ण मधुरतम प्रेमामृत की सार सुन्दर आकृति विशिष्ट श्रीवृन्दावनेश्वरी नित्यकिशोरी को मैं नमस्कार करता हूं।।८।।

स्वाद्यप्रेममहाररससार–सुगौरांगचन्द्रिका जलधीन्।
राधायाः स्मर परमोच्छलितांश्चिदचिद्द्वयं समाच्छाद्य।।६।।

चित्–जड़ के भेद को आच्छादन करने वाले परम उच्छलित श्रीराधा के आस्वाद्य महा प्रेमरस–सार सुगौर चन्द्रिका–समुद्र को स्मरण कर।।६।।

अप्राकृत–नवतरुणी–रूपतृणीकारि–मोहिनीवृन्दैः।
पथि पथि मूर्ध्निधृताङ्घ्रिर्वनभुवि राधाममेश्वरी स्फुरति।।१०।।

अप्राकृतिक नवीन युवतियों के रूप को तृणवत् तुच्छ करने वाली, एवं जिसके चरण वनभूमि में विचरण करते समय मोहिनी सखियों द्वारा शीश पर धारण किए जाते हैं, वह मेरी स्वामिनी श्रीराधा प्रकाशित हो रही हैं।।१०।।

त्रैलोक्य मोहिनीभिर्नवतरुणीभिर्महाविदग्धाभिः।
आराध्यां स्मर वृन्दाविपिने सर्वोज्ज्वलां राधाम्।।११।।

त्रिभुवन को मोहित करने वाली महा विदग्धा एवं नवतरुणीवृन्दों की आराध्य सर्वोज्ज्वल श्रीराधाजी का श्रीवृन्दावन में स्मरण कर।।११।।

उन्मदमधुरप्रेमानन्दमरन्दैकसिन्धु निःस्यन्दि।
राधापदारविन्दं विश्रमयन्नौमि किंकरीवृन्दम्।।१२।।

उन्मद, मधुर, एकमात्र प्रेमानन्द–मधुर प्रवाहित करने वाले श्रीराधा के चरणकमलों में विश्राम पाने वाली दासीगणों को मैं नमस्कार करता हूं।।१२।।

अपि सर्वधर्महीनः सर्वकुकर्मावलेश्च निर्माता।
राधेति सिद्धमन्त्रं द्व्यक्षरमुच्चार्य किं न सिध्येयम् ?।।१३।।

सर्व धर्महीन होकर भी, सब कुकर्म करते हुए भी, "राधा" इन दो अक्षरों का सिद्ध–मन्त्र उच्चारण करके क्या तू सिद्धि को प्राप्त नहीं कर सकता ?

अतिसाहसमाचरितं विरुध्य गुरुशास्त्रविद्वद्वर्यैः।
त्वयि वृन्दावन ! वासायेन्द्रियवशमप्यतो न हि त्यज माम्।।१४।।

हे श्रीवृन्दावन ! आप में वास करने के लिए इन्द्रियों के पराधीन होकर मैंने श्रेष्ठ गुरु तथा शास्त्र–वेत्ताओं से विमुख आचरण करके अत्यन्त साहस का परिचय दिया है, अतः मुझे त्याग मत देना।।१४।।

त्वयि कृत–कुकर्मकोटेरपि चाण्डालान्महाधमस्यास्य।
ईशोऽपि नैव शरणं हा वृन्दारण्य ! किं विधास्यसि मे ?।।१५।।

हे श्रीवृन्दावन ! चांडाल से भी महा अधम मैंने आपके प्रति कितने कोटि कुकर्मों का आचरण नहीं किया है ? ईश्वर की भी शरण मैं ग्रहण नहीं करता, आप मेरा कुछ विधान करेंगे क्या ?।।१५।।

अतिदुर्लभपद आशा वासाय सा हि तु दुर्घटा त्वयि मे।
कृतसर्वेन्द्रियशत्रोर्हा वृन्दारण्य ! किं नु मे भविता।।१६।।

हे श्रीवृन्दावन ! अति दुर्लभ पद (धाम) में वास करने की मेरी आशा है, किन्तु सब इन्द्रियों के शत्रु होने से वह भी मेरे लिए अति कठिन हो रहा है, हाय ! मेरी क्या गति होगी।।१६।।

अस्तु मे नरककोटिः सिध्यतु नेष्टं न चेश्वरो दयताम्।
श्रीराधाचरणाम्बुज मधुरिमलोभस्तु नो भवेच्छिथिलः।।१७।।

मुझे कोटि नरक भोगने पड़ें, मनोरथों की प्राप्ति न हो, अथवा ईश्वर मुझ पर दया न करें, किन्तु श्रीराधा–चरण–कमलों में मेरी लालसा कभी कम न हो।।१७।।

मञ्जीरमञ्जुतरशिञ्जितरञ्जिताङ्घ्रि–
शोभा हरेरपि मनो–दृगपारलोभा।
वृन्दावन–भ्रमणभंगि–मनोहरांग्याः
प्रेमातुरे स्फुरतु मे हृदि राधिकायाः।।१८।।

श्रीवृन्दावन में भ्रमण करते हुए मनोहर अंगी श्रीराधाजी के नूपुरों की मनोहर–ध्वनियुक्त चरणों की शोभा श्रीहरि के मन एवं नेत्रों को भी लुभानेवाली है, वही मेरे प्रेमातुर हृदय में स्फुरित हो।।१८।।

कैशोरकांति–मदभंगि–तरंगितोरुमाधुर्यसिन्धुबुडिता हरिभावमूर्त्तिः।
भ्रूभंगिमोन्नटनरंगदनंगकोटिः श्रीराधिका रसमयी हृदि मे चकास्तु।।१९।।

कैशोर अवस्था के कांति–मद–भंगी–रूप–तरंगों से परिपूर्ण माधुर्य–समुद्र में निमग्ना जो हरि–भाव मूर्ति है, एवं जिसकी भ्रू भंगिमा के इशारे से ही अनन्त कोटि कामदेव नाचने लगते हैं, वही रसमयी श्रीराधिका मेरे हृदय में प्रकाशित हों।।१९।।

अंगेङ्गे यः सदात्युच्छलति वलति यो दिव्यकैशोररूपे
यो दृग्भंगी–सलज्जस्मित–मधुरतर–श्रीमुखेन्दुच्छटासु।
यो वाऽश्चर्योक्ति गत्याद्यखिलरसधुराचेष्टिते राधिकाया
स्तत्तन्माधुर्यसिन्धौ बुड़तु मम मनो भावमाधुर्यधुर्यम्।।२०।।

सदा सर्वदा जिसका प्रत्येग अंग उच्छलित हो रहा है, दिव्यकैशोर–रूप से जो नित्य वृद्धिशील हो रहा है, नैन–भंगिमायुक्त लजीली हाँसी से मधुतर शोभामय मुखचन्द्र की कांति से जो प्रकाशित हो रहा है, एवं आश्चर्यमय बोलनि–चलन आदि की अखिल रसमयी चेष्टाओं से स्फुरित हो रहा है, श्रीराधा के उस माधुर्य–समुद्र में मेरा भाव–माधुर्ययुक्त मन निमग्न हो।।२०।।

तत्कैशोरं महामोहन–मधुरदशाश्चर्यवत्तत्तदंगम्
साश्चर्यापांगभंगी स च मधुरह्रिया मोहनो मन्दहासः।
तत् सौंदर्यं स कांतिप्रसर उरुविधास्तेऽङ्गभंगोत्तरंगा
स्तास्ताः श्यामानुरागप्रथमविकृतयो भांतु मे राधिकायाः।।२१।।

श्रीराधाजी का वह कैशोर, महामोहन मधुर दशा के आश्चर्यमय वे अंग, वह आश्चर्यमय अपांगभंगी, वह मधुर लज्जायुक्त मोहन मन्द–हास्य, वह सौंदर्य, वह कांति–विस्तार, वह बहुविध अंगभंगी–तरंग–समूह एवं वह श्यामानुराग की प्रथम विकार–राशि मेरे हृदय में प्रतिभात हों।।२१।।

सौंदर्यानन्तपूरैः कनकमणिशिलाघृष्टकाश्मीरगौरै–
रंगैरंगैः किरन्ती मधुरतर–महाकांतिसिन्धूननन्तान्।
श्यामप्रेमातिमाध्वी–मदविकृति–विचित्राकृतिः सर्वचेष्टा–
माधुर्यैरद्भुतैर्विस्मितमनसि सदोदेतु राधेश्वरी मे।।२२।।

अनन्त सौंदर्य प्रवाहमय, कनक–मणि शिला द्वारा धृष्टकुंकम के समान गौर–कांतियुक्त मधुरतर अनन्त महाकांति समुद्र प्रति अंग से विकीरणकारिणी एवं श्यामसुन्दर के प्रेमातिशय्य रूप मधुमद के हेतु विचित्र आकृतिधारणी प्राणेश्वरी श्रीराधा की सर्वचेष्टाओं का अद्भुत माधुर्य सर्वदा मेरे मन को विस्मित किया करे।।२२।।

सर्वात्युत्तमधामतोऽत्युपरि भात्यानन्दसाम्राज्यभृद्–
वृन्दारण्यमिहैव भाति सकलाश्चर्यं किशोरद्वयम्।

तत्प्राणात्ममहासुभावललिताद्यालीनिदेशे स्थितो
योऽन्तः स्वेष्टतनुः स्फुरन् रसमयं चेष्टेत तस्मै नमः।।२३।।

समस्त अत्युत्तम धामों के ऊपर आनन्द साम्राज्ययुक्त श्रीवृन्दावन शोभित हो रहा है, इसी स्थान पर ही सर्वाश्चर्यमय श्रीयुगलकिशोर विराजमान है, उन श्रीयुगलकिशोर को प्राण स्वरूप मानने वाली जो श्रेष्ठभावयुक्ता श्रीललितादि सखियां हैं। उनकी आज्ञानुसार चलते हुए जो अन्तर–स्वीय–अभीष्ट स्वरूप देह में स्फूर्तियुक्त होकर रसमय चेष्टावान् हो सकता है, उसको नमस्कार करता हूं।।२३।।

मधुर–रणन्मणिनूपुर–राधापादारविन्द–सौन्दर्यम्।
वृन्दावनभुवि सन्ततमनु चिन्तयतो मम क्षणा यान्तु।।२४।।

मधुर शब्दायमान मणि–नूपुरों से भूषित श्रीराधाजी के चरणकमलों के सौन्दर्य का निरन्तर चिन्तन करते करते इस श्रीवृन्दावन में मेरा समय व्यतीत हो।।२४।।

सुस्निग्धकांतिधारा–परिमल–सौंदर्यसौकुमार्याद्यैः।
तदमेयचरणकमलं राधायाः सुकलनूपुरं स्फुरतु।।२५।।

सुस्निग्ध कान्तिधारा, परिमल, सौन्दर्य एवं सौकुमार्य्य आदि गुणयुक्त श्रीराधाजी के उन निनादयुक्त–नूपुर–भूषित–अनुपम चरण–कमलों की मुझे स्फूर्त्ति हो।।२५।।

अरुणतलमुपरि गौरं मधुरैर्लसितैर्हरेर्मनश्चौरम्।
राधायास्त्वतिसुन्दर चरणसरोजं मनो जपतु।।२६।।

तलवों में अरुणता, ऊपर के भाग में गौरवर्ण एवं मधुर लास्य के द्वारा श्रीहरि के मन को चुराने वाले, श्रीराधाजी के सुन्दर चरण–कमलों को मेरा मन जपता रहे।।२६।।

पादांगुलीय–पादांगद–नूपुररत्नरोचिषां वीचीः।
राधापदाब्ज ईक्षे नखमणिचन्द्रोच्छलच्छटाच्छुरिताः।।२७।।

श्रीराधाजी के चरणकमलों की अंगुलियों के पादांगद तथा नूपुरों की रत्नमय किरणों से नख–मणिचन्द्र से उच्छलित कांति की उद्भासिता तरंगों को देखने की मैं इच्छा करता हूं।।२७।।

कृष्णेन्दिन्दिरलोभ्यं पुरुसौरभ्यं न हीन्दिरालभ्यम्।
सान्द्रानन्दमरन्दं पदारविन्दं स्मरामि राधायाः।।२८।।

श्रीकृष्ण–मधुकर को लुभानेवाले किन्तु लक्ष्मी को अलभ्य, ऐसे अत्यन्त सौरभ्ययुक्त तथा सान्द्रानन्दरसपूर्ण श्रीराधा के चरण कमलों को स्मरण करता हूं।।२८।।

अतिमृदुलांगुलिपल्लव विलसन्नखचन्द्रमण्डलं मधुरम्।
मणिमञ्जीरमनोहरचरणयुगं मे चकास्तु राधायाः।।२६।।

अत्यन्त कोमल अंगुली रूप पल्लवयुक्त, नखचन्द्रों से भूषित, मधुर, मणिनूपुरों से मनोहर श्रीराधाजी के चरणयुगल मेरे हृदय–मन्दिर में प्रकाशित हों।।२६।।

राधा–चरण–रणन्मणिनूपुरमूकीकृतां हरेर्मुरलीम्।
विफलित–तत्तत्फुत्कृतिमखिलसखीसार्थहासिनीं स्मरत।।३०।।

श्रीराधाजी के चरणकमलों के नूपुरों के शब्द से मुरली के मूक (शब्द रहित) हो जाने से जब श्रीहरि बार–बार फूँकने पर भी व्यर्थ–मनोरथ हो गये, तब समस्त सखी–मण्डली हंसने लगी–यह लीला तू स्मरण कर।।३०।।

स्पर्शयदाननलोचन हृदये जिघ्रन्मुहुर्मुहुः किमपि।
राधा–सुरभि–सुशीतल–पदकमलं धाम शोभते श्यामम्।।३१।।

श्रीराधाजी के सुगन्धित सुशीतल चरण–कमलों का अपने वदन, लोचन तथा हृदय को स्पर्श कराके बार–बार घ्राण करते हुए कोई अनिर्वचनीय श्याम–विग्रह विराजमान है।।३१।।

राधापदारविन्दो च्छलदतिमाधुर्य्यसिन्धुनिःस्यन्दैः।
मम हृदयं लयमयतां वृन्दारण्ये कदोन्मदप्रणयम्।।३२।।

श्रीराधाजी के चरण कमलों से उच्छलित माधुर्य सागर के बिन्दु–समुद्र द्वारा कब, मेरा प्रेमोन्मत्त हृदय श्रीवृन्दावन में लय होगा ?।।३२।।

वृन्दावनेऽतिमधुराद्भुतलीला रणित–मंजु–मञ्जीरम्।
प्रसरन्नखमणिभासं पदविन्यासं स्मरामि राधायाः।।३३।।

श्रीवृन्दावन में अति मधुर अद्भुत–लीलाओं में मनोरम नूपुर ध्वनियुक्त शोभित हो रहे हैं, नखमणियों की छटा से चारों दिशाओं को आलोकित

करनेवाली श्रीराधाजी के पदविन्यास का मैं ध्यान करता हूं।।३३।।

वृन्दाकाननकुञ्जवेश्मसु सदा खेलत् किशोरद्वयं
गौरश्यामलमुन्मदेन मदनेनात्यन्तलोलं भजे।
स्वीय–स्वीय–कला–विचित्रसुरतक्रीड़ा–प्रबन्धैर्मिथो
विस्मेरीकृत–मोहित–प्रहसित–प्रोत्साहितोन्मादितम्।।३४।।

श्रीवृन्दावन के कुञ्जों में निरन्तर क्रीड़ा–परायण गौरश्यामात्मक श्रीयुगलकिशोर का मैं भजन करता हूं, वे उन्मादिमदन द्वारा अति चंचल हो रहे हैं एवं अपनी–अपनी कला विचित्र सुरत क्रीड़ादि द्वारा एक दूसरे को विस्मयान्वित तथा मोहित कर रहे हैं, हंसा रहे हैं प्रोत्साहित और उन्मादित कर रहे हैं।।३४।।

श्यामेनानृजुना किमालि ! मम किं धत्से सदा तादृशं
चन्द्रावल्यतिफुल्लितेन मम किं तादृग् दधासि श्रुतौ।
विष्वक्चञ्चलचञ्चलेन मम किं तादृग् विना ध्यायसे
राधेत्यालिगिरा चकास्त्यतिरुषा नीलाम्बुजैस्तां घ्नती।।३५।।

श्रीराधाजी ने कहा–हे सखि ! कुटिल श्यामसुन्दर का क्या प्रयोजन है ? उसे तुम हृदय में क्यों धारण करती हो ? यदि चन्द्रावलि को अति आनन्द मिलता है तो हमें क्या ?" सखी ने कहा–"यह चन्द्रावली (स्वर्णहार एवं लाल मुक्ता) आप फिर कानों में क्यों धारण कर रही हो ?" श्रीराधाजी ने फिर कहा–"सर्व प्रकार अति चञ्चल उस (श्यामसुन्दर) से हमारा कोई प्रयोजन नहीं है", "तो ऐसे (चंचल) श्याम को छोड़कर किसी अन्य का ध्यान करो"–सखी के इस प्रकार प्रत्युत्तरों को सुनकर श्रीराधाजी ने अत्यन्त क्रोधित होकर उस सखी पर नीलपद्म से आघात किया–इस शोभा का ध्यान कर।।३५।।

ब्रह्माद्या अमराः सुरासुरनरा येऽन्ये च योगीश्वरा
नो मायां युवतीमयीं भगवतस्तर्तुं समुत्सेहिरे।
क्षोदीयांस्त्वहमेतयास्मि विहितश्चांडाल–चांडालकः
स्वीकारे तव साधुवृन्दतिलकैर्वन्द्येय वृन्दाटवि।।३६।।

ब्रह्मादि श्रेष्ठ देवतागण, इन्द्रादि साधारण देवता, असुर या मनुष्य अथवा योगीश्वर कोई भी भगवान् की युवती रूप–माया का पार नहीं पा सकता।

अति क्षुद्रतर मैं भी इसी माया के चाण्डालवत् क्रूर कर्मों का आचरण कर रहा हूं। हे श्रीवृन्दावन ! कब आप मुझे स्वीकार करें तो साधुगण भी मुझे वन्दना करने लगेंगे।।३६।।

विचित्रमणिमौक्तिकप्रकरगुच्छ–नाना–मणि–।
च्छटौघकनकस्फुरन्मुरलिकां निधायाधरे।।
सदा गृणति राधिकोज्ज्वल–यशांसि वृन्दावने।
मनो मम मनोहरे क्वचन धामनि श्यामले।।३७।।

विचित्र मणिमुक्ता समूह तथा नाना मणिकांतियुक्त सुवर्ण खचित मनोहर मुरली पर धारण कर श्रीवृन्दावन में जो निरन्तर श्रीराधाजी का उज्ज्वल यश गान करता है, वह मनोहर श्याम–विग्रह मेरे मन में अवस्थान करे।।३७।।

एकैकांगप्रोच्छलत्स्वर्णगौर–स्निग्धानन्तज्योतिराच्छादिताशा।
वृन्दारण्ये रूपशोभैकसीमा कापि श्यामात्मैकचोरी किशोरी।।३८।।

प्रत्येक अंग की उज्ज्वल–स्वर्ण–गौर स्निग्ध अतीव–ज्योति से दिशाओं को जो आच्छादन कर रही है, एवं श्रीवृन्दावन में रूप शोभा की शेष सीमा है वह किशोरी किसी श्याम–आत्मा की चोरी करके विराजमान है।।३८।।

हेमाम्भोज–द्वितय–मुकुलापूर्ण–हेमैकचन्द्रा।
मध्ये शून्या तत उरुतरानन्तकांतिं किरन्ती।।
वृन्दारण्ये कनकलतिका श्याममेकं तमालं।
दिव्यं काऽप्युन्मदरसमहो वेष्टते कुंजसीम्नि।।३६।।

हाय ! श्रीवृन्दावन के कुंजों में सुवर्णकमलरूप दो मुकुल (रत्न) और एक पूर्णचन्द्र (वदन) धारण करने वाली, तथा मध्यदेश में अति कृश होने से अतीव कांति प्रसारित करते हुए एक स्वर्णलतिका (श्रीराधाजी) किसी एक दिव्य–उन्मदरस श्याम तमाल (श्रीश्यामसुन्दर) को आलिंगन कर रही हैं।।३६।।

कर्णालङ्कृतकर्णिकारकुसुमं संचुम्ब्य बिम्बाधरं।
गायद्वेणुसुगन्धवेणुवलित–श्यामाभिरामाकृति।।
चूड़ालोल–शिखण्डमुज्ज्वलतड़ित्पीताम्बरं सुन्दरं।
श्रीराधारतिलम्पटं स्मर मनस्तद्धाम वृन्दावने।।४०।।

कर्णिकार–कुसुम के कुण्डल धारण करने वाले तथा जिनके बिम्बाधर (गोपीगणों द्वारा) सदा चुम्बनीय हैं, जो वेणु बजा रहे हैं, सुगंध पुष्प–वेणु द्वारा जिनका श्याम शरीर अत्यन्त मनोहर शोभा दे रहा है, जिनके चूड़ा में मोर–पुच्छ शोभित है, जो उज्ज्वल तड़ित्वर्ण का पीताम्बर धारण कर रहे हैं, हे मन ! उन्हीं श्रीराधा रतिलम्पट सुन्दर विग्रह (श्रीश्यामसुन्दर) का श्रीवृन्दावन में स्मरण कर।।४०।।

जीयादेकं दिशि विशि महागौरकान्तिप्रसारं।
सारं प्रेमामृतरस–महावारिधेरत्युदारम्।।
वृन्दारण्ये विविधकलया मोहिनीवृन्द सेव्यं।
धाम श्यामच्छबि नवयुवैकात्मचौरं किशोरम्।।४१।।

चारों ओर महागौरकांति विस्तारकारी, प्रेमामृत रस के महा समुद्र का अति महासार–स्वरूप, श्रीवृन्दावन में अनेक कलाओं द्वारा मोहिनी (सखी) वृन्दों से सेवित, श्यामवर्ण नव युवक की चित्तचोर श्रीकिशोरी जी की जय हो।।४१।।

नित्योन्मीलन्मधुरमधुराश्चर्यकैशोर लक्ष्म्या
नित्योद्वर्द्धि स्मररसमदादंग वैवश्यभाजोः।
श्रीगान्धर्वामुरलीधरयोः पश्य सौभाग्यधाम्नो–
वृन्दारण्ये मधुरमधुरा दृष्टिवागंगचेष्टाः।।४२।।

नित्य–प्रकाशमान मधुर–मधुर आश्चर्य–कैशोर की शोभा द्वारा नित्य वर्द्धनशील कामरस मद में वशीभूत अंगों युक्त श्री गांधर्वा एवं मुरलीधर सौभाग्यशील युगल विग्रह की श्रीवृन्दावन में अवलोकन, बोलिन तथा अंगचेष्टाओं का दर्शन कर।।४२।।

देहान्तःकरणेन्द्रियादि–सकलं तीब्रानुरागान्मिथः
संप्राप्तैक्यमिवावहन् नवनवात्याश्चर्यकैशोरकम्।
धामद्वन्द्वमतीव मोहनमहो तद्गौरनील मुदा
वृन्दारण्यकदम्बकुंजकुहरे कन्दर्पलोलं भजे।।४३।।

श्रीवृन्दावन के कदम्ब कुंजों के भीतर तीब्र अनुरागवश जिनके देह–अन्तःकरण इन्द्रियादिक समस्त सम्यक् प्रकार से एकता को प्राप्त हो रहे हैं, उन नव नवायमान अति आश्चर्यमय किशोर–अवस्थायुक्त अतीव–मोहन

गौरनील छवियुक्त एवं कामरस में चञ्चल युगलकिशोर का मैं आनन्दपूर्वक भजन करता हूं।।४३।।

पूर्णस्वर्ण–सुगौरकांतिजलधेस्तुंगैस्तरंगैर्दिशः–
सिंचन्ती नवयौवनोन्मदकला सौन्दर्य सम्मोहनी।
स्वाद्यप्रेम महारसात्मकतनुः सा श्यामसंजीवनी
विद्या काऽपि चकास्तु मे हृदि सदा वृन्दावनालङ्कृति।।४४।।

पूर्ण–स्वर्ण–सुगौर–कांति–समुद्र की अत्युच्च तरंगों से दिशाओं को सिंचनकारी, नवीन यौवन के कला–विलासादि के सौंदर्य से उन्मत्त एवं मोहित करने वाली, आस्वादनीय–महाप्रेम रसात्मक विग्रह, श्रीवृन्दावन की भूषण–स्वरूपिणी, श्याम–संजीवनी कोई अपूर्व–विद्या (श्रीराधाजी) नित्य ही मेरे हृदय में विराजमान रहें।।४४।।

जयति जयति राधा प्रेमसारैरगाधा
जयति जयति कृष्णस्तद्रसापारतृष्णः।
जयति जयति वृन्दं 'सत्सखीनां द्वयैक्यं
जयति जयति वृन्दाकाननं तत्स्वधाम।।४५।।

अगाध प्रेमसार–रूपिणी श्रीराधाजी की जय हो, जय हो, तदीयरस के लिए अपार तृषातुर श्रीकृष्ण की जय हो, जय हो, इन युगल के मिलाप की आकांक्षा करने वाली सखीवृन्दों की जय हो, जय हो, एवं उनके स्वीयधाम श्रीवृन्दावन की जय हो, जय हो।।४५।।

नित्याद्भुताद्भुतरसोत्सव नित्यसंग
नित्यार्त नित्यनव नित्यकिशोरयुग्मम्।
तद्गौरनीलमतिमोहनरूपशोभं
वृन्दावने किमपि लोभयते मनो मे।।४६।।

नित्य अद्भुततम रसोत्सवों से पूर्ण नित्य मिलन व नित्य विरह दशायुक्त, नित्य नवीन, नित्य किशोर एवं मोहिनी शोभायुक्त कोई अनिर्वचनीय गौर नीलात्मक युगलकिशोर श्रीवृन्दावन में मुझे लुभायमान कर रहे हैं।।४६।।

विचित्र–नवचातुरीकृत विचित्ररत्युत्सवं
विचित्र तनुकांतिभिः कृतविचित्रकुंजोदरम्।

विचित्र—नवकेशभृन्नवविचित्रकैशोरकं
विचित्रयति मे मनो द्वयमिदं विचित्रं महः।।४७।।

जो विचित्र नवचातुरी के द्वारा विचित्र रति—उत्सव मनाते हैं, एवं विचित्र देहकांति द्वारा कुंजों को विचित्रित करते हैं, वे विचित्र नवीन केशों को धारण करने वाले, विचित्र कैशोरयुक्त विचित्र युगलकिशोर मेरे मन को विचित्रित करें।।४७।।

चैतन्यामृतचन्द्रिकाम्बुधिमतिस्वच्छं प्रकृत्यन्तकै
द्वैतैः शून्यमनन्तपार—परमानन्दैकसारं स्मर।
ऐशं ज्योतिरिहानुभूय कलय श्रीकामबीजात्मकं
ज्योतिस्तत्र घनं महामधुरिम प्रेक्षस्व वृन्दावनम्।।४८।।

प्रकृति के पार द्वैतभार—शून्य अनन्त अपार परमआनंद के सार तथा अति स्वच्छ—चैतन्यामृत—ज्योत्सनामय—समुद्र का स्मरण कर। इस स्थान पर ऐश्वरिक—ज्योति का अनुभव करके उसके परे श्रीकाम—बीजात्मक महा महामाधुर्यमय ज्योति का तथा श्रीवृन्दावन का दर्शन कर।।४८।।

नानावर्णमणिच्छटाम्बुधिघनं वल्लिद्रुमैः शोभितं
शाखापल्लवपत्रगुच्छमुकुलैः पुष्पैः फलैश्चाद्भुतैः।
नानारत्नमयैः खगैर्मृगकुलैः कीरैर्मयूरः पिकै—
र्गुञ्जद्भृंगगणैः सरोवर—सरिच्छैलादिभिश्चाद्भुतम्।।४६।।

श्रीवृन्दावन नाना वर्ण की मणि—कांति का घन—समुद्र है, शाखा, पत्र, मुकुल, पुष्प फलादिकयुक्त अद्भुत लता—वृक्षों से शोभित है, नाना रत्नमय पशु—पक्षी, शुक, मयूर, कोकिला व गुंजार करने वाले मधुकरों से तथा सरोवर नदी पर्वतादिक से अद्भुत हो रहा है।।४६।।

नानारत्नमयस्थलीभिरमितामोदाभिरत्यद्भुतं—
क्रीड़ाकुट्टिमकोमलाभिरमितं कुंजावलीमंजुभिः।
नित्योत्सर्पि—परागपुंज—मकरन्दौर्घमहासुन्दरं
सान्द्रानन्द महारसेन विवशीकुर्वत् सहेशं जगत्।।५०।।

अपरिसीम आनन्दायक नाना रत्नमय स्थलों से, अत्यद्भुत क्रीड़ास्थलियों की कोमलता से, असीम कुंजों की मनोहरता से नित्य उड्डीयमान पराग से

तथा रस–प्रवाह से महासुन्दर यह श्रीवृन्दावन–सांद्रानन्द महारस द्वारा ईश्वर सहित समस्त जगत को ही विवश कर रहा है।५०।।

कालिन्द्याः कलहंससारस–लसत्कारण्डवाद्यैः खगै–
राश्चर्यैः परिघुष्टया द्विजकुलैर्मत्तालिझंकारया।
कह्लारैः कमलैः सदा विकशितैर्दिव्यैर्विचित्रोत्पलै–
र्भ्राजन्त्या पुलिनश्रिया मणितटोद्दीप्तश्रिया चावृतम्।।५१।।

यह श्रीवृन्दावन कालिन्दी पर कलहंस, सारस तथा मनोहर कारण्डवादि विहंगवृन्दों से एवं अन्यान्य आश्चर्यमय पक्षियों से कोलाहलित है, मत्त–भंवरों की गुञ्जार से मुखरित है, सदा प्रफुल्लित, कह्लार, कमल, दिव्य–दिव्य विचित्र उत्पलों से शोभित पुलिनों के सौंदर्य और मणिबद्ध तटों से प्रकाशित हो रहा है।।५१।।

तस्याः प्रोज्ज्वलनिर्मलाद्भुत–रसानन्दैकसन्दोह वाः
पूरायास्तटरत्नभूमि–लसितोत्तुंगा कदम्बाटवी।
तत्संसर्गि सुगन्धिमन्दशिशिरैर्मन्दानिलैर्लालिता
तत्राभाति निकुंजपुंजमुदयत्कन्दर्पपुञ्जं सदा।।५२।।

प्रोज्ज्वल निर्मल अद्भुत रसानन्दराशि रूप जल से पूरित कालिन्दी के तट की रत्नभूमि पर उच्च कदम्ब–वन शोभित हो रहा है, यमुना के संस्पर्श से सुगन्धित, शीतल तथा मृदुल वायु से वह कदम्ब–वन स्निग्ध हो रहा है, उस स्थान पर नित्य कामराशि से उद्दीपक निकुञ्ज–पुञ्ज दिखाई दे रहे हैं।।५२।।

तत्रानंगरसोन्मदैकसहजावाश्चर्यकैशोरका–
वाश्चर्योज्ज्वलगौरनीलमधुराकारौ महामोहनौ।
वेणीदण्ड–शिखण्डमण्डित–महाचूड़ामणी हारिणौ
राधा माधव–नाम नागरवरौ लावण्यमूर्ती स्मर।।५३।।

उसी स्थान पर सहज अनंगरसोन्मत्त, आश्चर्य कैशोर अवस्थायुक्त, आश्चर्यमय गौरनीलाकृति, महामोहन वेणीदण्ड तथा मयूरपुच्छ शोभित महा–चूड़ामणिधारी मनोहर राधा माधव–नामक लावण्य–मूर्ति नागर–श्रेष्ठ श्रीयुगलकिशोर का स्मरण कर।।५३।।

पूर्णास्वाद्यविशुद्धभाव–वपुषो रंगेषु या माधुरी
धारा येऽद्भुतभंगिमान उरुधा यः कांतिपूरोदयः।
या नेत्रांचलचातुरी स्मितपरिपाटी च या वा मिथो
या गोष्ठी च रहः सुनर्ममधुरा भावेऽखिलं भावय।।५४।।

पूर्ण आस्वाद्य विशुद्ध भावयुक्त विग्रह श्रीयुगलकिशोर के अंग अंग से जो माधुर्यधारा प्रवाहित हो रही है, जो अद्भुत भंगिमा से अनेक प्रकार की अपार कांति हो रही है। नेत्र चंचल–चातुरी, मृदु–मधुर–हास्य–परिपाटी एवं परस्पर उनका जो नर्म मधुर निर्ज्जन संलाप है, उस समस्त की चित्त में चिन्ता कर।।५४।।

दासीमण्डल इन्दुकोटिवदने श्रीराधिकायाः पदा–
म्भोज–भ्राजदपार–मादकरसज्योतिघनैकाकृतौ।
आश्चर्याकृति वर्णभेदमधुरेऽत्याश्चर्य–नाना–कला–
निर्म्मातर्यतिनूत्नयौवनवयोनानाविचित्र–क्रमे।।५५।।

श्रीराधाजी के चरणकमलों की असीम मादक महाज्ज्योति की घनाकृति विशिष्ट, कोटि चन्द्रवदनी, आश्चर्य आकृति तथा बहुविध वर्णों से सुन्दरतापूर्ण, अत्यन्त आश्चर्यमय नाना कला युक्त अति नवीन यौवनपूर्ण तथा नानाविध विचित्र शक्ति धारण करने वाली राधादासी–मण्डली शोभित हो रही है।।५५।।

मूर्ति कांचन कांचनद्रवरुचिं सौम्यां महासुन्दरीं
प्रत्यंगोच्छलदन्तपार–रहितस्निग्धाच्छ गौरच्छटाम्।
कैशोरेण मनोहरामुरसिजस्वर्णाब्जकोशद्वयीं
सम्वीताम्बर कंचुकेन विलसद्धारावलीं विभ्रतीम्।।५६।।

उस मण्डली में कोई एक गलित–स्वर्णवत् वर्णशीला है, जो सौम्य की महा सुन्दर मूर्त्ति है, उसके प्रति अंग में अनन्त असीम स्निग्ध निर्मल गौरकांति स्फुरित हो रही है,वह मनोहर कैशोर मूर्ति है, युगलस्तनरूप स्वर्ण पद्मों को धारण करने वाली है, सुन्दर वस्त्र, कञ्चुकी तथा विचित्र हारावली को धारण कर रही है।।५६।।

मध्ये केशरिवत् कृशां पृथुकटिं चित्रोर्म्मिमच्छाटिकां
दोर्वल्लीविलसन्महाद्भुत–मणी केयूरचूड़ावलिम्।

कर्णोर्ध्वाद्भुत–कर्णपूरविलसत्ताटंक–दिव्यच्छटां
श्रीनासातिलपुष्प–रत्नकनकावद्धस्फुरन्मौक्तिकाम्।।५७।।

उसका मध्यदेश सिंह की भांति अति कृश है, पृथुल कटि में विचित्र तरंगयुक्त साड़ी पहिर रही है, बाहु–लताओं में महा अद्भुत मणि, केयूर तथा चूड़ा आदि धारण कर रही है, कानों के ऊपर अद्भुत कर्णपूर तथा उनके नीचे वालियों की दिव्य छवि है, श्रीनासा तिलपुष्पवत् है तथा उसमें रत्न तथा स्वर्ण–जड़ित मुक्ता शोभायमान है।।५७।।

दीव्यद्दाडिमबीजपंक्तिदशनां माधुर्यवन्याबुड़द्
बिम्बोष्ठीं मदखंजरीटनयनां कन्दर्पचापभ्रुवम्।
भ्राजत् कांचन–पद्मकोशवदनानन्तेन्दुकोटिच्छविं
भंगीकोटिमहामनोहर–नवस्वर्णैकवल्लीतनुम्।।५८।।

उसकी दंतपंक्ति चमकीले दाड़िम के दानों की भांति है, बिम्बवत् ओष्ठों से माधुर्य की वन्या प्रवाहित हो रही है, दोनों नेत्र मतवाले खञ्जनों की भांति हैं, भृकुटि कन्दर्प के धनुष समान है, प्रकाश्यमान स्वर्णकमल की भांति वदन–मण्डल से अनन्त चन्द्र कांतिवत् कोटि–कोटि छवि उद्भासित हो रही है, तथा कोटि भंगी द्वारा महा मनोहर नवीन स्वर्णलतावत् देह को धारण कर रही है।।५८।।

कूजन्नूपुरकिंकिणीगणक्वनत्कारैर्महामंजुलां
प्रेयः कर्म्मसुसम्भ्रमेण प्रणयाद्यांतीं सदेतस्ततः।
आलोलांचलगुच्छनील सुतनून्मीलन्निचोलावृतां
व्रीड़ा–भंगिम मन्दहासकुटिलेक्षादि–स्वभावाद्भुताम्।।५६।।

शब्दायमान नूपुर तथा किंकणी के झंकार से वह महा मनोज्ञा हो रही है, प्रियतम युगलकिशोर के कार्य गौरव से प्रणयवश नित्य संचारिणी है। आन्दोलित अञ्चल के गुच्छों से नीलाभ सुन्दर देह उसका निचोलिनी द्वारा आवृत्त हो रहा है, लज्जा, भंगिमा, मन्दहास्य तथा कटाक्ष करने का उसका अद्भुत स्वभाव है।।५६।।

प्रोदञ्चत्पुलकावलिं मुहुरतिस्नेहान्निजप्रेष्ठयो
स्तत्तद्गूढ़तदिंगितानुसरणैः सन्तोष वन्याकरीम्।

राधा–पक्षपरिग्रहेण दधतीं नर्म्मक्रिया दक्षतां
श्रीश्वर्याश्चरणैकसंगततया नित्यस्थितां तत्पराम्।।६०।।

अपने प्रियतम–युगल के अति अनुराग में बार–बार पुलकित हो रही है, दोनों के निगूढ़ इंगितों को जान कर दोनों के लिए सन्तोष वन्या प्लावित करने वाली है, श्रीराधा की पक्षपातिनी होने से परिहासादि क्रियाओं में विशेष निपुणा है, श्रीप्राणेश्वरी की चरण–सेवा में नियुक्त होने से नित्य तत्परा होकर अवस्थित है।।६०।।

मन्त्रादौ मृदुशीलामृतगिरा संपृच्छ्यमानां क्वचित्
सर्वालीः परिवंच्य केलिघटनायादिश्यमानां क्वचित्।
उक्त्वा किंचन कर्हिचित् प्रियमनुं प्रेम्णैव संप्रेषिता
मानन्दाम्बुनिधावगाधमधुरे निर्मज्ज्य रोमांचिताम्।।६१।।

कभी वह मन्त्रादिरूप मधुर शीतल वाक्यामृत द्वारा कुछ पूछती है, कभी समस्त सखियों की वञ्चना करके उसको ही केलिविलासादि रचाने का आदेश होता है, कभी गुप्त मन्त्र बताकर प्रेमपूर्वक उसे कहीं भेजा जाता है, कभी अगाध मधुर आनन्द में निमग्न होकर वह पुलकित होती है।।६१।।

क्वाप्युद्वर्तनकारिणीं क्वचन सद्गंधोदकैः स्नापनीं
वस्त्रालङ्कृति–गंध–माल्य–विभवैः संराधयन्तीं क्वचित्।
संभोज्य क्वचनामृतं प्रविलसत्ताम्बूलकर्पूरदां
क्वाप्यङ्घ्रि द्वयलालनीं मृदुपटः सम्बीजनैः स्वापिनीम्।।६२।।

कभी वह (श्रीयुगल किशोर का) उबटन करती है और कभी उन्हें सुगन्धित जल से स्नान कराती हैं, कभी तो वसनभूषण, सुगन्ध–माल्यादि से सम्यक् आराधना करती है और कभी मृदुलपट से निर्मित वीजना करके नींद लाने का साधन करती है।।६२।।

क्वापि श्यामलसंगखेलनमहारंगं समातन्वतीं
भृंगार–व्यजनादिभिर्विजयिनी कुत्राप्यनुप्रस्थिताम्।
उक्ते किंचिदनुक्त एव किमपि प्रेम्णानिशं कुर्वतीं
राधायाः प्रियमेव पूर्णपरमानन्दे वुड़न्तीं मुहुः।।६३।।

कभी तो वह श्यामसुन्दर के साथ लीला के लिए महारंग विस्तार करती

है, शृंगार, व्यजनादि हाथ में लेकर कभी पीछे पीछे गमन करती है, कुछ कहने पर अथवा कुछ न कहने पर भी निरन्तर प्रेम पूर्वक श्रीराधाजी की कोई न कोई सेवा करके पूर्णपरमानन्द में निमग्न रहती हैं।।६३।।

श्रावं श्रावमतिस्मराकुलहृदोस्तास्ता रहःसम्विद–
स्ताताः सुन्दरदृष्टिगात्रविकृतीस्तास्ता विचित्रास्तयोः।
वैदग्धीर्नवसंगमेषु मधुरास्तास्ता विचित्रच्छवी–
र्वीक्ष्यानन्दमहारसोच्छलनतो नांगानि धर्तुं क्षमाम्।।६४।।

अति कामातुर चित्त युगलकिशोर के निर्जन संलापों को सुन–सुनकर, एवं उनके सुन्दर नयन व गात्र विकृति आदि तथा विचित्र वैदग्धी तथा नव संगम की मधुर कांति राशि दर्शन करते–करते वह महारस की तरंगों में अपने को नहीं सम्भाल सकती।।६४।।

एवं नित्यमनुस्मरन्ननुसरन् राधापदाम्भोरुह
च्छायामेव तयोः सदैव रसनां नामामृतैः पूरयन्।
स्त्री–तत्संगिविदूर एव विचरन्नत्युत्कटत्वं नयन्
वैराग्यं क्रमशो वसत्यतिकृती कोऽप्यत्र वृन्दावने।।६५।।
(इतिकुलकम्)

इस प्रकार श्रीराधाजी के चरणकमलों की कांति का नित्य अनुस्मरण करते–करते युगलनामामृत में नित्य ही रसना को पूर्ण करते–करते, स्त्री तथा उसके संगियों से बहुत दूर रह कर क्रमशः अति तीव्र वैराग्याश्रय करके कोई एक अतिशय भाग्यवान् पुरुष ही श्रीवृन्दावन में वास करता है।।६५।।

दिने दिनेऽतिवर्द्धिष्णु–महाभक्ति–विरक्तिमान्।
कोऽपि वृन्दावने धन्यो भाति राधापदाश्रितः।।६६।।

प्रतिदिन अत्यन्त वर्द्धनशील महाभक्ति व वैराग्ययुक्त कोई एक भाग्यवान् पुरुष ही श्रीराधा–पदाश्रित होकर श्रीवृन्दावन में वास करता है।।६६।।

राधाकृष्ण–सुतत्वबोध–विगत–व्यर्थोरुशास्त्रश्रमः
श्रीराधा–चरणारविन्द–सहज–स्वात्मैक्यभावोज्ज्वलः।
वैराग्येण बलीयसा न हि मनाग्देहस्थितावप्यहो
जातेहः सकलप्रियो निवसति श्रीधाम्नि वृन्दावने।।६७।।

श्रीराधाकृष्ण के सुतत्त्व को जान लेने पर अनेक शास्त्राभ्यास जनित सब व्यर्थ श्रम दूर हो जाता है। श्रीराधा–चरण–कमल में अपने प्राणवत् सहज एकांत समुज्ज्वल भाव से, हाय ! तीव्र वैराग्य पूर्वक, देह की रक्षा के लिए भी बिन्दुमात्र चेष्टा न करके, सकल–प्रिय कोई भाग्यवान् पुरुष श्रीधामवृन्दावन में वास करता है।।६७।।

आयातं न कुतश्चन क्वचन नो गन्तृ स्मरैकाम्बुधौ
पारावार विवर्जितेऽतिविषमेऽनाद्यन्तकालं लुठत्।
गौरश्यामलदिव्यकांति सहजात्याश्चर्य–कैशोरकम्
यत्रास्ते मिथुनम् मिथोऽङ्गमिलनाज्जीवन्नु मस्तद्वनम्।।६८।।

न कहीं से आते हैं एवं न कहीं जाते हैं, अनादि अनन्त काल से पारावारहीन अति विषम कामरस सागर में जो मज्जन कर रहे हैं, वे सहज अतिशय आश्चर्यमय युगलकिशोर श्रीगौर–श्याम दिव्यकांतिधारी मिलित–विग्रह से जहां प्राण–स्वरूप हो विराजमान हैं, उस श्रीवृन्दावन को नमस्कार करता हूं।।६८।।

पूर्णस्वाद्य–विशुद्धभावमय–चिन्मूर्त्ती महामोहनौ
कैशोराद्भुत–रूपकांतिगतिदृग्वागंगभंग्यादिभिः।
कामोन्माद–महाविकार परमाश्चर्याकृती निःसमो–
र्ध्वाभिः सुन्दरताभिराश्रयवरौ वृन्दावने दम्पती।।६९।।

किशोर अवस्था के अद्भुत रूप, कांति, गति, दृष्टि, वाक्य तथा अंग भंगिमा आदि की असमोर्द्ध सुन्दरताराशि के द्वारा पूर्ण आस्वादनीय, विशुद्ध भावमय चिन्मूर्त्ति महामोहन, कामोन्मद महा विकारयुक्त परमाश्चर्य आकृति वाले परम श्रेष्ठ श्रीयुगलकिशोर की श्रीवृन्दावन में शरण ग्रहण कर।।६९।।

सौदर्यौघ–महाचमत्कृतिरहो माधुर्यसीमा परा
लावण्यामृतचन्द्रिका जलनिधेः कोऽप्यद्भुतः संप्लवः।
अत्याश्चर्य–महानुरागविभवः कन्दर्पलीलावधि–
र्वृन्दारण्य उदेति नूतनवयाः प्राणौ मम द्वयात्मकः।।७०।।

अहो ! सौंदर्यराशि का महाचमत्कार, माधुर्य की शेष सीमा, लावण्यामृत चन्द्रिका के सागर की कोई एक अद्भुत वन्या, अति आश्चर्य महानुराग–सम्पत्ति,

कन्दर्प–लीला की पराकाष्ठा, नवीन कैशोरयुक्त मेरे दो देही एक प्राण स्वरूप (श्रीराधाकृष्ण) श्रीवृन्दावन में विराजमान् हैं।।७०।।

श्रीवृन्दावनमेकभाव–सदखण्डैकानुरागोन्मदं
कन्दर्पैककलाचमत्कृतमहानन्दोर्मि–दोलायितम्।
विश्रांतिस्थलमेकमद्भुतवयोरूपच्छबीनामहं
गौरश्याममुपास एकहृदय–प्राणं किशोरद्वयम्।।७१।।

श्रीवृन्दावन, ऐक्य भावमय अखण्ड–अनुराग से उन्मत्त हो रहा है, एकमात्र कन्दर्प–कला चमत्कार राशि की महानन्द तरंगों द्वारा आन्दोलित हो रहा है, अद्भुत वयस, रूप तथा छवि का एकमात्र विश्रांति–स्थल है, एक हृदय–प्राण गौरश्याम युगल–किशोर की मैं उपासना करता हूं।।७१।।

परस्पर–कथा–सुधारस–निमग्न–कर्णास्तयोः
परस्पर–विलोकनाद्युदित रूपलीलेक्षणाः।
परस्पर–समागमोत्सव रसातिवत्तान्तराः
स्मरामि हरिराधयोर्नवनिकुंजखेलाः सखीः।।७२।।

दोनों में परस्पर कथा सुधारस में जिनके कान निमग्न हो रहे हैं, विलोकनादि से जिनके रूप, लीला तथा नेत्रादि की विशेषता परिलक्षित होती है, परस्पर समागमोत्सव–रस में जिनका मन अतिशय उन्मत्त हो रहा है। श्रीहरि–राधा की नवीन निकुंज लीलापरायण उन सखीगणों को मैं स्मरण करता हूं।।७२।।

यद्यद्धाष्ट्र्यविजृम्भितं स्मर–रसात्युन्मादिनः श्रीहरेः
प्रत्याख्यानविलज्जितैर्विलसितं यद्यद्विशाखात्मनः।
वैदग्धीमधुरं तयोर्विलसितं यद्यन्नवे संगमे
तद्वृन्दावनमावसन् हृदि महाभावेऽनिशं भावये।।७३।।

कामरस में अतिशय उन्मत्त श्रीहरि की जो समस्त धृष्टचेष्टाएं हैं, प्रत्याख्यान द्वारा विशेष लज्जा–प्राप्त उस भिक्षुक स्वभाव श्रीहरि के जो विलासादि हैं, नव संगम में दोनों का जो वैदग्धी पूर्ण मधुर केलि–प्रसंग है, उन समस्त का श्रीवृन्दावन में वास करके ही महाभावयुक्त हृदय में मैं निरन्तर चिन्तन कर सकूंगा।।७३।।

ब्रह्माख्यं धाम विष्णोर्वहति हृदि सदा यः स पूज्योऽत्र लोके
मूर्तिं यां कांचिदेवार्चयति भगवतो यः स तस्य प्रियात्मा।
साक्षाच्छ्रीकृष्णचन्द्रं भजति य उरुभिः सोऽनुभावैरतुल्यो
मच्चेतस्त्वेष जह्रे त्यजति रसिकराड् नैव वृन्दावनं यः।।७४।।

जो श्रीनारायण की ब्रह्माख्य–प्रकाश मूर्ति को हृदय में धारण करते हैं, वे इस जगत् में पूज्य हैं, जो किसी भगवन्मूर्ति की अर्चना करते हैं, वे भगवान् के प्रियात्मा हैं, जो श्रीकृष्णचन्द्र का अनेक अनुभावों से भजन करते हैं, उनके समान कोई नहीं है, मेरा चित्त तो किन्तु उन्होंने चुरा लिया है जो रसिकराज श्रीवृन्दावन को कभी त्याग नहीं करते।।७४।।

भूर्भूरेवात्र येषां जलमपि च जलं शाखिवल्ल्यो द्रुवल्ल्यो
ज्योत्सनादि ज्योतिराद्यं खगपशुमनुजादीनि पक्ष्यादिकानि।
श्रीकृष्णः कृष्ण एवाखिलदनुजरिपु राधिका राधिकेव
व्यूह्यालं तेन वृन्दावनमनु मम काऽप्यस्तु दिव्यानुभूतिः।।७५।।

श्रीवृन्दावन की भूमि को जो साधारण भूमि जानता है, यहां के जल को साधारण जल, वृक्ष लताओं को सामान्य वृक्षलता, ज्योत्सनादि को साधारण ज्योति, विहंग–पक्षी तथा यहां के मनुष्यों को जो साधारण विहंगादि तथा साधारण मनुष्य जानता है, श्रीकृष्ण समस्त दैत्यों को मारने वाले हैं इतना मात्र ही जो श्रीकृष्ण को जानता है, उसके साथ तर्क करना व्यर्थ है, किन्तु श्रीवृन्दावन में मेरी कुछ दिव्यानुभूति हो–यही प्रार्थना है।।७५।।

श्रीवृन्दावनतत्त्वमस्तु हृदि मे शश्वन्महामाधुरी–
पूरं पूर्णविशुद्धमन्मथरसैकोद्दीपकं मोहनम्।
श्रीवृन्दावनचन्द्रतत्त्वमपि मे कन्दर्पलीलारसै
कात्मस्फूर्तिमुपैतु साद्य विमला राधापि पूर्णा रतिः।।७६।।

मेरे हृदय में अविनश्वर महा माधुर्य–प्रवाही, पूर्ण–विशुद्ध रस उद्दीपक एवं मनोहर श्रीवृन्दावन तत्त्व प्रतिभात हो, तथा एकमात्र कन्दर्पलीला–रस की स्फूर्ति करने वाला श्रीवृन्दावनचन्द्र तत्त्व (श्रीकृष्णतत्त्व), परिपूर्ण रति–स्वरूपिणी विमला श्रीराधा आज मेरे मन में उदित हों।।७६।।

अनन्तैर्माधुर्य्यैर्भरित नव–कैशोरवयसौ
महागौरश्याम–प्रविलसदनन्तच्छबिनिधी।
अनन्तैर्वैदग्ध्यैरविचलदनन्तस्मरकला–
सुकेलिभिर्वृन्दाविपिनमनुकौचिद्विहरतः।।७७।।

अनन्तमाधुर्यपूर्ण, नव कैशोरवयस्क, महागौरश्यामवर्ण, अनन्त कांति–राशि के प्रकाशक, अनन्त वैदग्धी तथा अविचल अनन्त अनंग–कला–विलासादियुक्त अनुपम युगलकिशोर श्रीवृन्दावन में विचरण कर रहे हैं।।७७।।

ययोः श्रीदम्पत्योः सहजनवकैशोरवयसोः
सुगौरश्यामांगच्छबिमधुरलीला–लहरिभिः।
समस्तं श्रीवृन्दावनमतिरसोन्मत्तमभवत्
तयोरेवाश्वास्यं मम किमपि दास्यं रतिगृहे।।७८।।

सहज नवकिशोर अवस्थायुक्त जिन सुगौर–श्यामांग युगलकिशोर की कांति की मधुर लीला तरंगों द्वारा समस्त श्रीवृन्दावन ही रसोन्मत्त हो रहा है, उनके ही रति–गृह में अनिर्वचनीय दास्य रस ही मुझे आश्वासन देने वाला हो।।७८।।

वीभत्सं वपुरेतदत्र पतिताश्चेष्टाः समस्ता अपि
व्यालुप्य प्रकृतिं भजन् रसमयीमन्तस्तथैवाकृतिम्।
श्रीवृन्दाविपिनेऽत्यकिंचनतया यत्र क्व चावस्थितः
श्रीराधाचरणारविन्दमनिशं प्रेम्णा कदा राधये।।७९।।

यह वीभत्स शरीर तथा इसकी जितनी चेष्टाएं हैं, वे समस्त विशेषभाव से त्याग कर, अन्तश्चिन्तित शरीर में रसमयी प्रकृति तथा आकृति की भजन–भावना करते हुए, श्रीवृन्दावन के जिस किसी स्थान पर अति अकिञ्चन भाव से रह कर कब मैं निरन्तर श्रीराधा–चरणकमलों की प्रेमपूर्वक आराधना करूंगा।।७९।।

माऽस्तु मम कदापि पापरूपिणो नरकादुद्धारः किन्तु।
श्रीवृन्दावन–राधा–तन्नागरनाम–विस्मृतिं नैतु।।८०।।

मुझ पापी का भले कभी भी नरक से उद्धार न हो, किन्तु श्रीवृन्दावन–नाम, श्रीराधानाम तथा श्रीराधानागर के नाम को कभी न भूलूं।।८०।।

मत्सम इह पापात्मा कोऽपि न भूतो न चास्ति नो भविता।
तन्मे सहजनिरंकुश करुणं वृन्दावनं परं शरणम्।।८१।।

मेरे समान पापात्मा इस जगत् में कोई न हुआ, न है, न होगा, अतः स्वाभाविक असीम करुणामय श्रीवृन्दावन ही एकमात्र मेरी शरण (गति) है।।८१।।

श्रीवृन्दावन–परमेशादद्भुतकरुणा–क्षमादि–गुणशक्तेः।
स्वरसं प्राप्य निहीनोऽप्यनन्यगतिरेषोऽहं नोपेक्ष्यः।।८२।।

श्रीवृन्दावनाधीश्वर की अद्भुत–करुणा है, क्षमादि गुणों की शक्ति का स्वकीय–रस पाकर मैं नीच होकर भी उनकी अनन्य शरण ग्रहण करके उनसे उपेक्षित नहीं हो सकता।।८२।।

वृन्दावन ! तव शरणं गतोऽहमिति–वागतीव दुष्टात्मा।
हरि हरि तवानुकम्पा–विषयःस्यां नीचतोपि किमु नीचः।।८३।।

हे श्रीवृन्दावन ! "मैं आपकी शरण हूं"–यह वाक्य कहने वाला मैं अत्यन्त दुष्टात्मा हूं, हाय ! हाय !! नीच से सुनीच होकर भी किन्तु मैं आपकी दया का पात्र ही रहूंगा।।८३।।

उषितं वृन्दारण्ये कतिदिनान्युदितं च नाम राधेति।
केवलमेतन्मम बलमपारनरके स्वकर्मणा विशतः।।८४।।

श्रीवृन्दावन में बहुत दिन वास किया है, "राधा" नाम भी उच्चारण कर लिया है, अब अपने कर्मोंवश असीम नरक में जाने पर केवल यही एकमात्र मेरा बल है।।८४।।

हे वृन्दाटवि मात–र्हा वृन्दाकाननाधीशौ।
श्रीराधामुरलीधरौ किं स्वपराधैरुपेक्ष्य एवैषः।।८५।।

हे माता श्रीवृन्दावन–भूमि ! हा वृन्दावनाधीश श्रीराधा मुरली–धर ! किन अपराधों से मैं आपसे उपेक्षित हो रहा हूं।।८५।।

अहह विगर्हित–कर्म्मण आस्तां यत्तन्ममातिमूढ़स्य।
नैव जहाति तु वृन्दाविपिनं नैवात्र नाम राधायाः।।८६।।

अहा ! मैं दुष्टकर्मकारी अति मूर्ख हूं, मेरी कुछ भी गति क्यों न हो, किन्तु मैं श्रीवृन्दावन को नहीं छोडूंगा और न ही यहां श्रीराधा–नाम को छोडूंगा।।८६।।

राधारूपविलासान् समधिक माधुरीधुरभरितान्।
अपि वचसापि गृणन्नहमिह वृन्दाकाननेऽस्मि निश्चिन्तः।।८७।।

अतिशय माधुर्यधारापूर्ण श्रीराधा रूप–विलासादि का गान करते हुए मैं इस श्रीवृन्दावन में निश्चिन्त हो गया हूं।।८७।।

चम्पक–कुवलयकांती रूपवयः श्रीविलासविश्रांती।
तौ दम्पती गती मे वृन्दाविपिने स्मरैकरसमूर्ती।।८८।।

चम्पक और नीलोत्पल के समान कांतियुक्त, रूप–वयस–सौन्दर्य तथा विलासादि की सीमा, कामैक–रसमूर्ति, श्रीवृन्दावन की वह जोड़ी ही मेरी गति है।।८८।।

वृन्दाकाननकुञ्जे मञ्जुलरतिकेलिमाधुरीपुञ्जे।
गौरश्यामकिशोरौ मानसचौरौ सदा मम स्फुरताम्।।८९।।

मनोहर रति–विलासादि के माधुर्य से मण्डित श्रीवृन्दावन के कुञ्जों में मेरे चित्तचोर गौरश्याम युगलकिशोर सदा स्फुरित हों।।८९।।

वेद्मि न धर्माधर्मौ नेक्षे शास्त्राणि नापि तत्सुविदः।
राधाकृष्ण पदाम्बुज मधुरिमलोभ–भ्रमन्मनो–मधुपः।।९०।।

मैं धर्म अधर्म को नहीं जानता हूं, शास्त्रों का दर्शन भी नहीं किया है, सुविधा भी कुछ प्राप्त नहीं है। अतः श्रीराधाकृष्ण के चरणकमल माधुर्य के लोभ में मेरा मन मधुकर भ्रमण कर रहा है।।९०।।

अत्युन्मदरससागरमग्नं तन्नागरद्वयं किमपि।
विहरद्गौरश्यामं वृन्दावनकुञ्जवीथिकासु भजे।।९१।।

अत्यन्त उन्मादरस सागर में निमग्न, श्रीवृन्दावन के कुञ्जों में क्रीड़ा परायण, गौरश्यामात्मक युगल–नागर का मैं भजन करता हूं।।९१।।

अप्यस्तु नरक कोटि–वृन्दावनतोऽपि मास्तु वा सफला।
राधापदाब्जदास्ये सुदुरुस्त्यजाशा ममाधमस्यापि।।९२।।

श्रीवृन्दावन में वास करते हुए कोटि नरक हों या नहीं हों, अधम होकर भी मेरी किन्तु श्रीराधा–चरणकमल की दासता को कभी न छोड़ने की आशा बनी रहे।।९२।।

श्रीराधाकृष्ण के विलास से महा माधुर्य–सिन्धु की मनोहर तरंगों में श्रीवृन्दावन का निकुञ्ज पथ रञ्जित हो रहा है, इस प्रकार कोई महा भाग्यवान् पुरुष ही श्रीवृन्दावन का ध्यान करता है।।१४।।

पतितमनाथं मूढं दीनं दुश्चेष्टितैकरतं माम्।
राधाङ्घ्रिकमलदूरं न वेद्मि वृन्दावनं कथं कुरुते।।१५।।

पतित, अनाथ, मूढ़, दीन तथा एकमात्र दुश्चेष्टाओं में संलग्न मुझको क्यों श्रीवृन्दावन श्रीराधाचरण से दूर रख रहा है, मैं यह नहीं जानता।।१५।।

अत्यन्तकुमतिमत्युच्छृंखलमतिशोच्यशोच्यं माम्।
श्रीवृन्दावनमेव स्वादभुतकृपयाऽऽत्मसात् कुरुताम्।।१६।।

अत्यन्त कुमति, अति उच्छृंखल तथा अति शोचनीय अवस्था को प्राप्त हुए मुझको श्रीवृन्दावन ही अपनी अद्भुत कृपा से अपना लें।।१६।।

श्रीवृन्दावननागरकिशोरमिथुनं सुगौरनीलं तत्।
स्वकामैकरसमग्नं मम हृदि लग्नं महाद्भुतं किमपि।।१७।।

वे महाद्भुत कामैकरसमग्न सुगौर नीलवर्ण श्रीवृन्दावन–नागर युगलकिशोर मेरे हृदय से लगे रहें।।१७।।

कन्दर्पकेलिलोलं निरवधि वृन्दाटवीनिकुञ्जेषु।
कनकेन्द्रनीलरोचिः किशोरयुगलं कदोन्मदः कलये।।१८।।

श्रीवृन्दावन के निकुञ्जों में काम–विलास में नित्य चञ्चल, स्वर्णइन्द्रनील–मणिवत् कांतियुक्त श्रीयुगलकिशोर का उन्मत्त होकर कब मैं दर्शन करूंगा।।१८।।

वृन्दावने प्रजल्पन् गच्छंस्तिष्ठन् स्वपन् श्वसन्वापि।
स्मर–तरल गौरनीलज्योतिर्द्वन्द्वं कदा पुरः कलये।।१६।।

बोलते, चलते–फिरते, बैठते–सोते अथवा प्रति श्वास–श्वास काम–चंचल गौरनील–विग्रह युगलकिशोर को कब मैं अपने सन्मुख देखूंगा ?।।१६।।

रसमयकिशोरमिथुनं रतिमन्मथकोटिमोहनं किमपि।
गौरश्यामलमत्तं स्मरतां पदयोर्जगन्ति निपतन्ति।।२०।।

कोटि रति–कामदेवों को मोहनकारी, मत्त–रसिक युगल–किशोर का जो स्मरण करते हैं, उनके चरणों में चौदह भुवन लुण्ठन करते हैं।।२०।।

मोहनवृन्दावनभुवि मोहन–राधा–ब्रजेन्द्रसुतयोस्ताः।
मोहनमोहनरूपच्छविलीला मे सदा स्फुरत्वन्तः।।२१।।

मोहन श्रीवृन्दावन भूमि में मोहन श्रीब्रजेन्द्रनन्दन के तथा वृषभानुदुलारी के मोहन से अति सुमोहन रूप, कांति, लीला आदि सर्वदा ही मेरे मन में स्फुरित हों।।२१।।

आश्चर्य नववयः श्रीरूपविलासं निकुञ्जवीथीषु।
गौरश्यामलधाम–द्वयमतिमधुरं मम स्फुरतु।।२२।।

निकुञ्जविहारी के आश्चर्य नवीन वयसयुक्त, शोभा, रूपविलासादि मण्डित अति मधुर गौरश्याम युगल किशोर मेरे हृदय में स्फुरित हों।।२२।।

श्रीराधामाधव–श्रीवदनकमलयोः कोटिचन्द्रातिकान्त्योः
संफुल्लस्वर्णकोश स्फुटित–मरकताम्भोजसौभाग्यभाजोः।
पायं पायं सुशीता मधुरतर–वहद्धासपीयूषवाणी–
र्माद्यद्वृन्दावनेऽहं निरवधि ललिताद्यालिवृन्दं भजामि।।२३।।

कोटिक चन्द्रप्रभा का तिरस्कार करने वाले प्रफुल्लित स्वर्णकोष में प्रस्फुटित नीलकमल की शोभा सौभाग्य को धारण करने वाले श्रीराधामाधव के वदन–कमल से निकले हुए सुशीतल तथा मधुरतर प्रभावयुक्त अमृत–वाक्यों का पान करके जो ललितादि सखीगण मत्त हो रही हैं, मैं नित्य उनका भजन करता हूं।।२३।।

सम्वीतारुण दिव्यपीतवसनं दिव्यप्रसूनोल्लसद्–
वेणीदिव्यशिखण्डमण्डल–लसच्चूड़ा–मिथो–मण्डितम्।
ताटंकोज्ज्वल–दिव्य–रत्नमकरोदारस्फुरत्कुण्डलं
गौरश्यामकिशोर दिव्यमिथुनं ध्यायामि वृन्दावने।।२४।।

जो लालरंग के दिव्य वस्त्रादि धारण कर रहे हैं, जो एक दूसरे के दिव्य फूलों से शोभित वेणी तथा दिव्य मोर–पुच्छयुक्त चूड़ा को सजाते हैं, ताटंक (बाली), उज्ज्वल दिव्य रत्नमय मकराकृति सुन्दर कुण्डल जिनके कानों में

शोभित हैं, उन गौरश्याम दिव्य युगलकिशोर का मैं श्रीवृन्दावन में ध्यान करता हूं।।२४।।

गोवत्सैः परिमण्डितं क्वचिदहो हम्बारवाडम्बरं
कुर्वद्भिर्महुरम्बरं क्वचिदतिक्रीड़ा–विलोलार्भकम्।
कुत्राप्युन्मद–नव्यगोपतरुणी यूथोत्सवं कुत्रचिद्–
राधाकृष्ण–विलासमोहनमहं ध्यायामि वृन्दावनम्।।२५।।

कहीं गो–वत्स बार–बार हम्बारव से इधर–उधर शोर करते हुए शोभित हो रहे हैं और कहीं अति चंचल बालकगण क्रीड़ा में उन्मत्त हो रहे हैं और कहीं उन्मत्त नवीन गोप–बालाओं के यूथों में उत्सव हो रहा है और कहीं श्रीराधाकृष्ण के विलासादि से यह श्रीवृन्दावन महामनोहर हो रहा है, मैं इसका ध्यान करता हूं।।२५।।

राधाकृष्णानन्यभावैकगम्यं–रम्यं दिव्यारण्यतो नन्दनादेः।
वृन्दारण्यं सच्चिदानन्दसान्द्र–ज्योतिरूपं दिव्यदिव्यं श्रयामि।।२६।।

श्रीराधाकृष्ण के अनन्य भावपूर्ण होने से ही प्राप्त होने वाले दिव्य–दिव्य नन्दन वनादिकों से भी महारमणीय, सच्चिदानन्दघन ज्योतिस्वरूप दिव्यातिदिव्य श्रीवृन्दावन का मैं आश्रय ग्रहण करता हूं।।२६।।

प्राणान्तेऽपि न संगतिं विरचयन् स्त्रीणां न तत्संगिना–
मेकं क्वापि निषद्य सत्तरुतले सास्रं प्रियाख्यं जपन्।
मौनी लोकसमागमे निरवधि क्षौणीव सर्वंसहो
राधाकेलिवने तृणादपि कदा नीचो निवत्स्याम्यहम्।।२७।।

चाहे मेरे प्राण चले जायें, तो भी स्त्रियों का संग अथवा स्त्रियों का संग करने वालों का संग न करके, एकांत में किसी सुन्दर वृक्ष के नीचे बैठकर अश्रुपूर्ण नेत्रों से अपने प्रिय हरिनाम का जप करते हुए, लोगों के आने पर मौन धारण करके तथा नित्य ही पृथ्वी की भांति सब कुछ सहन करते हुए कब इस श्रीराधा केलिवन में तृण से भी नीच होकर मैं वास करूंगा ?।।२७।।

कोटिः कामगवां द्युसद्विटपिनां वाटीश्च कोटिस्तृणैः
कौदार्यातिविभूतिभिर्विधुवती पेटीश्च चिन्तामणैः।

दिव्यैश्चन्दनपारिजात प्रमुखैर्वृक्षैर्वृता चिन्मयै–
जीयात् कुञ्जकुटीघटातिमधुरा राधाविहाराटवी।।२८।।

जहां कोटि कामधेनु तथा कोटि दिव्य वृक्ष–वाटिकाएं विराजमान हैं, जहां सुन्दर तृणों से संच्छादित कुदार (लाल कांचन) वृक्षों की अति सुन्दर शोभा है, जहां अनेक चन्द्रमुखी युवतियों का निवास है, जहां अनन्त चिन्तामणि हैं एवं दिव्य चिन्मय चंदन पारिजात वृक्षों से परिवृत कुञ्जकुटीरें शोभित हैं, ऐसे महामधुर श्रीराधा–विहारवन की जय हो।।२८।।

हास्योरुच्छटयाम्बरे विरचयन्नाश्चर्यकुन्दस्रजं
दृक्पातैर्दिशि दिश्यहो कुवलय श्रेणीं समुन्मीलयन्।
उत्फुल्लस्थलपंकजामिव भुवं कुर्वन् पदन्यासता
ध्येया मे सह राधया मुहुरटन् वृन्दावने माधवः।।२९।।

हंसी की छटाओं से आकाश में आश्चर्यजनक कुन्दमाला रचना करके, दृष्टिपात से प्रति दिशा में नीलकमल–समूह प्रकाशित करते हुए एवं चरण धरते समय पृथ्वी को अपने चरणकमलवत् प्रतीयमान कराते हुए श्रीराधा के सहित श्रीवृन्दावन में जो श्रीमाधव भ्रमण कर रहे हैं, वे हमारे ध्येय हैं।।२९।।

बारं बारमुदश्रु जीवनयुगाक्रीड़े निकुञ्जे विशन्
गायंस्तच्चरितं द्रवन्नतिभिया संगाद्भुजंगादिव।
क्षुद्बाधे मितशुष्कपत्रफलभुक् तर्षेऽम्बु कामं पिबन्
श्रीवृन्दाविपिने कदातरुतलान्येवावसन् स्यां सुखी।।३०।।

बारम्बार अश्रुपूर्ण नेत्रों से अपने प्राण–प्रियतम युगलकिशोर के प्रमोदवन–निकुञ्जों में प्रवेश करके, उनके चरित्रों को गान करते हुए लोक–संग से सांप के काटने के समान भयभीत होकर दूर रह कर, क्षुधा के समय परिमित सूखे पत्र फल खाकर तथा तृषा में यथेष्ट जलपान करते हुए कब श्रीवृन्दावन में वृक्षों के तले वास करके मैं सुखी होऊंगा ?।।३०।।

श्रीगान्धर्वारसिक ! मुरली–मण्डित–श्रीमुखेन्दो !
कांताक्लृप्त–स्वकरनिहितोदारगुञ्जोरुहार !।
प्रेयस्यैव प्रणयरचिताश्चर्यचूड़ाशिखण्ड !
प्रत्यंगोद्यत् पुलक ! हृदि मे क्रीड़ वृन्दावनेऽद्य।।३१।।

हे श्रीराधारसिक ! हे मुरली शोभित सुन्दर मुखचन्द्र ! प्रियतमा द्वारा ग्रथित एवं उसके हाथों से बनी हुई सुन्दर गुंजामाला धारण करने वाले ! प्रेयसी द्वारा ही प्रीतिपूर्वक बनाए हुए अद्भुत मोरपुच्छ–निर्मित चूड़ा से शोभित ! हे प्रति अंग में पुलकायमान होने वाले ! आज मेरे हृदय रूप श्रीवृन्दावन में क्रीड़ा करो।।३१।।

सर्वांगे पुलकावलीमरुणतामक्ष्णोर्वचोऽनन्वयं
यानंच स्खलितं मिथो कलहनं केशाम्बरासंवृतिम्।
माल्यादित्रुटनं मुहुः प्रहसितं भूयोरसात्युन्मदं
यत्राभुद्द्वय गौरनीलमहसस्तन्नौमि वृन्दावनम्।।३२।।

गौरनील श्रीयुगलकिशोर के सर्वांगों में पुलक, लोचनयुगल में अरुणता, वाक्यों में असामंजस्य, चाल में स्खलन, परस्पर प्रेमकलह, केश–वसनादि का खोलना, मालादि का तोड़ना, बार–बार हंसी, पुनः पुनः रस में महा उन्मत्तता इत्यादि (विनोदमय लीलाएं) जहां प्रकटित होती हैं, उस श्रीवृन्दावन को मैं नमस्कार करता हूं।।३२।।

प्रेमान्धाखिलचिद्घनस्थिरचरं चन्द्रैरनन्तैरिवो–
द्दीप्तं श्रीमुखचन्द्रिकोच्छलनतः श्रीराधिकाकृष्णयोः।
सर्वार्थानतितुच्छयन् निजरसश्रीणां चमत्कारतः
श्रीवृन्दावनमेव सर्वपरमं सर्वानपेक्षो भजे।।३३।।

श्रीराधाकृष्ण के श्रीमुखचन्द्र के प्रकाश से श्रीवृन्दावन ऐसा प्रकाशित हो रहा है मानो अनन्त चन्द्रों से उद्भासित हो, वहां की स्थावर–जंगम समस्त वस्तुएं चिन्मय एवं प्रेमान्ध हैं, इसने निज रस (श्रीवृन्दावनीय–रस के) सौंदर्य चमत्कार के समस्त पुरुषार्थों को अति तुच्छ कर रखा है, ऐसे सर्व प्रकार श्रेष्ठ श्रीवृन्दावन का मैं सर्वभाव से निरपेक्ष होकर भजन करता हूं।।३३।।

सर्वेषामनुकम्प्यतामिह सतां शिक्षाकृते दण्ड्यतां
वात्सल्यादभिमण्ड्यतां करुणयैवेष्टायतौ खण्ड्यताम्।
जानन् स्वस्य सुदुर्धियोऽपि न परित्यज्याहमत्यर्भवत्
श्रीवृन्दावनमावसामि परमानन्दात्यसीमं कदा।।३४।।

समस्त सज्जन मुझ पर कृपा करें, चाहे शिक्षा के लिए दण्ड ही दें, वात्सल्य भाव से मेरी पालना करें, चाहे करुणाकर मेरे भावी मंगलनिमित्त मुझे टुकड़े–२ कर डालें, मैं अपनी मन्द बुद्धि को अबोध–बालक की भांति जानते हुए भी इस स्थान को त्याग न करके कब अत्यन्त असीम परमानन्द स्वरूप इस श्रीवृन्दावन–धाम में वास करूंगा ?।।३४।।

राधाकृष्ण–गुणानेव गायं गायमकिञ्चनः।
अश्रुभिः पंकिलीकुर्वे कदा वृन्दावनस्थलीम्।।३५।।

अकिंचन होकर श्रीराधाकृष्ण के गुणानुवाद को गान करते करते कब मैं अश्रुधारा प्रवाह से श्रीवृन्दावन स्थली को पंकिल करूंगा ?।।३५।।

स्फुरद्राधापदाम्भोजदास्यलास्यः कदा हृदि।
आकृत्या च प्रकृत्या च भवेयं विश्वमोहनः।।३६।।

हृदय में श्रीराधा–चरणकमलों की दासता की स्फूर्ति प्राप्त करके नृत्य–परायण होकर आकृति से एवं स्वभाव से कब मैं विश्वविमोहन हो सकूंगा ?।।३६।।

कदापि पुलकांचितः प्रवहदश्रुधारः क्वचित्
कदाचिदतिगद्गदाक्षर गृहीत राधाभिधः।
कदापि विलुठन् क्षितावथ कदापि मूर्च्छां गतो
महाप्रणयविह्वलो भ्रमति कोऽपि वृन्दावने।।३७।।

कभी पुलकित होकर, कभी अश्रुधारा से भीग कर, कभी अति गद्गद् स्वर से 'राधा' नाम उच्चारण करते हुए, किसी समय भूमि पर लुण्ठन करते हुए और कभी मूर्छित होकर कोई प्रेम में महा विह्वल–व्यक्ति श्रीवृन्दावन में भ्रमण करता है।।३७।।

अनन्त–रति–मन्मथोन्मथन–दर्पशोभामयं
मिथः प्रणयकीलितं किमपि गौरनीलच्छवि।
अनन्तरसवारिधौ बुड़ितमन्तपारोज्झिते
महः प्रथमयौवनं द्वयमुदेति वृन्दावने।।३८।।

अनन्त रति–कामदेवों के मथनकारी दर्प से शोभित, परस्पर के प्रणय में आबद्ध कोई गौरनील विग्रहधारी अनन्त अपार रससमुद्र में निमग्न तथा नवीन

वयसयुक्त ज्योति स्वरूप युगल–किशोर श्रीवृन्दावन में उदित हो रहे हैं।।३८।।

पततु मदुपरिष्ठात् कोटिशो वज्रपातः
सकलभुवनदाही वह्निरभ्युत्थितोऽस्तु।
उदयतु लयकालोच्चण्डमार्तण्डकोटि–
र्न खलु तदपि वृन्दाकाननं त्यक्तुमीशे।।३६।।

मेरे ऊपर कोटि–कोटि वज्रपात हों और समस्त भुवनों को जला देने वाली अग्नि ही उत्थित हो जाय, अथवा प्रलयकालीन कोटि–कोटि प्रचण्ड सूर्य ही उदित हो उठे, तथापि श्रीवृन्दावन को त्याग करने के लिए मैं कभी तैयार नहीं हूँगा।।३६।।

व्याला उत्कृत्य खादन्त्वथ विकटतमाः कालसर्पा दशन्तु
रोगाः स्युर्दुश्चिकित्स्या ददतु तत इतः सर्व एवातिदुःखम्।
अत्युद्विग्नोऽपि धर्मैः सदनविरहितः शीत–वर्षातिवातैः
क्षुत्तृड्वाधास्त्वसह्यास्तदपि नहि पदं यामि वृन्दाटवीतः।।४०।।

व्याघ्रादि हिंसक जन्तु मुझे चीर–फाड़ कर भोजन कर जांय, और महा विकट काल सर्प काट खाएं, चिकित्सा में असाध्य रोग ही ग्रस लें, अथवा समस्त लोक ही मुझे अति दुख दें, सर्दी, वर्षा, झञ्झावात् मय ऋतुओं में आश्रयहीन होकर अति उद्विग्न होते हुए तथा क्षुधा तृष्णादि अनेक असह्य पीड़ाएं क्यों न मुझे दुःख दें, तथापि श्रीवृन्दावन से एक पद भी न हटूंगा।।४०।।

नैव प्रेक्ष्य मुखं स्त्रिया विषयिणः सम्भाष्य नैव क्वचित्
केषामप्यतिपृच्छतामपि पुरो न व्यज्य दैन्यानि च।
नाशां कस्यचिदादधन्न च दधद्दोषान् यथालाभतः
सन्तुष्टो वस राधिका–पद रसाविष्टोऽत्र वृन्दावने।।४१।।

स्त्री जाति का मुख न देख कर, विषयी पुरुषों के साथ कभी भी वार्तालाप न करके, अतिशय पूछने पर भी किसी को अपना दीनता भाव प्रकाश न करते हुए, किसी की आशा न रख कर, किसी के दोष न देखकर, यथा–लाभ–सन्तुष्ट होकर, श्रीराधाजी की चरणकमलों के सेवारस में आविष्ट होकर इस श्रीवृन्दावन में वास कर।।४१।।

नित्याश्चर्यानन्तमाधुर्यधुर्यं यस्मिन्नास्ते प्रस्फुरद्दिव्यकुंजम्।
राधाकृष्णाभंगुरानंगकेली–श्रीमद्वृन्दाकाननं तत् प्रपद्ये।।४२।।

जहां नित्य आश्चर्य अनन्त माधुर्य श्रेष्ठ दिव्य–दिव्य कुञ्जें प्रकृष्ट रूप से स्फुरित हो रही हैं, श्रीराधाकृष्ण के नित्य–वर्द्धनशील अंग–विलास की सम्पत्ति एवं शोभायुक्त इस श्रीवृन्दावन का मैं आश्रय ग्रहण करता हूं।।४२।।

सान्द्रानन्दापार–चिज्ज्योतिरेकाम्भोधिद्वीपे भाति वृन्दाटवीयम्।
तत्रैवानाद्यन्त–कन्दर्प केलि–गौरश्यामावाश्रये श्रीकिशोरौ।।४३।।

सान्द्रानन्द के अपार चिन्मय–ज्योति–समुद्र में एक श्रेष्ठ द्वीप यह श्रीवृन्दावन प्रकाशित हो रहा है, यहां ही अनादि अनंत कन्दर्प कला–परायण गौरश्याम श्रीयुगलकिशोर की मैं शरण लेता हूं।।४३।।

दिव्यस्निग्धस्वर्णगौरांगरोचिः सिन्धूल्लोलैर्लुम्पती दिग्विभागम्।
जीयात् कृष्णप्रेम माधुर्यसीमा वृन्दाटव्यां कापि दिव्यकिशोरी।।४४।।

दिव्य–स्निग्ध–स्वर्ण–गौरकांति के समुद्र की विशाल तरंगों को दशों दिशाओं में प्रसारित करने वाली एवं कृष्ण–प्रेम की माधुर्यसीमा, कोई एक दिव्य किशोरी श्रीवृन्दावन में सर्वोत्कर्ष युक्त विराजमान है।।४४।।

शुद्धानन्ता स्वाद्यरत्यात्मसच्चिज्ज्योतिः सिन्धोरन्तपारोज्झितस्य।
गौरश्यामं कामलोलं किशोरं सारद्वन्द्वं पश्य वृन्दावनान्तः।।४५।।

विशुद्ध अनन्त आस्वाद्य, रसात्मक सच्चिद्–ज्योतिर्मय असीम समुद्र के सारस्वरूप काम–चञ्चल गौर–श्याम श्रीयुगलकिशोर के श्रीवृन्दावन में दर्शन कर।।४५।।

एकैकांगच्छविभिरखिलद्वैतमाच्छादयन्ती
माधुर्यौघं कमपि दधती दिव्यलीला कलाभिः।
कापि श्यामप्रणय–विकल–स्वर्णगौरांगवल्लि–
वृन्दारण्ये विलसति महारूपराशिः किशोरी।।४६।।

प्रत्येक अंग की कांति से ही अखिल द्वैत वस्तुओं को आच्छादन करने वाली दिव्य–लीला–कला–समूह द्वारा अनिर्वचनीय अपूर्व माधुर्य धारण प्रवाह करने वाली, श्यामसुन्दर के प्रणय में व्याकुल स्वर्ण–गौरलता के सदृश कोई महारूप लावण्यशालिनी किशोरी श्रीवृन्दावन में विलास कर रही है।।४६।।

श्री गांधर्वा पदकमलयोर्दास्यलास्योपलम्भे
तज्ज्ञा यत्साधनमुपदिशन्त्युषरो मादृशोऽत्र।
तस्मात् पापो यदि च सुकृती निन्दितो वन्दितो वा
वृन्दारण्यं सुशरणमयेऽकुण्ठराधाप्रकाशम्।।४७।।

श्रीराधाजी के चरणकमलों के दास्य–लास्य की प्राप्ति के लिए अभिज्ञ व्यक्ति जो जो साधन उपदेश करते हैं, उसमें मुझ जैसे व्यक्ति को कोई फल नहीं मिलता, अतएव पापी या पुण्यात्मा, निन्दित या वन्दनीय होकर भी निश्चित रूप से श्रीराधाजी को प्रकाशित करने वाला श्रीवृन्दावन ही अत्युत्तम शरण लेने योग्य है।।४७।।

दुश्चेष्टानां दुर्मतीनांच कोटिःकोटिर्घोरानर्थदुर्वासनानाम्।
कामं वृन्दाकानने मेऽस्तु मास्तु श्रीराधाया विस्मृतं नाममात्रम्।।४८।।

इस श्रीवृन्दावन में मुझसे कोटि–कोटि दुश्चेष्टाएं हों या कुमति उदय हों या घोर अनर्थ तथा दुर्वासनाएं उदित हों, एकमात्र श्रीराधा–नाम मुझे कदापि विस्मृत न हो।।४८।।

उन्मीलन्मधुरांगभंगिम नटन्नेत्रांचली–लीलया
सव्रीड़स्मित–माधुरीभिरसकृच्छ्रीराधयोत्थापितैः।
अत्युग्रैरमितस्मरैः प्रतिपदं दिग्धालिविद्धांतरः
कोऽपि श्यामकिशोरकोऽतिविकलो वृन्दावने भ्राम्यति।।४९।।

मधुर अंग–भंगी दिखाकर एवं नृत्यपरायण अपांग विक्षेप लीला से शोभित श्रीराधाजी के बार बार उद्दीप्त लज्जायुक्त मृदुमधुर–हास्य–माधुर्यरूप अति विषम अनुपम काम–वाणों से प्रतिपद पर जिनका मन विषैले बिच्छू (वृश्चिक) के दंशन के समान जर्ज्जरित होता है–वे अति चञ्चल श्रीश्यामकिशोर श्री वृन्दावन में ही भ्रमण कर रहे हैं।।४९।।

यत् सौंदर्य यद्वयो ये च भावा या वैदग्ध्या याश्च गौरांगभंगयः।
या दिक्चक्राच्छादि–लावण्यवन्यास्ता नो भावे राधिकायाः स्फुरन्तु।।५०।।

श्रीराधिकाजी का जो सौन्दर्य एवं वयस है तथा जो समस्त भाव हैं, वैदग्धी है, उनके गौर–देह की जो भंगिमा है, समस्त दिशाओं को पूरित करने वाली जो लावण्य–वन्या है, वे समस्त ही मेरे चित्त में स्फुरित हों।।५०।।

पूर्णप्रेमामृतरसनिधी दिव्यदिव्यो किशोरौ
गौरश्यामाद्भुत नववयो–रूपलावण्यराशी।
वृन्दारण्ये सहजमदनोन्मत्तलीला–विहारौ
नित्यं भावामृत–सुमधुरे चेतसि प्रस्फुरेताम्।।५१।।

पूर्णा प्रेमामृत–रस समुद्र, अति दिव्य, गौरश्याम–वर्णा अद्भुत नवीन वयसयुक्त, रूप लावण्यराशि धारण करने वाले तथा श्रीवृन्दावन में सहज मदनोन्मत्त–लीला–विहारी युगलकिशोर सुमधुर भावामृतपूर्ण हृदय में नित्य स्फुरित हों।।५१।।

कुञ्जे कुञ्जेऽतिरंगादहह विहरतो यत्र राधाब्रजेन्दु
वृक्षे वृक्षे च यत्र प्रविलसति महादिव्यगन्धप्रसूनम्।
पुष्पे पुष्पे मदान्धीकृत मधुपकुलं स्यन्दमानामृतौघं
मोघं जन्मादि सर्वं तव यदि भजसे नैव वृन्दावनं तत्।।५२।।

अहो ! जहां कुञ्ज–कुञ्ज में श्रीराधाजी तथा श्रीब्रजचन्द्र अति आनन्द से विहार कर रहे हैं, जहां के वृक्ष–वृक्ष में महा दिव्यसुगन्धियुक्त पुष्प प्रस्फुटित होते हैं, जहां प्रत्येक पुष्प पर मदान्ध मधुकर विचरण कर रहे हैं, अमृत–प्रवाही उस श्रीवृन्दावन का यदि तू भजन नहीं करता है, तो तुम्हारे जन्मादि समस्त व्यर्थ हैं।।५२।।

यस्मिन् सत्त्वरजस्तमांसि न मनाक् सन्ति स्वकार्यैर्न वा
कालस्य प्रभूतास्ति सर्वमहतो देवादयः के परे ?।
स्वात्मज्योतिषि शुद्धचिद्रसघने वृन्दावने पावने
तस्मिन् मा कुरु मूढ़ ! दृष्टिमनृतां धैर्येण नित्यं वस।।५३।।

हे मूर्ख ! जहां सत्त्व, रज् व तमः बिन्दुमात्र भी नहीं हैं, सर्वश्रेष्ठ काल का भी जहां कुछ प्रभाव नहीं है, देवताओं का कहना ही क्या है ! स्वात्म–ज्योति विशुद्ध चिद्रसघन उस पवित्र श्रीवृन्दावन में असत्य–दृष्टि न करके धैर्य पूर्वक नित्य वास कर।।५३।।

देहार्थेहा–सुनीचाचरणमतिरलं–संस्तुतौ वाच्य–बुद्धिः
सम्पद्यापन्मतिः क्वाप्यहह न ममधीः स्त्र्याकृतौ राक्षसी–धीः।
व्यर्थात्याभारबुद्धिः कुवपुषि जनता–संगतौ सर्वबुद्धिः
स्वस्मिन् सर्वोत्तमेऽप्यत्यधमतम–मतिस्तिष्ठ वृन्दावने भोः।।५४।।

अहो ! जीविका निर्वाह के लिए अति नीचवत् चेष्टा करते हुए, अति प्रशंसा को साधारण वाक्य मात्र जानकर, सम्पत्ति की प्राप्ति को आपत्ति जानकर, किसी में भी ममत्व–बुद्धि न करके, स्त्री जाति की आकृति में राक्षसी–बुद्धि करके, इस कुत्सित देह को अति व्यर्थ भार जानते हुए एवं लोगों से मेल–जोल को सर्प जानकर तथा सर्वोत्तम होते हुए भी अपने को अति अधमतम जान कर तू श्रीवृन्दावन में वास कर।।५४।।

न स्त्री न स्त्रीप्रसंगी मिलति यत इदं स्थानमाश्रित्य सर्व–
द्वन्द्वातीतोऽत्र कन्दादिभिरपरवशैः कल्पयन् देहवृत्तिम्।
भावेनात्युज्ज्वलेनात्मनि मधुरतरे न्यस्य राधापदाब्ज
द्वन्द्वं वृन्दावनान्तर्गमय दिननिशा नित्य–तन्नाम–जापी।।५५।।

स्त्री व स्त्री प्रसंगी यहां हैं ही नहीं–ऐसा जानकर श्रीवृन्दावन का आश्रय करते हुए, समस्त द्वन्द्वों से परे रह कर, निरपेक्षभाव से कन्द मूल फलादि द्वारा देह की रक्षा करते हुए, अत्युज्ज्वल भाव से मधुरतर अपने चित्त में श्रीराधा–चरणकमलों को बसा कर नित्य उनका नाम जप करते–करते श्रीवृन्दावन में दिन रात व्यतीत कर।।५५।।

विड्भाण्डेऽस्मिन् कुदेहे हरि हरि ममतां मुञ्च निष्किञ्चनानां
संगे रंगं वधेहि त्यज कनक–वधू–दर्शनं दूरतोऽपि !।
मत्वा मानावमानौ विषमविष सुधासारवत् सर्वदुखं
सोढ्वा सोढ्वा दृढीयान्नति–रतिप्रणयादास्स्व वृन्दावनेऽस्मिन्।।५६।।

हाय ! हाय!! विष्ठा–पात्र इस कुत्सित देह की ममता त्याग कर, निष्किञ्चन सत्पुरुषों का संग कर, कामिनी कांचन को देखना दूर से ही त्याग कर, अपमान को मान, विषम विष को परम अमृत–सार जानकर तथा समस्त दुखों को सहन करते–करते दृढ़ता पूर्वक अति अनुराग से इस श्रीवृन्दावन में वास कर।।५६।।

कंचिद् वंचित–साध्यसाधनगणं निर्भृष्टकालादिक–
त्रासं निर्हत पापपुण्यविषयं निष्पीत–तापत्रयम्।
निर्भातं सकलत्रयीहृदयतोऽप्यत्यन्तदूरे महा–
चित्रप्रेमरसोर्मि–दिव्यवनराट्चूड़ामणिं चिन्तय।।५७।।

समस्त साध्य–साधनों को प्रतारण करने वाले, कालादि भय समूह को निर्मल करने वाले, पाप–पुण्य विषय के विनाश करने वाले तीनों तापों को नष्ट करने वाले, समस्त वेदों के हृदय से भी अत्यन्त दूर प्रकाशित होने वाले, एवं महा विचित्र प्रेम–रस–प्रवाहयुक्त दिव्य वनों के राज–शिरोमणि इस श्रीवृन्दावन की चिन्ता कर।।५७।।

द्वन्द्वीभाव–निजस्वभाव–सहजात्याश्चर्य कैशोरकं
श्रीवृन्दावन नित्यकेलि मिथ आनन्दं मिथो जीवनम्।
तादात्म्यप्रणयाद् भजामि ललिता–प्राणं मिथः सन्ततो–
त्तुंगानंगतरंगसञ्चय – चलं गौरासितांग महः।।५८।।

युगल–भाव को प्राप्त, निज स्वभाव सुलभ अत्याश्चर्यमय किशोर–अवस्थायुक्त, श्रीवृन्दावन में नित्य केलि–परायण, एक दूसरे को आनन्द प्रदान करने वाले, एक दूसरे के प्राण जीवन तथा परस्पर एकात्म प्रणय के लिए नित्य–वृद्धिशील काम–तरंगों के प्रवाह में चंचल, ललिताजी के प्राण–स्वरूप श्रीगौरश्याम विग्रह का भजन कर।।५८।।

नवकनकसुगौरनीलरत्न–प्रकरसुनीलमुदार दिव्यलीलम्।
मिथुनमभिनवं नवानुरागोन्मद–मदनातुरमद्भुतं भजामि।।५९।।

गलित स्वर्णवत् सुगौरवर्ण तथा नील कांतमणि–समूहवत् सुनीलवर्ण सुन्दर महा दिव्य लीलाकारी, नव नव अनुराग में उन्मत्त कामातुर अद्भुत अभिनव श्रीयुगलकिशोर का मैं भजन करता हूं।।५९।।

परमरससमृद्धिकन्द–वृन्दावनभुवि दिव्यकिशोरयोः कयोश्चित्।
नव–मदनविलास–चापलानि स्मर नवहेममहेन्द्रनीलभासोः।।६०।।

परम रस की समृद्धि के बीज स्वरूप इस श्रीवृन्दावन की भूमि में स्वर्ण तथा इन्द्रनीलमणि की कांतियुग दिव्य युगलकिशोर की नव काम चञ्चलता का स्मरण कर।।६०।।

द्वयमतिरसधाम–गौरनीलाद्भुतरुचि–नित्यकिशोरमुन्मदान्धम्।
नवनवरतिलालसेन वृन्दावनभुवि तन्मम नित्यमस्तु सेव्यम्।।६१।।

अतिशय रसमय वपुधारी, गौरनील अद्भुत कांतियुक्त, नव–नव रति–लालसा में उन्मत्त, अन्ध, नित्यकिशोर (श्रीश्यामाश्याम) इस श्रीवृन्दावन में हमारे नित्य सेव्य हों।।६१।।

भरितदशदिगन्तकान्तिपूरं द्वयमतिदिव्यमहः सदा किशोरम्।
कनकमरकताभमस्तु वृन्दावनरस विह्वलमेव मे निषेव्यम्।।६२।।

कांति–प्रवाह से दशोंदिशाओं को पूर्ण करने वाले, दिव्य विग्रहधारी, श्रीवृन्दावन–रस में विह्वल स्वर्ण नील कांतिधारी नित्य–किशोर (श्रीश्यामा–श्याम) हमसे सेवित हों।।६२।।

सर्वानन्दरहस्यमत्र सकलप्रेम्णां रहस्यं त्विह
दीप्तीतां सुरहस्यमत्र प्रदस्यास्मिन् रहस्यं परम्।
आमोदस्य रहस्यमत्रगदनस्यास्मिन् रहस्यं परं
वैदग्धीसुरहस्यमत्र यदिदं वृन्दावन मोहनम्।।६३।।

यहां श्रीवृन्दावन में ही सर्वानन्द का रहस्य है, समस्त प्रेम का रहस्य है, यहां समस्त दीप्ति का सुरहस्य है, इसी स्थान पर ही प्रेममत्तता का परम सुरहस्य है एवं यहां आमोद का भी रहस्य है और मदन का परम रहस्य तथा वैदग्धी का सुरहस्य भी यहां प्रकटित है। इसीलिए ही श्रीवृन्दावन सर्वभाव से मन को हरण करने वाला है।।६३।।

पूर्णाः स्वर्णाम्बुजमरकताम्भोजगर्भातिगौर–
श्यामाः कामात्मक–रसघनस्यान्तरध्येमि कान्तीः।
कस्याप्येकात्मन उरुमद–श्रीकिशोरद्वयस्य
श्रीमद्‌वृन्दावनमनु सदा क्रीड़तो वर्द्धितृष्णम्।।६४।।

श्रीमद्‌वृन्दावन में वृद्धिशील तृष्णा से क्रीड़ा परायण, एक प्राण, अति उन्मत्त कामात्मक, रसघन श्रीयुगलकिशोर में स्वर्णकमल एवं नीलकमल के गर्भवत् अति गौर एवं नील कांति के प्रकाश का मैं ध्यान करता हूं।।६४।।

श्रीवृन्दारण्यमेतद्‌द्वयमपि च तदेकात्मकं धाम गौर–
श्यामं तत्प्राणसख्योऽपि च परमरसं प्रीतिमात्रं विदन्ति।
तेनात्यन्तापराधिन्यपि मयि मधुरं तन्महाश्चर्यवृन्दं
नैवोपेक्षां विदध्यादजनि यदि सकृत्तत्–स्वसम्बन्धगन्धः।।६५।।

श्रीवृन्दावन, श्रीवृन्दावन के प्राण–स्वरूप गौर–श्याम युगल किशोर, उनकी जीवन–स्वरूप सखीवृन्द, जो केवल परम रस तथा प्रीति को ही जानती हैं, एवं वहां उनकी आश्चर्यमय मधुर वस्तुएं , इनमें से कोई भी मुझ जैसे अति

अपराधी की उपेक्षा नहीं करेगा, यदि एक बार भी श्रीवृन्दावन के साथ मेरा कोई भी लेशमात्र सम्बन्ध हो जाये।।६५।।

यस्मादेव प्रवृत्तिः सकलतनुभृतामुत्तमे वाऽथ हीने
कर्म्मण्यस्योत्कटेच्छा समुदयति यतस्ते वने हेतवश्च।
संयोगं प्राप्नुवन्ति प्रसरति परमा सर्वभोगे विरक्ति–
र्ज्ञानं भक्तिर्महत्संगति–परिचयतस्तं स्वतन्त्रेशमीड़े।।६६।।

जिसमें समस्त प्राणियों की उत्तम या हीन कर्मों में प्रवृत्ति होती है, जिसकी प्रेरणा से श्रीवृन्दावन वास करने की जीव में उत्कट इच्छा उत्पन्न होती है, जिसकी इच्छा से इस प्रकार वास करने की परम्परा घटना उपस्थित होती है कि समस्त भोगों से परम वैराग्य होने लगता है एवं महत् संग का परिचय–ज्ञान एवं भक्ति–आदि प्राप्त होते हैं उस स्वतन्त्र ईश्वरी–शक्ति की मैं स्तुति करता हूं।।६६।।

सर्वोऽप्यद्भुत शक्तिराशिरखिलाधीशस्य तत्तत्तनु–
ष्वानन्दैकविलासवान् निजमहापूर्णात्म–शक्त्याश्रयात्।
संजीवत्यथ चेष्टते निजनिजे कार्ये तमेवाद्भुत–
स्वातन्त्र्यं परमं परेशमहमानन्दैकवृत्तिं श्रये।।६७।।

अखिलाधीश्वर की जिस निज महापूर्ण–आत्मशक्ति को प्राप्त कर समस्त अद्भुत शक्तियां पृथक्–पृथक् देहों से आनन्दपूर्वक विलास परायण होती हैं, जीवन धारण करती हैं तथा अपने अपने कार्य में प्रवृत्त होती हैं–उस अद्भुत चरम–स्वतन्त्र परम महानन्द वृत्तियुक्त वस्तु का ही मैं आश्रय ग्रहण करता हूँ।।६७।।

आनन्दानां परमचरमो योऽवधिर्वैष्णवानां
सर्वोर्ध्वानां सकल–हरिशक्त्युन्नतीनांच यो वा।
सम्पूर्णानां परमभगवत्सद्गुणानां च यो वा
स श्रीवृन्दावनभुवि वरीवर्ति सर्वोर्ध्वधाम्नि।।६८।।

वैष्णवों के लिए जो समस्त आनन्द की परम चरम–सीमा है, हरि की सर्वोर्ध्व समस्त शक्तियों की भी जो चरम शेष सीमा है, एवं परम भगवान् के सम्पूर्ण उत्तम गुणों की जो अन्य सीमा है, वह समस्त ही सर्वोर्ध्व–धाम श्रीवृन्दावन में अधिक रूप से वर्त्तमान है।।६८।।

स्वधर्मविमुखं सदा सकलपापकर्म्माकरं
समस्तगुणवर्जितं सकलसत्तमोपेक्षितम्।
अहो सकलपामरैरपि वहिष्कृतं दूरतः
कथं सहजवत्सला त्यजतु माऽपि वृन्दाटवी।।६६।।

सर्व–धर्म विमुख, नित्य सकल पाप कर्मों का अनुष्ठान करने वाला, समस्त गुणों से रहित, साधुओं से उपेक्षित, अहो ! सकल नीच पामर व्यक्तियों ने भी जिसे दूर से बहिष्कृत कर दिया है, ऐसे मुझको क्या सहज–वत्सला श्रीवृन्दाटवी त्याग कर देगी ?।।६६।।

अनाथजनपावनं सकलपापविद्रावणम्
महारतिसुधाभरैः सकलचित्तविद्रावणम्।
सहेशकृतभावनं सहरि–राधिका–जीवनं
महापतितपावनं जयति धाम वृन्दावनम्।।७०।।

अनाथ जन–पावन, सकल पाप–नाशक, महारतिरूप अमृत वर्षा से समस्त जीवों के चित्त को द्रवीभूत करने वाले, अपने अपने ईश्वर सहित ब्रह्माण्डों से चिन्तनीय, श्रीहरि एवं श्रीराधा के जीवन तथा महा पतितपावन श्रीवृन्दावन धाम की जय हो।।७०।।

त्वं मातेव पितेव सत्सुहृदिव भ्रातेव सद्बन्धुवत्
कान्तावत् परदेवतेव गुरुवत् सन्नेत्रवत् प्राणवत्।
सर्वस्वैकनिधानवत् स्वमृतवत् सत्पुत्रवत् स्वात्मवत्
श्रीवृन्दावन ! राधिका–रसिकमौल्यानन्द ! नित्यं भव।।७१।।

हे राधिका व रसिक–चूड़ामणि आनन्द–प्रद श्रीवृन्दावन ! आप नित्य ही मातृवत्, पितृवत्, सत्सुहृद्वत्, भ्रातृ के समान, सद्बंधुवत्, कांतातुल्य, परमदेवता तुल्य गुरुवत् सुन्दर नेत्रवत् तथा प्राणवत् एवं सर्व धन के एकमात्र भण्डारवत्, सुन्दर अमृतवत्, सत्पुत्रवत् एवं मेरे आत्मातुल्य होकर रहो।।७१।।

स्निग्धस्वर्णसुगौर सुन्दरवपुर्लावण्यपूर्णार्णवे
नव्यप्रेमरसात्मकेन चिदचिद्द्वैतप्रथा–लुम्पकम्।
अंके श्यामकिशोरकस्य जयताद्राधाभिधं किञ्चन
श्रीवृन्दावनसीम्नि सौरतकलाऽपारं किशोरं महः।।७२।।

नवीन प्रेमरस स्वभावयुक्त स्निग्ध स्वर्ण सुगौर सुन्दर देह के लावण्यपूर्ण समुद्र में चित्–जड़ के द्वैत–भाव को विलोप करने वाली, श्रीवृन्दावनस्थित श्याम–किशोर के क्रोड़देश में असीम सौरतकला पण्डिता किसी "राधा" नामक किशोरज्योति की जय हो।।७२।।

ऐश्वर्याश्चर्यसीमा यदपि भगवतः सद्गुणाश्चर्य सीमा
लीला–माधुर्यसीमा प्रणयरसमद स्वाद–वैवश्यसीमा।
सौन्दर्याश्चर्यसीमा नवललितवयः श्रीचमत्कारसीमा
वृन्दारण्य एव प्रविलसति यतोऽतस्तदेवाश्रयेऽहम्।।७३।।

क्योंकि श्रीवृन्दावन–श्रीभगवान् के ऐश्वर्याश्चर्य की सीमा है, लीला माधुर्य की सीमा, प्रणयरस–मद के आस्वादन जनित वैवश्य की सीमा है तथा सौंदर्याश्चर्य की सीमा एवं नव्य ललित रस की, श्री–चमत्कार की सीमा है, अतएव मैं उसका ही आश्रय ग्रहण करता हूं।।७३।।

यत्स्पर्शादेव सद्यः प्रमद–हरिरसाविष्ट चिन्मूर्त्तिभाजो
जीवाजीवाः पदार्थास्त्रिगुणमयतया नित्यसंस्पर्शशून्याः।
सर्वे भांति स्वभासा शुभविमल–महाचिद्रसैकात्मशक्तिः
सेयं वृन्दाटवीयावनिरखिल महाचिन्मया पर्युदेति।।७४।।

जिसके स्पर्शमात्र से ही जीव, जड़–वस्तुएं त्रिगुणमयी माया के नित्य स्पर्श से रहित होकर तत्काल ही प्रमद–हरि रस में आविष्ट हो जाती हैं एवं चिन्मूर्त्ति धारण कर लेती हैं, तथा सब ही अपनी दीप्ति से स्वप्रकाश हो उठती हैं, वह शुभ विमल महाचिन्मय रसस्वभाव शक्ति शालिनी व अखिल महा चिन्मयात्मक वृन्दावनीय भूमि प्रकाशित हो रही है।।७४।।

श्रीमद्राधा–मुरलिधरयोस्तत्तदाश्चर्यखेला,
योग्या मृग्या भुवि वरह्रदा स्वच्छचिद्रत्नभासः।
अत्याश्चर्यैर्मधुरमधुरा वर्णसंस्थानभेदै–
र्वन्दे वृन्दावनभुव इमाः खण्डयन्तीः षड्रूर्मीन्।।७५।।

श्रीमद्राधा–मुरलीधर की वे समस्त आश्चर्य क्रीड़ाएं, श्रेष्ठ मुनियों द्वारा भी अन्वेषणीय हैं, स्वच्छ चिन्मय दीप्ति युक्त अत्याश्चर्य वर्ण तथा संस्थान आदि के भेद से मधुर से सुमधुर एवं षड्रूर्मि को खण्डन करने वाली–उस श्रीवृन्दावनीय भूमि को मैं नमस्कार करता हूं।।७५।।

दिव्यैःकुत्रचिदिन्द्रनीलमणिभिर्जाम्बूनदैः कुत्रचिद्–
वैदूर्यैः क्वचन क्व चेन्दुमणिभिर्नीहारि–हीरैः क्वचित्।
मुक्ताभिः क्वचन प्रवालनिबहैः क्वापि क्व चालोकवि–
ज्ञातैः क्वापि विनिर्मिता विजयते वृन्दाटवीयावनी।।७६।।

कहीं दिव्य इन्द्रमणियों द्वारा, कहीं जाम्बुनद (स्वर्ण) द्वारा, और कहीं वैदूर्य्य मणि तथा कहीं चन्द्रकान्त मणि द्वारा, एवं कहीं तुषारधवल हीरों द्वारा, कहीं मुक्ताओं के द्वारा, कहीं प्रवाल समूह द्वारा और कहीं अपरिचित अनेक मणि–माणिक्य द्वारा खचित श्रीवृन्दावन का पृथ्वी–तल सर्वोत्कर्ष से प्रकाशित हो रहा है।।७६।।

केचित् पीयूषसारोत्तम–परिणतयः केचन क्षीरसारै–
र्दिव्यैः सन्निर्मिता केऽप्यतुलमदकृतामासवानां घनांगाः।
केचित् सैतोपलाः केऽप्यतिहिमकरकाः कल्परूपा इति श्री–
वृन्दारण्ये द्रुमेन्द्रा दधति वहुविधाराधिका–कृष्ण–तुष्ट्यै।।७७।।

श्रीवृन्दावन के श्रेष्ठवृक्षगण श्रीराधाकृष्ण की तुष्टि के लिए अनेकविध रूपों से प्रकाशित होते हैं–कोई–कोई तो अमृतसार की उत्तम परिणति विशेष है कोई–कोई दिव्य क्षीर–सार द्वारा सुन्दर भाव में निर्मित हैं और कोई–कोई अतुलनीय मत्तता जनक सुधा–घन अंगधारी हैं, कोई–कोई स्फटिक मणिवत् हैं और कोई चन्द्र (कर्पूर) की भांति अति शुभ्र वेशधारी हैं।।७७।।

श्रीराधाकृष्ण–नर्मोक्त्यनुसरणपरा विभ्रतः केऽपि शाखा
भूलग्नाः सूनभारा वहुशत–परितोमण्डपाकाररम्याः।
हस्तग्राह्यं प्रसूनाद्यथ परशिखरस्थञ्च सन्धारयन्ति
शाखीन्द्रा यत्र धन्या दिशतु मम शिवं सैव वृन्दाटवीयम्।।७८।।

किसी–किसी वृक्ष ने श्रीराधाकृष्ण की आज्ञानुसार अपनी शाखों को भूमि तक झुका रखा है वे पुष्पों के भार से नवे हुए हैं, वे संख्या में अनेक हैं एवं इधर–उधर मण्डपाकार में शोभित हैं, किन्हीं–२ के पुष्प किशलयादि तो हाथों से पकड़े जा सकते हैं, और कोई बहुत ऊंची–२ शाखाओं युक्त हैं, इस प्रकार के भाग्यवान श्रेष्ठ वृक्ष जहां शोभित हो रहे हैं, वह यह श्रीवृन्दावन मेरा मंगल विधान करे।।७८।।

केचिन्माध्याह्निकादप्यतिवहल–रुचश्चण्डमार्त्तण्डकोटि–
भ्राजद्दिव्यप्रभा–मण्डलत उरुरुचः केऽपि कल्पाग्निकोटेः।
केचिद्राकेन्दु कोट्युज्ज्वल शिशिर–लसच्चन्द्रिका–चारुरोचिः
पुञ्जा गुञ्जाभिरामद्युति वितत–महामंजुलाः केऽपि यत्र।।७६।।

कोई–कोई तो मध्याह्न काल के प्रचण्ड कोटि सूर्यों के दिव्य तेज से भी अधिक कांति वाले हैं और कोई कोटि कल्पाग्नि से भी अधिक प्रभायुक्त हैं, कोई–कोई कोटि पूर्णचन्द्रों की उज्ज्वल शीतल चांदनी युक्त मनोहर दीप्ति विशिष्ट हैं और कोई–कोई पुष्पस्तवक की मनोहर द्युति प्रकाश विस्तार पूर्वक महामनोज्ञ शोभासमन्वित होकर विराजमान हैं।।७६।।

केचिद्विद्योतमाना द्युतिभिरगणितोद्दीप्तविद्युल्लतानां
विस्फूर्जद्दिव्यकोटिस्फटिकमणि–महास्वच्छभासोऽपि केऽपि।
केचिद्बालप्रवालाधिक–ललितमहःकन्दली–सुन्दरांगाः
केचिन्निर्भान्त्यनन्तद्रुत–कनकरुचो हीरहारत्विषोऽन्ये।।८०।।

कोई–कोई असंख्य विद्युत तरंगों की तरह चमक रहा है और कोई–कोई दिव्य स्फटिक मणि की महास्वच्छ किरणें इधर–उधर विकीर्ण कर रहा है कोई–कोई नवीन प्रवाल से भी अधिक सुललित तेजोमय नवांकुरों से सुशोभित है, कोई–कोई अनन्त गलित स्वर्ण वर्ण तथा दूसरा कोई–कोई हीरों से भी अधिक चमकीला है।।८०।।

केऽपि प्रोत्फुल्लदिव्यस्थलकमलरुचः केऽपि नीलोत्पलाभाः
केचित् कीरानुकारिच्छविनिकरचिताः केऽपि काश्मीरभासः।
केचिद्भिन्नांजनाभा मरकत मणिवत् केचिदत्युज्ज्वलाभाः
केचित् सत्पाटलप्रोच्चयरुचिर रुचोऽन्ये जवापुष्पभासः।।८१।।

कोई–कोई स्फुटित दिव्य स्थल पद्म की कांति धारण कर रहा है और कोई–कोई नीलपद्मवत् दीप्ति मण्डित है, कोई शुभ्र वर्ण की भांति कांति युक्त है, कोई कुंकुमवर्ण है कोई मरकत मणि तुल्य, कोई अति उज्ज्वल दीप्ति युक्त है, कोई सुन्दर गुलाब समूह की मनोहर कांति युक्त है और कोई जवाकुसुम के समान शोभित हो रहे हैं।।८१।।

इत्थं स्वानन्दसच्चिद्रसघनवपुषो यत्र शाखीन्द्र–वृन्द–
स्याश्चर्या वर्णभेदा अथ विविधरुचां वीचयो दुर्निरूपाः।
आकाराणां प्रकारा अपि परमचमत्कारिणां यत्र पुष्पा–
द्यत्याश्चर्यैकसीम्नः स्फुरतु मम सदा सैव वृन्दाटवीयम्।।८२।।

इस प्रकार जहां स्वानन्द सच्चिद्रसघन देहधारी श्रेष्ठ वृक्षगणों की आश्चर्यमय वर्णभेद तथा विविध कांति की अनिर्वचनीय तरंगें उठ रही हैं, परम चमत्कारजनक आकृतियों के विविध भेद एवं अति आश्चर्यजनक परम सुन्दर पुष्पादि भी विराजमान हैं–वह यह श्रीवृन्दावन मेरे हृदय में नित्य स्फुरित हो।।८२।।

विचित्रपत्रपल्लव प्रसूनगुच्छजालकै–
रपारमुल्लसन्महा–मरन्दसिन्धुनिर्झरम्।
विचित्ररोचिषाचितं सुधारसात्मकैः फलैः
स्मरामि कृष्णकानने विचित्रशाखिमण्डलम्।।८३।।

विचित्र पत्र पल्लव पुष्पस्तवक–जाल आदि द्वारा अनन्त भावों से उल्लसित महामधु समुद्र का एक मात्र उत्स, विचित्र कांतिमय सुधारस विशिष्ट फलों से पूर्ण, श्रीकृष्ण–कानन (श्रीवृन्दावन) के विचित्र वृक्षों का स्मरण कर।।८३।।

अनन्त–हरि–राधिका प्रणय फुल्लवल्लीद्रुमं
तदङ्घ्रिरसविह्वलैः खग–मृगादिभिर्मण्डितम्।
तदद्भुतविलासवन्नवकुञ्जपुञ्जोदयं
स्मराम्यतिमहोज्ज्वलन्मधुरवृन्द वृन्दावनम्।।८४।।

श्रीराधाकृष्ण के अनन्त प्रणय में प्रफुल्लित वृक्ष–लताएं शोभित हो रही हैं, श्रीयुगलकिशोर के चरण–कमलों के रस में विह्वल पशु पक्षी आदि द्वारा मण्डित, उनके अद्भुत विलासपूर्ण नव–नव निकुञ्जों से शोभित महा उज्ज्वल माधुर्य–गुण भूषित श्रीवृन्दावन का मैं भ्रमण करता हूं।।८४।।

वैकुण्ठे सकलोज्ज्वलेऽतिमधुरेऽप्यत्युज्ज्वलं माधुरी–
पूर्णं चूर्णयदद्भुतैर्निजगुणैर्निश्रेयसाद्यान्यपि।
स्वर्णज्योतिरथोन्मदं मरकतज्योतिर्द्वयं तन्महो
विभ्रन्निर्भरकेलि नूतनवयः पश्यामि वृन्दावनम्।।८५।।

सर्वोज्ज्वल, अति मधुर वैकुण्ठ से भी जो अति उज्ज्वल व माधुरीपूर्ण है, एवं समस्त मुक्तियों के गर्व को भी चूर्ण करने वाला है, प्रगाढ़ विलास परायण, उस नवीन स्वर्ण ज्योति तथा उन्मद इन्द्रनीलमणि की ज्योति–शोभा से समुद्भासित श्रीवृन्दावन का मैं दर्शन करता हूं।।८५।।

प्रकृत्यन्तं गत्वा जड़मनृत–दुखात्मसकलं
परब्रह्मज्योतिः परिचिनु महाविस्तृतमम्।
ततो दूरे शुद्धस्मररसमयाश्चर्य मधुरो
ज्ज्वलं ज्योतिः पूर्णं परमिह हि वृन्दावन–वनम्।।८६।।

प्राकृत मिथ्या दुखात्मक जड़ वस्तुओं को अतिक्रम करके महाविस्तृततम परब्रह्म ज्योति का परिचय प्राप्त कर, उससे परे शुद्ध शृंगार रसमय एवं अति आश्चर्यमय मधुर उज्ज्वल ज्योतिर्मय श्रीवृन्दावन नामक परम–वन शोभित हो रहा है।।८६।।

इहाश्चर्यं गौरासित–नवकिशोरद्वयमहो
महासौन्दर्यौघं परमसुषमापारमनिशन्।
स्मरान्धस्वाभाव्यान्नवनवनिकुञ्जेषु विहर–
त्यतिक्रीड़ा–वैदग्ध्यभिनव चमत्कारमधुरम्।।८७।।

अहो ! यहां आश्चर्यमय गौर–श्याम नव युगलकिशोर महा सौंदर्य राशि तथा परम सुषमा को निरन्तर विकीर्ण करते हुए कामान्ध स्वभाव वश अतिशय क्रीड़ा–कुशलता तथा अभिनव चमत्कार माधुर्य विस्तार करके नव–नव निकुञ्जों में विहार करते हैं।।८७।।

महानन्दानां यत् परमपरमं सारममलं
महासौंदर्यादेर्यदपि परमान्तावधि पदम्।
महाश्चर्यानंगोन्मदरसविलासैकसुमहा–
चमत्कारो यत्तत्दुभय–महादिव्य–मिथुनम्।।८८।।

महा आनन्द राशि का जो विमल परम सार है, महा सौंदर्य की जो परम शेष सीमा हैं, एवं महाश्चर्य अनंग के उन्मद रस का जो विलास चमत्कार है, वह यही महा दिव्य श्रीयुगलकिशोर हैं।।८८।।

सदाहं तन्मध्येऽप्यतिमधुरिमात्युन्मदरसं
स्मरामि श्रीराधाचरण–कमल–ज्योतिरतुलम्।
महाविस्तीर्णं तद्घनतनु–किशोरीं नव तड़ि–
ल्लता–गौरीं कांतिप्रदिम–विजित–स्वर्णलतिकाम्।।८६।।

इन दोनों में भी मैं नित्य माधुर्य की अति उन्मादजनक रसखानि श्रीराधा के चरण–कमलों की महाविस्तीर्ण अनुपम ज्योति का ही स्मरण करता हूं, एवं तद्घन विग्रह स्वीय मृदु कांति से स्वर्ण–लतिका को भी परास्त करने वाली किसी एक नव विद्युत लतावत् गौरवर्ण किशोर का चिन्तन करता हूं।।८६।।

दिगन्तप्रच्छादिच्छविमतुल–सौंदर्यलहरी–
परीतां वैदग्धीनिधिममितभंगीमयतनुम्।
अनन्यां तद्दासीमतिवहलतत्स्नेहविकलां
कलाम्भोधेः पारं परमितवतीं तत्करुणया।।६०।।

वे अपनी कांति से दशों दिशाओं को आच्छादन करने वाले हैं, अतुल सौंदर्य तरंगों युक्त हैं वैदग्धी समुद्र, अपरिसीम भंगिमय तनुधारी हैं, श्रीराधा की अनन्या दासी उनके महान् स्नेह में विकल रहती हैं तथा उनकी कृपा से कलाओं के सागर को उत्तीर्ण होती हैं।।६०।।

महावेणीपुच्छस्फुरितमणिगुच्छां निदधतीं
दुकूलं सवीतस्तनमुकुलयोर्मूर्ध्नि च मुहुः।
सलज्जं सस्नेहं समृदुहसितं सांगबलनं
विलोकैर्विश्वेषां सहजकुटिलैर्विस्मयकरीम्।।६१।।

उनकी महावेणी के सिरे पर मणिगुच्छ सुशोभित हैं, आवृत स्तनमुकुलों के ऊपर तथा मस्तक पर बार–बार वस्त्र ढकती हैं, लज्जायुक्त, स्नेहयुक्त मन्द मुस्कान तथा अंगमोटन के साथ सहज कुटिल दृष्टिपात से सबको विस्मित करने वाली हैं।।६१।।

अतिक्षामां मध्ये पृथुतरनितम्बातिमसृण–
प्रभापूरं दिव्योज्ज्वलरुचिरशाट्यापि दधतीम्।

क्वणत्कांचीदामां रणितमणिमंजीरचरणां
स्फुरच्चूड़ा–रत्नांगद–मृदुलदोर्वल्लि–ललिताम्।।६२।।

उनका कटि देश अति कृश है पृथु नितम्ब अत्यन्त मसृण प्रभा विस्तार कर रहे हैं, दिव्य उज्ज्वल मनोहर साड़ी धारण कर रहीं हैं कांचीमाला का शब्द एवं चरणों में मणि नूपुरों का सुन्दर झनकार होता है, चूड़ा एवं रत्नमय अंगदों से भूषित मृदु बाहुलताएं लालित्य समन्वित हैं।।६२।।

सुचारुग्रैवेयोज्ज्वलपदक–हारावलीरुचिं
सुकर्णे ताटंकम् मणिमयमुदारञ्च दधतीम्।
सुमुक्तां श्रीनासापुटमनु मणिस्वर्णखचितां
दधानां बिम्बोष्ठीं स्फुरदसितविन्दुश्री–चिबुकाम्।।६३।।

सुचारु ग्रीवा में उज्ज्वल पदक हारावली की चमक से सुशोभित है, सुन्दर कानों में मणिमय सुन्दर बाली धारण कर रहीं हैं, श्रीनासापुट में मणि एवं स्वर्ण खचित एक सुन्दर मुक्ता डोलायमान है बिम्बोष्ठ तथा कृष्णवर्ण बिन्दु से सुशोभित चिबुक स्फुरित हो रही है।।६३।।

लसन्मुक्तापंक्ति–प्रतिम दशनश्रेणिविसर–
च्छटौघैः कुर्वाणां दिशमिव चितां कुन्दकुमुदैः।
सदा राधातीव्र–प्रणयरस–रोमांचित–तनुं
निचोलेनाच्छन्नामतिरुचिरगुच्छांचलवता।।६४।।

मुक्ता की भांति दन्त पंक्ति से जो कांति विस्तार हो रही है मानों दशों दिशाओं में कुन्द–कुमुद फूल बिखर रहे हैं, सदा श्रीराधाजी की तीव्र प्रीति में पुलकित होती हैं अति सुन्दर स्तवक शोभित अंचल युक्त निचोलनी द्वारा सब अंगों को आवृत्त कर रही हैं।।६४।।

सदा राधा–पदाम्बुरुह–परिचर्याकुलतया
झनत्कुर्वन्मंजीरकमति चलन्तीं तत इतः।
निजप्राणद्वन्द्वाद्भुत–सुरुचि–सौंदर्यलहरी–
विलासैरानन्दामृतजलधिपूरेऽतिबुड़िताम्।।६५।।

(सप्तभिः कुलकम्)

सदा श्रीराधाजी की चरण सेवा में वे व्याकुल होकर इधर–उधर नूपुरों की झनकार करते हुए अति वेग से घूम रही हैं, अपने प्राण प्रियतम युगलकिशोर की अद्‌भुत सुन्दर कांति सौंदर्य की विलास तरंगों द्वारा आनन्दामृत के समुद्र प्रवाह में अतिशय निमग्न हो रही हैं।।६५।।

महादोषैराढ्यं न खलु गुणलेश्य विषयं
न योग्यं दृक्पातेऽप्यहह सदयानांच महताम्।
सुदुर्मर्षैः स्वस्मिन्नसकृदपराधैरपि युतं
सुतं मातेव त्वं विसृज वत वृन्दाटवि ! न माम्।।६६।।

महादोषपूर्ण तथा गुणों के लेशमात्र से भी रहित अहो ! दयालुमहात्माओं के सामने आने के भी मैं योग्य नहीं हूं। और आपमें अक्षम्य अनेक अपराध करता हूं परन्तु हे वृन्दाटवी ! तुम मातृवत् मुझ पुत्र का त्याग नहीं करना।।६६।।

महामूढं पापैर्गुरुभिरखिलैः शोच्यमसता–
मपि स्वप्नेऽपीषन्न नतहरि तद्‌भक्तचरणम्।
स्वकल्याणोपायोषरमशरणं मामव गुणैः
क्षमा–वात्सल्याद्यैरतिमहित–वृन्दावन ! निजैः।।६७।।

अति पूजनीय हे वृन्दावन ! महामूढ़ अखिल गुरुतर पाप करने में असाधुगणों से भी मैं शोचनीय हूं एवं स्वप्न में भी तनिक भी हरि तथा हरिभक्तों की वन्दना नहीं की है, अपने कल्याण के विषय में भी अचेष्ट हूं , मुझ अनाश्रय का अपने क्षमावात्सल्यादि गुणों से प्रतिपालन कीजिए।।६७।।

तव प्रेष्ठद्वन्द्वं त्वदमलनिकुञ्जेषु विहरत्
सदैवोन्मर्यादं न हि विधिनिषेधादि कलयेत्।
रमेशित्रोस्तत्त्वं किमपि परमं ध्यानरसदं
ततस्त्वं मां वृन्दावन ! न विसृजोच्छृंखलमतिः।।६८।।

हे वृन्दावन ! तुम्हारे निर्मल निकुञ्जों में रमा व श्रीनारायण इन दोनों के परम ध्यानगम्य एवं रसदायी कोई अनिर्वचनीय तत्त्व रूप से तुम्हारे प्रियतम

युगल नित्य असीम विहार कर रहे हैं, ये विधि निषेध के प्रति देखते ही नहीं, अतएव हे श्रीवृन्दावन ! मैं उच्छृंखल हूं परन्तु आप मुझे त्याग नहीं करना।।९८।।

क्व धर्म्मः क्वाधर्म्मः क्व च विविधमर्यादिक–कथाः
क्व भद्रं क्वाभद्रं क्व च विषमदृष्ट्युद्भवलवः।
इह श्रीमद्वृन्दावनभुवि समस्तं स्थिरचरं
यदि ज्ञातं राधापतिरतिमहाचिद्रसघनम्।।९९।।

इस श्रीवृन्दावन भूमि में समस्त स्थावर जंगम का यदि श्रीराधारमण की रतिशील महा चिद्रसघन मूर्ति जान लिया जाय फिर धर्म एवं अधर्म क्या होता है, अनेक विधि निषेध मर्यादा की क्या बात ? अच्छा और बुरा क्या होता है ? तथा विषम दृष्टि जनित द्वन्द्व का लेशमात्र भी कहां रह जाता है ?।।९९।।

प्रकृत्यन्तर्द्वैतं सकलमपि निष्पीय परमो–
ज्ज्वलं ज्योतिर्मात्र किमपि विततं ब्रह्म कलये।
तद्ध्यैशं ज्योतिः परम–परमानन्द–विततं
ततो दूरे प्रेमोज्ज्वलरसमयं ज्योतिरसितम्।।१००।।

प्रकृति के अन्तर्गत द्वैत वस्तुओं का विशेष रूप से दर्शन करके फिर परम उज्ज्वल विस्तृत ज्योतिस्वरूप एक ब्रह्मपदार्थ की ओर दृष्टि जाती है, उसके परे परम महानन्द विस्तृत ऐश ज्योति का दर्शन होता है एवं उससे भी ऊपर परमोज्ज्वल रसमय कृष्ण–ज्योति विराजमान है।।१००।।

तदन्तः श्रीवृन्दावनमिह महाश्चर्यसुषमा–
वयो–रूपौदार्योन्मद–मदनतृष्णैक–सहजम्।
महागौरश्यामं द्वयमतिमहानन्दसुधनं
महाभावोन्मीलन्मधुरतरदास्येन भज भोः।।१०१।।

उसके बीच यह श्रीवृन्दावन है–यहां महाश्चर्य सुषमा मण्डित वयस, रूप, उदारता आदि से उन्मत्त मदन–तृष्णैक स्वभाव, अति महानन्द घन–विग्रह महागौरश्याम–युगल का महाभाव–प्रकाशक मधुरतर दास्य–भाव से भजन कर।।१०१।।

सुस्निग्धाः सुकुमार–सुन्दरतराः स्वानन्द–निःस्यन्दिनः
सुप्रज्ञाः सुरुचः सुशीतलतरच्छायाः सुपुष्पान्विताः।
स्वादीयाः सुफलैः सुगन्ध–मधुभिः पत्रैः शुभैः पल्लवै–
र्वृन्दाकानन उल्लसन्ति तरवः कृष्णे स्वभावोज्ज्वलाः।।१०२।।

सुस्निग्ध, सकुमार एवं सुन्दरतर स्वादन वर्षाकारी, सुन्दर ज्ञान एवं सुन्दर कांति युक्त, सुशीतलतर छाया युक्त, सुन्दर पुष्पों से शोभित, सुगन्ध मधुयुक्त सुन्दर फलों से आस्वादनीय एवं शुभ पत्र पल्लव सहित श्रीकृष्ण में उज्ज्वल स्वभाव वृक्षवृन्द प्रकाशित हो रहे हैं।।१०२।।

श्रीप्रबोधानन्द सरस्वतिपाद–विरचित श्रीवृन्दावन–महिमामृतम् का
दशम् शतक समाप्त हुआ।।१०।।

श्रीश्रीराधाकृष्णाभ्यां नमः

श्रीवृन्दावन-महिमामृतम्

एकादश शतकम्

स्वोत्संगे न्यस्य बाल निजमिममिति दुश्चेष्टमुच्चैरमेध्य-
क्रीड़ं सोढ्वाऽपराधान् सकरुणमति संमृज्य वीतं रजोभिः।
आत्मेश प्रेमदिव्यं स्तनभरममलं पाययित्वा सु मातः
श्रीमद्वृन्दाटवि ! त्वं सहज निरवधि स्नेहपुरेऽभिरक्ष।।१।।

हे श्रीवृन्दावनाटवि ! आप स्वभाव से निरन्तर अगाध स्नेहशीला हो, मैं दुराचारी एवं अपवित्र विषयों में संलग्न हूं, किन्तु आप मुझे अपना बालक जानकर अपनी गोदी में लेकर मेरे समस्त अपराधों को सहन कीजिये, माता जैसे अपने बालक की धूलि झाड़ देती है, उसी प्रकार आप मेरी मलीनता को दूर करते हुए मेरे शरीर का अच्छी प्रकार से मार्ज्जन कर दीजिये। हे जननि ! आप अपने प्रियतम (श्रीराधाकृष्ण) के शुद्ध दिव्य प्रेमामृतरूप स्तन को मुझे भरपेट पान कराकर मेरी हर प्रकार से रक्षा कीजिये।।१।।

धर्माभासोऽप्यहह नहि मे नैव पापाच्चभीति-
र्न श्रीकृष्णे रतिरपि न मे सौहृदं सत्तमेषु।
किन्त्वत्यन्ताहत जन मिमंस्व प्रविष्टं कथञ्चित्
ज्ञात्वात्यन्तागतिमवकृत-स्वीक्रियं यन्यसे चेत्।।२।।

हे श्रीवृन्दावन ! मुझमें धर्म का आभास नहीं है, और न ही मुझे पापों से भय लगता है, श्रीकृष्ण में भी मेरी प्रीति नहीं है, न ही साधुजनों से मेरी मित्रता है, किन्तु किसी प्रकार से मैं आप में (धाम में) निवास कर रहा हूं, बस इतना ही जानकर मुझ अति दुर्भागे, गतिहीन जन को यदि आपने स्वीकार कर लिया है तो अब आप मेरा प्रतिपालन भी कीजिये।।२।।

श्रीवृन्दारण्य ! नित्यं विहितबहुतराक्षम्य पापः स्वधर्म–
त्यागी नो वेद गुर्वादिकमपि वचसा वन्दितस्याङ्घ्रि दूरः।
हाहा जातापराधो मुहुरपि भगवत्भक्तिरतस्वाश्रयं त्वा–
मेकं ज्ञात्वाश्रितोऽहं त्वयि च भवदघः किं करोमि क्व यामि।।३।।

हे श्रीवृन्दावन ! मैं नित्य ही न क्षमा करने योग्य अनेक पापों को करता हूं, अपना धर्म छोड़ चुका हूं और गुरुदेव आदिकों को भी नहीं जानता हूं, वाक्यों द्वारा वन्दना करने योग्य (श्रीभगवान्) के चरणकमलों के आश्रय से भी बहुत दूर हूं। हाय! हाय!! भगवद्भक्ति परायण महानुभावों के प्रति भी बार–बार मेरा अपराध होता है ! अतएव आपको ही केवल मात्र आश्रयस्थल जानकर मैंने आपकी शरण ली है, किन्तु अब आपके प्रति भी पापाचरण करता हूं, अब मैं क्या करूं और कहां जाऊँ ?।।३।।

त्यक्तः सर्वोऽपि धर्मो हरि हरि न मन्यक्त्यक्तमेकं विकर्म
श्रीकृष्णे तस्य नामस्वथ तदनुचरे नागसामस्ति मेऽन्तः।
श्रीमद्वृन्दावन त्वाश्रयमगति गतिं त्वेकलां त्वय्यसद्धीः।
किं कुर्यां कुत्र यायां यदिह वत भवेत्तद्भवत्वेव कामम्।।४।।

समस्त धर्म तो छूट गये हैं, किन्तु हाय ! एक पापाचरण मुझ से जरा भी त्याग नहीं हुआ। श्रीकृष्णके प्रति, उनके नाम के प्रति एवं उनके भक्तों के प्रति मेरे अपराधों का अन्त नहीं हुआ, हे श्रीवृन्दावन ! निराधारों के एकमात्र शरण ! आपका ही मैंने एकमात्र आश्रय लिया है, किन्तु मैं अत्यन्त कुबुद्धि हूं, क्या करूं ? और कहां जाऊँ ? यहां ही जो कुछ होना है, होता रहे।।४।।

सकलगति–विहीन सद्गति सत्वं श्रुतिततिभिः सकलाभिरेव गीता
अतऊरूमहिमा त्वमेव वृन्दाटवि ! मम सच्छरणं न चान्यदस्ति।।५।।

हे वृन्दाटवि ! समस्त श्रुतियां आपको सब गतिविहीन मनुष्यों के लिये एकमात्र शरण पुकार रही हैं, इसलिये जब आपकी इतनी महान् महिमा है तो आप ही मेरे लिये सुन्दर आश्रयस्थल हो, और कोई नहीं।।५।।

असमहत महाधमस्य वृन्दाटवि ! मम निःसम दिव्यवस्तु लिप्सोः।
दृढ़तरमुपहास्यतां गतस्योदयति कृपा तव चेन्मनाक् कुतो हीः।।६।।

हे वृन्दाटवि ! मैं अत्यन्त हतभाग्य महा अधम हूं, किन्तु अनुपम दिव्य

वस्तु की चाहना करता हूं। इसलिये बहुत बड़ा उपहास भी हो रहा है, किन्तु यदि आपकी बिन्दुमात्र भी कृपा मुझे प्राप्त हो जाये, तो फिर लज्जा कैसी ?।।६।।

अहह ! परममग्न सर्वसेतुर्व्रज – युवराज इहात्युदारभावः।
विहरति यदि राधयैव वृन्दावन ! परम त्वयि मे तदा क्व चिन्ता ?

अहह ! हे श्रेष्ठ वृन्दावन !! (विधि–निषेधात्मक) समस्त नियमों को उल्लंघन करने वाले ब्रजयुवराज अति उदारभाव से यदि तुम्हारे यहां श्रीराधा के सहित नित्य विहार करते हैं, तो फिर और मुझे क्या चिन्ता है ?।।७।।

त्वयि चिरमधिराप्य सर्वशक्तिं परम चमत्कृतिमत्यनङ् कुशांस्वाम्।
सुखम रमत राधयैव वृन्दावन ! कथमत्र तदा भवानुदास्ताम्।।८।।

परम चमत्कारी अत्यन्त निरंकुश अपनी सर्वशक्तियों को तुम्हारे भीतर बहुत दिनों से अर्पण करके श्रीराधा के साथ वे सुखपूर्वक विहार करते हैं, हे वृन्दावन ! फिर तुम मेरे विषय में कैसे उदासीन हो ?।।८।।

अपरिमित महामहिम्निधाम्नि त्वयि परमे परमोल्लासद् रसौघैः।
यदि न रसमहं लभेय वृन्दावन ! तपसात्वयि कोटि वर्ष्महेयम्।।६।।

असीम महामहिमायुक्त परमरस प्रवाहकारी परम धाम ! तुम्हारे भीतर यदि मैं रस प्राप्त न कर सका, तो हे वृन्दावन ! तपस्या करके कोटि कोटि देह तुम्हारे में (श्रीवृन्दावन में) त्याग करूंगा।।६।।

त्वयि मे श्वश्रृगालभक्ष्यमेतद् यदि देहं निपातेदयत्नवृत्ति।
अति मंगलमेव तर्हि वृन्दावन ! नो तद्भृतये त्वदन्यदृक्स्याम्।।१०।।

कुत्तों एवं श्रृगालों का भक्ष्य यह मेरा शरीर यदि जीविका की चेष्टा से रहित होकर तुम्हारे भीतर मृत्यु को प्राप्त हो तो मेरा इसमें बहुत मंगल है, हे श्रीवृन्दावन ! इस शरीर के पालन–पोषण के लिये तुम्हें छोड़कर मैं दूसरी ओर देखूंगा भी नहीं।।१०।।

स्वप्ने खलु जागरेऽथवा तव वृन्दे वनतः परत्र मे।
अपि न श्रुत राधिका प्रियान्तिक वृत्ते रूदियाद् प्रियासुता।।११।।

हे वृन्दे ! स्वप्न में अथवा जाग्रत में तुम्हारे वन से परे कहीं और स्थान पर जाने की मेरी इच्छा तक भी न हो, क्योंकि मैंने सुन रखा है कि श्रीराधा के प्रिय श्रीश्यामसुन्दर सदा तुम्हारे निकट ही विराजमान रहते हैं।।११।।

त्रुकचेन विदीर्य्यतां वपु विलयो वाऽस्त्वपि ज्ञातिधर्मयोः।
न मनागपि हातुमस्तु धीर्मम वृन्दाविपिनं सुदुर्लभम्।।१२।।

यह शरीर करात (आरी) द्वारा विदीर्ण हो जाय, अथवा इससे जाति एवं धर्मों का विलोप हो जाये, किन्तु सुदुर्लभ श्रीवृन्दावन को परित्याग करने की बात बिन्दुमात्र भी मेरी बुद्धि में न आवे।।१२।।

हरिभक्तिमहं न कामये मम मुक्तिः प्रतिभाति शुक्तिवत्।
नयनेन निपीय राधिका रतिकुञ्जैरतिमञ्जुलं वनम्।।१३।।

श्रीराधिका के रति कुञ्जों से शोभित अति मनोहर वनका नेत्रों से पान (दर्शन) करते हुए मैं हरिभक्ति की भी कामना नहीं करता हूं और मुक्ति तो मुझे सीपी के समान दीखती है।।१३।।

अपि शुष्क फलादि भक्षयन् क्षुधितो निर्झर वाः विवंतृषा।
गिरिराजगुहासु विश्रामो वस वृन्दाविपिने सुखं सखे।।१४।।

हे सखे ! क्षुधा से आर्त्त होने पर सूखे फलों का भक्षण करके एवं प्यासे होने पर निर्झरों का जलपान करते हुए गिरिराज की गुफाओं में विश्राम करते हुए इस श्रीवृन्दावन में सुख पूर्वक वास कर।।१४।।

कुरु मौनमनीह आस्व वृन्दावन तरुमूल उदश्रु राधिकायाः।
अधिपाणि कपोल आद्यभावोत् पुलककुलः कलयन् सुकेलिवृन्दम्।।१५।।

मौन धारण कर, (शरीर के विषय में) अचेष्ट होकर रहो, श्रीवृन्दावन के वृक्ष के नीचे अश्रुयुक्त कपोल के नीचे हाथ विन्यस्त करके आद्यभाव (शृंगार रस) से पूर्ण होकर पुलकित हो एवं श्रीराधा के सुन्दर केलिविलासादि का दर्शन कर।।१५।।

अब आगे के श्लोकों में अर्थात् श्लोक १६ से ३१ श्लोक पर्यन्त कुलक हैं, जिसमें श्रीकृष्ण द्वारा श्रीवृन्दावन–स्तुति वर्णित है।

वर्होल्लासे वसति शिथिलां केशभारः सुकेश्याः
पश्याम्येतामलकविततिं चारु भृंगावलीषु।
स्मेरास्येन्दोरुदयति कला फुल्ल हेमाब्ज कोशे
नेत्राञ्चल्याश्चकित हरिणी चातुरी माधुरीभूः।।१६।।

(श्रीकृष्ण वचन) :—सुन्दर केशयुक्ता (श्रीराधाजी) की केश शोभा मोरों के पुच्छ विस्तार में वर्तमान है, उनकी अलकावलि मैं सुन्दर मधुकरों में देखता हूं, उनके सुन्दर मुस्कानयुक्त मुखचन्द्र की कला ही प्रस्फुटित स्वर्ण कमलों के कोश में विराजमान है और उनकी नयनकोर चकित हरिणी की नेत्र चातुरी एवं माधुर्य का जन्मस्थान है।।१६।।

श्रीमन्नासा सुतिलकुसुमे बन्धुजीवाधरश्रीः।
कुन्दे दन्तावलि विलसितं कैरवे चारुहास्यम्।।
वल्लीवृन्दे तनुरनुपमा गुच्छसत् कुट्मलादौ।
लक्ष्मीर्वक्षोरुह मुकुलयोर्बाहुवल्ली मृणाले।।१७।।

श्रीराधाजी की सुन्दर नासिका मनोहर तिलपुष्प में उनके अधरों की शोभा वान्धुलीपुष्प में, और दन्त पंक्तियों की आभा कुन्दकलियों में, तथा सुचारु हास्य श्वेत कमल में प्रतिभात हो रहा है, अनुपम तनु लतावृन्द में एवं स्तनमुकुलद्वय की शोभा स्तवकित सुन्दर कुट्मलादि में एवं उनकी बाहुवल्ली मृणालों में विकसित हो रही है।।१७।।

पीनश्रोणिर्विपुल पुलिने कोमलोरु कदल्यां
रक्ताम्भोजे करचरणयोः काऽपि शोभा विभाति।
वृन्दारण्य ! त्वयि निवसति व्यस्तरूपा प्रिया मे
सामस्त्येनोल्लसति तु ममाऽत्राति धन्यांकदेशे।।१८।।

उनकी पीन कटि विपुल पुलिनों में, कोमल उरूदेश केला के वृक्षों में, एवं उनके कर—चरणों की अनिर्वचनीय शोभा रक्त कमलों में प्रकाशित हो रही है। हे श्रीवृन्दावन ! तुम्हारे में मेरी प्रियतमा (श्रीराधा) पृथक्—पृथक् रूपों में निवास कर रही हैं और इसी धन्य क्रोड़ देश (गोद) में वह सम्पूर्ण भाव से उल्लास को प्राप्त हो रही हैं।।१८।।

यदा मे प्राणेश्वर्य्यति निकट एवाति कुतुका—
न्निलीना पश्यन्ति विकलविकल मास्थितवता।
तदा वल्ली वृन्दावन ! तव ससंज्ञं किसलयं
करं धुन्त्र्या सूचयदिदमहो मे महदृणम्।।१६।।

मेरी प्राणेश्वरी मेरे अति निकट होकर अत्यन्त कौतुक पूर्वक भाग

जाती हैं। तब मैं अतीव व्याकुल हो जाता हूं, तब वह (छिपकर) मुझे उस अवस्था में देखती रहती हैं, तब हे वृन्दावन ! तुम्हारी लता संकेत के बहाने अपने किशलयरूप हाथ को हिलाकर उनके छिपाने के स्थान को मेरे लिये बता देती है, उसका मैं कितना ऋणी होता हूं ? अर्थात् मैं तुम्हारा बहुत ऋणी होता हूं।।१६।।

अहो! वृन्दारण्य त्वयि विकसितानन्त कुसुमः
परागैर्निय्यादभि र्नयनयुगलं तत्कलुषितम्।
प्रियायाः फुत्कारः पदरजयता चुम्बन महोत्
सवो लब्धस्तेन त्वमसि मम जीवातु रहह।।२०।।

अहो श्रीवृन्दावन ! तुम्हारे प्रफुल्लित अनन्त कुसुमसमूह से निकले हुए परागबिन्दुओं से प्रियतमा के नयन युगल जब आच्छन्न हों, तब उनके नयनों में फूँक मारने का अवसर अन्वेषण करते हुए मुझे जो चुम्बन महोत्सव प्राप्त होता है, उसके लिये तुम ही तो मेरी जीवन महौषधि हो।।२०।।

यदाचित् कान्ता मामिह तव तमालद्रुमवने
निलीन मा ज्ञात्वाऽप्यवददति धूर्तो न मिलितः।
स्तवाना तं वृन्दावन वर तमालोऽसि दयित
स्त्वमित्युक्त्वा यन्माश्लिषदहमतःक्रीत इह ते।।२१।।

प्रेयसी (श्रीराधाजी) तुम्हारे इस तमाल बन में मुझे छिपा हुआ जानकर भी 'वह अति धूर्त नहीं मिलता' इस प्रकार कहती हैं और तमाल वृक्षों की स्तुति करते–करते कहने लगती हैं कि 'तुम श्रीवृन्दावन के श्रेष्ठ तमाल हो, तुम ही मेरे प्रीतम हो' इतना कहकर श्रीराधा मुझे ही (तमाल जानकर) आलिंगन करती हैं। इसलिये मैं तो तुम्हारे हाथों बिका हुआ ही हूं।।२१।।

सखीभिः कान्तामन्निलयन–सुखेला–सुनिरता
प्रविष्टा श्रीवृन्दाटवि ! तव लता सद्मनि मया।
सखीवेशे नाट्ये मिलित रमिताऽऽगत्य च रुषाऽ
क्षिपद् यद् वः कृष्णायितमिदमितीहास मम हत्।।२२।।

हे वृन्दावन ! सखियों के साथ प्रेयसी तुम्हारे लतागृहों में प्रवेश करके मेरे लुकान रूप सुन्दर खेल में संलग्न हुईं, तब मैंने सखी भेष धारण कर उसी

नाट्य मंच पर उनसे मिलकर रमण किया, जिस पर वह क्रोधित होकर भर्त्सना करती हुई जो यह बोली थी कि 'तुमने ही कृष्ण रूप धारण किया है'—वह वाक्य मेरे हृदय में अब तक परमानन्द प्रदान कर रहे हैं।।२२।।

सुपुष्पं श्रीवृन्दावन ! तव सुतुंग द्रुमशिरो—
गतं काङ्क्षन्त्याऽऽहेत्यनघ भव नीचो मम मुदे।
मया नेत्युक्तोऽपि प्रहसन परेणैव विटपी
यदुक्तं प्रेयस्या अकृत मम तेनोऽति मुदभूत्।।२३।।

हे श्रीवृन्दावन ! प्रेयसी (श्रीराधा) ने तुम्हारे सबसे ऊंचे वृक्ष की चोटी पर विकसित पुष्प की इच्छा करते हुए वृक्ष को कहा—'हे अनघ ! मेरे आनन्द के लिये तुम नीचे होओ।' मैंने हंसी में ऐसा करने से उसे मना किया परन्तु वृक्ष ने श्रीराधा के कथनानुसार ही कार्य किया। इससे मुझे अतिशय आनन्द हुआ।।२३।।

विचित्र श्रीवृन्दाटवि ! तव यदा चित्र कुसुमै—
रपूर्व प्रेयस्या व्यरययमहं वेशममलम्।
प्रसादमेतत् प्रार्थितमथ सकृच्चुम्बन मुदा—
द्धसन्ती यत्तेन त्वमपि वशगं मां कृतवती।।२४।।

हे विचित्र श्रीवृन्दावन ! जब तुम्हारे विचित्र कुसुमों से प्रेयसी के लिये मैंने वेश रचना की, तब उन्होंने मुस्कराते हुए मेरी प्रार्थना के अनुसार प्रसाद रूप में जो मुझे एक चुम्बन प्रदान किया—तभी से मैं तुम्हारे आधीन हो गया हूं।।२४।।

अहो वृन्दारण्य ! त्वमसि परमं धन्यमिह य—
च्चलन्ती श्रीराधा त्वदुरू सुषमालोक—कुतुकात्।
प्रसूनानां वर्षैः पथि पथि समाच्छादयसि तां
स्तवीषि श्रोत्रैक प्रिय शुक—पिकाद्यद्भुत गिरा।।२५।।

अहो श्रीवृन्दावन ! तुम ही परम धन्य हो क्योंकि तुम्हारे अतिशय सुशोभित रूप के दर्शन—कौतुक में जब श्रीराधाजी चलती हैं, तब तुम उनके पथ—पथ पर कुसुमों की वर्षा करके उन्हें आच्छादन कर देते हो एवं शुक—पिकादि के कर्ण को आनन्द देने वाले अद्भुत वाक्यों से उनकी तुम स्तुति करते हो।।२५।।

स्मयध्वं किं सख्यः प्रतिपद कदाऽशंक–हृदया
न किं वृन्दारण्येऽद्‌भुतमहिमनि स्वर्णलतिकाः।
त्वरन्ति स्वच्छन्दं मरकतमयाश्च द्रुमवरा
मिथः संश्लेषेण स्फुटमतुल शोभाञ्च दधति।।२६।।

हे सखिगण ! हृदय में हर समय कुभाव की आशंका रखते हुए तुम हंसी उड़ाती हो क्या? इस अद्‌भुत महिमायुक्त वृन्दावन में स्वर्णलताओं के समूह नहीं हैं क्या ? इन्द्रनीलमणि– मय वृक्षों के समूह स्वच्छन्द रूप से जहां तहां क्या आन्दोलित नहीं हो रहे हैं? उनके परस्पर मिलन में क्या अतुलनीय शोभा स्पष्ट रूप से नहीं दीखती है क्या ?।।२६।।

जयिन्यक्षद्युते चतुरधर संचुम्ब मुरली
ग्लहे मयाऽऽस्वादित्सति तु जितकाशिन्यथ मृषा।
प्रियन्तिर्भावज्ञा व्यथित तनु वृन्दाटवि तवाऽऽ–
खिलं साक्ष्यं तन्मे त्वयि पर रतेर्हेतुरतलः।।२७।।

परस्पर संचुम्बन और मुरली का पन लगाकर खेलते हुए वह (श्रीराधा जी) मुझसे चार बार जीत गईं, परन्तु जब 'मैं ही जीता हूं'–इस प्रकार की मैंने मिथ्या बात कही और सखियों के सामने ही उनका चुम्बन करने को उद्यत हो उठा, तब हे वृन्दाटवि ! तुमने प्रिया के अन्तर भाव को जानते हुए जो साक्षी दी थी, वही ही तुम्हारे में मेरी परम प्रीति का अतुलनीय कारण है।।२७।।

सखीं दूरीकृत्य स्वयमरचि सम्वाहन कला
मया यस्य प्रेम्णामृदु मृदु चोरास मुदा।
तदेतच्छ्रीराधाचरण कमलं कोमल तराऽ–
रुणज्ज्योतिर्वृन्दाटवि ! कुतुकतस्त्वां समटति।।२८।।

हे वृन्दाटवि ! सखियों को दूर भेजकर मैं स्वयं ही जिसका संवाहन करता हूं और जिनके प्रेम से मैं आनन्द पूर्वक मृदु मधुरभाव से जिनको वक्षस्थल पर धारण करता हूं, अत्यन्त कोमल अरुण–ज्योति पूर्ण वे श्रीराधाजी के चरणकमल कौतुहल वश तुम्हारे ऊपर पर्यटन करते हैं।।२८।।

श्रीराधाया यदनुनिमिषं रूप–लावण्य–लीला
वैदग्ध्यादि परम सुचमत्कार भूमा ममापि।

आनन्दानामधिकमधिकं यच्चमत्कार–धारा
तच्छ्रीवृन्दावन तव महानेषः कोऽपि प्रभावः।।२६।।

हे श्रीवृन्दावन ! निमेष प्रति निमेष में जो श्रीराधा के रूप लावण्य एवं लीला वैदग्धी आदिकों के परम सुन्दर चमत्कार की पराकाष्ठा अवस्था अभिव्यक्त होती है, और मेरे भी आनन्द समुद्र में जो अधिकतर रूप से चमत्कार प्रवाह उच्छलित होता है, वह समस्त तुम्हारा ही कोई एक महाप्रभाव कहा जाएगा।।२६।।

श्रीराधाया सम च यदहो केलि चातुर्यधारा
यच्चात्युच्चैर्निरवधि वरीवृध्यते कामतृष्णा।
गाढ़ं गाढ़ं यदति वलते कोऽपि नौ प्रेमबन्धः
सर्वं वृन्दावन रसखनैः भक्ति विस्फूर्ज्जितं ते।।३०।।

अहो ! श्रीराधा के साथ मेरी जो विलास–चातुर्य धारा है, और जो कामतृष्णा निरन्तर वर्द्धित हो रही है तथा हम दोनों का प्रेमबन्धन जो दृढ़तर होता जा रहा है, हे श्रीवृन्दावन ! यह समस्त रस समूह तुम्हारी ही शक्ति से उत्पन्न हो रहा है।।३०।।

स्वात्मेशर्य्यास्तव गुणनिधे राधिकायाः सदैव
प्रीतिस्त्वयुद्भवति सहजाऽहं च ते क्रीत एव।
यद्यत्यन्ताघटित–घटनां त्वं चिकीर्षस्यवाधं
कुर्वित्येवं हरिकृतनुति भाति वृन्दाटवीयम्।।३१।।

हे गुणनिधि श्रीवृन्दावन ! तुम्हारी स्वामिनी राधिका तुम से नित्य ही सहज प्रीति करती है और मैं तो तुम्हारे हाथों बिका ही हुआ हूं। यदि अत्यन्त असंभव घटना को तुम घटाना चाहते हो तो तुम उसे बिना किसी रोक टोक के कर सकते हो–'इस प्रकार श्रीहरि से अनेक प्रकार प्रशंसनीय होकर श्रीवृन्दाटवि शोभित हो रही है।।३१।। (यहां तक कुलक समाप्त हुआ)।

यत्रालकैरिव चलालि–कुलैः सुवृत्त–वक्षोरुहेव कुसुम–स्तवकेन वल्ली।
कांचन्यधात्किशलयेन सुपाणिनेव तन्वास्तदंगसुषमा वृषभानुजायाः।।३२।।

यहां श्रीवृन्दावन में घुंघराले बालों की भांति जहां तहां संचरण करने वाले भ्रमरों से वेष्टित होकर तथा सुन्दर सुदीर्घ स्तनयुगल की भांति

पुष्पस्तवकों से सुशोभित होकर सुन्दर हाथ रूप पल्लवों से मण्डित होकर कोई एक स्वर्णलता सुकुमारांगी श्रीवृषभानुदुलारी के अंगों की शोभा को धारण कर रही है।।३२।।

यत्रानिशं विहरतः सह राधयैव व्यंजत्प्रतिक्षण महाद्भुत रूपराशेः।
वैकुण्ठगै रति महामधुरच्छटौघै स्तन्नायकः सहरमः सगणो मुमोह।।३३।।

यहां श्रीराधा के सहित निरन्तर विहार करने से श्रीहरि भी प्रतिक्षण महाअद्भुत रूपराशि से प्रकाशित हो रहे हैं, वैकुण्ठ पर्यन्त गमन करने वाली उस महामधुर कान्ति के प्रवाह में वैकुण्ठ के नायक श्रीनारायण तथा लक्ष्मीजी भी अपने पार्षदों सहित मोहित हो रहे हैं।।३३।।

परम विमुक्तिः साक्षाद् भूरिरस सर्वस्वमेव वा साक्षात्।
साक्षादथ विश्वभाग्यं जीयाद् वृन्दावनं श्रुतैर्मृग्यम्।।३४।।

साक्षात् परम विमुक्ति एवं साक्षात् सर्वस्व प्रचुर रस तथा साक्षात् विश्वभाग्य स्वरूप श्रीवृन्दावन की जय हो, जिसका श्रुतिगण भी अन्वेषण कर रही हैं।।३४।।

हरिभक्तिसुरस–सिन्धो मन्थादिव सारमुत्थतं किमपि।
आश्रय परमोदारं सकलासारं विहाय राधिकारामम्।।३५।।

हरिभक्ति के सुरस सिन्धुमंथन से यह अनिर्वचनीय सार रूप श्रीवृन्दावन प्रगट हुआ है, समस्त असार वस्तुओं को त्याग कर परम उदार श्रीराधिका–उपवन (इस श्रीवृन्दावन) का आश्रय कर।।३५।।

अस्तु वा माऽस्तु वा वस्तु यद् वयं मृगयामहे।
वृन्दारण्ये न्यस्तमेव स्वयमस्तं ब्रजद् वपुः।।३६।।

हम जिस वस्तु की खोज करते हैं, वह मिले या न मिले, किन्तु हमने स्वयं विनाशशील देह को श्रीवृन्दावन में न्यस्त कर दिया है।।३६।।

अहमत्यबुधोऽबोध्य बुधो यूयं तु पण्डिताः।
मण्डिनास्तु परं वृन्दावन धूल्यैव मे तनुः।।३७।।

मैं अत्यन्त अज्ञानी एवं बुद्धिरहित हूं और आप बुद्धिमान हैं, किन्तु मेरा यह शरीर श्रीवृन्दावन–रज से मण्डित रहे–यही मेरी प्रार्थना है।।३७।।

शास्त्राणि माकर्णपथं प्रयात सद्योक्तिकाः सद्गुरवो नमो वः।
वृन्दावनप्रेमरसोन्मदान्धं किमुद् ग्रहं ग्राह्यताऽति हास्याः।।३८।।

समस्त शास्त्र मेरे कानों में प्रवेश नहीं करें और हे सद्युक्तियों के प्रदाताओ! हे जगद्गुरुजनो! आपको भी मेरा नमस्कार है! श्रीवृन्दावन के प्रेमरस में उन्मत्त एवं मतवाले मनुष्य के लिये उद्ग्रह (वमन) क्यों ग्रहण कराते हो? (अर्थात् विद्या–विचार में क्यों प्रवृत्त कराते हो?) इससे आपका बहुत उपहास होगा।।३८।।

अत्यन्तमाविष्टमति प्रणष्टमुपेक्षतां मां सकलोऽपि लोकः।
स्वस्मिन् प्रविष्टं कृमिवन्निकृष्टं वृन्दाटवि मामुररी करोति।।३९।।

समस्त लोक मुझे अत्यन्त माया लिप्त और बहुत ही नीच जानकर मेरी उपेक्षा कर दें, परन्तु श्रीवृन्दावन अपने (धाम) में प्रवेश किये हुये तुच्छ कृमि के समान निकृष्टव्यक्ति को (मुझे) अंगीकार ही करेंगे।।३९।।

दैवोपपन्नान्न कृतात्मवृत्तिः श्रीकृष्णचन्द्रेऽति रसानुवृत्तिः।
वृन्दावनैकार्पित चित्तवृत्तिः किं स्यामहं त्यक्तपरं प्रवृत्तिः।।४०।।

दैवयोग से प्राप्त हुए अन्न से जीविका निर्वाह करता हुआ अति रसाविष्ट चित्त से श्रीकृष्ण का अन्वेषण करते–करते एक मात्र श्रीवृन्दावन में ही चित्तवृत्ति को लगाकर तथा और समस्त प्रवृत्तियों को त्याग करके मैं क्या श्रीवृन्दावन में वास कर सकूंगा?।।४०।।

धर्मं न जान्यम्यथवाप्यधर्म साध्यं न जानाम्यथवाप्यसाध्यम्।।
संकल्प एषोऽद्य कृतो गृहीत्वा तीर्थाम्बु वृन्दाविपिनं न हातुम्।।४१।।

मैं धर्म को नहीं जानता हूं और न ही अधर्म को जानता हूं, साध्य और असाध्य वस्तु को भी नहीं जानता हूं, किन्तु तीर्थ जल ग्रहण करके आज मैंने यह संकल्प किया है कि मैं श्रीवृन्दावन को त्याग नहीं करूंगा।।४१।।

संकल्पोऽति प्रणय विवशस्याद्य मेऽभूदकस्मात्
श्रीमद्वृन्दाविपिन–बलये क्षेत्र–संन्यास एव।
दृष्टादृष्टं सकलमपि तद् रक्षणार्थादुपेक्षि
प्रत्यूहश्चेत्तदपि शरणं राधिकारामनाम।।४२।।

आज अकस्मात् अति प्रेम विवश मेरे चित्त में क्षेत्र–संन्यासरूप संकल्प ग्रहण हुआ है, दृष्ट तथा अदृष्ट सब कुछ इस संकल्प की रक्षा के लिये मैंने छोड़ दिया है, यदि इससे कोई विघ्न उत्पन्न हो तो भी यह श्रीराधिका उपवन (श्रीवृन्दावन) ही मेरी शरण है।।४२।।

श्रृंगाराख्यो मधुर मधुरः कोऽपि दिव्यो रसेन्द्रः
साक्षाद् वृन्दावनरसभुवि महादिव्य माधुर्य सीमा।
स्फारज्योतिः प्रसर सुमृगश्याम रत्नायमानः
श्रीराधाया निरवधि लसत्–कण्ठ संश्लिष्ट आस्ते।।४३।।

श्रीवृन्दावन की रसभूमि पर महादिव्य माधुर्य्य की चरम सीमा स्वरूप साक्षात् श्रृंगार नाम का कोई मधुरातिमधुर दिव्य रसराज स्वरूप विस्तृत ज्योति को प्रसारण करने वाला सुन्दर मृगजातीय पुरुष विशेष श्यामरत्न स्वरूप से श्रीराधा के कंठ को निरन्तर आलिंगन करके विराजमान है।।४३।।

पश्य प्रेयसि चारु चम्पक–तरोरुग्रं प्रसूनावलि–
व्याजात् कामहुताशनो वत समारुह्याऽत्र वृन्दावने।
सद्योऽतिद्युतिमान्दिधक्षुरिव नौ सम्वीक्षते कर्ह्यम्
किञ्चित्कौतुकतोऽपिजात विरहाभासौभवेतामिति।।४४।।

हे प्रियतमे! देखो इस श्रीवृन्दावन में सुन्दर चम्पक वृक्ष के पुष्पों के छल से कामाग्नि एकदम उग्रभाव में अति दीप्तिमान होकर हम दोनों को जलाने के लिये ही मानो इच्छा कर रही है, और कब हम दोनों किसी कौतुक से या विरहाभास से पृथक् होंगे–वह यही प्रतीक्षा कर रही है।।४४।।

श्रीमद्वृन्दावनाधीश्वरि! तव यदि सत्कर्णिका कर्णिकारं
माला मन्दारपुष्पै रलकविरचना बन्धुजीव प्रसूनैः।
रक्ताम्भोजं सुवेणी शिखरमनु करे केलि कल्हार संगे
काश्मीरं सोर्म्मिशाटी परिधि रथ मता स्वानुवृत्तिस्त्वमेव।।४५।।

हे श्रीमद्वृन्दावनाधीश्वरि! कर्णिका के कर्ण भूषण, मन्दार पुष्पों की माला, बन्धूक पुष्पों से अलक–रचना, सुन्दर वेणी के अग्रभाग पर लाल पद्म, हाथ में नीला पद्म, अंगों में कुंकुम और लहरदार साड़ी–इस प्रकार जब आप

शृंगार धारण करती हो, तब मैं तुम्हारा ही अनुसरण करने की इच्छा करता हूं।।४५।।

रतिः सा स्याद्राधा सकल जड़चिल्लोक परमा
रमाद्यत्याश्चर्याऽम्बुज दृगनिशं प्रार्थ्य दृगनुतः।
स्मरः साक्षात् कृष्णोऽनवधि रति तुष्णोऽखिल परः
परेश प्रोन्मीलद्रुचि जलधि वर्द्धैक रुगणुः।।४६।।

समस्त प्राकृत और दिव्यलोकों की सर्वश्रेष्ठा लक्ष्मी आदि और अति आश्चर्य जनक कमल के से नेत्रों वाली देवीगण भी जिसकी थोड़ी सी कृपादृष्टि के लिये प्रार्थना करती रहती हैं–वह श्रीराधाजी ही रति हैं और परमेश्वर (श्रीनारायण) आदि के कान्ति–समुद्र को अपनी अति थोड़ी द्युतिकिरण दान करके उसे तरंगायित करने वाले, असीम रतिलालस एवं सर्वश्रेष्ठ श्रीकृष्ण ही साक्षात् कामदेव हैं।।४६।।

दिव्य स्त्रीरत्नमुख्यं विषयति विषयं थूत्करोत्येव मुक्तिं
कुण्ठं वैकुण्ठसद्वैभवमपि तनुते स्वान्त सन्तोषनाय।
अन्यत् किं धन्य गोपी रसमपि रसयेदन्त्य विश्रान्तिशून्यं
श्रीवृन्दारण्यमेतद् यदि पर कृपया स्वेश्वरीं दर्शयेत।।४७।।

यह श्रीवृन्दावन यदि परम कृपा करके अपनी स्वामिनी श्रीराधा का दर्शन करा दें तो दिव्य स्त्री एवं रत्नादि श्रेष्ठ विषय विष की भांति लगते हैं, मुक्ति को थूत्कार देने की इच्छा होती है, अपने संतोष के लिये प्राप्त हुए वैकुण्ठ के वैभवादि भी कुण्ठित प्रतीत होते हैं, इससे अधिक और क्या कहूं–अनन्त असीम धन्य गोपीरस (मधुररस) भी आस्वादन किया जा सकता है।।४७।।

श्रीवृन्दाकाननं सालि श्रीराधा सालिकाननम्।
रसज्ञ तिलकामोदि तिलकामोदि संस्मर।।४८।।

जहां सखीगणों के सहित श्रीराधाजी का घुंघराली अलकावलि युक्त श्रीमुख शोभित हो रहा है, एवं श्रेष्ठ रसिक भक्तों को आनन्द देने वाले श्रीकृष्ण को चरम आनन्द दायिनी श्रीराधा जहां आनन्दित हो रही हैं, उस श्रीवृन्दावन का सम्यक् स्मरण कर।।४८।।

अथवा :—सालि, श्री(विल्व), राधा (मरुवक) एवं साल के वनों से शोभित तथा, रसाल (आम), तिलक (लोध्र, केतकी) और आमोद (शतावरी) युक्त एवं तिल—पुष्पों की सुगन्धी से सुवासित श्रीवृन्दावन का भली प्रकार से स्मरण कर।।४८।।

गोपी प्रियक पुन्नागोद्‌भूति वृन्दावनेऽलस।
गोपी प्रियक पुन्नागोद्‌भूति वृन्दावने लस।।४६।।

हे अलस व्यक्ति ! गोपीलता, प्रियक (नीम, प्रियंगु) एवं पुन्नाग पुष्पों के वृक्षों के उत्पत्तिस्थल श्रीवृन्दावन में गोपीगण के प्रियतम पुरुष श्रेष्ठ श्रीश्यामसुन्दर मनोज्ञ संपत्ति वृन्द (भाव, रस—वृन्द) के अवन में (आश्रय में) उल्लास को प्राप्त हो रहे हैं।।४६।।

श्यामाभिरामाश्चर्यर्द्धि मुकुन्द रसवत् कलिम्।
कुञ्जशय्यागतां राधामिव वृन्दाटवीं स्मर।।५०।।

श्रीश्यामसुन्दर की मनोरम आश्चर्य संपत्ति युक्ता, एवं परमप्रिय प्रीतम सहित रसमय विवाद परायणा तथा कुञ्ज शय्या पर आगमनकारी श्रीराधाजी के तुल्य श्रीवृन्दाटवि का स्मरण कर।।५०।।

नीलेन्दीवरवृन्द चम्पकरुचिर्नीलोल्लसत् पीतक
श्रीवासः स्फुरिता महाद्‌भुतरतिर्मत्तालि मालान्विता।
स्वारूप्यं स्वसुहृद्वयस्य दधती भूयात् प्रभुयाद्‌भुतं
राधाकृष्ण विलास वीक्षण मुदां वृन्दारवृन्दाटवी।।५१।।

नीलकमल समूह एवं चम्पक वर्ण विशिष्ट, उज्ज्वल नील तथा पीत वर्ण सुन्दर वस्त्रों द्वारा सुशोभित, अद्‌भुत रतियुक्त एवं मत्त सखियों के सहित अपने प्रियतम युगल के अद्‌भुत स्वरूप को धारण करने वाली श्रीवृन्दाटवि श्रीराधाकृष्ण के विलास दर्शन की अत्यधिक आनन्दराशि के लिये अनन्त काल तक प्रकाशित रहे।।५१।।

अन्योन्याश्चर्यरूप प्रकटित सकलैः स्पर्द्धयाऽन्योन्य मुच्चै
र्दिव्यादिव्यैरनन्तैर्लसदति मधुराऽनल्पसत् कल्पवृक्षैः।
लग्नैश्चानन्त शाखा स्वनघ मणिमयैः प्रेयसोर्भूषणौघै
र्गन्ध स्रग् वस्त्रभक्ष्यादिभि रनुपतनैर्नौमि वृन्दावनन्तत्।।५२।।

जिनकी अनन्त शाखाओं में प्रियतम–युगल के परम पवित्र मणि–भूषणादि लगे हुए हैं एवं जिनसे गन्ध माला, वस्त्र, भोजनादि पदार्थ निरन्तर पतित हो रहे हैं, परस्पर अतिशय स्पर्द्धा से विभिन्न भावों में आश्चर्यरूप से यह सकल सामग्री प्रकटकारी, दिव्यातिदिव्य अनन्त मधुर अनेकानेक ऐसे सुन्दर कल्पवृक्षों से सुशोभित श्रीवृन्दावन को मैं नमस्कार करता हूं।।५२।।

इयं सर्वार्थानां वितरण महाकल्पलतिका
महा सन्तप्तानामियममृत वृष्टिः शिशिरता।
इयं कृष्णप्रेमाध्वसु विरचिता लोलमनसो–
ऽद्भुता वृन्दाटव्युल्लसति रस विश्रान्ति रचना।।५३।।

यह श्रीवृन्दाटवि समस्त प्रयोजनों को वितरण करने में महाकल्पलता के समान है, एवं महा सन्तप्त जीवों के लिये यही अमृत वर्षण करने वाली शीतलता है, अनुरागी जनों के लिये यह कृष्णप्रेम प्राप्ति के स्वरूप का सुन्दर पथ बनाने वाली हैं। यही श्रीवृन्दावन ही रस के एकमात्र विश्रामस्थान रूप में उल्लसित हो रहा है।।५३।।

भृंग श्रेणी विचलदलका पंकजान्याननानि
नालानि श्रीमृदु भुजलताः केशरा दन्तपंक्तिः।
यासां राजन्मृदुल दलततिर्दन्तवासांसिराधा–
सख्यो वृन्दावन भुवि जयन्त्याद्भुताः पंकजिन्यः।।५४।।

जिनकी इधर उधर झूमती सुई घुंघराली अलकावलि मधुकर श्रेणी के समान है, जिनके मुखवृन्द कमलों के समूहवत् हैं एवं सुन्दर कोमल भुजलताएं पद्मनाल जैसी हैं, जिनकी दन्तपंक्ति कमल के केशर एवं अधर समूह शोभायुक्त कमलों के मृदु दल समूह के समान हैं–वे अद्भुत कमल स्वरूपिणी श्रीराधा की सखियां श्रीवृन्दावन में जययुक्त हो रही हैं।।५४।।

यस्मिन् सरोवर नभोवलयेषु दिव्य
पीयूष निर्मल पयश्चय चन्द्रिकेषु।
कान्तश्चकास्ति कलहंस शशी विकाशि–
सत् कैरव प्रकर तारक राजि रम्येः।।५५।।

प्रफुल्लित मनोहर कुमुदिनी–समूह रूप तारावलि से सुशोभित श्रीवृन्दावन के सरोवर रूप आकाश मण्डल में दिव्य अमृत–वत् पवित्र जलरूप चांदनी में कालहंस रूपी मनोहर चन्द्रमा शोभित हो रहा है।।५५।।

अद्याऽति चित्रमहमत्र विलोक्य मुग्धा
मुग्धाक्षिकाऽपि कमनीय कलं निकुञ्जे।
सत् पद्मिना कनकमप्यति दिव्य लीला
नीलेन्दु बिम्बमभिचुम्बति पंकजेन।।५६।।

आज यहां (श्रीवृन्दावन) के निकुंज में मैं एक विचित्र (लीला) देख कर मुग्ध हो गई एवं मेरे नेत्र भी मुग्ध हो गये (मैंने देखा कि) एक स्वर्णवर्णा सुन्दर कमलिनी अति दिव्य लीलाशाली एक नील चन्द्र बिम्ब को मुखकमल से चुम्बन कर रही है।।५६।।

यत्रेति कामपि सुधीर सखीं वदन्ती
भ्रान्तिस्तवेयमिति साध्वभिधाय राधा।
अन्या भवेदपि कदाचिदिति प्रकाश
हासोक्तिमक्षि पदुरु स्फुरिताधरौष्ठी।। युग्मकम्।।५७।।

जब यह बात किसी एक सखी ने कही, तब श्रीराधाजी ने वहां जाकर उसे उत्तम रूप से कहा–'देखो, तुम्हारी इसमें (दर्शन में) भूल हुई है! किसी समय और भांति भी भूल हो सकती है। (किसी दूसरे नायक के दर्शन भी कर सकती हो)' यह कहती हुई श्रीराधाजी स्पष्ट हंसकर अधरों को कम्पाती हुई विराजमान हो रही हैं।।५७।।

राधाप्रेम महर्द्धि भूषित तनु नित्यं तया श्यामल–
श्चन्द्रो भूषित विग्रहो विलसिता तेनाऽपि कुञ्जावली।
वृन्दाटव्यनया तया विलसितं श्रीमाथुरं मण्डलं
तेन श्रील विकुण्ठधाम सुभगस्तेनाऽपि सर्वेश्वरः।।५८।।

श्रीराधा नित्य ही प्रेम समृद्धि से अपने विग्रह की शोभा को विस्तारित कर रही हैं और उनके साथ मिलकर श्यामचंद्र विग्रह भी शोभित हो रहा है, उससे कुञ्जों की शोभा बढ़ रही है। इन कुञ्जों की शोभा से वृन्दाटवि भी शोभित हो रही है। उससे मथुरा मण्डल भूषित हो रहा है। जिससे समस्त

श्रीकृष्ण धामों का सौभाग्य उदय हुआ है। अतः यह श्रीवृन्दावन समस्त धामों का अधिपति है।।५८।।

सान्द्रानन्द–मयाकृति र्हरि–रनन्तात्म–स्वरूपैः सदा
स्वानन्दात्मकलीलया निजनिजैरेकान्तिभिश्चिद्घनैः।
क्रीड़ेत् स्वात्मपदे समस्त पुरुषार्थानां कृतापार्थतः
स्तेनाऽशेष चराचरं शरणगं सर्वात्मना भूषितम्।।५६।।

हे श्रीवृन्दावन ! सान्द्रानन्द–घन श्रीहरि अपने एकान्त चिन्मय अनन्त स्वरूपों के साथ अपनी आनन्दमयी लीला द्वारा समस्त पुरुषार्थों को व्यर्थ करके अपने धाम में क्रीड़ा करते हैं, वह सर्वात्मा श्रीकृष्ण से विभूषित धाम आप हो, अतः आप स्थावर जंगमात्मक ब्रह्माण्डों के द्वारा शरण लेने योग्य हैं।।५६।।

अन्नं क्षुत्पीड़ितानामिव मधुरतरं शीत–वारीव तीब्रो
दन्यानां कामिनां सद्युवतिरिव धनं वाऽतिकार्पण्य भाजाम्।
धर्मार्त्तानां तुषारद्रुम इव पितरावर्भकानामिव श्री–
वृन्दारण्ये ममास्तां हरिरिव भजतां ब्रह्मवद् योगभाजाम्।।६०।।

क्षुधार्त्त जनों को मधुरतर अन्न के समान, तीव्र प्यासे जनों के लिये शीतल जल के समान, कामीपुरुषों के लिये सुन्दरी नारी के तुल्य, अति कृपणों के लिये धन के समान, धूप तपे हुओं का तुषार–हिम के शीतल वृक्ष के समान, सन्तान के लिये पिता–माता तुल्य, साधकों को श्रीहरि के समान और योगियों को ब्रह्म के समान–श्रीवृन्दावन में मेरी दृढ़ता पूर्वक मति रहे।।६०।।

श्रीवृन्दावनमेवमस्तु परमो लाभः परं दैवतं
बन्धुञ्चापि परो गुरुश्च परमो धर्मः परः श्रीपराः।
सत्कीर्त्तिः परमा तपश्च परमं ज्ञानं परं भूयसा
किंवा सर्वमिदं परं मम सदा लोकेषु यन्मृग्यते।।६१।।

श्रीवृन्दावन ही मेरा परम लाभ, परम देवता, परम बन्धु परमगुरु, परमधर्म, परम सम्पत्ति, परम सत्कीर्ति, परम तपस्या और परम ज्ञान हो, और इससे अधिक क्या कहूं ? पृथ्वी पर पाने योग्य जो कुछ भी परम वस्तु है, श्रीवृन्दावन मेरे लिये वही यथेष्ट वस्तु है।।६१।।

बाप्यो यत्र लसन्ति दिव्य ललना भृंगालि केशोच्चया
कूजत् पक्षिकस्तनाः..............................
....
तच्छ्री–माधव राधयोरतिपुरं वृन्दावन पातुनः।।६२।।

जहां सरोवर समूह दिव्य ललनाओं के समान हैं, मधुकर श्रेणी मानो अलकावली है एवं शब्दायमान चक्रवाकादिक पक्षी समूह स्तन तुल्य हैं–श्रीराधामाधव की रति से पूर्ण वह श्रीवृन्दावन हमारी रक्षा करें।।६२।।

लावण्यैक महोदधि गुणमणि श्रेण्यैककोशं महा
श्चर्य्यास्त्रं परमस्य कस्यचिदहो तद्व्यक्त चेतो भवः।
प्रेमानन्द–रसेन्द्रमन्दिरमहो गोविन्द जीवालयः
सा राधा परधाम यत्र तदहं ध्यायामि वृन्दावनम्।।६३।।

अहो! लावण्य का ही एक मात्र जो समुद्र है, गुण मणियों का एक मात्र जो भण्डार है, जो किसी परम देवता का महाश्चर्य अस्त्रस्वरूप है, एवं स्वप्रकाश अनंग के अंग प्राप्ति का स्थल है जो श्रेष्ठ परमानन्द रस का मन्दिर है, श्रीगोविन्द का जीवन–गृह है एवं परम सुन्दरी श्रीराधा का परमधाम है, उस श्रीवृन्दावन का ही मैं ध्यान करता हूं।।६३।।

चाकस्ति श्रीराधा यदधि परमाशेष परमा
हरेः सान्द्रानन्दाम्बुनिधि विधुलेखाति विमला।
महा लावण्याम्भोभर परम सिन्धुः सकल सत्
कला–केलि–प्रोन्मीलित–कमलिनी दिव्यसरसी।।६४।।

श्रीहरि के आनन्दघन समुद्र में अत्यन्त निर्मल चन्द्रलेखा स्वरूपा श्रीराधा यहां (श्रीवृन्दावन में) परमतम उत्कर्ष की परमशोभा विस्तार कर रही हैं, (वह श्रीराधा) महालावण्यरूप जल से पूर्ण परम समुद्ररूपा हैं, एवं समस्त मनोहर कला–विलासादि को प्रफुल्लित कमलिनी हैं व श्रीकृष्ण–क्रीड़ा की विशेष सरोवर रूपा हैं।।६४।।

अहो! वेणुक्वाणैर्हृदय हरिणं यत्र सुदृशां
स्मराब्धीन्दु राधा प्रणय–रस–सिधूर जयति।

स कोऽपि श्यामांग सकल गुण रंगस्थलमति
स्फुरच्छृंगारैकोत्सव–नवकला–मंगल गृहम्।।६५।।

अहो ! कामसमुद्र में उत्पन्न चन्द्रस्वरूपा श्रीराधा का प्रणय समुद्र (श्रीश्यामसुन्दर) यहां सुलोचना गोपियों के हृदयरूप हरिण को वाणों से बेधित कर रहा है। वह श्यामलांग समस्त गुणों का ही रंगस्थल है एवं एकमात्र शृंगार रस की उत्सव पूर्ण नव कलाओं का अति स्फूर्तिदायक मांगलीक मन्दिर विशेष है।।६५।।

प्रायो वृन्दावनश्रीस्त्वयि वसति लसत् पुष्पचा त्रिलोकी–
जैतास्त्रे वार्षभाणव्यति कनकलता कोमलात्युज्ज्वलांगी।
वक्त्रं ते चारुपद्मं दशनततिवियं कुन्द सत् कुट्मलानि
बन्धुकं दन्तवासो दृगपि कुवलयं पल्लवौ पाणियुग्मम्।।६६।।

हे श्रीवृन्दावन ! त्रिभुवन को जय करने वाले अस्त्र को धारण करने वाली लक्ष्मी (श्रीराधा जी) प्रायशः तुम्हारे यहां पुष्प धनुष को ही हाथ में रखती हैं तथा अति कोमल एवं उज्ज्वल अंगों वाली वह श्रीवृषभानु–नन्दिनी स्वर्णलता की शोभा का तिरस्कार करती हुई विराजमान हैं, सुन्दर पद्म समूह ही आपका मुख है, सुन्दर कुन्दकलियों का समूह आपकी दन्तपंक्ति है, बन्धूक पुष्प आपके अधर हैं, नील कमल आपके नेत्र हैं और पल्लव आपके हाथ हैं।।६६।।

सा विद्युल्लतिका चमत्कृतवती काचिन्न राधा स चा–
म्भोदः कोऽपि विजम्भते स्म न पुनर्गोपाधिराजात्मजः।
लीलादैवतयोस्तयोर्मवलता सद्मन्यपि स्यात् सखी
यत्रान्यां प्रतिबोध्य काऽपि च मुदा सन्तोषयेद्राधिकाम्।।६७।।

लीलाविलास परायण श्रीयुगलकिशोर की नवलताकुञ्ज में किसी एक सखी ने–यह चमत्कारिणी विद्युत लता ही है, किन्तु श्रीराधा नहीं है और वह भी कोई मेघ ही प्रकाशित हो रहा है, गोपाधिराज–नन्दन (श्रीश्यामसुंदर) नहीं है।' इस प्रकार किसी अन्य सखी को बताते हुए श्रीराधाजी को आनन्द देकर सन्तुष्ट किया।।६७।।

सञ्चारिणी काचन हेमवल्ली व्यालौकी वृन्दावन मत्तमाले।
सा काञ्चनाद्रि द्वितयं दधाति तत्रापि दृष्टा बहवोऽर्द्धचन्द्राः।।६८।।

श्रीवृन्दावन के तमालों से शोभित स्थान पर कोई चैतन्य हेमलता दीख रही है, वह फिर हेमपर्वत (स्तन) युगल धारण करती है और वहां अनेक अर्द्धचन्द्र (नखाघात) भी दीख रहे हैं।।६८।।

ध्यायन् कांचन कांचनीं सुललितां संचारिणीं पद्मिनीं
रसोल्लास प्रसवत् करो रमयितुं तामेव रात्रिन्दिवम्।
नीलः कश्चन चन्द्रमाः सखि चतुःषष्ठैः कलानां निधिः
श्रीवृन्दावन–दिव्य–कुञ्जकुहर ध्वान्तान्तरे ताम्यति।।६९।।

हे सखी ! कोई स्वर्णवर्णा सुललिता संचरणशीला पद्मिनी का (श्रीराधा का) ध्यान करते–करते एवं उसका दिनरात आस्वादन करने के लिये रसोल्लासयुक्त किरण प्रसारण करके चौंसठ कला–प्रवीण कोई एक नीलचन्द्रमा (श्रीवृन्दावनचन्द्र) श्रीवृन्दावन के दिव्यकुंजों के गुहर के अंधकार में खेल कर रहा है।।६९।।

तदेतच्छ्रीवृन्दावनमति महानन्द रस–सं
पदामेकं कन्दं निरतिशय कन्दर्प–विभवम्।
महा माद्यद्राधा–मुरलिधर नाना–विहरणै
र्मनोहारि प्रेम्णा भज परम भावेन सु सखे।।७०।।

हे बन्धुवर ! अति महानन्द सम्पत्ति के एकमात्र बीजस्वरूप अनुपम काम संपत्ति युक्त तथा महामत्त श्रीराधा मुरलीधर के अनेक विहार से मनोहर इस श्रीवृन्दावन का ही प्रीति सहित परम एकान्त भाव से भजन कर।।७०।।

किमिदमलिकुलैर्मनोज्ञमम्भोरुह मलकावलि मंडितं मुखं किम् ?।
इति विलसति संशयः सखानांत्वमिह यदा सरसि प्रियेऽवतीर्णा।।७१।।

हे प्रिये ! तुम्हारे इस सरोवर में उतरने से सखियों को इस प्रकार का संशय हुआ 'क्या यह भ्रमर समूह से शोभित मनोहर कमल है कि कोई घुंघराली अलकावलि से वेष्ठित मुख है ?।।७१।।

एतत् किं विधुमण्डलं विलसितं नांके कलंकेन किं
वृन्दारण्य विलासिनी सुवदनं किंवा सुविम्बाधरम् ?।
स्यादेवं सखि किंत्वमुष्य दशदिग् व्यापि प्रभामण्डलं
स्वाभाव्यात् कथमित्य कुर्वत कथां यत्रेति राधाऽऽलयः।।७२।।

'क्या यह चन्द्रमण्डल है?'—नहीं, नहीं, इसमें कलंक रेखा तो नहीं है, तो क्या यह श्रीवृन्दावन विलासिनी (श्रीराधा) का सुन्दर वन है? या उसका सुन्दर विम्बाधर है? (इस प्रकार किसी एक सखी के पूछने पर अन्य सखी ने कहा) 'हे सखी ! ऐसा भी हो सकता है (जैसे तुम कह रही हो), किन्तु स्वभावतः ही उसका प्रभा मण्डल चारों ओर क्यों व्याप्त हो रहा है ? इस प्रकार राधा–सखीगण यहां (श्रीवृन्दावन में) वार्तालाप करती हैं।।७२।।

सखि ! वृन्दावन सरसि त्वय्याऽऽकण्ठं निमग्नायाम्।
ह्यः संशेत हरिस्ते वीक्ष्य मुखं किन्विदं महद्वस्तु।।७३।।

हे सखि ! तुम जब कल वृन्दावन के सरोवर में कण्ठ पर्यन्त निमग्न हुई थीं तब श्रीहरि तुम्हारा मुख देखकर 'यह कौन सी महान् वस्तु है,! ऐसा संशय कर रहे थे।।७३।।

एषा चन्द्रकला किमुल्लसति मा धत्ते प्रफुल्लं कुतः
पद्मं किं कमलिन्यसौ स्थलजल स्वच्छन्द केलिः क्व सा ?
संशयेति निकुञ्ज मंजु भवनं यस्य प्रविष्टौ हरिः।
सख्या हास्य–मनोहरेण वचसा निश्चत्य चामोदत।।७४।।

'यह क्या चन्द्रकलाओं का विकाश हो रहा है?—उसमें तो प्रफुल्लित कमल नहीं है। तो क्या यह कमलिनी होगी? जल एवं स्थल पर क्या वह विलास कर सकती है ? इस प्रकार श्रीहरि (श्रीराधा के विषय में) संशय करते हुये श्रीवृन्दावन के मनोहर निकुञ्ज गृह में प्रवेश करते हैं और सखियों के हास्ययुक्त मनोहर वाक्यों से निश्चय करके आनंद को प्राप्त होते हैं।।७४।।

किं श्रीवृन्दाविपिन सरसी राजहंसी गतिं स्वां
राधामध्यापयदिह तयाऽध्यापिता सैव किन्तु ?
किं राधाऽशिक्षयत् चकित प्रेक्षितं तत्कुरंगीः
किं वा ताभ्यः सहज मधुरा सैव जग्राह वाला।।७५।।

श्रीवृन्दावन के सरोवर पर रहने वाली राजहंसी ने क्या श्रीराधा को अपनी चाल की शिक्षा दी है? अथवा इस श्रीराधा ने ही उसे ऐसा चलना सिखाया है? श्रीराधा ने इन हरिणियों को चकित दृष्टिपात की शिक्षा दी है?

कि उनसे ही स्वभावतः माधुर्यशालिनी बाला(श्रीराधा) ने इस विद्या को सीखा है ?।।७५।।

वृन्दाटव्यामति हिमममर्य्याद माधुर्यधुर्य
पादं कश्याप्यतिरुचि भजन पूर्णचन्द्रस्य तस्य।
सान्द्र ज्योत्स्नामृत रसधुरा मंजरी रंजयन् वा
स्नेहैकात्म्याद् यदिह लभते नात्र हृद्वाक प्रचारः।।७६।।

इस श्रीवृन्दावन में अति शीतल एवं अनिर्वचनीय पूर्ण चन्द्र (श्रीकृष्ण) के असीम माधुर्यपूर्ण चरणकमलों का अतिशय अनुराग से भजन करने से एवं उसकी सघन ज्योति के अमृतरस से पूर्णा मंजरीगणों के अनुरंजन करने में स्नेह तादात्म्य से जो वस्तु यहां प्राप्त होती है, वह वाणी एवं मन के अगोचर है।।७६।।

श्रीमद्वृन्दाविपिन परमाभंगुर क्रीड़ राधा
कृष्णोन्मीलद्बहु रसमहः पुंज तत्तद्विशेषान्।
नानावस्था अथ वरतनूंश्चाऽवतारांश्च मन्ये
शास्त्रे तद्वित् सदसि विश्रृणोम्यन्यथा किं करोमि।।७७।।

श्रीमद्वृन्दावन में श्रीराधाकृष्ण मिलकर नाना प्रकार के ज्योतिर्मय विशेष रसों की नाना अवस्थाओं को, समस्त शोभा एवं सौन्दर्यसार विग्रह तथा रस समूह को प्रकाशित करके निरन्तर क्रीड़ा कर रहे हैं—उसे मैं शास्त्रवेत्ताओं की सभा में विशेष रूप से सुनता हूं एवं मनन करता हूं, इससे और अधिक मैं क्या कर सकता हूं।।७७।।

श्रीमद्वृन्दावन नवलता मण्डपे मण्डितांगौ
राधाकृष्णौ निरवधि महानंगतृष्णौ रमेते।
स्वज्योत्स्नानां बहुविध घनद्वारतः सर्वमेव
कुर्वन्तौ निगदति निगमस्तौ स्वतो वाऽन्यतो वा।।७८।।

श्रीवृन्दावन के नवलता मण्डप में विभूषितांग श्रीराधाकृष्ण निरंतर महाकाम–तृष्णायुक्त होकर विहार कर रहे हैं, एवं वे अपनी ज्योत्स्ना राशि के फैलने से वहां की समस्त वस्तुओं को रसमय कर रहे हैं—यह बात वेद स्वयं

अथवा अपने अनुगता अन्यान्य ग्रन्थों द्वारा निश्चित रूप से व्यक्त कर रहा है।।७८।।

अये राधाकृष्णाविति कुरुत संकेतमनयो
र्मुदा यूयं वृन्दावन नव निकुञ्जे विहरतोः।
अहन्तु स्वात्मानं कनक–रुचि–धामाऽत्र कलये
निजात्मैकाजीवाऽद्भुत सुखभरं श्यामलमहः।।७६।।

तुम श्रीवृन्दावन के नव कुञ्जों में आनन्द पूर्वक विहार परायण 'हा राधाकृष्ण ! हा राधाकृष्ण !!, बोलकर संकेत ध्वनि करो, किंतु मैं तो यहां आत्मस्वरूप अपने स्वर्णकान्ति विग्रह को एवं अपनी आत्मा के एकमात्र प्राणधन अद्भुत सुखपूर्ण श्रीश्याम सुन्दर को देखता हूं।।७६।।

अहो ! वृन्दारण्यं वनमिति महानन्द परमं
वदन्त्वेते कामं स्फुरति हृदयेऽन्यन्मम पुनः।
मिथः प्रेमा राधामुरलिधरयोः कोऽपि मधुरो–
महास्फीतस्तस्य स्फुरति घनभावो वहिरयम्।।८०।।

आहा ! परम महा आनन्दमयी श्रीवृन्दावन को–'यह सामान्य वन है'–ऐसा कहकर मत बोल, क्योंकि मेरे हृदय में तो और ही कुछ स्फुरित हो रहा है, श्रीराधामुरलीधर का परस्पर महा उन्नत परम मधुर जो प्रेम है वही नवीन भाव साक्षात् इस श्रीवृन्दावन रूप से प्रतिभात हो रहा है।।८०।।

अहो ! वृन्दारण्येऽद्भुत कनकचंद्रोऽस्ति सततो–
दितोऽनन्तज्योत्स्ना स्नपित दशदिक् कोऽपि मधुरः।
सदा सोऽन्तर्धातः प्रथयति रसं कञ्चन परं
विचुन्वत्यानन्दच्छवितिमिर पुञ्जो यमसकौ।।८१।।

आहा ! श्रीवृन्दारण्य में कोई मधुर अद्भुत स्वर्णचन्द्र (श्रीराधाजी) निरन्तर उदित होकर विराजमान हैं। उनकी अनन्त ज्योत्सना से दशों दिशाएं प्लावित हो रही हैं, दोनों नित्य ही मन में चिन्तित होकर किसी एक अनिर्वचनीय रस का विस्तार कर रहे हैं। एवं तिमिरपुञ्ज उपमा युक्त आनन्द मूर्ति (श्रीश्यामसुंदर) छिपकर बारम्बार उसका चुम्बन करते हुए किसी एक अपूर्व रस का विस्तार कर रहे हैं।।८१।।

यदेतच्छ्री राधावदनमिति वृन्दावन वने
वदन्त्यस्तत् सख्यस्तिलक रचनाद्यं विदधति।
अहं मन्ये प्रेमोज्ज्वल मदनगोपाल रस–स
न्महाम्भोधे र्मन्थाद्वर विधुरसावुत्थित इति।।८२।।

इस श्रीवृन्दावन में श्रीराधा की सखीवृन्द जिसे 'श्रीराधामुख' कहकर तिलक रचनादि करती हैं, वह किंतु मेरी विवेचना से प्रेमोज्ज्वल मदनगोपाल के रसपूर्ण महासागर के मंथन करने से सुंदर चन्द्र का ही आविर्भाव विशेष है।।८२।।

गौरश्यामलमेतदद्भुततमं दिव्यं किशोरद्वयम्
श्रीवृन्दाविपिने महास्मर रसोन्मत्तं सदा क्रीड़ति।
रूपेनाथ वयः श्रिया मधुरवैदग्ध्यात्म तुल्यं परे–
शस्याप्याहित मूर्च्छामङ्घ्रि नखरच्छाया मनाग् दृष्टितः।।८३।।

महान् अद्भुत दिव्य युगलकिशोर गौरश्याम श्रीवृन्दावन में महा स्मररस में मत्त होकर सर्वदा क्रीड़ा कर रहे हैं, वे अनन्य साधारण अपने रूप एवं वय के सौन्दर्य, मधुरवैदग्धी तथा पदनखों की छाया पर जरा सी दृष्टि पड़ने मात्र से परमेश्वर (श्रीनारायण) को भी मूर्च्छित करते हुए विराजमान हैं।।८३।।

सौन्दर्यैक महाब्धि मग्नमति माधुर्यैक साराम्बुधौ
मग्न स्निग्ध सुगौर मोहन महालावण्यसिन्धौ बुड़त्।
नानाचित्र–विचित्र नूपुरकलं कृष्णेन्दु वक्षःस्थली
सौभाग्यं पुरु भगवानिह भजेद्राधा पदाम्भोरुहम्।।८४।।

एक असीम सौन्दर्य रूप महासागर में मग्न, अत्यन्त माधुर्य सार के एक समुद्र में निमज्जित, स्निग्ध सुन्दर गौरवर्ण मन को मुग्धकारी महालावण्य–समुद्र से सिंचित एवं अनेक प्रकार की चित्र–विचित्र नूपुर ध्वनि से युक्त तथा श्रीकृष्णचंद्र के वक्षस्थल को सौभाग्य देने वाले श्रीराधा के चरणकमल का अति भाग्यवान् पुरुष ही इस श्रीवृन्दावन में भजन कर पाता है।।८४।।

प्राप्ताऽशेषः प्राकृतोऽप्राकृतो वा
भोगः प्राप्ता मुक्तयो वा समस्ताः।
प्राप्ता भक्ति वैष्णवी वा ततः किं
क्वाऽऽस्ते राधादास्य–सौख्यानिमाऽपि।।८५।।

समस्त प्राकृत अप्राकृत भोग प्राप्त हो जाएं, मुक्ति समूह मिल जाऐं वैष्णवी–भक्ति (ऐश्वर्य मिश्रा भक्ति) भी यदि मिल जाए तो क्या हुआ ? श्रीराधा के दास्य–सुख का अणुमात्र भी क्या कहीं श्रीवृन्दावन से अन्यत्र मिल सकता है ?।।८५।।

अनित्येऽस्मिन् देहे बुध न दृष्टिं क्षणसुखे।
न मज्जानन्तार्त्तो वत युवति सुख्ये कुविषये।।
वपुष्यस्मिन् श्रोतप्रिययशसि हित्वा रुचिमये।
मनो राधापादाम्बुज–निलयमेवाऽऽशु गमय।।८६।।

हे बुद्धिमान ! इस अनित्य क्षण सुखदायी शरीर के प्रति मत देख, अनन्त सुखदायक युवती के कुविषयों में मस्त मत हो, कानों को आनन्द देने वाला जो इस शरीर का अनुराग है–उसे त्याग करके अपने मन को शीघ्र श्रीराधा के चरण–कमल गृह अर्थात् श्रीवृन्दावन में न्यस्त कर।।८६।।

भ्रातः ! किं मरणं ? मलैक–निलय–स्त्रीपिण्ड–भोगस्पृहा
रोगः को वहिरन्तरून्मथनकृद् द्वेषोऽथ रागः परः।
कः स्वर्गः परमो व्रजेन्द्रतनय प्रेमोत्सवैः संगतिः
किं सर्वोपनिषरहस्य परमं वृन्दाटवी तत्प्रियौ।।८७।।

हे भ्रातः ! मृत्यु क्या है ? एक मात्र मल–मूत्र का भंडार जो स्त्री का शरीर है–उसे भोगने की इच्छा ही मृत्यु है। रोग क्या है ? भीतर बाहर में क्षोभ उत्पन्न करने वाला द्वेष और मोह ही परम रोग है। स्वर्ग क्या है ? श्रीव्रजेन्द्रनंदन के प्रेमोत्सवमय भक्तगणों का संग ही स्वर्ग है। समस्त उपनिषदों का परम रहस्य क्या है ?–श्रीवृन्दावन एवं उसके प्रियतम युगलकिशोर (श्रीराधा–कृष्ण) ही परम रहस्य हैं।।८७।।

अहो ! हसोत्तंसैरनुपम मुदा सेवितमिदं
सदा गन्धोन्मीलत् सुरस कमलाद्युज्ज्वल सरः।
विहाय त्वं काकैः परिवृतमहो पल्लवमिदं
बलत्पंकं चेदिच्छसि न खलु हंस स्त्वमसि भोः।।८८।।

अहो ! अतुलनीय आनन्दमय परमहंसगणों से सेवित एवं नित्य असीम प्रफुल्लित कमलों से शोभायमान इस उज्ज्वल सरोवर को त्याग करके यदि

तुम कागादि से युक्त तथा कीचड़ युक्त अति क्षुद्र जलाशय की इच्छा करते हो, तो तुम अब हंस पदवी के योग्य नहीं हो।।८८।।

कृपालो अद्यात्यद्भुत गुणगणै–रुज्ज्वलतमः
समः श्रेष्ठोऽपि त्वं कियदिव चिरं हन्त न भवेः।
अहो! श्रीमद्वृन्दावन भुवि लसच्चिद्रसतनो
स्तनोत्यारब्धते किमपि नहि कर्माऽवहितताम्।।८९।।

हे कृपालु! तुम अद्भुत गुणों द्वारा उज्ज्वलतम, समदर्शी एवं सर्वश्रेष्ठ होकर भी आज तक मेरे सामने बहुत देर तक स्थायी प्रकाशवान नहीं हुए हो, यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है, क्योंकि श्रीवृन्दावन भूमि पर विलास परायण चिद्रसघन विग्रह धारण करने वाले तुमको किसी विलास रस ने अपने में तल्लीन कर रखा है।।८९।।

अहो ! वृन्दारण्यं मधुरमधुरं सुन्दरतमं
भवेद्भातं निःश्रेयसमिव सतां सा कृति चिरम्।
वसन्तोऽसन्तोषादिह यदपराधांकुर भृते
र्न सद्राधाकृष्ण–प्रणयरससारानुभवि नः।।९०।।

अहो ! मधुर से अति मधुर यह सुन्दरतम श्रीवृन्दावन मूर्तिमान् श्रेय अर्थात् मुक्ति एवं भक्ति के समान साधुजनों के निकट चिरकाल से प्रतिभात हो रहा है। किंतु हाय! असंतोषी होकर यहां वास करने से जो अपराध का अंकुर उदय हो जाता है, उससे वह अपराधी व्यक्ति श्रीराधाकृष्ण के प्रणय रस के सार का अनुभव नहीं कर पाता है।।९०।।

आभीर सुन्दरि! वृथा त्वमनेन नेत्र–
द्वन्द्वेन गर्वभरमुद्वह सुन्दरेण।
वृन्दावने तत इतः सरसीषु काम–
मिन्दीवराणि कति सन्ति नहीदृशानि।।९१।।

हे गोप सुन्दरी! तुम इन सुन्दर नेत्रों के लिये वृथा ही गर्वभार धारण कर रही हो, क्यों? इस श्रीवृन्दावन में जहां तहां सरोवरों में इस प्रकार के कितने कितने (असंख्य) नील कमल क्या प्रस्फुटित नहीं हो रहे हैं।।९१।।

राधा–स्तनकलसोपरि नितरां मौक्तिकलता शुशुभे।
सद्वृत्तेन हि संगं प्राप्योच्चै र्भाति सद्वृतः।।६२।।

श्रीराधा के स्तन–कलशों पर मोतियों की लता सुन्दर शोभायमान हो रही हैं, क्योंकि साधुपुरुषों की सत्कर्मों के संग से अति अधिक सौन्दर्यवृद्धि हुआ करती है।।६२।।

तव कुटिल नीले सुमुखि ! हरावीदृशे दृशौ।
मग्नौ जगति हि सम–शीलानामेव प्रायेण जायते मैत्री।।६३।।

हे सुमुखि ! कुटिल नीलवर्ण श्रीहरि के प्रति तुम्हारे उसी प्रकार के कुटिल नेत्र मग्न हो रहे हैं, क्योंकि जगत् में समान स्वभाव वाली वस्तुओं का ही प्रायः मिलन होता है।।६३।।

सुविमल सुमधुर हरिरस पूर्ण नववपुर्विधिर्वृणुते।
श्रीवृन्दावनभुवि वन्द्याः सद्गुणवृन्दाहि ये केऽपि।।६४।।

सुविमल एवं सुमधुर हरिरसपूर्ण नवीन देह के लिये ब्रह्मा ने प्रार्थना की थी–किन्तु श्रीवृन्दावन की भूमि का जो आश्रय लेते हैं वे सर्वगुणों से वन्दनीय हैं।।६४।।

कृष्णरसाकर वृन्दाविपिनं स्वगतं रसात्मकं कुरुते।
लवणाकरे हि पतितं सर्वं लवणायते नियतम्।।६५।।

कृष्ण–रसखानि श्रीवृन्दावन अपने में आई हुई समस्त वस्तुओं को रसमय ही कर देते हैं, जैसे लवण समुद्र अपने में गिरी हुई समस्त वस्तुओं को निश्चय ही लवण रूप कर देता है।।६५।।

राधादृक्पातानां वृन्दाविपिनेऽत्र को न वा पात्रम् ?।
स्वात्यम्बु हि शुक्तिगतं मुक्ता स्यादेव कण्ठार्हा।।६६।।

यहां श्रीवृन्दावन में रहता हुआ श्रीराधा के नेत्र कटाक्षों (कृपा कटाक्षों) का पात्र कौन नहीं है ? क्योंकि स्वाति नक्षत्र का वर्षाजल सीपी में पड़कर कण्ठ में धारण करने योग्य मुक्ता का रूप धारण कर लेता है।।६६।।

सुखदुःखमत्र सर्वं भवति यथावासनं तथाहि वरौ।
सुखिनौ वृन्दारण्ये भूतल–शायितौ च राधिकाकृष्णौ।।६७।।

वासना के अनुसार यहां सुख और दुःख सबका भोग हो सकता है। देखिये न—इस श्रीवृन्दावन में श्रेष्ठतम सुख स्वरूप श्रीराधा—कृष्ण भी भूतल पर शयन करते हैं।।६७।।

अति मधुरिम सार शुद्ध वृन्दावन रसलालस मानसस्य नूनम्।
अपि न रुचिकरीश्वरीय वार्त्ता प्रियमानुकूलतया हि सर्वमत्र।।६८।।

अतिशय माधुर्य के सार स्वरूप शुद्ध श्रीवृन्दावन के रस लोलुप व्यक्ति की ईश्वर—सम्बन्धी बात भी अवश्य नहीं सुहाती है, क्योंकि यहां की समस्त वस्तुयें (जड़—चैतन्य) प्रियतम युगल किशोर की सेवा की अनुकूलता के विधान में ही उत्कण्ठित हैं।।६८।।

वृन्दारण्ये यदपि सुमहान् चारुवृत्तः परस्य
किञ्चिद्धर्ता परम कठिनश्चारु रूपः सदन्तः।
यो वा वक्रः सहज मलिनः स्निग्धहारी तथाहि
श्रीराधाया हरि—कृत कुचापीड़नं केश बन्धः।।६६।।

श्रीवृन्दावन में जो सुमहान्, सुवृत्त परम कठिन तथा सुन्दर रूप वाला है, तथा जो टेढ़ा है, स्वाभाविक कृष्ण वर्ण है स्निग्ध एवं मन को हरण करने वाला है, वह समस्त ही श्रीहरि द्वारा पीड़ित श्रीराधा के स्तन तथा केशकलाप—इन दोनों का स्मारक है।।६६।।

ध्रुवमिह कथमप्य निर्वृते ह्यह न किंचन निर्वृतिं तनोति।
हरिरमृत रूचाप्य स्वेदि वृन्दावन उपगुप्ततनौ मनाक् प्रियायाम्।।१००।।

यह बात सत्य है कि जब किसी कारण से मन अस्वस्थ हो जाता है तो कोई भी वस्तु उसे आनन्दित नहीं कर सकती, अतः प्रिया (श्रीराधाजी) के श्रीवृन्दावन प्रदेश में कहीं छिप जाने पर अमृत—कान्ति श्रीहरि भी विषाद ग्रस्त हो जाते हैं।।१००।।

साधवोऽत्र विरलाः श्रित वृन्दारण्य सन्मदनमोहन कान्ताः।
केचिदेव तरवो हि सुगंध स्वादु सुन्दर फलाः खलु लोके।।१०१।।

श्रीवृन्दावन का आश्रय लेकर, एकमात्र मदनमोहन को ही अपने कान्त रूप में मानने वाला कोई विरला ही साधु होता है जैसे इस जगत् में बहुत थोड़े ही ऐसे वृक्ष हैं जो सुगन्धि स्वाद एवं सुन्दर फलों को धारण करते हैं।।१०१।।

वृन्दाटव्यटन सन्नील कृष्ण राधे
पश्यन्तः सचपलनील मेघशंकः।
केकाभिर्मुखरित दिङ् मुखाः शिखीन्द्रा
नृत्यन्ति प्रमद–भरात् प्रसार्य्य वर्हान्।।१०२।।

श्रीवृन्दावन में भ्रमणशील लीला परायण श्रीकृष्ण एवं श्रीराधा के दर्शन करके विद्युत सहित नीलमेघ की आशंका करते हुए मोरगण केका ध्वनि से दिशाओं को मुखरित करते हैं एवं आनन्द पूर्वक पुच्छ फैलाकर नृत्य करने लगते हैं।।१०२।।

वृन्दावनेऽपि मन्दाश्चित्रं विदन्ति सुन्दरेन रतिम्।
अथवा न चित्रमेतत् पित्तरसनः सिताम्बु थुत्कुरुते।।१०३।।

मन्दभाग्य गण सुन्दर श्रीवृन्दावन में भी आनन्द को प्राप्त नहीं होते–यह अवश्य विचित्र बात है, किंतु यह आश्चर्य की बात नहीं है, क्योंकि पित्त का रोगी मिश्री के पानी को भी (कड़वा लगने से) थू–थू कर देता है।।१०३।।

चिद्रसघनमपि वृन्दावनमिह मन्दा वतान्य पेक्षन्ते।
अथवा किमिदं चित्रं शंखः पीतो हि भाति पित्तदृशः।।१०४।।

अहो ! इस चिद्रसघन श्रीवृन्दावन को भी मन्दबुद्धि व्यक्ति और प्रकार से देखते हैं, यह कैसा आश्चर्य है कि श्वेत शंख को पीलिया का रोगी पीले वर्ण का ही देखता है।।१०४।।

वृन्दारण्यगुणान् रसेन गणयिष्यामोऽथबालं मुहु
र्धिङ्मामेव मसत् प्रलापिनमहा सम्भावयेत् कोन्वदम्।
यन्मीयेत समस्तमेव कथमप्यम्भो महाम्भोनिधेः
कुम्भे नेदमतीव हास्य विषयो विश्वम्भरा मण्डले।।१०५।।

"आनन्दपूर्वक श्रीवृन्दावन–गुणों का वर्णन करूंगा"–इस प्रकार असत् बकवास करने वाले मुझको बार बार यथेष्ट धिक्कार है ! क्या कोई इस प्रकार सद्भावना कर सकता है ? महा समुद्र का समस्त जल किसी प्रकार एक घड़े में आ सकता है ? जगत् में इस प्रकार की कल्पना भी जो कोई करे तो वह अति हँसी का विषय ही होगा।।१०५।।

पुमर्थाः पञ्चैव भ्रमणमिह त्रिष्वग् विद्धते
सदानन्दे वृन्दावनगतजनैरात्म कलने।
इहस्थानां त्वेतत् परम कृपया प्रोन्मद महा–
रसौघ श्रीराधापदयुग जुषां क्वाऽपि न दृशिः।।१०६।।

सदानन्द श्रीवृन्दावनवासी जनों की आत्मदृष्टि से पांच प्रकार के पुरुषार्थ यहां चारों ओर विचरण करते देखे जा सकते हैं किंतु वहां प्रोन्मद महारस प्रवाही श्रीराधाजी के चरण कमलों के सेवक गणों की उनकी परम कृपा से और कहीं दृष्टि जाती ही नहीं है।।१०६।।

श्रीवृन्दावन राज्ये कृष्ण सुभावाः परं प्रजाराजाः।
ये कृतराजैकात्म्या स्तेषां रस सम्पदोऽनर्घ्याः।।१०७।।

श्रीवृन्दावन राज्य में श्रीकृष्ण में परम सुभाव रखने वाले व्यक्ति वहां की प्रजा होते हुए भी राजा हैं। जिनको वृन्दावन राज्य के साथ तादात्म्य प्राप्त हो सका है, उनके पास अमूल्य रस सम्पत्ति है।।१०७।।

श्रीवृन्दावन महिमा नहि मानसमन्यगामि मे कुरुते।
तस्मिञ्छास्त्रव्याख्या बुधामुधा वधिरगीत रंगो वः।।१०८।।

श्रीवृन्दावन की महिमा मेरे मन को अन्यत्र नहीं जाने देती, हे बुद्धिमान गण ! उसी से मेरे लिये आपकी शास्त्र व्याख्या बधिर के आगे संगीतरंग की तरह वृथा ही है।।१०८।।

यत् कारुण्यमगण्यमेव सुसुखं नास्त्येव यस्मात् परं
निर्मर्याद विचित्र शक्ति सहजा खेलञ्च वृन्दावनम्।
तद्राधा करुणाकटाक्ष रहिते किंचितकरं नैव तद्
दृष्टान्तोऽहमबोधमात्र विरहात्तीव्रात्तिभारः स्थितः।।१०९।।

जिसकी करुणा अनन्त है, जिससे अधिक और सुख कहीं भी नहीं प्राप्त हो सकता, यह श्रीवृन्दावन जिनका असीम विचित्र शक्ति–युक्त क्रीड़ा–उद्यान है, उस श्रीराधा का करुणा कटाक्ष न होने पर जो कुछ और समस्त है वह अत्यन्त तुच्छ है, दृष्टांततः मैं भी अज्ञानता के आधीन होकर जब 'मेरे प्रति श्रीराधा की कृपा नहीं है' ऐसा मन में सोचता हूं तो तीव्र आर्त्त होकर व्याकुल हो उठता हूं।।१०९।।

आनंदकन्देऽपि न विंदते मनो वृन्दावने सुंदरि सौख्य बिंदुकम्।
मनागवीक्ष्य स्मितचारु ते मुखं विना क्व चंद्र कुमुदं मुदं व्रजेत्।।११०।।

हे सुंदरि ! तुम्हारे मृदु मधुर मुसकानयुक्त मुख को क्षणमात्र न देखने पर यह आनंदकंद श्रीवृन्दावन भी बिंदुमात्र सुख का अनुभव नहीं कर पाता, चंद्र के बिना क्या कहीं कुसुम आनंद को प्राप्त कर सकता है ?।।११०।।

वृन्दावन इह कति वा न मिलन्ति विदग्ध गोपसुंदर्यः।
राधे त्वयि परमक्षि क्व चकोरश्चरति चन्द्रिका–परतः।।१११।।

हे श्रीराधे ! इस श्रीवृन्दावन में कितनी ही क्यों न चतुर गोपसुंदरी आकर रहे ? किंतु मेरे नेत्र केवल तुम्हें ही देखेंगे। चन्द्रिका को छोड़कर और कहीं चकोर क्या विचरण कर सकता है ?।।१११।।

श्रीराधिके त्वं यदि न प्रसीदेः सीदेयमत्राप्यऽमुद्विजब्धीः।
तदेष वृन्दावनगात्मलोकः कृपाकटाक्षेण सदेक्षनीयः।।११२।।

हे राधिके ! यदि तुम प्रसन्न न होवो, तो मैं यहां ही पीड़ित चित्त होकर देहावसान कर दूंगा। अतएव श्रीवृन्दावन में रहने वाले इस अपने दास को अपने कृपा कटाक्ष पात द्वारा सदा ही आनंदित कीजिये।।११२।।

श्रीराधाख्य रूपं परमं चरमं रमा देव्याः।
श्रीभगवतश्च परमं चरम रूपं प्रियस्तस्याः।।११३।।

श्रीराधाख्य रूप ही रमा देवी की परम शेष सीमा है, एवं श्रीराधा प्रिय श्रीश्यामसुन्दर रूप ही श्रीभगवान् (भगवत्–स्वरूपों) का परम चरम रूप है।।११३।।

वृन्दावन–भुवि तद नाद्यन्तकालं स्मरैक रस–खेलाम्।
कुर्व्वत् किशोर–नागर–मोहन मिथुनं ममाऽस्तु भजनीयम्।।११४।।

श्रीवृन्दावन भूमि पर अनादि अनन्तकाल से एकमात्र स्मररस क्रीड़ा में उन्मत्त नागर मोहन युगल किशोर ही मेरे भजनीय (तत्व) हैं।।११४।।

मोहन वृन्दारण्ये मोहन कुंजेषु मोहन कृत्या।
मोहन राधाकृष्णौ मोहन केलि सदा भजत।।११५।।

मोहन श्रीवृन्दावन में मोहन कुंजों में मोहन केलि परायण मोहन श्रीराधाकृष्ण का मोहन सेवा द्वारा नित्य भजन कर।।११५।।

राधादास्य लसद् वपुरनिशं राधापद--सेवी।
अन्तस्तोषित राधारसिको राधावने सदा निवस।।११६।।

श्रीराधादास्य–उपयोगी उज्ज्वल शरीर को पाकर नित्य श्रीराधा पादपद्म के सेवापरायण होकर श्रीराधा रसिक श्रीश्याम सुन्दर को संतोषित करते हुए नित्य श्रीवृन्दावन में वास कर।।११६।।

राधे त्वन्मुख सन्मुखमेव विकास्यक्षि मे सुमुखि।
आनंदयति हि कुमुदं कुमुद सुहृत् केवलं चन्द्रः।।११७।।

हे सुमुखि राधे ! तुम्हारे श्रीमुख के सन्मुख रहकर ही मेरे नेत्र विकसित होकर आनन्द प्राप्त करते हैं,जैसे कुमुद–बन्धु चन्द्र ही केवल कुमुद को आनन्द दान करता है।।११७।।

श्रीप्रबोधानन्द सरस्वति–विरचित श्रीवृन्दावन महिमामृतम् का
एकादश शतक समाप्त हुआ।।११।।

द्वादश–शतकम्

राधाऽऽराधन निष्ठस्यान्तस्तापो न याति मे शान्तिम्।
वृन्दावनतः परतोऽन्यरूजामिव किं भवेच्चिकित्साऽन्या।।१।।

श्रीवृन्दावन को छोड़कर अन्यत्र रहने पर श्रीराधा की आराधना की निष्ठायुक्त होकर भी मेरे अन्तःकरणका ताप शांत नहीं होता है। एक रोग से पीड़ित व्यक्ति की क्या किसी अन्य भाव से अर्थात् उस रोग की निर्दिष्ट औषधि को छोड़कर चिकित्सा हो सकती है।।१।।

श्रीराधा माधवयोर्यथा कदाचिन्न सम्भवी विरहः।
तद्रस वृन्दावनयो स्तथैव परमोऽविनाभावः।।२।।

श्रीराधामाधव का जैसे कभी भी विरह सम्भव नहीं है, उसी प्रकार श्रीयुगल किशोरकी (मधुर) रस के साथ तथा श्रीवृन्दावन के साथ परम एकता है या नित्य सम्बन्ध है।।२।।

अलं ते शास्त्रौघैरपि सुविदितैर्व्यक्तवचनै–
र्महद्भिश्चालं ते ये इह न विदोवेत्य निगिरः।
अलं च स्वाभ्यूहैरति परम दुर्ग प्रसरणै
रनाशंकं वृन्दावन भुवि निवासं कुरु सखे।।३।।

हे सखे! तुम्हें बहु शास्त्रों के जानने की कोई आवश्यकता नहीं, जिनका श्रीवृन्दावन के विषय में पाण्डित्य नहीं है, उन समस्त वाक्यकुशल महापुरुषों के वचनों से हमारा कोई प्रयोजन नहीं एवं अति विशाल दुर्गजाल उत्पन्न करके तर्क वितर्क करने की भी आवश्यकता नहीं, केवल इस श्रीवृन्दावन में निशंक चित्त होकर वास कर।।३।।

अधीतं किं शास्त्रं गृणदमित वृन्दावनगुणम्।
स्वधीतं किं तत्त्वं द्वयमधुरवृन्दावन रतिः।।४।।

श्रीवृन्दावन के अपरिमेय गुणविस्तारी शास्त्र को क्या तुमने पढ़ लिया है ? श्रीयुगलकिशोर के मधुर–वृन्दावन के रतितत्त्व विषयक शास्त्र को भी क्या अच्छी प्रकार तुमने पढ़ा है ?।।४।।

वृन्दावने जलदजाल समाकुलायां
दिश्युल्लसत्तड़िति कृष्णरसोन्मदानाम्।
आदावभूद विरलोद्गलदम्बुधारं
नेत्राम्बुजं गगन मण्डलमास पश्चात्।।५।।

श्रीवृन्दावन में विद्युत सहित जो छाई हुई मेघमाला है, उससे हरदिशा में श्रीकृष्ण–रसोन्मत्त जीवों के नेत्र कमल पहले तो गलदश्रुओं से युक्त होते हैं एवं फिर गगन मण्डल से अविरल जलवृष्टि होने लगती है।।५।।

आयुर्वितक्य चपलाचपलायमानं स्त्री–पुत्र–वित्त–भवनाद्यमसन्निरूप्य।
राधांकभूषणमन्य वशं विमृश्य वृन्दावनं सह हृदाऽनुसरन्ति धन्याः।।६।।

आयु को विद्युत की भांति अति चंचल जानकर स्त्री–पुत्र–धन–गृहादि को झूठा मानते हुए, श्रीराधा के अंग–विभूषण श्रीश्यामसुन्दर को अनन्य वशीभूत करके महाभाग्यवान् पुरुष ही मन से श्रीवृन्दावन का अनुसरण करते हैं।।६।।

नेमद् दूराद् वृन्दावनमनु सकृद् यस्य हि
शिरः स वैकुण्ठ कुण्ठी कृत कठिन माये निवसति।
प्रविश्यै तद् येनोज्ज्वलमदनगोपाल बदना–
म्बुजं दृग्भ्यां पीतं तमिह खलु राधा कृपयति।।७।।

जिसका सिर दूर से ही श्रीवृन्दावन के प्रति एक बार भी झुकता है, वह उसी समय ही कठिन माया के प्रवेशाधिकार से रहित वैकुण्ठ में वास करने लगता है और जो श्रीवृन्दावन में प्रविष्ट होकर श्रीमदन गोपाल के मुख कमल का दर्शनामृत पान करता है उसे यहां ही श्रीराधा की कृपा प्राप्त हो जाती है।।७।।

कुर्व्वन्नैव वृथाग्रहं क्वचिदपि द्वैतेऽत्र मायामये
स्वस्यात्यन्त सुदुखतोऽपि जनयन् कस्यापि नैवाप्रियम्।
नित्यान्तर्मुखदृष्टिरेक रसधीः श्रीराधिकाकृष्णयोः
श्रीवृन्दावनमावसानि सकल प्राण्यैक सद्वल्लभः।।८।।

इन मायिक द्वैत वस्तुओं में कभी भी वृथा आग्रह न करते हुए, अपने अति दुसह दुख में भी अन्य किसी की कुछ भी बुराई न करके, अन्तर्दृष्टि रखते हुए श्रीराधाकृष्ण के रस में ही एकमात्र चित्त को स्थापन करके, समस्त प्राणियों का एकमात्र भला करते हुए क्या मैं श्रीवृन्दावन में वास कर पाऊंगा?।।८।।

स्त्रीषु स्तन्यप–तोकवत् स्वतिथिवद्गेहेऽथदेहेऽपि च
द्वेषं सन्ततमाचरत्स्वपि तनु वाणी हृदा मित्रवत्।
राधापन्नख चन्द्रिकांचित लता वृक्षे चकोरश्चरन्
श्रीवृन्दाविपिने भवानि सकल प्राणिष्वह मातृवत्।।९।।

स्त्री गुणों के लिये दुग्धपायी बालक की तरह, अपने घर में अतिथिवत्, अपने शरीर में निरन्तर द्वेष करने वालों के प्रति काय, मन, वाणी से मित्रों के समान, श्रीराधा पद–नख ज्योत्स्ना से संवर्द्धित लता वृक्षों पर चकोरवत् विचरण करते हुए समस्त प्राणियों के प्रति मातृवत् स्नेहशील होकर क्या मैं श्रीवृन्दावन में वास कर सकूंगा।।९।।

पीयूष–द्रव सार वृष्टिभिरिव ब्रह्मामृतौघैरिव
प्रालेयांशु मरीचि वीचिभिरिवस्व सिन्धु पातैरिव।

तीव्रोदार रसासवरिव लसत् कर्पूर पूरैरिवाऽऽ
पूर्णा मे मतिरस्तु जीवनतयावृन्दाटवी सेविनः।।१०।।

जीवनधन श्रीवृन्दावन के मुझ सेवक की मति अमृत–द्रव–सार रूप वृष्टि के द्वारा, ब्रह्मामृत प्रवाह के द्वारा, चन्द्र की किरण तरंगों के द्वारा, मन्दाकिनी धारा के द्वारा, तीव्र उदार रस सुधा के द्वारा उज्ज्वल कर्पूर प्रवाह के द्वारा सम्यक् प्रकार से पूर्ण रही आवे।।१०।।

श्रीवृन्दावन तद्गत स्थिरचरान् स्वानन्द सच्चिद्घनान्
त्रैगुण्यास्पृश आप्लुतान् हरिरसोद्वेलामृतैकाम्बुधौ।
पश्यन्तो विलसन्ति सन्त इह केऽप्याश्रित्य सर्वात्मना
श्रीराधाचरणारुणाम्बुजदलच्छायां महायोगिनः।।११।।

श्रीवृन्दावन एवं वहां के स्थावर जंगम को स्वानन्द सच्चिद्घन मायातीत तथा हरिरस में उच्छलित अमृतमय समुद्र में आप्लुत देखकर कोई कोई साधु महायोगी पुरुष ही श्रीराधा चरण अरुणाम्बुज दल छाया का सर्वभाव से आश्रय करके यहां विराजमान है।।११।।

धिग्धिङ्मामिह देह गेह ममताविष्टं तथैवा सुतृप्
लोकाराधन साधन प्रणयिनं क्षुद्र स्तवोत्फुल्लितम्।
हस्तप्राप्यमिदं महारसफलं श्रीशादिभिर्दुर्ल्लभं
श्रीवृन्दावन नाम नित्यरुचिमन्नादाय संस्वादये।।१२।।

इस श्रीवृन्दावन में वासी होकर भी देह–गृहादि की ममता में आवेशित मुझको धिक्कार है। प्राण को तृप्त करने वाले लोक की आराधना का मुझे साधन प्रिय है एवं सामान्य प्रशंसा से मैं प्रफुल्लित हो उठता हूं–मुझे शत–शत धिक्कार है !! क्योंकि लक्ष्मी एवं श्रीनारायण आदिकों को भी दुर्लभ किन्तु मेरे हाथ में आये हुए इस महारस फलरूप नित्य रुचिकर श्रीवृन्दावन नामक वस्तु को ग्रहण करके भी भली प्रकार से आस्वादन नहीं कर पाता हूं।।१२।।

रे लोका उपदिश्यतेऽति कृपया किंचिन्मया श्रूयतां
सर्वार्थान् सहसाऽऽद्भुतान् यदि महाश्चर्यापितानीशथ।
निर्म्मर्याद विचित्र शक्तिभिरिह स्वच्छन्द खेलं सदा
श्रीवृन्दावनमस्ति तद्ब्रज सकृद्राधेश्वरी निर्भयम्।।१३।।

हे जीवो ! मैं कुछ उपदेश करता हूं, अति कृपाकर उसे श्रवण कीजिये। यदि महाश्चर्यरूप सकल पुरुषार्थ अति शीघ्र पाने की इच्छा करते हो तो असीम विचित्र शक्ति सहित स्वच्छंद भाव से क्रीड़ा परायण जो श्रीवृन्दावन विराजमान है, जो श्रीराधा द्वारा अभय हो रहा है—उसमें एक बार गमन करो।।१३।।

अहो वृन्दारण्योज्ज्वल मदन गोपालवदनो—
ल्लसच्चन्द्रालोकाद्व्रत किमिह लोका विरमत।
अयं मूर्द्धाऽत्यद्धा सकल यलसिद्धा बुदयता—
मुपायानां पञ्चस्वपि च पुरुषार्थेषु परमः।।१४।।

हे मानवगण ! श्रीवृन्दावन में उज्ज्वल मदनगोपाल के सुन्दर—मुख—चन्द्रलोक की प्राप्ति करने से क्यों वंचित होते हो ? अतिशीघ्र सकल फल प्राप्ति के लिये समस्त साधनों में यही सर्व प्रधान है एवं पंचपुरुषार्थों में यही परम पुरुषार्थ है।।१४।।

अये मदनमोहनोद्धसित वक्त्र चन्द्रच्छटा
सुधौघ कृत सेचनं कुरुत लोचनं जन्मिनः।
अमन्द रसमन्दिरे तदति लुब्धमुग्धेन्दिरे
सुतप्तमति निर्वृत्तिं नयत मङ्क्षु वृन्दावने।।१५।।

हे जीवो ! मदनमोहन के उच्च हास्य से निर्गत मुखचन्द्र—छटा के सुधप्रवाह में लोचनों का सिंचन करो। लक्ष्मी को भी मोहित करने वाले मनोरम उस महारस भण्डार श्रीवृन्दावन में अति शीघ्र ही तपे हुए जीवन के लिए शान्ति विधान करो।।१५।।

अशोक तरुरेष मे सम इहाऽस्ति वृन्दावने
झनत्कृति सुनूपुरं चरणाघात आप्तो यतः।
तवापि वृषभानुजे यदि मुदैष रोषादहं
ततः किमपि सुन्दरं स्मर रसाति निःस्यन्दिनि।।१६।।

मेरे विचार में यह जो अशोक वृक्ष इस श्रीवृन्दावन में विराजमान है इसलिये कि इसने भी श्रीराधा के मनोहर नूपुर की झंकार युक्त पदाघात को प्राप्त किया है। हे अति अनंगरस की प्रवाहिनी वृषभानुनन्दिनी ! तुम क्रोधवश

अथवा आनन्दवश यदि मुझे भी एक चरणाघात प्रदान करो, तो कैसा सुन्दर हो।।१६।।

राधापदारविन्दा नन्दं वृन्दावनं हरेर्हृदपि।
पूर्वत्र सैव धत्ते परत्र हरिणाऽर्प्यते बलाद्धृति यत्।।१७।।

श्रीराधा पदकमल का दोनों ही आनन्दभोग करते हैं–एक तो श्रीवृन्दावन और दूसरे श्रीहरि का हृदय। पहले स्थल में श्रीवृन्दावन पर श्रीराधा ही पदकमल धरती हैं, परन्तु दूसरी ओर श्रीहरि स्वयं बलपूर्वक अपने हृदय पर धारण किये रहते हैं।।१७।।

मीना जालेन दाशैः सरसि मृगगणा वागुराभि स्वरण्ये
हिंस्रैः संसारचक्रे हरिविमुखनरा मायया मोहपाशैः।
कारागारेषु गाढ़ोद्धत नृपतिभटै स्तस्कराः शृंखलाभि–
र्वृन्दारण्ये वयं चाद्भुत रस वलितैस्तद्गुणौघै र्निबद्धाः।।१८।।

सरोवर में धीवर द्वारा जल से जैसे मछलियां, एवं गंभीर वन में व्याध द्वारा फंदे में जैसे मृगगण फंसते हैं। संसार चक्र में माया द्वारा मोहपाश में हरिविमुख मनुष्य गण जैसे बन्धन में आते हैं, कारागार में अति उद्धत राजा के अनुचरगणों द्वारा जंजीरों से चोरगण जैसे बांधे जाते हैं, उसी प्रकार श्रीवृन्दावन में अद्भुत रसयुक्त उसके (वृन्दावन के) गुणों द्वारा मैं भी बंध गया हूं।।१८।।

भवबन्धमति सुतुच्छं छेत्तुं वृन्दावनेऽहमायातः।
हरि हरि तत्र ममाभूद्बन्धोऽप्यचाल्य ईशेन।।१६।।

अति सुतुच्छ भवबन्धन को छेदन कराने के लिये ही मैं श्रीवृन्दावन में आया हूं। हरि! हरि!! ईश्वर ने मुझे यहां सुदृढ़ बन्धन में बांध दिया है।।१६।।

कामीव मिलितयुवति र्मदिरां पीत्वेव पानसंयुक्तः।
अधन इवाप्त महाधन आसं वृन्दावनं समेत्याऽहम।।२०।।

युवति को मिलने से कामी पुरुष जैसे हर्षित होता है, मदिरा पीने से शराबी को जिस प्रकार उल्लास होता है, एवं दरिद्री महाधन को पाकर जैसे सुखी होता है, मैं भी श्रीवृन्दावन में आकर उसी प्रकार सुखी हुआ हूं।।२०।।

दिव्या नव्या मधुर मधुराश्चर्यलीला विनोदैः
काचित् पद्मिन्यति रसनिधिः कांचनी संचरिष्णुः।

वृन्दारण्ये लसति तदुपर्यम्बुजे कृष्णभृंगः
पीत्वा माद्यद् रसमहमिहालि स्त्वधो रक्तपद्मे।।२१।।

मधुर से भी अति मधुर आश्चर्यमय–लीला–विनोद द्वारा दिव्य एवं नवीन स्वर्णवर्णा अतिरसनिधि कोई एक पद्मिनी (नारी) श्रीवृन्दावन में जहां तहां संचरण करके विलास कर रही है। उसके ऊपरी भाग के (मुख) कमल के मधु को पान करके एक कृष्ण भ्रमर उन्मत्त हो रहा है और मैं भी भ्रमर होकर उसके अधोभाग के रक्तकमल (चरण कमल) में उन्मत्त हो रहा हूं।।२१।।

राधे किगेन्द्रीं दिशगाकुला त्वं विलोकयस्यम्बुज पत्र नेत्रे।
निशंकमेऽकं कुरु कान्तमेत्य मुग्धे मुखं ते ननु कोटिचन्द्राः।।२२।।

हे पद्मपलाशलोचना राधे ! तुम आकुल होकर पूर्व दिशा में क्यों देख रही हो ? हे मुग्धे! कान्त के निकट आकर एकान्त में उसे निशंक करो। ("निशंकमेऽकं" पाठ होने का अर्थ यह होगा कि निशंक चित्त से आकर कान्त को अंक में ग्रहण करो।) तुम्हारे मुख में ही तो कोटिचन्द्र विराजमान हैं।।२२।।

राधे त्वयाऽऽक्षेप वचोभिरेष निष्कासितो वल्लभ आत्महारी।
बहिर्निकूजत् कल कण्ठकण्ठीवरवात्रसन् याति नवैतिमुग्धः।।२३।।

राधे ! भर्त्सना के वचनों से तुमने अपने आत्मगोपनकारी प्रीतम को बाहर निकाल दिया है, वह किन्तु बाहर हंस–पारावत आदिकों के शब्दों से भयभीत एवं मुग्ध होकर जा भी नहीं सकते और भीतर आ भी नहीं सकते।।२३।।

अन्तर्दृष्टिः पश्य वृन्दावनस्य शुद्धं ज्योतिः कामराजात्मकस्य।
शोभा लोभाल्लोलनेत्रांजलीभिर्नित्या पेया राधिकामाधवाभ्याम्।।२४।।

अन्तर्दृष्टि से कामराजात्मक श्रीवृन्दावन की शुद्ध ज्योति का दर्शन कर। श्रीराधामाधव नित्य ही लोभवशतः चंचल नेत्रांजलि द्वारा उस शोभा का पान किया करते हैं।।२४।।

मधुर मधुर नाना पुष्प सौरभ्य लुभ्यन्
मधुर मधुर भृंग श्रेणी झंकार रम्यम्।
मधुर मधुर गायत् कोकिलं शारि कीरै–
र्मधुर मधुर घुष्ट प्राणबन्धु प्रबन्धम्।।२५।।

मधुर मधुर नानाविध पुष्प सौरभ से लोभनीय, मधुर मधुर मधुकरों की

झंकार से रमणीय, मधुर मधुर गीतपरायण कोकिलाओं से कूजित एवं शुकशारी आदिक की सुमधुर ध्वनि से प्राणबन्धु युगलकिशोर के प्रबन्ध पाठ से मुखरित–।।२५।।

मधुर मधुर राधा किंकरी क्लप्त शय्यं
मधुर मधुर राधा कृष्ण केलि निकुञ्जम्।
मधुर मधुर तत् प्रेमोन्मदान्धालिवृन्दं
मधुर मधुर वृन्दारण्य मेवाऽऽश्रितोऽस्मि।।२६।।

राधादासीगणों से रचित मधुरातिमधुर शय्या पर अति सुमधुर श्रीराधाकृष्ण विलास निकुंजों से भूषित एवं मधुर मधुर युगलकिशोर के प्रेम में उन्मत्त सखीवृन्दों से परिवेष्टित इस मधुर मधुर श्रीवृन्दावन का मैं आश्रय ग्रहण करता हूं।।२६।।

सच्चित् स्वच्छ ज्योतिरानन्दसान्द्रा
निस्त्रैगुण्या भाति वृन्दाटवीयम्।
त्यक्त्वा दृष्टीं मूढ़ पापीयसीं त्वं
पश्याश्चर्य्यां तां स्वमर्य्याद्य मूर्त्तिम्।।२७।।

त्रिगुणातीत सच्चित् स्वच्छ ज्योतिर्मय आनन्दघनमूर्त्ति वह श्रीवृन्दावन प्रकाशित हो रहा है। हे मूढ़ ! तुम पाप दृष्टि त्याग करके इस आश्चर्य स्वीय महिमान्वित मूर्त्ति का दर्शन करो।।२७।।

राधे भृकुटि मनोहर नव कांचन कंज मंजुलं वदनम्।
सौन्दर्यसार सदनं स्वस्तन मद्याऽपि किं न दर्शयसि।।२८।।

हे राधे ! भृकुटि द्वारा मनोहर नव स्वर्णकमलवत् मनोज्ञ वदन एवं सौन्दर्यसार सदन निज स्तन युगल का आज भी क्यों दर्शन नहीं कराती हो।।२८।।

इति वृन्दावन कुंजे राधामंके निधाय धृतचिबुकः।
प्रणयोक्ति जनितहास्यं पश्यन्नास्यं हरिर्मम स्फुरतु।।२९।।

श्रीवृन्दावन की कुंज में श्रीकृष्ण श्रीराधा को अंक में लेकर उसकी चिबुक को धारण करते हुए प्रणय–वचन बोलने में हास्य युक्त शोभित श्रीराधा का मुख दर्शन कर रहे हैं–इस प्रकार की छटा युक्त श्रीहरि मेरे हृदय में स्फुरित हों।।२९।।

जानम्बुदमय मम्बुजमिवो परिष्ठाद् भ्रमद्भ्रमर निचयम्।
अद्यस्वस्तन स भृकुटि कुपितमुखं ते स्मराम्यहं राधे।।३०।।

हे राधे ! ऊपरी भाग में भ्रमण करने वाले भ्रमर समूह से घिरे हुए सुवर्ण कमलवत् तुम्हारे स्तनयुगल तथा भृकुटि युक्त कुपित मुख की छटा आज भी मैं स्मरण करता हूं।।३०।।

स्मर कृष्णसारमेकं श्रीराधा प्रेमवाण्डरावद्धम्।
वृन्दावनैक गोचरमनिशं सा येन खेलनं कुरुते।।३१।।

श्रीराधा के प्रेमजाल में आबद्ध एवं एकमात्र श्रीवृन्दावन में ही दृष्टिगोचर होने वाले तथा जिनके साथ श्रीराधा जी क्रीड़ा करती हैं, उस श्रीकृष्ण सारवस्तु का स्मरण कर।।३१।।

श्रीमद्वृन्दावन रस मत्ता राधाऽसाधारण रतिमत्ता।
श्रीकृष्णेऽत्युन्मद् रतितृष्णे लीला धत्ते स्मरण शीला।।३२।।

श्रीमद्वृन्दावन रस में मतवाली एवं असाधारण रति युक्त उन्मादिनी श्रीराधा अत्युन्मद रतिलम्पट श्रीकृष्ण के प्रति कामरस लीला को अभिव्यक्त कर रही हैं।।३२।।

प्रेमोदारगुणैरनन्य—कलितं वन्दीकृतं सुन्दरं
श्यामं स्वे पदपंजरे नियमितं चित्रैः स्वयं राधया।
प्रोक्तुंगोपनिषद्रस लसद्वर शाखास्थं परै दुर्ग्रहं
वन्दे नन्दित तत्सखी समुदयं दिव्यैक पुस्कोकिलम्।।३३।।

जो अन्य किसी के भी वशीभूत नहीं हैं, किन्तु श्रीराधा की विचित्र प्रेमोदार रज्जु में ही एकमात्र बंधे हुए हैं, उनके पदों में वन्दना करते हैं एवं पदपंजरों में आबद्ध हैं, उपनिषद् रूप अति उच्च रसाल वृक्ष की उत्तम शाखा पर जो वास करते हैं एवं और जनों से न प्राप्त होने वाले होकर भी श्रीराधा के सखी समाज को आनन्द दान कर रहे हैं—इस प्रकार सुन्दर दिव्य श्याम वर्ण पुंस्कोकिल को मैं नमस्कार करता हूं।।३३।।

श्याम मनोहर कीरं वृन्दारण्येऽद्भुतं स्मराधीरम्।
राधाधरं दशन्तं बिम्बफल शंकया मधुरतरम्।।३४।।

श्रीवृन्दावन में अद्भुत (स्मर वशीभूत) अधीर कोई एक श्यामवर्ण मनोहर शुकपक्षी बिम्बफल जानकर श्रीराधा के सुमधुर अधरों को दंशन कर रहा है—इस लीला को स्मरण कर।।३४।।

कांचन कांचन लतिकाम् रति कामाम वशमालिंग्य।
वृन्दावन भुवि जंगम तमालतरु मेकमालम्बे।।३५।।

श्रीवृन्दावन भूमि पर रति अभिलाषिनी अवशा कोई स्वर्ण लतिका को आलिंगन करने वाला एक विचरणशील तरुण तमालतरु का मैं आश्रय ग्रहण करता हूं।।३५।।

वृन्दावनगहन वने राधे मम हारितं मनोरत्नम्।
लब्धं त्वयैव नूनं स्मितमधुरं देहि दासोऽस्मि।।३६।।

हे राधे ! श्रीवृन्दावन के गहन वन में मेरा मन रूपी रत्न गुम हो गया है, तुमने ही निश्चय ही उसे पा लिया है, अतएव मृदु मधुर हास्य द्वारा सुधा प्रदान करो—मैं तो तुम्हारा दास ही हूं।।३६।।

सा चित्रास्याक्षि वक्षोरुह जघन सुनाभ्यङ् घ्रिहस्तादिकांगै
रेषा दिव्याब्जखेलन्मृगगिरि पुलिनश्रीसरः पल्लवाद्यः।
सोद्यत् कन्दर्प लोलाकृतिरियमभितः प्रोल्लसत्स्वर्णवल्लीः
सा शिंजद्भूषणेयं मधुरखगकुलाराव रम्या चकास्ति।।३७।।

वह (श्रीराधा जी) जैसे मुख, चक्षु, स्तनयुगल जघन, सुनाभि, पाद एवं हस्त आदि अंगों से सुशोभिता हैं, उसी प्रकार यह श्रीवृन्दाटवि भी दिव्य कमल, खेलन परायण मृग, गिरि पुलिन, सुन्दर सरोवर एवं किसलयादि से शोभित हो रही है। श्रीराधा सचेष्ट मदन चंचल—स्वभाव वाली हैं और यह चारों दिशाओं से स्वर्ण लतिकाओं की प्रकृष्ट उल्लासमयी शोभा को धारण कर रही है, श्रीराधा जी सुन्दर ध्वनि करने वाले भूषणों से मण्डित हैं और यह विहंगगणों की मधुर गुञ्जार से मनोहर रूप से विराजमान हो रही है।।३७।।

सा नील स्निग्धवक्त्रोज्ज्वल वहल कचे चारुवेणीं दधाति
कालिन्दी रम्यवेणी स्त्वियमिह न वियुग्माधरा सा तथेयम्।
साऽऽनन्दस्यान्दि वाणी मियमति शिशरान् निर्झरान् विभ्रतीयं
राधा वृन्दाटवी वा युगपदुरुतर स्नेहतो मे हृदेति।।३८।।

श्रीराधाजी नीले चिकने उज्ज्वल केशपाशों की सुन्दर वेणी धारण करती हैं, और श्रीवृन्दाटवि भी कालिन्दी रूप से रम्य वेणी धारण करती है, माधव से श्रीराधाजी का जैसे वियोग कभी नहीं होता इसी प्रकार इसका भी वियोग नहीं होता। श्रीराधा आनन्दमय वाक्य विन्यास करती हैं, और यह भी अति शीतल निर्झरों को धारण करती है, इस प्रकार श्रीराधाजी व श्रीवृन्दाटवी परस्पर अत्यन्त स्नेह युक्त मेरे हृदय में प्रकाशित हो रही हैं।।३८।।

गोविन्द स्तारतारं रणयति मुरलीं राधिका हस्ततालीं
दत्ते मत्तेह वृन्दावन भुवि शिखिनांमंडलीताण्डवितानि।
यर्ह्याश्चर्याणि कुर्यात्स्थगित सकल तत्सत्ववृन्दानि लक्ष्मी–
तत्कान्ताक्रान्तचित्तान्यहह धृति मधात्तर्हि वृन्दावने कः ?।।३६।।

श्रीगोविन्द ताल–स्वर में ताल से मुरली बजा रहे हैं, और श्रीराधिकाजी हाथों से ताली बजाती हैं, इस श्रीवृन्दावन में मोर समूह मत्त होकर तांडव नृत्य कर रहे हैं, यदि लक्ष्मी अर्थात् श्रीराधा एवं उसके कान्त श्रीश्यामसुन्दर द्वारा आकृष्ट चित्त होकर वहां के समस्त प्राणी स्थगित एवं आश्चर्यान्वित हो उठें, तो श्रीवृन्दावन फिर क्या धैर्य्य धारण कर सकता है।।३६।।

वृन्दारण्येऽति चित्रं प्रकटयति निज रूपमाश्चर्यवेशौ
राधाकृष्णौ यदाऽऽलीततिभिरतिरसं रासरंग प्रविष्टौ।
सर्वे निर्वेद मापु विधि प्रमुख सुरा स्थुत्कृत ब्रह्मभावा
श्चिन्तां भेत्तुं मुनीन्द्रा विभुरपि रमया विह्वल स्तर्हयलुठत्।।४०।।

जब सखी मण्डली द्वारा सुसज्जित अति सुरस रास रंग में आश्चर्यमय वेशभूषित श्रीराधाकृष्ण प्रवेश करते हैं, एवं श्रीवृन्दावन अति विचित्र निजरूप को प्रकट करता है, तब ब्रह्मादि देवतागण मोक्षानंद को थुत्कार कर शांति को प्राप्त करते हैं, मुनीन्द्रगण ध्यान त्याग कर वैराग्य ले लेते हैं, लक्ष्मी सहित श्रीनारायण भी विह्वल होकर लुण्ठन करने लगते हैं।।४०।।

श्रीमद्वृन्दावनेऽस्मिन् निजरस विभवैर्व्यक्ति मायातिलोके
लोकेशाः शत्रुमुख्या य इह भुवि भुवो येऽतलेऽथ स्वयम्भुः।
सर्वे कृष्णानुराग प्रमथित हृदया द्रष्टुमन्यत्र शेकु–
विस्मृत्याधीशभावं स्वभुवि स भगवान् कृष्ण मग्नश्रियाऽभूत्।।४१।।

परम शोभाशाली यह श्रीवृन्दावन अपने रसवैभव के साथ जब पृथिवी पर प्रगट होता है, तब इन्द्र प्रमुख लोकपालगण, जो इस भूलोक अथवा नीचे के लोकों में वास करते हैं, वे एवं स्वयम्भु आदि सब ही श्रीकृष्ण के अनुराग से पूरित चित्त होकर और कुछ भी दर्शन नहीं करते—अर्थात् श्रीवृन्दावन की शोभा उनके नेत्रों को हर लेती है, यहां तक कि वैकुण्ठाधिपति श्रीभगवान् नारायण अपने धाम में "मैं स्वयं ईश्वर हूं" यह पहला भाव भूलकर श्रीलक्ष्मीदेवी के साथ श्रीकृष्ण के भाव में मग्न हो जाते हैं।।४१।।

यस्यां सन्मुक्ति विरक्तीकरण पटु महामुक्तिधारा समन्तात्
सर्वै र्लभ्येव चिन्तामणि निकर पराः खर्पराणाञ्च खण्डाः।
यत्रात्युच्चैस्तृण्यान्यप्यहह विहसितानल्प कल्पद्रुवृन्दा
न्येतां वृन्दाटवीं क स्त्रिजगति तनुभृत सेन्द्रियो नो भजेत्।।४२।।

जहां उत्कृष्ट मोक्ष वाञ्छा को तुच्छ करने वाले महाभोग सर्वत्र सब लोगों को प्राप्त रहते हैं, जहां महाचिन्तामणि कौड़ियों के टुकड़ों की भांति जहां तहां पड़ी रहती हैं, जहां के तृण भी अनेक प्रफुल्लित फलयुक्त कल्पवृक्षों के समान हैं, ऐसे श्रीवृन्दावन को इन्द्रियों के रहते हुए त्रिभुवन में कौन जीव है जो न भजेगा ?।।४२।।

सौख्यानां सौख्यमेतन् मधुरतरमिदं वर्य्यं माधुर्यतोऽपि
स्वाश्चर्यानामिदं स्वद्भुततम मखिल श्रेयसां श्रेय एतत्।
दिव्यानां दिव्यमेतत् सदखिल चिद चिज्ज्योतिषां ज्योतिरेतद्
यद्वृन्दारण्य नाम स्फुरति रसमयं राधिका कृष्ण—धाम।।४३।।

श्रीवृन्दावन नाम का जो रसमय श्रीराधाकृष्ण का धाम स्फुरित हो रहा है, वह सुखों का सुखस्वरूप है, श्रेष्ठ माधुर्यों का अति माधुर्य है, अतीव आश्चर्यजनक वस्तुओं को भी अद्भुतता प्रदान करने वाला है, समस्त मंगलों का मंगलस्वरूप है, दिव्य वस्तुओं का दिव्य स्वरूप एवं निखिल चित्—जड़ ज्योतिर्मय पदार्थों को ज्योतिदान करने वाला है।।४३।।

बुधामुधा क्लिश्यतः साधनेषु दुखात्म सन्दिग्ध फलेषु सक्ताः।
पञ्चापि वृन्दाविपिने पुमर्था लुठन्ति तानप्यलसा ग्रहीतुम्।।४४।।

हे बुद्धिमान् गण ! दुखात्मक एवं सन्दिग्ध फलदायक साधनों में आसक्त होकर वृथा ही क्लेश उठा रहे हो ! श्रीवृन्दावन में पांचों पुरुषार्थ (धर्म–अर्थ, काम–मोक्ष एवं प्रेम) लुण्ठन कर रहे हैं, उनकी प्राप्ति में क्यों आलस कर रहे हो ?।।४४।।

इहैव विद्याद्रविनादि सर्वमपूर्वमेवास्ति करस्थमेव।
तथापि मन्दा न भजन्ति वृन्दाटविमहो देवमुनीन्द्रवन्द्याम्।।४५।।

यहां अपूर्व विद्या एवं धन इत्यादि सर्व वस्तुएं हथेली पर धरी हैं, किन्तु हाय ! तथापि मूर्ख मनुष्य देवताओं एवं मुनियों की वन्दनीय इस श्रीवृन्दाटवि का भजन नहीं करते हैं।।४५।।

उदार्य्यमस्या असमोदर्ध्वमेव कारुण्यमस्या स्त्वविगण्मेव।
विभूतिरस्याहसितेश भूतिर्वृन्दाटवीं तत् किमुनाऽऽश्रयध्वम्।।४६।।

इसकी उदारता भी असमोदर्ध्व है, एवं करुणा भी असंख्य है इसकी संपत्ति ईश्वरों की संपत्ति पर हंसती है, तब क्यों तुम इस श्रीवृन्दावन का आश्रय ग्रहण नहीं करते हो ?।।४६।।

छित्त्वाऽन्तरेऽहं ममकार गाढ़ग्रन्थिनिमील्याक्ष्यतिसम्भ्रमेण।
विशन्तु श्रुति मौलिगूढ़ां वृन्दाटवीं माऽस्तु विचारणाऽत्र।।४७।।

अपने अन्तर्गत 'अहं–मम'–रूप दृढ़ ग्रन्थियों का छेदन करके अति सम्भ्रम से नेत्र बन्द करते हुए मूर्ख मनुष्य भी सर्वोत्तम वेदों से भी गोपनीय इस श्रीवृन्दावन में प्रवेश करते हैं, इसमें और किसी विचार की आवश्यकता नहीं है।।४७।।

किं रे महानन्दरसाब्धिखेलां हित्वार्त्ति सिन्ध्वावबुधाः पतध्वे।
विहाय वृन्दावनमत्यसाध्यं तत्साधने यत् कुरुताभियोगम्।।४८।।

हे अबुद्धगण ! तुम महानन्दरस सागर के क्रीड़ा सुख को त्याग कर दुःख सागर में क्यों गिर रहे हो ? और क्यों इस श्रीवृन्दावन को छोड़कर अति असाध्य साधनों में जुटे हुए हो ?।।४८।।

हन्त स्वार्थेषुखिद्यन्ते महान्तोऽपिर्भवद्विधाः।
यत् स्वच्छन्दं समस्तार्थं वृन्दारण्यं न पश्यत।।४९।।

हाय ! आप जैसे महापुरुषगण भी अपने स्वार्थ (की अप्राप्ति) के विषय

में खेद क्यों करते हैं ? स्वच्छन्द रूप से जहां सर्वार्थ साधन प्राप्त हैं, ऐसे श्रीवृन्दावन को क्यों नहीं देखते।।४९।।

वृन्दारण्यं समस्तार्थ वर्षणं रोमहर्षणम्।
श्रीशयोरपि भजत त्यक्त्वा तुच्छार्थतर्षणम्।।५०।।

समस्त प्रयोजन की वर्षा करने वाले श्रीवृन्दावन में श्रीलक्ष्मी नारायण को भी रोमहर्षण (पुलक) होता है, इसलिये तुच्छ वासनाओं को त्याग करके इस श्रीवृन्दावन का भजन कर।।५०।।

यदा सखि विचिन्वती कुसुममत्र वृन्दावने
सकृच्चकित मीक्षितात्वमसि पिच्छ सन्मौलिना।
तदैव सुदुरन्त तृट तव रसे स्म दंदह्यते
मनोऽस्य तत उत्थितो मदन वह्निरत्युल्वणः।।५१।।

हे सखि! जब इस श्रीवृन्दावन में फूल चुन रही थी, तब एक बार चकित भाव से मोर– पुच्छधारी श्रीश्यामसुन्दर ने तुम्हें देखा था, तब से तुम्हारे रस में अदम्य पिपासा युक्त होकर उसका मन जलता रहता है एवं अति उग्र मन्दाग्नि उसमें प्रज्ज्वलित हो उठी है।।५१।।

अभूत् प्रथममेव मे स्मरविषानल ज्वालया
मुधाकृत सुधाधरे किमपि दग्धदग्धं मनः।
समस्त मतिमोहन क्वणित किंकिणी नूपुरे
त्वमक्षि पथमागता तदनु धन्यवृन्दावने।।५२।।

मदनाग्नि की ज्वाला में पहले मेरा यह जला हुआ मन चंद्र को वृथा ही थोड़ा अर्पित हुआ था, किन्तु फिर अति मनोहर किंकिणी नूपुरादि के शब्द में मेरा मन और अधिक मोहित हुआ और तुम्हारे नैनगोचर होने पर अब इस धन्य श्रीवृन्दावन में मेरा समस्त मन ही तुम्हारे अर्पण हो गया है।।५२।।

फुल्लां मल्ली मतल्लीं विसृजति न भजेद्रम्यकं केलिवल्ली
मुज्जृम्भारम्भोजिनीं नो भजति न च भवेन्मालती गंधलुब्धः।
वासन्तीं नो हसन्तीं कलयति मधुपः कोऽपि वृन्दावनेऽस्मिन्
राधे त्वत्पाद पंकेरुह पुगमभितः संभ्रमी वंभ्रमीति।।५३।।

इस श्रीवृन्दावन में कोई एक भ्रमर (श्रीकृष्ण) ने प्रस्फुटित प्रशस्त मल्लिका का त्याग कर दिया है, रमणीय केलिवल्ली का सेवन वह नहीं करता है, खिले हुए कमल के पास भी वह नहीं जाता और मालती की सुगन्धि उसे लुब्ध नहीं करती, हंसमुखी वासन्ती की ओर वह आंख उठाकर भी नहीं देखता, हे राधे ! किंतु तुम्हारे चरणकमलों पर वह अत्यन्त आग्रह पूर्वक एवं विनय पूर्वक बारम्बार भ्रमण कर रहा है।।५३।।

इदानीमप्यानन्दयति वत वृन्दावनयशः
सुधाधारा येषामिह वदन चन्द्राद्विगलिता।
गतानां स्वं लोकं परममपि ते धाम तुमहा–
गुरूणामाणृन्यं कथमहह यामो वयममी।।५४।।

अहो ! समस्त लोकों के मुख से एवं तुम्हारे परमधाम श्रीवृन्दावन के महागुरु गणों के मुख से निकली हुई जो श्रीवृन्दावन के यश रूपी अमृत की धारा है, वह अभी तक भी हमें आनन्द प्रदान कर रही है, हम कैसे भला उनके ऋण से मुक्त होंगे ?।।५४।।

गरियो मौलीनामहमहह तेषां चरणयोः
कृतः स्वात्मन्यासः सुसुखमिदमायुः क्षपयिता।
अहो येषां राधाप्रियं रसमयं दिव्यं चरिता
मृत स्रोतो वृन्दावनमिदमहो मामनयत।।५५।।

अहो ! जिन श्रीराधाप्रिय श्रीश्यामसुन्दर का रसमय दिव्य चरितामृत स्रोत मुझे इस श्रीवृन्दावन में ले आया है, उस महत् शिरोमणि महापुरुषदेव के चरण युगल में मैंने आत्म–समर्पण कर दिया है एवं यहां श्रीवृन्दावन में ही सुखसहित मैं अपनी समस्त आयु बिताऊंगा।।५५।।

अहो वृन्दाटव्याः परम रस सर्वस्व चरणा
हरेः श्रीराधावोल्लसति हृदि वाणीष्वथ दृशोः।
अतो नूनं चन्द्रावलि निरवकाशा वयमयं
वृथा पादालम्बैस्तव सखि विडम्बं वितनुते।।५६।।

अहो ! श्रीवृन्दावन के समस्त उज्ज्वल रस के आश्रय रूप श्रीराधा एवं श्रीकृष्ण के नयन, मन एवं वाक्य उल्लसित हो रहे हैं, अतएव चन्द्रावली ! और

हमारा स्थान यहां कहां है ? यहां अब हमारे ठहरने का प्रयोजन नहीं है। हे सखि ! ये अब तुम्हारी विडम्बना ही कर रहे हैं।।५६।।

चन्द्रावल्येवास्ते मम हृदि पद्मे तदेकरस वशमे।
चतुरेवमैव गदितं प्रथमं राधापदेऽतिरूपांशु।।५७।।

"एकमात्र मेरे प्रेमाधीन चन्द्रावली ही मेरे हृदय में विराजती है"—इस प्रकार श्रीराधा की चरण प्रीति को गोपन करते हुए चतुरशिरोमणि श्रीश्यामसुन्दर ने कहा है।।५७।।

महानन्दस्यैषा परतरचमत्कार पदवी
महाप्रीते रत्यद्भुत सरणिरेषा सुखमयी।
महौदार्यैश्वर्य्यादिक परमनिष्ठौपनिषदां
महागुप्तं वित्तं यदुदयति वृन्दावनमिदम्।।५८।।

यह जो श्रीवृन्दावन प्रकाशित हो रहा है—यह महाआनन्द की परम चमत्कार मयी पदवी है, यह महाप्रीति का अति अद्भुत सुखमय पन्थ है। यह महा उदारता एवं ऐश्वर्यादि की परम अवधि एवं उपनिषदों का महा गुप्तधन है।।५८।।

ये संस्वाद्य श्रुतिगम मृतस्यन्दि वृन्दावनेऽति
प्रेमाविष्टाः पदमति रसोदञ्चि रोमाञ्चपुञ्जाः।
मूर्च्छामापु—र्निरवधि महानन्दसान्द्राब्धिलीना—
स्ते याताः किं वयमिह हतानाम भावैक संगाः।।५६।।

अमृतवर्षणकारी श्रीवृन्दावन में जो श्रुतियों के अति उत्कृष्ट माधुर्य को आस्वादन करते हुए अतिशय प्रेमाविष्ट होते थे, जो अति रस के आवेश में पुलकित होते एवं निरन्तर महानन्द के गाढ़ समुद्र में लीन होकर मूर्च्छित हो पड़ते थे। वह समस्त महाभावुक शिरोमणि मनुष्य अन्तर्धान हो गये हैं, हाय ! यहां अब हम क्या हतभागे होकर नहीं रह रहे हैं ?।।५६।।

श्रीमद्वृन्दावन गत लसन्मञ्जु गुञ्जावलीं ये
कीरीरं वाऽद्भुतगुणफलं प्रेक्ष्य वैवश्यभाजः।
हा कृष्णेति प्रतिपदमहो गद्गदोक्त्या गृणन्तः
पंकीकुर्वन्त्य वनि मुरुभिः प्रेमवाष्पाम्बुपूरः।।६०।।

अहो ! श्रीवृन्दावन की मनोहर गुंजावलि एवं अद्भुत गुण युक्त करील (टेंटी) फल को देखकर विवश होकर जो प्रतिपद में हा कृष्ण ! हा कृष्ण इस प्रकार गद्गद् वाणी से बहु प्रेमाश्रुधाराओं से पृथ्वी को पंकिल करते हैं।।६०।।

ते श्रीवृन्दावन रसमय स्वान्त विश्रान्त राधा–
कृष्ण श्रीमच्चरणकमलास्तत्पदं प्राप्तवन्तः।
त्यक्त्वा लोकं कलि विषधर ग्रस्त मत्राति शुष्य–
च्चित्तास्तदृक्जन सुमिलिता नो वयं जीविताहाः।।६१।।

वे ही श्रीवृन्दावन के रसमय प्रदेश में अपने चरम विश्राम स्थल श्रीराधाकृष्ण के श्रीचरणकमल को प्राप्त करके युगल किशोर की चरणसेवा के अधिकारी हुए हैं। हम कलियुगरूपी सर्प से ग्रसे हुए इस जगत् को त्यागकर उनकी तरह महाजनों के साथ सुन्दर रूप से मिलना चाहते हैं, हमें तो जीवित रहना भी उचित नहीं है।।६१।।

रे मूढ़ गूढ़मखिलोपनिषत् स्वगाढ़–
प्रेम्मावगाढ़मखिलार्थ शिरोऽधिरूढ़म्।
आनन्दसिन्धु मन पाश्रय दीनबन्धुं
वृन्दावनं व्रज हठौत् कलितात्मबन्धः।।६२।।

अरे मूर्ख चित्त मनुष्य ! समस्त उपनिषदों से जो गुप्त है और अपने गाढ़ प्रेम से जो प्राप्त होने वाले हैं, समस्त पुरुषार्थों में शिरोमणि है आनन्दसागर परमाश्रय तथा दीनबन्धु इस श्रीवृन्दावन के लिये बलपूर्वक अपने बन्धनों को तोड़कर प्रस्थान कर।।६२।।

वृन्दाटवी भुवन पावन कीर्त्तिवृन्दा–
वृन्दारकैरसुलभा यदि भाग्य लब्धा।
आराधयात्र रसतः सह राधया श्री–
गोविन्दमिन्दु चय निन्दि मुखारविन्दम्।।६३।।

त्रिभुवन को पवित्र करने वाली कीर्त्तियुक्त, देवतागणों को भी दुर्लभ–इस श्रीवृन्दाटवि को यदि तुमने भाग्यवश प्राप्त कर लिया है, तो वहां श्रीराधा सहित कोटिचन्द्र को निन्दित करने वाले मुखारविन्द युक्त श्रीगोविन्द की अनुराग से आराधना कर।।६३।।

वृन्दावनं सकल भाग्यवतां वरिष्ठै
र्लभ्यं सुरभ्यनिल पावित सर्वसभ्यम्।
लोभ्यं परेश रमयोरपि सर्व भावा–
क्षोभ्य प्रशान्त हृदयेन सदा वसन्तु।।६४।।

यह श्रीवृन्दावन समस्त महाभाग्यवान् पुरुषों को ही मिलता है, यह अपनी सुगंधित वायु से सब अधिवासियों को पवित्र करता है, भगवान् श्रीनारायण भी लक्ष्मी आदि सहित इसकी प्राप्ति के लिये लोभायमान रहते हैं, तुम यहां हर तरह से अचंचल चित्त तथा प्रशान्त मन होकर वास करो।।६४।।

यद्याप्तमिच्छसि महापरमं पुमर्थं
नैवाप्तमिच्छसि परिश्रममल्पकञ्च।
वृन्दावनं झटिति तत्प्रिय याहि याहि
मा याहि लम्भित भयान् हि विधीशमुख्यान्।।६५।।

यदि तुम्हें परम पुरुषार्थ प्राप्त करने की इच्छा है। एवं थोड़ा भी परिश्रम करना नहीं चाहते हो, तो हे प्रिय! शीघ्र ही श्रीवृन्दावन चले जाओ, किन्तु ब्रह्मा शिवादि जो स्वयं भय ग्रस्त हैं, एवं सामान्य फलों के देने वाले हैं उनके निकट नहीं जाना।।६५।।

या या शक्तिर्विचरति परा प्राकृताऽप्राकृतेषु
तां तत्कर्याण्यपि कलयतो नैव वृन्दावनेशौ।
शुद्ध प्रेमोज्ज्वल रसमयानन्दलीलैक मग्नौ
तावेवैतादृशि वनवरेऽत्रैव तादृग् भजस्व।।६६।।

जो जो परमाशक्ति प्राकृत एवं अप्राकृत वस्तुओं में विचरण करती है, उसकी ओर तथा उसके कार्य की ओर मत देख, शुद्ध प्रेमोज्ज्वल रसमय आनन्दमयी लीला में ही एकमात्र मग्न चित्त होकर उस श्रीवृन्दावनेश्वर श्रीयुगलकिशोर का इस वनश्रेष्ठ श्रीवृन्दावन में मधुर भाव से भजन कर।।६६।।

कुम्भीपाकाऽधिकतर महादुःख सम्भार गेहा
रम्भी दम्भी न भयचकितः स्त्र्याख्यकुम्भी न शीतः।
गम्भीरान्तः प्रणयरहितो माधवे साधुलम्भे
स्तम्भीभूतस्तदपि न रसोज्जृम्भि वृन्दावनं भोः।।६७।।

कुम्भीपाकनरक से भी अधिकतर महा दुखों का घर बनाने वाले अहंकारी, निर्भयचित्त, स्त्रीरूपी सर्प से ग्रसे हुए, कपटी, श्रीमाधव की प्रीति से रहित, और संत दर्शनों से वंचित तथा जड़मति मनुष्यों के लिये रस प्रकाश करने वाला यह श्रीवृन्दावन भी हाय ! कुछ नहीं कर सकता है।।६७।।

न शमदमाद्यमस्ति विदितं नहि स्वधर्मस्थिति
हरिचरणारविन्दयुगले सदैव मन्दामतिः।
उपरमणंच नास्ति कलुषान्महत्कृपा दुर्लभा
तदशरणोऽहमद्य शरणं व्रजामि वृन्दावनम्।।६८।।

मैं शमदमादि विषयों को नहीं जानता हूँ, स्वधर्म में भी स्थिरता नहीं है हरि–पादपद्मों में मेरी सदा मन्दमति है, पापों से मेरी निवृत्ति नहीं है, और महत् पुरुषों की कृपा तो मेरे लिये दुर्लभ ही है, इसलिये अनन्य गति होकर आज मैंने श्रीवृन्दावन की शरण ले ली है।।६८।।

हरि हरि राक्षसीयमवला मन्मनः कर्षति
प्रसरति मिष्टवस्तु रसनां मनाक् च ना वर्त्तते।
निरवधि लोक रञ्जनपरो भवोदरार्थे क
थमधमोऽधिकार रहितो वसामि वृन्दावने।।६९।।

हरि ! हरि !! यह नारी रूपी राक्षसी मेरे मन को खैंच रही है। मिठाई की ओर जिह्वा लोलुप हो रही है, जरा भी नहीं हटती, यह संसार भी पेट के लिये निरन्तर लोक रंजन कर रहा है, अतः अधिकार रहित होकर मैं किस तरह श्रीवृन्दावन में वास करूंगा ?।।६९।।

चरत यथेष्टमिन्द्रियगणा वयं न युष्मद्द्रुहः
कथमपि शक्तिरस्ति न च वो विनिग्रहे मादृशाम्।
कलयत वाक्यमेकमिह न स्तथा विधयं यथा
हतमति रेष याति न बहिर्विहाय वृन्दावनम्।।७०।।

हे इन्द्रियगणो ! तुम यथेच्छ विहार करो, हम तुम्हारे शत्रु नहीं हैं, तुम्हारे निग्रह करने की शक्ति हम में नहीं है, अब एक बात हमारी सुनो–जिससे मैं बुद्धिहीन जन श्रीवृन्दावन को छोड़ कर अन्यत्र न जा सकूं ऐसा कुछ विधान करो।।७०।।

जीवन्नेव शवायितोऽन्त सदसद्देहेन्द्रिय व्यापृतिः
श्रीराधापदपद्मसीधु सुरसास्वादोन्मदान्धाकृतिः।
श्रीराधाप्रिय नागरेन्द्र ललिताद्यापुष्ट नर्म्मोत्सवः
श्रीराधारतिकेलि कौतुकवने कोऽप्यको धन्यो वसेत्।।७१।।

जीते जी जो मरे के समान है, सत् वा असत् देह तथा इन्द्रियों का सब व्यापार जिसका लुप्त हो चुका है, श्रीराधा पद पद्म सुधा का सुरस आस्वादन करके जो उन्मत्त एवं मदांध हो रहा है, श्रीराधाप्रिय नागरचूड़ामणि ललितादि द्वारा पुष्ट नर्म्मोत्सवपूर्ण श्रीराधारतिकेलिकौतुक–वन में जो वास करता है, वह निरतिशय धन्यभागी पुरुष है।।७१।।

श्रीमद्राधा मधुरिमनिधि र्यद्रसेनातिमत्ता
चित्रं चित्रं निजनटवर प्रेयसा नानटीति।
दृष्ट्वा दृष्ट्वा पुलकित तनुः स्वप्रिया धामशोभां
चित्रन्यस्तालिभिरपि वृता ध्येमि वृन्दाटवीं ताम्।।७२।।

माधुर्यसागर श्रीराधा जिसके रस में अतिमत्त होकर अपने नटवर प्रियतम के साथ विचित्र नाट्यरंग करती है, अपनी प्रेयसी की विग्रह–छटा का दर्शन करके जहां प्रियतम पुलकित होते हैं और जहां सखीगण चित्रवत् परिवेष्ठन किये रहती हैं, उस श्रीवृन्दाटवि का मैं ध्यान करता हूं।।७२।।

गण्डाभोगे मृगमदरसैः क्लृप्त सच्चित्रलेखा
लेखाधीशाद्यनघ रमणीवृन्द मौल्यूर्द्ध रेखा।
सा श्रीराधा स्वदयिततमेनाऽत्य धैर्य्या यदीयै–
र्माधुर्यौघैरटति परितोऽध्यमि वृन्दाटवीं ताम्।।७३।।

श्रीराधा के कपोलों पर कस्तूरी द्वारा अति सुचित्र रेखा अंकित हो रही है, देवाधीश इन्द्रादि की रमणियों की भी शिरोमणि रूप वह श्रीराधा अपने प्रियतम के साथ, जिसकी माधुर्यराशि से अधीर होकर इधर उधर भ्रमण करती हैं, उसी श्रीवृन्दाटवी का मैं ध्यान करता हूं।।७३।।

श्रीशाद्यैरपि यस्य सद्रसनिधे राशाऽपिनासाद्यते
नाशामप्यवसाययन्ति निगमा स्त्रासात् सदोदासते।

भासा यस्य तिरोहिताश्चिदचिदात्मार्केन्दु वह्न्यादयो
वासायानुमतिं ददातु कृपया तन्मेऽद्य वृन्दावनम्। ।७४।।

लक्ष्मी–नारायणादि जिसके उत्कृष्ट रस–समुद्र की आशा भी नहीं कर सकते। वेदसमूह भयभीत होकर जिसके आर–पार को निश्चितरूप से निरूपण नहीं कर पाते हैं एवं सदा उदासीन बने रहते हैं, चित्–जड़ात्मक सूर्य–चन्द्र, अग्नि आदि भी जिसकी कांति के सामने तिरोहित हो जाते हैं, वह श्रीवृन्दावन आज मुझे कृपा पूर्वक वास करने की अनुमति प्रदान करे। ।७४।।

श्रीवृन्दाविपिनि तव प्रभामात्र
प्रोन्मीलत् प्रणयरस प्रवर्षधौतम्।
श्रीराधापदनख चंद्रिकोच्छलंती
सान्द्रेयं मम खलु निम्पतीव चेतः। ।७५।।

हे श्रीवृन्दावन ! आपकी प्रभा मात्र से ही प्रकाशमान् प्रणयरस की अतीव वर्षा से मेरा चित्त धुल गया है एवं श्रीराधा चरणनख से उच्छलित इस सान्द्र चन्द्रिका से मानो लेपित हो गया है। ।७५।।

श्रीवृन्दावन वसतिं विधित्सतो मे–
देहान्तावधि वधिरायिते श्रुतीस्ताम्।
दोषानां श्रवणविधौ परस्य जिह्वा
मूकास्तां भणितिषु धीर्ग्रहे जड़ाऽस्तु। ।७६।।

मृत्यु पर्यन्त श्रीवृन्दावन में वास करने वाले, मेरे दोनों कान परदोषों को सुनने में वधिर हो जाएं, एवं उनके कहने में मेरी जिह्वा गूंगी हो जावे, एवं परदोषों को ग्रहण करने में मेरी बुद्धि जड़ हो जाए–यही मेरी प्रार्थना है। ।७६।।

श्रीवृन्दावन नील कुट्टिमोर्व्यातारा
सु प्रतिफलिता सु पुष्प–बद्धया।
चिन्वानां सपदि हसन्नुपालि राधां
कृष्णोऽव्यात् प्रसृतकरार्थित प्रसूनः। ।७७।।

श्रीवृन्दावन की नीलमणि विरचित भूमि पर तारागणों की परछाई को श्रीराधा पुष्प जानकर उनको चयन करने लगीं श्रीकृष्ण ने एकदम सखियों के सामने हंसते हंसते अपना हाथ फैलाकर उन्हें वांछित पुष्प देकर सम्भाल लिया। ।७७।।

श्रीवृन्दावन मम पावनं त्वमेव
श्रीवृन्दावन मम जीवनं त्वमेव।
श्रीवृन्दावन मम भूषणं त्वमेव
श्रीवृन्दावन मम सद्यशस्त्वमेव।।७८।।

हे श्रीवृन्दावन ! आप ही मेरे पवित्र करने वाले हो, आप ही मेरे जीवन हो, आप ही मेरे भूषण एवं आप ही मेरे सद्यश हो।।७८।।

या कैशोरक मात्र दिव्य वयसोस्तुंगैरनंगोत्सवैः
स्वास्मिन्नुन्मदवत् सदा विहरतोः श्रीराधिकाकृष्णयोः।
वर्द्ध स्पर्द्धितयेव वृद्धि मुपयात्युच्चैर्मिथोऽगश्रिया
श्रीवृन्दावन साऽस्तु ते मम लोभाय शोभाततिः।।७६।।

हे श्रीवृन्दावन ! एकमात्र कैशोररूप दिव्यवयस युक्त प्रति अंग में अनंगोत्सव सहित तुम्हारे इस वन में सदा उन्मत्त होकर विहार करने वाले श्रीराधाकृष्ण की परस्पर अंगों की सुन्दरता के साथ मानो स्पर्द्धा करते हुए तुम्हारी जो प्रतिक्षण वर्द्धनशील शोभाराशि है, वही मेरे मन को अतीव लुभाये रहे।।७६।।

लीलाः श्रीपुरुषोत्तमस्य सकलाः स्वानन्द सान्द्रास्तथा
श्रीमन्मूर्ति परस्परापि परमा रामाश्च तास्ता अपि।
सत्यं किंतु ममैक एव मधुरो राधैकधीनागरः
यत्रैव स्वैकरूपतोऽस्ति यदतो वृन्दावनं मे गतिः।।८०।।

श्रीपुरुषोत्तम की समस्त लीलाएं स्वानन्द पूर्ण हैं, श्रीमूर्ति समूह भी उसी प्रकार ही हैं, उनकी समस्त रमणीगण भी अतिशय आनन्द प्रचुरा हैं, यह सत्य है, किंतु मुझे तो आनन्द देने वाला मधुररूप एकमात्र है–श्रीराधा चित्त–चोर। वह श्रीवृन्दावन में अपने स्वरूप से विराजमान है, अतः मेरी गति केवल श्रीवृन्दावन ही है।।८०।।

यो लोकोत्तर नागरीषु सुचमत्कारी विशेषः परः
सर्वोऽसौ व्रजसुन्दरीषु सकल स्तासां मम स्वामिनीम्।
अत्याश्चर्य चमत्कृतिः श्रयति सा तत्रैव वृन्दावने
नित्यं खेलति मोहनेन तदिहैवात्मा ममाऽऽस्तां स्थिरः।।८१।।

दिव्य नारीगणों में जो परम सुचमत्कारिता विशेषभाव से दीख पड़ती है, वह समस्त परिपूर्णरूप से व्रजसुन्दरीगणों में विराजमान है, उनका जो अति आश्चर्यजनक चमत्कार समूह है, वह मेरी स्वामिनी श्रीराधा के ही आश्रित है, वे मोहन के साथ नित्य ही इस श्रीवृन्दावन में क्रीड़ा करती हैं, अतः मेरे प्राण बस यहां श्रीवृन्दावन में ही स्थिर हों।।८१।।

पूर्ण प्रेमरसार्णवेऽखिल जगन्निर्मज्जयन्ती महा—
कन्दर्पोदग दर्पतो व्रजभृतां निर्लज्जयन्ती वधूः।
क्रीड़ामात्र रसेऽप्यशेष परमस्याऽऽसज्जयन्ती मनः
सर्वेषां परिवर्ज्जयन्त्यपि परं प्रोदेति वृन्दाटवी।।८२।।

यह श्रीवृन्दाटवि समस्त जगत् को पूर्ण प्रेमरस के सागर में डुबाते डुबाते, महाकन्दर्प के उदित दर्प (गुमान) के कारण ब्रज ललनाओं की लज्जा नाश करते करते, सबका मन उस श्रेष्ठ लीलारस में आसक्त करते करते और समस्त श्रेष्ठत्व को नाश करते—करते स्वयं प्रकृष्टरूप से प्रकाशित हो रही है।।८२।।

तत्तद्दिव्य सुनायिका विलसितैः प्राणेश्वरी मे सदा
तत्तन्नायक दिव्यरूप ललितात्मैकानुग प्रेयसा।
दिव्यानन्तविचित्र खेलन रता वृन्दावनेऽत्रैव तत्
स्वेच्छारूपिनि तद्विना मम मनो वस्त्वेव ना मन्यते।।८३।।

मेरी प्राणेश्वरी सदा उन समस्त प्रसिद्ध दिव्य उत्तम नायिकाओं के विलासादि द्वारा भूषित हैं एवं उनके प्रसिद्ध नायकोचित दिव्यरूप ललित—स्वभाव युक्त हैं, तथा एकमात्र वशवर्त्ती प्रियतम के साथ दिव्य अनन्त विचित्र क्रीड़ापरायण होकर इस स्वेच्छारूपिणी श्रीवृन्दाटवि पर विराजमान हैं, इसे छोड़कर और किसी में भी मेरा मन सार वस्तु नहीं जानता है।।८३।।

अहो सेशाऽशेषाऽखिल विदुर हृद्विस्मयकरी
शरीरिण्यत्रैव प्रणयरस माधुर्य लहरी।
वरीयो भाग्य श्रीभरित जनता हृन्मधुकरी
परीतं वृन्दाटव्युदयति ममाशार्णव तरी।।८४।।

अहो ! यह श्रीवृन्दावन ईश्वर सहित समस्त पदार्थों को सर्वभाव से जानने वाले पुरुषों के भी हृदय को विस्मित करता है, यहां ही प्रणयरस—माधुर्य

तरंग मूर्तिमान् होकर विराजती है, उत्तम भाग्य–लक्ष्मी पूर्ण लोगों के हृदय की भ्रमर स्वरूप तथा मेरी आशाओं के समुद्र की नौका स्वरूप यह श्रीवृन्दाटवि चारों ओर प्रकाशित हो रही है।।८४।।

अमर्य्याद प्रेमामृत जलधि सम्वर्द्धन शरद्
विधु ज्योत्सना वीचिर्मधुर रस संसिक्त वसुधा।
वुधानामप्यन्यार्थकमधि मुधा भ्रामणकरी
शरीरं वृन्दाटव्यवतु मम रम्यात्मनि सदा।।८५।।

असीम प्रेमामृत के सागर को उच्छलित करने वाले शरद चन्द्र की ज्योत्स्ना तरंगों के मधुर रस से वसुन्धरा को सिंचन करने वाली, विद्वान् पुरुषों को भी अन्य पदार्थों (साधनों) में वृथा भ्रम उत्पादन कर देने वाली इस श्रीवृन्दाटवि की गोद में मेरा शरीर सदा सुरक्षित रहे।।८५।।

विमुक्तानामप्युन्मथित हृदयाऽनङ्कुशदया–
निधिः सर्वाश्चर्य प्रचुर सुषमा वैभवखनिः।
समन्ताच्छ्री राधाललित पदविन्यास मधुरा
दुरापार्थाशां मे सफलयतु वृन्दावन–मही।।८६।।

जो विमुक्तजनों के हृदय को भी मन्थन करती है, जो निरपेक्ष दया की सागर है, सब आश्चर्ययुक्त प्रचुर सुषमा–वैभव की खान है, जो सर्वत्र श्रीराधा के ललित चरण विन्यासों से मधुरा हो रही है, वह यह श्रीवृन्दावन भूमि मेरी दुर्लभ वांछाओं की पूर्ति करे–यही प्रार्थना है।।८६।।

प्रसार्याक्षिश्रोत्रे किमति सुविचित्रेऽति मधुरो–
न्मद प्रेमाविष्टद्वय रसनिधि प्राणदयिते।
वसन् वृन्दारण्ये तदमित गुणान् सन्मुखरितान्
यथाभातं रूपामृतमपि च यास्यम्यवितृषः।।८७।।

अति सुन्दर, अति विचित्र एवं अति मधुर उन्माद प्रेमाविष्ट युगल रस सागर के प्राणप्रिय श्रीवृन्दावन में वास करके, साधुगणों के मुख से उनकी असीम गुणावली एवं श्रीवृन्दावन में प्रकटित रूपामृत को कान से श्रवण करके एवं नेत्रों से दर्शन करके क्या मैं अपनी चिर–तृष्णा को बुझा सकूंगा ?।।८७।।

श्रीवृन्दाविपिन मया शरीरमेतद्
विक्रीतं त्वयि खलु सेन्द्रियं सचित्तम्।
श्रीराधारमण पदारविन्द–भक्ति–
मूल्येन श्रुतिवचसा ददासि नो किम् ?।।८८।।

हे श्रीवृन्दावन इन्द्रियों एवं चित्त के सहित मैंने यह शरीर आपको बेच दिया है, श्रुति के वाक्यानुसार श्रीराधारमण के चरण कमलों की भक्ति ही इसका मूल्य है, क्या आप उसे नहीं दोगे ?।।८८।।

श्रीमद्वृन्दावन तव गुणैः पूर्य्यतां श्रोत्ररन्ध्र–
स्त्वच्छ्री वीक्ष्यामृतरसनिधौ मज्जतां चक्षुषी मे।
अत्युल्लासार्द्रटतु रसना वर्णने त्वन्महिम्नां
त्वत् प्रेम्णा मे वपुषि सततं सात्त्विकाः संतुभावाः।।८९।।

हे श्रीवृन्दावन ! आपके गुण श्रवण करने से मेरे कान विवर पूर्ण हों, आपकी शोभा दर्शन करने से मेरे नेत्र अमृतरस सागर में निमज्जन करें, आपकी महिमा को वर्णन करने में मेरी जिह्वा अति उल्लास युक्त नृत्य करे। आपके प्रेम में मेरे शरीर में सदैव सात्विक भावसमूह उदित हों–यही मेरी प्रार्थना है।।८९।।

श्रीमद्वृन्दावन मम विना मूल्यमेतच्छरीरं
क्रीनीहि त्वं किमिह बहुना त्वत्पदे क्षिप्तमेव।
धर्माधर्माद्यमित कृतिभिर्नास्य पोषेऽस्मि शक्तो
मन्दाक्रान्ता गुरुतरधुराः साधुभिश्चानुकम्प्याः।।९०।।

हे श्रीवृन्दावन ! बिना मूल्य ही आप मेरे इस शरीर को खरीद लीजिये, और अधिक क्या ? मैं अपना यह शरीर आपके चरणों में समर्पण करता हूं। धर्म–अधर्म आदि अनेक साधनों से मैं इसके पालन पोषण में असमर्थ हो गया हूं, मंदगति तथा भारी बोझा उठाये हुए पुरुषों पर साधु पुरुष अवश्य ही दया करते हैं।।९०।।

श्रीमद्वृन्दाविपिन शरणापन्नमेतं कदापि
त्यक्तुं नार्हस्यहह नारकात्यन्ध कूपे पतन्तम्।

अंघः संघ प्रतिहतमतिं लंघितेशाखिलाभं
प्राज्ञम्मन्यं त्रिजगति न मामज्ञमन्योऽवतीह।।९१।।

हे श्रीवृन्दाविपिन ! अति अन्धकूप नरक में गिरनहार इस शरणागत व्यक्ति को त्याग करना कभी भी तुम्हें उचित नहीं, पापों से मेरी मति उल्टी हो रही है, श्रीभगवान् की सभी आज्ञाओं का उल्लंघन कर रहा हूं प्राज्ञम्मन्य मुझ अज्ञानी की त्रिभुवन में और कोई रक्षा करने वाला नहीं है।।९१।।

त्वमानन्दा पराम्बुधि रसम दुःखीह जगती
त्वमत्यन्तं सत्यावनतम इहाऽहं त्वघमयः।
तवानाथत्राण व्रतमिह ममान्यन्न शरणं
विचार्य्यै तद्वृन्दावन विरचिताशस्त्वयिपरम्।।९२।।

हे श्रीवृन्दावन ! तुम आनन्द के अपार सागर हो, और मैं इस जगत् में अतुलनीय दुखी हूं। तुम सत्य के अत्यन्त रक्षकतम हो, और मैं पापी हूं, तुम्हारी अनाथों की रक्षा करने की प्रतिज्ञा है और मैंने भी तुम्हारी एकमात्र शरण ले ली है, यही विचार कर मैंने तुम्हारी परम आशा लगा रखी है।।९२।।

श्रीमद्वृन्दाविपिन विमुखा ये महामन्दभाग्या
स्तेषां नामान्यहह नहि मे कर्णमूलं प्रयान्तु।
यच्छ्रीराधारसिक विमल प्रेम भक्त्युषराज्ञाः
पश्यन्त्येतत् सदृशमपि कं किञ्चिद प्राकृतेऽपि।।९३।।

अहो ! जो सब मंदभाग्य व्यक्ति श्रीवृन्दावन के विमुख हैं। उनका तो नाम भी मेरे कानों में न जावे। जो श्रीराधारसिक श्रीश्यामसुन्दर की विमल प्रेमभक्ति से विहीन हैं एवं अज्ञ हैं, क्या वे अप्राकृत जगत् में इस प्रकार का किंचित् भी सुख देख सकते हैं ?।।९३।।

ध्यात्वा ध्यात्वा म्रियन्तां कथमपि न मनाक् राधिकाकृष्णतत्त्व
स्फूर्त्ति वैकुण्ठ मुख्याखिल परम महाधाममहो सत्यमेतत्।
नूनं नन्दब्रजे सम्भवति सचल तत् पूर्णमाधुर्य्यधुर्य्य–
स्तस्मादस्माकमस्मिन् परमचलरतिः श्रीलवृन्दावनेऽस्तु।।९४।।

ध्यान करते करते मरजाने पर भी किन्तु किसी प्रकार श्रीराधिका–कृष्ण तत्त्व की अणुमात्र भी स्फूर्त्ति नहीं होती, अहो ! यह परम सत्य है कि यह धाम

(श्रीवृन्दावन) वैकुण्ठ आदि निखिल धामों का भी परमधाम है। श्रीनन्द के ब्रज में वह पूर्ण माधुर्य–धुरा सचलरूप से निश्चित ही अवस्थान करती है। इसलिये इस श्रीवृन्दावन में ही हमारी परम अचला रति हो।।६४।।

मायाचन्द्राभिरामोज्ज्वल कलित महाबीज चिज्ज्योतिरेक
स्वच्छ स्वच्छन्द कामोन्मद रसजलधौ सत्परेऽनन्त पारे।
दिव्यद्वीपायमानं विलसति मथुरामण्डलं नन्दगोष्ठं
तत्राप्यस्माच्च विस्मापयति रसभरै श्रीलवृन्दाटवीयम्।।६५।।

माया (लक्ष्मी) तथा चंद्र से भी अधिक रमणीय, उज्ज्वल महाबीज (क्लीं) समन्वित, चित्, ज्योतिर्मय, स्वच्छ, स्वच्छन्दस्वरूप, उन्मद, केवल सद्वस्तु से मंडित, अनन्त पार रस समुद्र के दिव्य द्वीप की तरह देदीप्यमान नन्दगोष्ठ मथुरामंडल विराजमान है, उसमें भी श्रीवृन्दावन ही अत्यधिक विस्मयजनक रसपूर्ण है।।६५।।

वेदाः खेदाय नाना सरणिमनु सरद्वाक्यजालं वहन्तः
सन्तः सन्तप्ति शान्त्यै न मम हरिरसैकाशया दन्दहस्य।
श्रौतं स्मार्त्तञ्च यत् साधनमिह कलयन् सर्वमेतद्विरुद्धं
हा वृन्दारण्य राधारतिभवनममालम्बनं स्या स्त्वमेव।।६६।।

वेद अनेक प्रकार के अनुसृत वाक्यजाल को फैलाकर केवल खेद ही उत्पन्न करते हैं, साधु समाज केवल हरिरस की आशा में मेरे दग्धचित्त के संताप को सम्यक् शान्त करने में असमर्थ है। श्रौत और स्मार्त्त जितने साधन हैं, उनमें सर्वत्र विरोध ही दीखता है, हा श्रीवृन्दावन ! हा श्रीराधारति भवन ! तुम ही एक मेरे आश्रय हो।।६६।।

को रागः को विरागः किमिह वरयशो दुर्यशो वा किमत्र
को धर्मः कोन्वधर्मः सदसदुरुकृतिः प्रासना वासना का ?।
के दोषाः के गुणा वा किमिहबहुविध दुःखमस्मिन् सुखं किं,
श्रीवृन्दारण्य मामृत्यहह न जहतां कोटिशो वज्रपातैः।।६७।।

यह राग क्या है और विराग क्या है? श्रेष्ठ यश या खोटा यश ही क्या है ? धर्म क्या है ? अधर्म क्या है ? वह सत् कर्म अथवा असत् कर्म क्या है ! निष्कामता और वासना क्या होती है ? दोष क्या है और गुण क्या है ? अनेक

प्रकार के दुःख अथवा सुख क्या हैं ? अहो ! मृत्यु पर्यन्त कोटि वज्रपात क्यों न होवे श्रीवृन्दावन को त्याग कर मुझे कहीं नहीं जाना है।।६७।।

पुष्पासारे सतति गगनाद् दुन्दुभौ देवतानां,
दिव्योन्मादे मलयपवने वाति भात्यद्भुतेन्दौ।
वृन्दारण्ये विपुल पुलिने प्रोत्सरद् गन्धचूर्णे,
राधाकृष्णौ स्मर निजसखी मण्डली चित्रनृत्यौ।।६८।।

आकाश से फूलों की वर्षा हो रही है, देवतागण दुन्दुभि बजा रहे हैं, दिव्य उन्मत्त करने वाली मलयाचल की पवन प्रवाहित हो रही है। अद्भुत चंद्रमा का प्रकाश भी हो रहा है। विपुल पुलिनों से सुशोभित श्रीवृन्दावन में पराग इधर उधर विकीर्ण हो रहा है, इस प्रकार अपनी सखी मण्डली में विचित्र नृत्य परायण श्रीराधाकृष्ण का स्मरण कर।।६८।।

श्रीप्रबोधानन्द सरस्वती-विरचित श्रीवृन्दावन-महिमामृतम् का
द्वादश शतक समाप्त हुआ।।१२।।

त्रयोदश-शतकम्

वृन्दारण्येऽद्भुतरसमये यत्र यत्रैव राधा-
कृष्णौ नित्योन्मद रतिकलापारतृष्णौ प्रयातः।
गायद् भृंगीगण शुकपिकाद्युन्नटद्बर्हिवृन्दं
तत्रैवाऽनुब्रजदवनिजाः पुष्पमालाद्यवर्षन्।।१।।

अद्भुत रसमय श्रीवृन्दावन में जहां जहां नित्योन्मद रति केलि में असीम तृष्णाशील श्रीराधाकृष्ण गमन करते हैं, वहां वहां भ्रमरगण शुक-पिकादि भी गान करते हैं एवं मयूर समूह नृत्य करते हुए अनुगमन करते हैं तथा वृक्षगण भी पुष्प माल्यादि की वहां वर्षा करते हैं।।१।।

यावद्राधापदनखमणि चन्द्रिका नाविरास्ते
तावद् वृन्दावनभुवि मुदं नैति चेतश्चकोरी।

यावद् वृन्दावनभुवि भवेन्नापि निष्ठा गरिष्ठा।
तावद् राधाचरणकरुणा नैव तादृश्युदेति।।२।।

जब तक श्रीराधा के पदनख की चन्द्रिका श्रीवृन्दावन–भूमि पर आविर्भूत नहीं होती, तब तक चित्त–चकोरी को आनन्द नहीं प्राप्त होता, और जब तक श्रीवृन्दावन–भूमि में पूर्ण निष्ठा नहीं होती, तब तक श्रीराधा चरण की कृपा भी पूर्ण रीति से उदित नहीं हो पाती।।२।।

मुक्ताहाराः सुरुचिरगुणाः स्वच्छतामादधानाः
कृष्णस्यूताः स्वयमुपहिताराधया कण्ठपीठे।
त्वञ्चेद् वृन्दावनभुविलुठंस्तादृशः स्या महात्मन्
नूनं तादृक् पदमपि न ते दुर्लभं हन्त भावि।।३।।

अत्यन्त मनोहर गुणयुक्त अति निर्मल मुक्ताहार जो श्रीकृष्ण ने ग्रथित किये थे, श्रीराधा ने स्वयं ही अपने गले में पहन लिये हैं, हे महात्मन्! तुम भी यदि श्रीवृन्दावन भूमि पर लोट लोट कर इस प्रकार सेवक हो सको तो यह (दास्य) सेवा की प्राप्ति तुम्हारे लिये भी कुछ दुर्लभ नहीं है–यह निश्चित जानो।।३।।

श्रीवृन्दावनकुञ्जमञ्जु लतमः पुञ्जे कलानां चतुः
षष्ठैः कोऽपिनिधिः सदोज्ज्वलतम श्यामः शशिमोहनः।
आश्चर्यैक नवीन हेम कमलिन्यूर्द्धाम्बुजं चुम्बति
प्रेक्ष्य प्रेक्ष्य तदेव विस्मितमनाः सौख्याम्बुधौमज्जतु।।४।।

श्रीवृन्दावन के कुञ्जों के मनोहर अन्धकार में कोई चौंसठ कलानिधि सर्वदा उज्ज्वलतम श्याम वर्ण मोहन चन्द्र विराजमान् है वह एक अति आश्चर्यमय नवीन स्वर्ण–कमलिनी (श्रीराधा) का मुख कमल चुम्बन कर रहा है, इसे देख कर विस्मित होते हुए सुखसागर में मग्न होवो।।४।।

अरक्त रुचिरारुणाधर कराङ्घ्रि पंकैरुहा
मनंजित सुनीलदृक्कुवलयाम मृष्टोज्ज्वलाम्।
असंस्कृत सुचिक्कण प्रचुर कुन्तलां राधिका–
मभूषण विभूषितां स्मर सदाऽत्र वृन्दावने।।५।।

रंजित नहीं है तो भी जिनके अधर तथा पादपद्म सुन्दर लालवर्ण के हैं, काजलविहीन होते हुए भी जिनके नेत्र युगल कुवलय की भांति उज्ज्वल हैं, संवारे हुए न होने पर भी घुंघराले हैं जिनके केश समूह, इस प्रकार भूषण रहित होते हुए भी जो विभूषिता श्रीराधाजी हैं, उनका सदा श्रीवृन्दावन में स्मरण कर।।५।।

श्रीवृन्दावन जीवना इह महाभागा यदा जीवना
दप्येते वत वल्लभा नहि तदा वृन्दाटवी दुर्ल्लभा।
तादृक्सत्तम सत्कृपात उदिता वृन्दावने चेन्महा
प्रीति स्तर्ह्यचिरेण सापि सुलभा वृन्दावनाधीश्वरी।।६।।

जिनको श्रीवृन्दावन ही प्राण समान है, ऐसे महाभाग्यवान् पुरुष जिनको प्राणों से भी अत्यन्त प्यारे हैं, उन्हें श्रीवृन्दावन की प्राप्ति कभी दुर्ल्लभ नहीं है, इस प्रकार के महापुरुषों की कृपा से यदि श्रीवृन्दावन में महा प्रीति उत्पन्न हो आवे, तो शीघ्र ही श्रीवृन्दावनाधीश्वरी श्रीराधा की प्राप्ति हो जाती है।।६।।

न राका राकायाः पतिरयमुदीते न सरसी
सरोजं प्रोत्फुल्लं विपुलपुलिनं भाति न नदी।
चमत्कुर्वन्त्येते तड़ित इह मेघा नहि जय
त्यहो श्रीराधा विस्मय कृदिह वृन्दावन वने।।७।।

पूर्णिमा नहीं है, तो भी पूर्णिमा–पति चन्द्र का उदय हो रहा है, सरोवर नहीं है, परन्तु पद्म प्रफुल्लित हो रहे हैं, नदी न होने पर भी, अनेक पुलिन शोभित हो रहे हैं, मेघ नहीं है परन्तु बिजली चमक रही है, अहो ! इस श्रीवृन्दावन में विस्मय कारिणी श्रीराधा ही जययुक्त हो रही है।।७।।

कान्ते ! तल्पमिदं कृतार्थय नहि प्रेष्ठेऽपराधेऽस्य कः
श्यामे तच्चरितं न भद्रमपि किं वक्ष्यामि तत्ते कियत्।
क्षन्तव्यं सकलं नहि त्यज पदं त्वत्यक्त तल्पेस्वपि–
म्यङ्घ्री ते उपलालये न निपुणो स्यांशिक्षतां किंकरः।।८।।

"हे कान्ते ! इस शय्या को कृतार्थ करो"–(उत्तर) "ना"। 'प्रियतमे ! इस दास से क्या अपराध हुआ है ? (उत्तर) 'हे श्याम ! तुम्हारा इस प्रकार का चरित्र मुझे अच्छा नहीं लगता।' "हाय ! वह क्या" ?–(उत्तर) 'तो क्या तुम्हारे

कुछ चरित्र को बताऊं ?' "सब क्षमा करो, तुम यहां मुझे छोड़कर चली मत जाना, तुम शय्या को त्याग न करो, तुम उस पर शयन करो मैं तुम्हारे चरणों को उपलालन करूंगा।' (उत्तर)—'तुम इस विद्या में निपुण नहीं हो।'—"तो इस किंकर को आप ही शिक्षा दीजिये न"।।८।।

नष्टा ते खलु बुद्धिरुन्मद नहि त्वं तामहार्षीर्धृता
क्व स्वांगे वद यत्र किं मम करं चोल्यन्तरेन्याक्षिपः।
अत्रैवेती शुकार्भकान निगदतान् हुंकार—पुष्पाहतैः
स्मित्वोपालि निवारयन्त्यवतु मां राधाऽत्र वृन्दावने।।६।।

"हे उन्मद् ! तुम्हारी बुद्धि नष्ट हो गई है ?" (उत्तर) "नहीं, तुमने उसे चुरा लिया है।"—तो मैंने वह कहां रख दी है?" (उत्तर) "अपने अंगों में।" (प्रश्न) "जहां मेरा हाथ है, क्या वहीं?' (उत्तर) "कञ्चुकी के भीतर डाल दी है। तब शुकशावकगण ने कहा "यहां ही है"—इन वाक्यों को सुन कर सखियों के आगे हंसती हुई एवं हुंकार तथा पुष्पाघात से निवारण करती हुई श्रीराधाजी इस श्रीवृन्दावन में मेरी रक्षा करें।।६।।

सेयं प्राप्तिः कोटीचिन्तामणीनां
सेयं तृप्तिः कोटी पियूष पानात्।
सेयं सम्यग् भक्ति सन्मुक्ति कोटी—
र्यच्छ्री वृन्दारण्य आत्मार्पणेच्छा।।१०।।

श्रीवृन्दावन को आत्म अर्पण करने की इच्छा करना ही कोटि चिन्तामणियों की प्राप्ति के समान है एवं कोटि अमृत पान से भी अधिक तृप्तिदायक है तथा सम्यक् भक्ति तथा कोटि मुक्तियों की प्राप्ति कर लेना है।।१०।।

सेयं दीक्षा उच्चभावै र्व्रतेषु सेयं शिक्षा राधिकाराधनेषु।
सेयं प्रेमाधीश पूर्म्मूलकक्षायच्छ्री वृन्दारण्य सौभाग्य वीक्षा।।११।।

श्रीवृन्दारण्य की सौभाग्यमय दर्शन—इच्छा ही उच्चतम भावयुक्त व्रतसमूहों में दीक्षा, एवं श्रीराधिका की आराधनाओं में दीक्षा तथा प्रेमाधीश्वर की पुरी की मूल (पराकाष्ठा) है।।११।।

यस्यैवोन्मद चारु चन्द्रिक शिखाचूड़ो यदिन्दीवर
श्रेणी श्यामल कोमलद्युतितनुर्यत् पुष्पमालादिवान्।

यद्दिव्योज्ज्वलधातु चित्रितवपुर्यन्मञ्जु गुञ्जावली
हारः श्रीहरि रत्यशोभत भजे तद्धन्यवृन्दावनम्।।१२।।

जिसकी उन्माद–जनक सुन्दरता मोरपुच्छ में श्रीहरि का शिरोभूषण हो रही है, जिसके नीलकमलों की श्यामलता कोमल ज्योतिपूर्ण श्रीहरि का विग्रहरूप हो रही है, जिसके पुष्पों से श्रीहरि माल्यादि धारण करके भूषित होते हैं, जिसके दिव्य उज्ज्वल धातुओं से श्रीहरि अपने देह को चित्रित करते हैं, जिसकी मनोहर गुञ्जावली से बने हुए हारों को धारण करके श्रीहरि अपनी शोभावृद्धि करते हैं, उस महाभाग्यवान् श्रीवृन्दावन का मैं भजन करता हूं।।१२।।

वृन्दाटव्यामटनमिह चेत् कोटि तीर्थाटनैः किं
पक्ष्यादीनां यदि रुत मिहाकर्णिं तत्तु श्रुतैः किम् ?।
वृक्षाद्याख्या प्रकथनरुचौ स्तोत्रमन्त्रादिकैः किं
दृष्टिर्यत्र क्वचिदिह रता चेदलं ध्यानलक्षैः।।१३।।

इस श्रीवृन्दावन की परिक्रमा यदि तूने कर ली है, तो कोटि तीर्थ यात्राओं का क्या प्रयोजन ? यहां के यदि पक्षियों की चहचहाहट तुम्हारे कानों में पड़ गई है तो फिर वेदाभ्यास का क्या फल ? यहां के वृक्षादिकों का नाम ले लिया है तो फिर और स्तोत्र–मन्त्रादि का पढ़ना आवश्यक नहीं है, यदि इस धाम के किसी स्थल पर भी तुम्हारी दृष्टि पड़ी है तो लक्ष–लक्ष ध्यान करने से क्या लाभ।।१३।।

यं यं देशं सरति पवनः शुद्धसच्चित् सुखात्म
श्रीमद्वृन्दाविपिन विलसद् वल्लिवृक्षादि संगी।
सर्वानर्थान् कृमितनुभृतो वैष्णवधाम तत्स्थान्
नेतुं तिष्ठन्त्यवसरदृशो द्वारि सज्जा विमानाः।।१४।।

शुद्ध सच्चिदानन्दघन श्रीवृन्दावन के लतावृक्षादिकों का स्पर्श करती हुई वायु जिस–जिस देश में प्रवाहित होती है, उस–उस देश के समस्त निकृष्ट कृमि पर्यन्त शरीरधारियों को वैष्णवधाम में ले जाने के लिये उनके द्वारे पर सुसज्जित विमान बाट देखते रहते हैं।।१४।।

यत् सन्मृत्त्रसरेणुकं यदणुचित् पुष्पादिगन्धं वहन्
वातः पूततमः समेत्य यदवच्छिन्नां कलिन्दात्मजाम्।

यैरस्पर्श्य निवृत्तिभिर्नरकतो देशेऽप्यहो कींकटे
तेषामप्यति भुक्ति मुक्तिदमिदं वृन्दावनं तन्नुमः।।१५।।

हाय ! जिस वृन्दावन की रज का त्रसरेणु या चिन्मय पुष्पादिकों की सुगन्धि तथा कालिन्दी जल को स्पर्श करती हुई पवित्रतम वायु कीकटादि देशों में चिरकाल से अनन्त नरकों में पड़े हुए व्यक्तियों को स्पर्श द्वारा ही अतिशय भुक्ति व मुक्ति प्रदान करती है, उस श्रीवृन्दावन को मैं नमस्कार करता हूं।।१५।।

भुक्तं वृन्दावनगतफलं लोभनं यैः परस्याऽ–
प्युक्तं वा तत्श्रुतिहर महामंगलं नामतस्य।
दृष्टं किञ्चित्तदपहृत दृग् स्पृष्टम् स्यांगकर्षि–
स्तोतुं शक्तः क इह वत तान् भाग्यपुञ्जैक मौलीन्।।१६।।

परम पुरुष को भी लोभायमान करने वाले श्रीवृन्दावन के एक फल का भी जिसने आस्वादन किया है, अथवा कर्ण रसायन महामंगलमय उसकी नामावलि का एक बार भी जिसने यदि कीर्तन किया है, अथवा उसके सौन्दर्य में आकृष्ट होकर उसकी किसी एक वस्तु पर भी दृष्टि डाली है किम्वा उसके आकर्षणकारी अंग का जिसने स्पर्श किया है, उन समस्त महाभाग्यवान शिरोमणि पुरुषों की स्तुति करने में कौन समर्थ हो सकता है ? ।।१६।।

यच्छब्दस्पर्शरूपादिकमहह हरेरप्यहार्षीद्धठेन
श्रोत्रत्वक् चक्षुराद्यं करणम शरणस्यैकमेवाऽरणं यत्।
यच्छक्तिर्मुक्तितिक्तीकरणपटु महाभक्तिरत्नं व्यनक्ति
त्वं वृन्दारण्य तद् यत्करणपथगतं व्यधाद्धन्यमौलिम्।।१७।।

अहो ! जिसके शब्द स्पर्श एवं रूपादि ने बल पूर्वक श्रीहरि के भी कर्ण, त्वक् एवं नेत्रादि इन्द्रियों को हरण कर लिया है, जो निराश्रय का एकमात्र आश्रय है, जिसकी शक्ति मुक्ति को कटु वस्तुवत् अनुभव करा के महा भक्तिरत्न का प्रकाश करती है और इन्द्रियों के पथ से भीतर प्रवेश करके लोगों को धन्य–शिरोमणि कर देती है, हे श्रीवृन्दावन ! तुम ही वह परम वस्तु हो।।१७।।

राधाकृष्णौ विपुल पुलकावुन्मदोल्लास हासौ
दृष्ट्वा दृष्ट्वा मधुर मधुरं गायतो यस्य नाम।

आदौ श्रीयुज्जययुतमिदं हादि वृन्दावनेति
तस्मिन् येषां वलित रसना तैः किमप्राप्यमस्ति।।१८।।

विपुल पुलकावलि युक्त होकर उन्मद–उल्लास–हास्य परायण श्रीराधाकृष्ण जिसका दर्शन करके मधुर–मधुर स्वर से 'श्री' युक्त (श्रीवृन्दावन) 'जय' युक्त (जय वृन्दावन) एवं 'हा' युक्त (हा–वृन्दावन) इस प्रकार जिस श्रीवृन्दावन का नाम गान करते हैं, उसके नाम को जिन पुरुषों की रसना निरन्तर रटती है, भला उनके लिये क्या अप्राप्य है ?।।१८।।

चिज्ज्योतिर्मय भूरहस्यमखिलो पर्य्युच्चकेर्जाज्ज्वली
त्यानन्दामृत पूर्णचन्द्र इव यद्दिव्यं भुवो मण्डलम्।
वृन्दारण्यमिहाद्भुतं रस सरस्यत्रैव गौरासितौ
दिव्यौ द्वौ कलहंसकौ स्मरगुणेस्तस्यैव वाऽचालितौ।।१६।।

आनन्दामृतपूर्ण चन्द्र के समान चिज्ज्योतिर्मय पृथिवी के गुप्त स्थल पर तथा अखिल धामों के ऊपर देदीप्यमान् जो एक दिव्य भूमण्डल विराजमान है, वहां ही अद्भुत श्रीवृन्दावन है, यहां के रससरोवर पर गौरश्याम, दो दिव्य कलहंस उस श्रीवृन्दावन के गुणों में बंधे हुए स्थगित होकर शोभित हो रहे हैं, उन युगल किशोर का स्मरण कर।।१६।।

अरे मूढ़ाः प्राप्येन्द्रियमविकलं किं नु निगमै–
र्निगूढ़ां श्रीवृन्दावन भुवमिमां नैव भजत।
पदौ यात्राव्यग्रौ कुरुत वदनं नामभिरतं
कथा पीयूषाब्धौ श्रुतिमपि मनोध्यान निरतम्।।२०।।

अरे मूढ़ लोगो ! स्थिर इन्द्रियों को पाकर इस वेद–गुप्त श्रीवृन्दावन भूमि का क्यों भजन नहीं करते हो ? चरणों से श्रीवृन्दावन की यात्रा करो, कथासागर में कानों को नियुक्त करो एवं मन को इसके ध्यान में जोड़ दो।।२०।।

अरे शीघ्रं शीघ्रं सुतधन–कलत्रादि ममता
प्रताने कालोऽयं नहि वपुरिदं मृत्यनुगतम्।
समस्तालभ्यानां परमिदमलभ्यं स्वकृपया
भुवि व्यक्तं वृन्दाविपिनमभिधावाऽतिहठतः।।२१।।

अरे ! स्त्री, पुत्र, धनादि में ममता बढ़ाने का यह समय नहीं है, यह शरीर मृत्यु के अनुगत है। समस्त दुर्ल्लभ वस्तुओं में भी अति सुदुर्ल्लभ यह श्रीवृन्दावन अपनी कृपा से इस पृथिवी पर प्रगट हुआ है, इसलिये शीघ्रातिशीघ्र श्रीवृन्दावन की ओर दौड़कर चल।।२१।।

अहो मन्दा वृन्दाविपिन इदमीय स्थिरचरं
चिदानन्दाकारे गुणमय धिया साधनधियः।
वयन्तु श्रीराधामुरलिधर दास्यैक रस सं
पदामेतत् कन्दं द्वयमखिलवन्द्यं विवृणुमः।।२२।।

अहो ! मन्दमति पुरुष चिदानन्द रूप श्रीवृन्दावन की स्थावर–जंगमात्मक वस्तुओं को गुणमय (मायिक) जानकर ही साधन करते हैं, परन्तु हमें तो श्रीराधामुरलिधर की केवल दास्य रसमय सम्पत्ति युक्त समस्त वस्तुओं में महा स्थावर जंगमात्मक बीजद्वय समस्त का वन्दन करने योग्य ही अनुभव होता है।।२२।।

अखण्ड विधुमण्डलं यदि सुवृत्त मुक्ताफलै–
र्भवेत् किमपि चित्रितं यदुपमीयते तेन हि।
श्रमाम्बुकणराजिभि स्तदति राजि वृन्दाटवी–
विहार वश राधिका सुवदनाम्बुजं पातु वः।।२३।।

पूर्ण चन्द्रमण्डल यदि किसी तरह गोलाकार मुक्ताफलों से चित्रित हो, तब उसके साथ उपमा देने योग्य श्रीवृन्दावन में विहार करते करते श्रम के स्वेद कणों से व्याप्त अति मनोहर जो श्रीराधा मुख कमल है, वही हमारी रक्षा करे।।२३।।

अनन्तपुरुचन्द्रमः प्रचय चन्द्रिका कन्दलैः।
करम्बितमिहाम्बुजं विकसदस्ति जाम्बुनदम्।।
मिथो मधुर चुम्बित यदि नवैक कृष्णालिना।
तदा तदिव राधिका मुखमवैमि वृन्दावने।।२४।।

अनन्त अनन्त चन्द्रमाओं की ज्योत्स्ना यदि किसी एक स्वर्ण वर्ण प्रफुल्लित कमल से मिलकर नवीन एक कृष्णभ्रमर से परस्पर चुम्बन करे, तब श्रीवृन्दावन में श्रीराधा मुख की शोभा उसके समान मैं जानूंगा।।२४।।

स्वयं यदधि नूपुरं मणिगणच्छटा चित्रितं
हरि र्विनिदधात्यथांगुलिषु यावकं न्यस्यति।
ह्रदा वहति भीतवन्मृदुपदेन तेनापि यद्
रसादटति राधिका भज तदेव वृन्दावनम्।।२५।।

श्रीहरि स्वयं जिन श्रीराधा के चरणों में मणिचूड़ा युक्त नूपुर पहिराते हुए अंगुलियों में यावक (अलता) धारण कराते हैं, जिन चरणों को डरते डरते हृदय में धारण करते हैं, उन चरणों द्वारा श्रीराधा जहां रसीले मृदु मधुर भाव से जहां जहां विचरण करती हैं, उसी श्रीवृन्दावन का भजन कर।।२५।।

अये परममद्भुतं किमपि भाति वृन्दावने
द्वयं विकचमम्बुजद्वयमथो विधोर्मण्डलम्।
मिथो नवसुधारस स्वदनलोलमेक महाः
हिरण्मय मिहाऽपरं वरहरिन्मणि वैभवम्।।२६।।

अहो, श्रीवृन्दावन में कोई परम अद्भुत दो प्रस्फुटित कमल अथवा दो चन्द्रमण्डल प्रकाशित हो रहे हैं। वे परस्पर नवसुधा रस आस्वादन करने में लोलुप-चित्त हैं, इनमें एक का महास्वर्णमय वर्ण है एवं दूसरे का वर्ण महा मरकत मणि की शोभा प्रकट करता है।।२६।।

अहो मधुप मौलिना कनकपद्मिनीयं द्वये।
स्वपद्म मुकुलेक्षता कथमिवेक्ष्यामीत्येकया।।
समुक्त ऊरु सम्भ्रमात् प्रपिहितोरसं राधिकां।
कथम्विति विहासितां स्मरतयैव वृन्दावने।।२७।।

अहो ! श्रीवृन्दावन में एक दिन मधुप शिरोमणि श्रीकृष्ण अपने अंगों की परछाहीं तथा स्वर्णकमलिनी-प्राणवल्लभा श्रीराधिका के अंग प्रतिबिम्ब को पद्म मुकुल जानकर उसे देखते देखते कहने लगे-देखो ! देखो !! कैसा कमल है ? यह बात सुनकर किशोरी जी बोलीं-जान पड़ता है मेरा लीला कमल गिर पड़ा है-ऐसा कहकर मानो उसे उठाने के लिये कूदना ही चाहती थीं कि श्रीकृष्ण ने उन्हें छाती से लगाकर पकड़ लिया, श्रीराधिका हंसने लगीं, इस प्रकार मुस्कान युक्त मुख वाली श्रीराधिका का स्मरण कर।।२७।।

लतातरु विहंगमादिषु कदाचिदाख्याकृते
मिथो विवदमानयोः किमपि राधिकाकृष्णयोः।
द्वयो र्विजयकासिनोः क्व च रुतेऽपि वृन्दावने
प्रियालि वलये हसत्यतिरसात्मयुद्धं स्मर।।२८।।

किसी एक समय लता, वृक्ष पक्षी आदिकों के नाम पर श्रीराधाकृष्ण दोनों परस्पर विवाद करने लगते हैं, एवं कभी कभी श्रीवृन्दावन में पक्षियों के शब्द करने में परस्पर होड़ बांधते हुए दोनों को देख कर सखीजन हंसने लगती हैं, इस रस पूर्ण आत्मयुद्ध का स्मरण कर।।२८।।

कनक कमलगर्भे दाड़िमीबीजपंक्ति–
र्यदि तदपि च राकाचंद्र कोटिच्छटौघम्।
सतत् विकचमेक स्निग्ध कृष्णालिभोग्यं
स्मर तदुपमितं तच्छ्रीमुखं राधिकायाः।।२९।।

यदि स्वर्ग के कमल में अनार दाने सजाये जाएं एवं वे भी यदि पूर्णिमा के चन्द्र की कोटि छटाओं से समुद्भासित हों एवं निरन्तर विकसित रहें, और एक स्नेह–मय कृष्णभ्रमर उस कमल के ऊपर भ्रमण करता हो, तब उस शोभा के साथ श्रीराधा मुख की उपमा दी जा सकती है–उसका स्मरण कर।।२९।।

त्वं जानासि सखीद्वयं समदृशोः कः सृष्टवान् तपदं
हन्मि क्षौणितले विलिख्य यदहं नेत्रैरनन्तैरपि।
वृन्दारण्यमथान्यदेकमनघं नो वीक्ष्य तृप्याम्यहो
सत्यं श्रीश्वरिराधिके वयमितोऽप्यन्यैक लुब्धेक्षणाः।।३०।।

हे सखी ! मेरे नेत्रों ने क्या देखा है–क्या तू जानती है? भूमि पर उसको लिखकर मैं उसके चिन्ह पर्यन्त को फिर मिटा दूंगी, क्योंकि मैं अपने नेत्रों से भी श्रीवृन्दावन तथा एक और पवित्र वस्तु का दर्शन करते तृप्त नहीं हो सकती हूं। हे श्रीश्वरी राधे ! सत्य है, परन्तु–मेरे नेत्र तो इस वृन्दावन की बजाय किसी अन्य (श्रीकृष्ण) में ही केवल लुब्ध होते हैं।।३०।।

लीला खेलाद्राधिका हेम पद्मि
न्यास्योम्भोजं सीधु गन्धैरपारम्।

ज्योत्स्ना माधुर्यैक सिन्धौ निमग्नं
वृन्दारण्ये कृष्णभृंगैक भोग्यम्।।३१।।

लीला परायणा श्रीराधिका रूप स्वर्ण पद्मिनी के मुखकमल की मकरन्द गन्ध के अतुलनीय एवं ज्योत्स्नापूर्ण समुद्र में जो निमग्न हो रहे हैं, केवल वे ही श्रीवृन्दावन में श्रीकृष्ण भ्रमर द्वारा उपयोग किये जाते हैं अर्थात् वे ही श्रीकृष्ण की प्राप्ति करते हैं।।३१।।

वार्त्ताऽन्योन्यं मधुरमधुरा शीतपीयूषधारा
श्रीमद्राधामुरलिधरयोर्वक्त्रचन्द्राद् वहन्ती।
चेतः कर्णैर्मम निशि दिवा मादयत्वालिवृन्दैः
श्रीमद्वृन्दाविपिन विषयैवाद्भुता कापिकापि।।३२।।

श्रीराधा–मुरलीधर के मुख चन्द्र से निकली हुई अति मधुरशीतल धारापूर्ण श्रीमद्वृन्दावन की अति अनिर्वचनीय तथा अद्भुत सखी वृन्दों के साथ जो परस्पर कथा–वार्ता है। वह दिन रात कानों में प्रवेश करके मेरे चित्त को उन्मत्त करे।।३२।।

राधाकृष्ण प्रणयमय चिज्ज्योतिरानन्ददेहं
कञ्चित् सञ्चिन्तय हृदि सदातद्द्वयीभावविज्ञम्।
श्रीमद्वृन्दावन नवलता मन्दिरानीन्दिरादि
प्रार्थ्यान्यन्तर्ननु परिचर प्रेयसोः खेलनाय।।३३।।

श्रीराधाकृष्ण के प्रेममय चिज्ज्योतिपूर्ण एवं इन युगल के भावों को जानने वाले किसी आनन्दमय शरीर की हृदय में सदा भावना कर। हाय ! लक्ष्मी आदिकों द्वारा भी प्रार्थनीय श्रीवृन्दावन के नवलता–मन्दिरों में प्रियतम युगल किशोर की क्रीड़ा के लिये अन्तःकरण में सेवा कर।।३३।।

अन्तश्चिन्तय सन्ततं स्मरकलारंगेन रात्रिन्दिवं
वृन्दाकानन कुञ्जवीथिषु मिथो मग्नांगदृग्वाङ्मनः।
गौरश्याम महामनोहर महाद्वन्द्वं वहिः सुप्तवद्
भ्रातर्हर्ष विषाद हृद्व्यवहृतिं सर्वां च निर्वाहय।।३४।।

दिनरात स्मरकलारंग में श्रीवृन्दावन के कुञ्ज पथों पर परस्पर एक दूसरे को अंग, नेत्र, वाक्य एवं मन समर्पण किये हुए गौरश्याम महा मनोहर

विग्रहयुगल विराजमान हैं, उनकी सदा अन्तःकरण में चिन्ता कर, किन्तु हे भ्रातः ! हर्ष–विषादमय बाह्यिक व्यवहारों को अचेष्टा पूर्वक निर्वाह कर।।३४।।

राधामाधव केलि कानन भुवं राकेन्दु कोटिप्रभां–
स्वच्छां मुक्तषडूर्म्मिभिरहो प्रेमामृताब्धेर्भृताम्।
नानाश्चर्यसरः सरिद् गिरिलता गुल्मद्रुमाद्यैर्महा–
नन्दोच्छ्रंखलखेल संखगमृगैर्वीतां सखेऽनुस्मर।।३५।।

हे सखे ! यह श्रीराधामाधव की केलि भूमि कोटि पूर्ण चंद्र प्रभायुक्त है एवं स्वच्छ है। यह शोक–मोह, जरा–मृत्यु तथा क्षुधा पिपासा–इन छः उर्मियों से रहित है, अहो ! यहां तरंगमय प्रेमामृत सागर प्रवाहित हो रहा है, नाना आश्चर्यमय सरोवर, नदी गिरि, लतागुल्म वृक्षादि द्वारा तथा महानन्द पूर्वक क्रीड़ा परायण पक्षि–मृगादि के द्वारा यह परिशोभित हो रही है इसका स्मरण कर।।३५।।

हतेऽस्मिन् हा वृन्दावन नवनिकुञ्जेश्वरि ! कृपां
विधेहीत्याक्रन्दन् व्यवहरणमध्येऽपि च मुहुः।
त्रिकालं श्रीवृन्दाविपिन दिशि वृन्दानि च नम–
स्कृतीनां सर्वांगैः कुरु च पुरु तत् प्रेमवलितः।।३६।।

हे वृन्दावन–नवनिकुंजेश्वरी ! मुझ हतभागी दास पर कृपा कीजिये। इस भाव से लोक व्यवहार करते समय भी बार–बार उच्च क्रन्दन करते करते तीनों काल श्रीवृन्दावन की ओर मुख करके उसकी रज में सातिशय प्रेमपूर्वक बार बार साष्टांग नमस्कार कर।।३६।।

अहो क्रन्दन्नुच्चैर्हृत सकल सर्वस्व इव सं
लुण्ठन् भूमौ नेत्रोद्गलित जलधारः प्रतिपदम्।
अजस्त्रं श्रीवृन्दावन विरहदुःख प्रसरतो
भवेद् यः कुत्रापि प्रथयति स एकः क्षितियशः।।३७।।

अहो ! मानो सब कुछ लुट गया हो–इस प्रकार उच्च स्वर से क्रन्दन करते हुए, लोटते हुए, भूमि पर नेत्रों से हर क्षण अश्रुधारा प्रवाहित करते हुए, निरन्तर श्रीवृन्दावन के विरहदुख में व्याकुल रहकर जो कहीं अन्यत्र भी वास नहीं करता है, वही केवल इस पृथिवी पर अपना यश फैला सकता है।।३७।।

तच्छ्रीगात्र प्रसृमर महाश्चर्य सौरभ्य लुभ्यद्
भूयिष्ठानु व्रजदलि कुलोत्सारणव्यग्रपानिः।
वीथ्यां वीथ्यां परकुतुकतोत्फुल्लनेत्रं चरन्ती
वृन्दारण्ये विलसति सह प्रेयसैकैव राधा।।३८।।

श्रीराधा के विग्रह से जो महाश्चर्यमय सुगन्धि फैल रही है, उसमें लुब्ध होकर उसके पीछे उड़ते हुए अनेक भ्रमरों को हटाने में हाथों को चलाती हुई एवं श्रीवृन्दावन की वीथियों में परम कौतुक वशतः प्रफुल्लित नेत्रों से कटाक्ष करती हुई श्रीराधा ही एकमात्र प्रियतम के साथ विलास कर रही है।।३८।।

मानेऽति द्रढ़िमानमास्थितवती राधा मम स्वामिनी
शिक्षाभिः स्वसखीगणस्य विदधे मौनादिवृत्तिं यदा।
क्षीणाशेषकृतिस्तु तहि स हरिः प्रासादायत्तां स्वतो
यस्याः पुष्पफलाद्युपायन भरैस्तां नौमि वृन्दाटवीम्।।३९।।

जब अपनी सखियों को शिक्षा देने के लिये मेरी स्वामिनी श्रीराधा मान पूर्वक अति दृढ़ रूप से मौन धारण करती हैं, तब स्वयं श्रीहरि निखिल कामों को भुलाकर जिसे पुष्प फलादिकों द्वारा सन्तुष्ट कराते हैं उस श्रीवृन्दाटवि को नमस्कार कर।।३९।।

भृंगी संगीतरंग त्यजतिपिकवधूः पंचमं निर्धुनीते
कीरः कांचिन्नगाथां पठति नटशिखी नैव केकां करोति।
वाणा हीणा मनाङ् न ध्वनति मुरली रौति राधायदाश्री
वृन्दारण्यस्य निर्वनयति गुणगणानुल्लसद् रोमराजिः।।४०।।

जब श्रीराधा पुलकित विग्रह से श्रीवृन्दावन की, गुणावली वर्णन करती हैं, तब भ्रमरी संगीतरंग को छोड़ देती है, कोकिला फिर पंचम स्वर में आलाप नहीं करती, शुक तब कोई भी गाथा नहीं उच्चारण करता, नृत्यकारी मयूर भी केकाध्वनि नहीं करता, वीणा लज्जित होकर चुप हो जाता है तथा मुरली फिर शोर नहीं कर पाती।।४०।।

श्रीवृन्दावन–दिव्य कीर्त्तिविरुदं श्रीराधिका निर्मितं
पाठ्यन्ते शुकशारिकाः प्रतिदिनं तत् किंकरीभिर्मुदा।

कान्तं श्रावयतेऽथ कौतुक वशं प्रेम्ना च तं विह्वली–
कुर्यान्मे यदधीश्वरी मम सरीसर्त्त्यत्र नित्यं मनः।।४१।।

श्रीराधिका द्वारा निर्मित श्रीवृन्दावन की दिव्य कीर्त्ति विरुदावलि शुक–शारिकाओं को प्रतिदिन आनन्दपूर्वक श्रीराधादासी पाठ कराती हैं, एवं जिसे अधीश्वरी कौतूहलमय कान्त को भी श्रवण कराती हैं तथा प्रेम में उसे विह्वल कर देती हैं, उसी श्रीवृन्दावन में ही मेरा मन लग रहा है।।४१।।

पारं येऽपि समस्त शास्त्र जलधेर्यातार्ममैतेऽप्यती–
वाऽज्ञा श्रोत् परमोत्तमोत्तमतया प्रज्ञा न वृन्दावने।
एतेत्वत्रवर्ण मात्रक विदोऽप्यऽस्मद्विधानां मताः
सर्वज्ञैः सकलैः स्तुताः परतरं वृन्दावनं ये विदुः।।४२।।

जो समस्त शास्त्र–समुद्र को पार कर चुके हैं, वे यदि श्रीवृन्दावन को परम उत्तमोत्तम न जान सकें तो मेरे मत में वह अतीव मूर्ख हैं, किन्तु जिन्होंने श्रीवृन्दावन को ही परतर तत्त्व जान लिया है एवं इस जगत् में केवल वर्ग परिचय ही प्राप्त किया है, वह ही समस्त सर्वज्ञ पुरुषों से प्रशंसा किये जाते हैं।।४२।।

सान्त–स्वान्तमवेहि देहि वचनं देहिष्वहो कामिनी–
रूपाग्नौ न पतंग वन्निपतरे चक्षु प्रमादादपि।
अद्य श्वो न पतिष्यतोऽस्यवपुषः पोषाय दोषाकरैः
कुर्याः संगमभंग वासनियमो वृन्दावने गृह्यताम्।।४३।।

अपना अन्तकाल निकट आया जान कर, सब लोगों को अपने अन्तिम वचन कह दे, अरे! कामिनी की रूपाग्नि में नेत्रों को प्रमादवश पतंग की तरह पतित मत करो। आज अथवा कल नाश हो जाने वाले इस शरीर के पोषण करने के लिये दोषों को मत संग्रह करो, श्रीवृन्दावन में अटूट वास करने का ही नियम ग्रहण कर लो।।४३।।

श्रीवृन्दावन नाम वर्णमनु यः पूर्णो रसैकार्णवः
कर्णः स्वादयते परं च रसना तं राधिकाकृष्णयोः।
नित्याकर्णन वर्णनरथ तदंगार्हात्मनां तत्पदां
भोज प्रेम भृताम जानत इह प्रेक्षेऽपिनान्त्योरसः।।४४।।

श्रीवृन्दावन नाम के साथ साथ जो एक पूर्णरसमय सागर विद्यमान है, उसे श्रीराधा एवं श्रीकृष्ण के श्रवण एवं रसना नित्य श्रवण तथा वर्णन करके आस्वादन करते रहते हैं। अतएव उस श्रीवृन्दावन प्रदेश में रहने वाले व्यक्तियों के साथ और उन व्यक्तियों के चरणों में प्रेम करने वाले लोगों के साथ जिसका परिचय नहीं है, उनको श्रेष्ठ रस की प्राप्ति नहीं होती—यह मैं देख रहा हूं।।४४।।

पुण्यात् पुण्यं मंगलं मंगलानां दिव्याद्दिव्यं कामदं कामदानाम्।
सारात्सारं प्रेमदं प्रेमदानामन्यद्वृन्दारण्यतो मन्यतां कः ?।।४५।।

पवित्र से भी पवित्रतर, मंगलों का भी मंगलदायक, दिव्य से भी अति दिव्य, काम पूर्ण करने वालों की भी कामना पूर्ण करने वाला, सार का भी सार एवं प्रेम दान करने वालों का भी प्रेमदाता—इस श्रीवृन्दावन को छोड़ कर और कोई है, यह कोई मान सकता है ?।।४५।।

रे धीमन्तः सन्ततानर्थ देहं गेहं स्त्री कुटुम्बाद्युपेक्ष्य।
सौख्यात् सौख्यं मोक्षतो मोक्षमाशु श्रीवृन्दारण्यमेवाश्रयन्तु।।४६।।

रे बुद्धिमान ! सदा अनर्थ को देने वाले देह, गृह, स्त्री, कुटुम्ब आदि को छोड़कर शीघ्र अति सुखद एवं मोक्ष को भी मुक्त करने वाले श्रीवृन्दावन का आश्रय कर।।४६।।

एतत् कुत्सितमस्थिमांस रचितं विण्मूत्र पूयादिभिः
पूर्णं दृष्टनिनष्ट मिन्द्रियगणामर्दैन नित्यार्द्धितम्।
आधि व्याधि शताभिभूतमनिशं कामादि दाहाकुलं
देहं तिष्ठतु यातु वा हरि रसैः त्वं नन्द वृन्दावने।।४७।।

यह शरीर घृणित अस्थि—मांस से रचा हुआ है, विष्ठामूत्र एवं पीवादि से भरा हुआ है, और एक दिन इसका भी अवश्य नाश होगा—यह भी सूझ रहा है, यह इन्द्रियों के उपद्रवों से नित्य उत्पीड़ित रहता है, निरन्तर सैकड़ों आधि—व्याधियों से ग्रसित है एवं कामादि की पीड़ा से व्याकुल रहता है, ऐसा शरीर रहे या न रहे, तुम इस श्रीवृन्दावन में श्रीहरि रस का आनन्द प्राप्त करो।।४७।।

अद्यश्वः प्रपतिष्यतोऽस्य भरणं विड् भाण्डकस्याचरण
हा हा मूढ़ महाविनष्टिमयसे स्त्रीसंगिनां संगतः।
सोढ़ा नारकयातनाः कति न वा हन्ताणुमात्रासहाः
किं वृन्दावनवास भास न महानन्दाय मन्दायसे ?।।४८।।

हा मूढ़ ! आज या कल जब इस शरीर का पतन होना ही है, तब भी इस विष्ठापात्र को भरते भरते स्त्रीसंग करने वालों का संग करके अपने महाविनाश का ही साधन कर रहे हो ! अहो अणुमात्र होने पर भी जो नरकयन्त्रणा अत्यन्त दुःसह है, उसे तुमने कितनी बार सहन नहीं किया है? इतने पर भी तू श्रीवृन्दावन वास एवं श्रीवृन्दावन के कथा रूप महानन्द को प्राप्त करने में आलस्य करता है ?।।४८।।

स्त्रीभिः के न वशीकृतास्त्रिजगति प्रायो यशोऽच्लिप्सवो
दृश्यन्ते विषया स्पृशोऽपि पतिताः संगान्महान्तोऽपि हि।
बुद्धैवं प्रतिवोद्धुमिच्छसि न चेत् स्वार्थं करस्थं तत्
स्तत्राहर्निशम प्रमत्तहृदयो वृन्दाटवी मा वस।।४६।।

त्रिभुवन में ऐसा कौन है जो स्त्री के वशीभूत नहीं हुआ ? प्रायः देखा जाता है कि जो यश की आकांक्षा से रहित हैं, विषय स्पर्श से रहित हैं एवं महापुरुष कहलाते हैं वे भी संग दोष से पतित हो जाते हैं, यह जान कर हथेली पर धरे हुए स्वार्थ को पाकर भी यदि तुम्हें जाग्रत होने की इच्छा नहीं है तो शान्त हृदय से दिन रात श्रीवृन्दावन में वास करो।।४६।।

रे दुर्बोध परंरहो भगवतः श्रीराधिकानागरं
हित्वान्य भजसे सुरं तदुदये स्थित्वाऽपि वृन्दावने।
तन्नूनं सदनल्प कल्पकतरोर्मूले विधायालयं
कुग्रामानुपगम्य तत् कुजनतो भिक्षाशया भ्राम्यति।।५०।।

हे मूढ़ ! भगवान् की आविर्भाव भूमि श्रीवृन्दावन में रह कर भी तू भगवान् की परम रहस्य मूर्त्ति श्रीराधिकानागर को छोड़कर अन्यान्य देवताओं का भजन करता है ? तब तो यही कहना पड़ेगा कि उत्तमोत्तम कल्प–वृक्ष के नीचे घर बनाकर रहते हुए भी तू तुच्छ गांवों में जाकर पुरुषों के घर में भिक्षा की आशा से भ्रमण कर रहा है।।५०।।

वृन्दारण्यमगण्य पुष्पनिवहैर्धन्याग्रगण्यैर्हृदा
ध्येयं प्राप्त वताऽन्यतो हि कुधियो यद्यूयमाधावथ।
तच्चिन्तामणिमेव पादहतिभि र्दूरं निरस्य स्वयं
हस्ताग्रे पतति श्वपाकभवने भक्ष्याशया भ्राम्यथ।।५१।।

असंख्य पुष्पों से शोभित श्रीवृन्दावन का महाभाग्यशिरोमणिगण ही हृदय में ध्यान करते हैं। हाय ! इसे प्राप्त करके भी तुम कुबुद्धि युक्त होकर अन्यत्र भागते हो, तुम हाथों में अपने आप आई हुई चिन्तामणि को पांव से ठुकरा कर चण्डाल के घर गें भिक्षा करने के लिये भ्रमण करते हो।।५१।।

आतन्वानौ स्थिरचरमपि प्रेममाध्वी मदान्ध्यं
राधाकृष्णावपि च लुठतो भूतले यद्रसेण।
वृन्दारण्यं तदिदमतुल प्रोन्मदानन्द सिन्धु–
स्यन्दि द्राक् पदमिव ममाऽचूचुरच्चित्त रत्नम्।।५२।।

जिसके रस में स्वयं श्रीराधाकृष्ण एवं स्थावर जंगम भी प्रेम–सुधा–मद की मत्तता को प्राप्त होकर पृथिवी पर लोटने लगते हैं, उस अतुलनीय प्रोन्मद–आनन्द सागर को प्रवाहित करने वाले इस श्रीवृन्दारण्यने मेरा चित्तरूपी रत्न एकदम चोरी कर लिया है।।५२।।

मुमुक्षूणां याता लयमलमहाभूर्य्यापचितिं–
हरेरेकान्ती त्वामहह गृहयातां धिगकरोत्।
न यायास्त्वं मुक्ते कुकृतिरुप वृन्दाटवि तदा–
श्रयै दुष्टाया स्ते जगति नहि नामापि भविता।।५३।।

हे मुक्ते ! तुम मुमुक्षुओं के लिये लय (सायुज्य मुक्ति) मल रूप महान अनिष्ट प्राप्त कराओ श्रीहरि के एकान्तिक भक्तों के घर में जाने पर भी वह तुम्हें धिक्कार करेंगे अतएव तुम कुकर्म करने वाली हो, तुम श्रीवृन्दावन के तो पास ही मत जाना, क्योंकि उसका आश्रय लेने से तुम्हारा नाम दुष्ट–बुद्धि जगत् में बाकी नहीं रहेगा।।५३।।

ता स्ताः सम्पादिता स्ते बहुजनिषु निजा किं प्रतिष्ठाः शृणोषि।
दिव्य स्रक्चन्दन स्त्र्यादिक विषयभुजः का नु तृप्ति स्तवाभूत्

तस्मान्मिथ्येन्द्रियार्थे प्रयतन विमुखस्त्वं सुखस्यातिसीम्नः।
सारं सारंगवत् सुञ्चर मधुरवने राधिका केलिधाम्नि।।५४।।

तुम्हें अनेक जन्मों में उन्हीं उन्हीं विषयों में प्रतिष्ठा प्राप्त हुई है, तब फिर क्यों तू इन्हें सुनता है ? तुमने जो दिव्य माला, चन्दन, स्त्री आदिक विषयों को भोग किया, उनसे क्या तुम्हारी तृप्ति हुई है ? इसलिये मिथ्या इन्द्रियों के विषयों में प्रयत्नशील न होकर तू इस राधिका–केलि–धाम श्रीवृन्दावन में भ्रमरवत् सुधा भण्डार के परमसार का आस्वादन कर।।५४।।

कान्त त्वङ् मात्र संछादित युवतिमयाऽमेध्य वीभत्स पिण्डे
द्राग दृष्टे पण्डितानामपि विलयमिता धैर्य्यरक्षाति शिक्षाः।
का भक्तिः का विरक्ति स्तदपहृतधियां कैव वृन्दावनाशा
तासां नामाऽप्यश्रृण्वंस्तदनुसर सखे राधिका कुञ्जवाटीम्।।५५।।

केवल सुन्दर त्वचा द्वारा आच्छादित जो स्त्री का अपवित्र घृणित देह पिण्ड है, उसे देखते ही पण्डित लोग भी धीरज छोड़ बैठते हैं एवं उनकी दीक्षा–शिक्षा भी लोप हो जाती है। जिनकी बुद्धि नारी ने हरण कर ली है, उनकी फिर भक्ति कैसी ? और विराग ही कैसा ? और श्रीवृन्दावन की आशा करना ही क्या ? अतएव हे सखे ! ऐसे मनुष्यों का नाम तक भी न सुन और श्रीराधा–कुञ्जमहल की ओर शीघ्र चल।।५५।।

महा मोहनावुन्मदानन्द मूर्ती महामोहिताम्बुन्मदानन्दितौ च।
अहो येन तौ राधिका कृष्णचन्द्रौ तदानन्द वृन्दाय वृन्दावनं मे।।५६।।

अहो ! जिसके द्वारा वे श्रीराधाकृष्णचन्द्र महामोहन एवं उन्मद आनन्द मूर्ति होते हुए भी महामोहित एवं आनन्द में उन्मत्त हो उठते हैं, वही श्रीवृन्दावन मेरे आनन्दों की वृद्धि करे।।५६।।

यत्राश्रुणां प्रवाहश्चलति नयनतः सन्ति सर्वांगरोमो
द्भेद–स्वेद–प्रकम्प क्षितिलुण्ठन मुहुः श्वासमूर्च्छादिभावाः।
तादृग्भक्ति प्रवाहादपि खलु परतोऽत्यद्भुत स्वानुभावात्
स्वानन्दं काष्ठ कुड्यादिवदपि वसतां राति वृन्दाटवीयम्।।५७।।

जो श्रीवृन्दावन में काष्ठ, दीवार आदि की तरह होकर वास करते हैं, उनके नेत्रों से भी अश्रुधारा प्रवाहित होती है, शरीर में स्वेद, रोमाञ्च, प्रकम्प,

भूमि पर लुण्ठन, बार–बार श्वास, मूर्च्छा आदि भावों का विकास होता है, इस प्रकार की भक्ति के प्रवाह तथा अत्यद्भुत स्वानुभाव से भी उत्तम निज आनन्द यह श्रीवृन्दावन उनको प्रदान करता है।।५७।।

मान्धातृप्रमुखा गता नृपतयो येषां यशोभि र्जगद्
व्याप्तं भूरपि.........................मेरुमन्दरम्।
....
.......सर्वत उज्ज्वलामृतपदं विन्दाशु वृन्दाटवीम्।।५८।।

जिनका यश मेरु–मन्दरादि सुवृहत् पर्वतमाला युक्त समस्त धरणी तो क्या, समस्त जगत् में फैल रहा है, वही मान्धाता प्रमुख नृपतिगण भी.....जिस सुखमय श्रीवृन्दावन के रजकण का आश्रय लेते हैं, उसी उज्ज्वल अमृतमय स्थान श्रीवृन्दावन का तुम शीघ्र ही आश्रय करो।।५८।।

वृन्दाटव्यां नव्याम्भोदः श्यामो राधा प्रेमोद्दामः।
तस्या आस्याम्भोज भ्राजन्माध्वीस्तृष्णः कृष्णोऽव्याद् वः।।५६।।

श्रीवृन्दावन में राधा प्रेम में उद्दाम नवीन श्याम बादल उदित हो रहा है, वह श्रीराधा के मुख कमल का मधु पान करते हुए भी तृषित है, वह श्रीकृष्ण ही तुम्हारी रक्षा करें।।५६।।

वृन्दारण्ये प्रेम्णः कन्दे नित्यानन्दद्गोपीवृन्दे।
निन्दयाऽहं वन्द्येयाऽथ प्रीति विन्दे चेत् किं देवैः।।६०।।

प्रेम के मूल एवं नित्यानन्दमय गोपियों से परिमण्डित श्रीवृन्दावन में यदि मेरी प्रीति हो जावे, तब मैं निन्दनीय होने पर भी वन्दनीय हो जाऊंगा एवं फिर मुझे देवताओं से क्या प्रयोजन?।।६०।।

येषां कर्णाभ्यर्णास्पर्शि प्रेमर्द्धीनां धारावर्षि।
वृन्दारण्यं पूर्ण प्रार्थ्यन्ते काकानां यायु स्तीर्थम्।।६१।।

सबकी प्रार्थनीय प्रेम–सम्पत्ति की धारा को वर्णन करने वाले इस श्रीवृन्दावन का विषय जिनके कानों में नहीं पड़ा है, उन्हें काकतीर्थ में ही जाना चाहिये।।६१।।

गौरश्याम ज्योतिर्द्वन्द्वामन्द प्रेमानन्दास्पन्दाः।
केचिद् वृन्दारण्याऽनन्याधन्याः पुण्यादत्रावन्याः।।६२।।

श्रीवृन्दावन का कोई–कोई अनन्य भक्त गौरश्याम युगल किशोर के प्रचुर प्रेमानन्द में स्तम्भित हो रहा है, वह धन्य है एवं परम पुनीत होने के कारण वह वहां रक्षणीय है तथा शोभनीय है।।६२।।

क्वाऽसौ भक्तिः क्वाऽनासक्तिः क्वात्मज्ञानं क्वानुष्ठानम्।
कालव्यालागम्यं रम्यं वृन्दारण्यं त्वेकधन्यम्।।६३।।

वह भक्ति कहां है ? और वह वैराग्य अब कहां है ? आत्मज्ञान तथा धर्म का अनुष्ठान कहां है ? किन्तु कालरूप सर्प से अगम्य यह श्रीवृन्दावन धन्य है।।६३।।

यामः कापस्मय पिशुनता क्रोध लोभादिहि स्त्रैः
संसाराध्वन्यहह गहनेऽत्यूढ़ मोहान्धकारे।
द्राघीयस्यां चलति न पदं भीममाया रजन्यां
श्रीमद् वृन्दाटवि ! तव कृपौदार्यमेकं स्मरामः।।६४।।

अहो ! काम, दम्भ, दुष्टता, क्रोध, लोभादि हिंसक जन्तुओं से पूर्ण, अति घन मोहान्धकार से ढके हुए संसार रूप वन में हम जा रहे हैं, सुदीर्घकर इस भीषण मायामय रजनी में पांव चलता नहीं है, हे श्रीवृन्दावन ! (उद्धार पाने के लिये) तुम्हारी कृपा एवं उदारता को ही केवल स्मरण करता हूं।।६४।।

मौढ्यं मा कुरु मा कुरंग नयनेक्षादौ कृथाः साहसं
साम्मुख्येन सखे न खेल निखिलग्रासेन कालाहिना।
सर्वानर्थ निदानमर्थमपि नो देहार्थमभ्यर्थना
क्लेशैः संचिनु निश्चिनु स्थितिमिहैवोल्लस्य वृन्दावने।।६५।।

हे मूर्ख ! मूर्खता मतकर, मृगनैनी स्त्री की ओर देखने का और साहस न करना, सबको ग्रास करने वाले सर्प के साथ खेलना नहीं, शरीर के लिये सब अनर्थों का मूल कारण जो धन है, उसे भी भिक्षा का क्लेश सहन करके सञ्चय नहीं करना, श्रीवृन्दावन में ही केवल स्थिर रहने का निश्चय कर।।६५।।

कोनाम वृन्दावन कीर्ति वृन्दादन्यत्र कर्णौ सकृदर्पयेत्।
यदेव राधा पदयोरगाधां दधात्यऽसारण भावलक्ष्मी।।६६।।

एकमात्र जो श्रीराधा के चरणकमलों की असीम असाधारण भावरूप सम्पत्ति को मान करने वाली है–उसी श्रीवृन्दावन की कीर्ति को छोड़कर और बातों में अपने कानों को कौन लगाये ?।।६६।।

तेजोभावस्तम इति वदन्त्येक आचार्य देश्या
मायोल्लासं निगमनिपुणा स्तन्निमित्तं वदन्ति।
वृन्दाटव्यां प्रसरति तड़ित कोटि कोटि प्रकाशे
कोप्याश्चर्यो विलसति महाभास्करो ध्वान्तराशिः।।६७।।

कोई–कोई आचार्य व्यक्तिगण कहते हैं "तेज का अभाव ही तम है।" वेद परायण लोगों का मत है कि "माया के उल्लास का नाम तम" है एवं तेज उसका निमित्त कारण है। (अतएव इनके मत से आलोक तथा अन्धकार एक जगह नहीं रह सकते) किन्तु श्रीवृन्दावन में कोटि कोटि विद्युत के समान प्रकाशरूप श्रीराधा तथा आश्चर्य दीप्तिमय अन्धकार राशि रूप श्रीकृष्ण एक ही स्थान पर अवस्थान कर रहे हैं।।६७।।

रासकेलि पण्डिताय मण्डिताय राधिका
संगिनीभि रत्यनंग रंगिनीभि रुन्मदात्।
अंगरेणुरम्य वेणुनाद मुग्धधेनुक
ध्यातरूप गोपभूपनन्दनाय सन्नमः।।६८।।

जो रासकेलि में पण्डिता हैं, एवं अति उन्मत्ततावश अनंग रंगशालिनि राधादासियों से शोभित हैं, जो गौओं को अंगलिप्त धूलि द्वारा रमणीय वेणु ध्वनि से मोहित करते हैं उन ध्यान करने योग्य गोपेन्द्रनन्दन को सम्यक् प्रकार से नमस्कार करता हूं।।६८।।

वेणुरन्ध्रसप्तकेषु लोल कोमलाङ्गुली
पल्लवाय वल्लवाधिराज नन्दनाय मे।
दिव्यगीतगायकाय नायकाय राधिका
कण्ठ तारहारदिव्यमध्यगाय सन्नमः।।६९।।

वंशी के सप्त छिद्रों पर जिनकी कोमल अंगुली–रूप पल्लव चलते हैं, जो गोपराज–पुत्र हैं, दिव्य संगीत गायकों के नायक हैं एवं श्रीराधा के कण्ठहार के बीच के मणि स्वरूप हैं, उन्हें मैं सादर नमस्कार करता हूं।।६९।।

मञ्जु कुञ्ज वाटिकासु नाटिकासु मल्लिका
मालभारिनीषु वल्लवीषु चारुचिल्लिषु।

दिव्य चित्र पट्टवास आसनेऽति सुन्दरै
राधिका ब्रजेन्द्रनन्दनौ स्मरामि संगतौ।।७०।।

मनोहर कुञ्ज वाटिकाओं में नाटिका के प्रयोग के समय में गोपबालकगण मल्लिका की माला धारण करके अति सुन्दर दिव्य विचित्र रेशमी वस्त्रासन पर विराजमान श्रीराधिका ब्रजेन्द्र–नन्दन को सुन्दर हाव–भावादि दिखाती हैं–मैं उनका स्मरण करता हूं।।७०।।

मन्द मन्द चारु हास दिव्य पीतपट्ट वास
नील नीरदावभास वल्लवी विचित्र रास।
प्रेम सम्पदेक वास राधिका निकुञ्जवास
माऽव नित्य तद्विलास कोटिचन्द्र वक्त्रभास।।७१।।

हे मन्द–मन्दचारु हास्य मुख ! हे दिव्य रेशमी वस्त्र धारण करने वाले ! हे गोपिकाओं के साथ विचित्र रास विलास करने वाले ! हे प्रेम सम्पत्ति के रास–भवन ! हे राधिकानिकुञ्ज वासी ! हे राधा–निकुञ्ज नित्य विलासी ! हे कोटि चन्द्र विनिन्दित दीप्ति मुखशाली मेरी रक्षा कीजिए।।७१।।

कुन्द कुटमलाग्रदत्युदार मन्दहासिनी
दिव्य चित्र विन्दुनील सूक्ष्म पट्ट वासिनी।
मंजु गुञ्ज भृंग पुंज कुञ्ज वीथिभासिनी
मानसेऽस्तु मे सदैव राधिका विलासिनी।।७२।।

कुन्द कोरक के अग्र भाग के तुल्य जिनकी दन्त पंक्ति है जो सुचारु मुस्कान युक्त हैं, जो दिव्य विचित्र बिन्दु छाप वाली रेशमी साड़ी को धारण कर रही हैं, मनोहर गुञ्जार करने वाले भ्रमरों से शोभित कुंज पथ में सञ्चारिणी वह श्रीराधा–विलासिनी मेरे मन में उदित हों।।७२।।

कृष्ण कण्ठनीत दिव्य कृष्णगुंज हारिणी
नित्यकेलि तृष्ण कृष्ण चित्त वित्त हारिणी।
प्रेम पुंज मंजु कुंज वीथिका विहारिणी
राधिकाऽस्तु मे स्वभक्त्यभाव तापहारिणी।।७३।।

जो श्रीकृष्ण के गले से उतरा हुआ कृष्णवर्ण का दिव्य गुंजाहार धारण कर रही हैं, जो नित्यकेलि के पिपासु श्रीकृष्ण के चित्त रूप को हरण करने

वाली हैं, प्रेमपुंज मनोहर कुंजों में विहार करने वाली हैं, वह श्रीराधिका अपने भक्ति के अभाव रूप ताप को हरने वाली मेरे हृदय में स्फुरित हों।।७३।।

कृष्ण दृक् चकोर पेय वक्त्रचन्द्रिका
राधिकानुराग मूर्तिरुन्मद स्मराधिका।
दिव्यहेम चम्पकालि कम्पकालि मण्डली
चित्र चित्रकान्ति रत्नराधि शान्तिरस्तुमे।।७४।।

श्रीकृष्णचन्द्र के नयनचकोर जिसके मुखचन्द्र की चन्द्रिका का पान करते हैं, अनुराग की जो प्रकट मूर्ति हैं एवं अतिशय काम से उन्मत्त हैं, जिनकी सखियां भी दिव्य हेम वर्ग चम्पक कली के समान प्रतिभात होती हैं जिससे भ्रमर समूह उनके पीछे उड़ता रहता है, इस प्रकार चित्र विचित्र कांति धारिणी श्रीराधिका शोभित हो रही हैं। अतएव मेरे अन्तर की वेदना शांत हो।।७४।।

चारुवक्त्र चन्द्रमिन्द्रनीलवृन्द सुन्दरं
दिव्य केलि वृन्द नन्दिताद्रिराज–कन्दरम्।
प्रेमवन्ध वन्दमान विश्ववन्दितेन्दरं
नौमि कृष्णमेव राधिका निकुञ्ज मन्दिरम्।।७५।।

जिनका मुखचन्द्र अति सुन्दर है, जो इन्द्रनील मणि समूह की भांति मनोहर है, जो दिव्य क्रीड़ाओं द्वारा गिरिराज गोवर्धन को आनन्द देने वाले हैं, प्रेमालिंगन प्राप्त करने के लिए विश्ववन्दिता लक्ष्मी भी जिनकी स्तुति करती हैं राधा निकुंज मन्दिर ही जिनकी निज विलास स्थली है, उन्हीं श्रीकृष्ण को मैं नमस्कार करता हूं।।७५।।

प्राणेशौ यदि कौतुकं किल तदा वृन्दावने काचना
पूर्वालोकि कदम्बवीथिरिह वामस्ते कदानुग्रहः।
इत्येकालिगिराऽचिराच्चल चलेत्युकात्तपाण्योर्मिथः
स्मित्वाऽव्यात्तरितं नसम्वृत् पटं श्रीराधिका कृष्णयोः।।७६।।

हे प्राणेश युगल! यदि कौतुक देखना चाहो, तो इस श्रीवृन्दावन में जो एक अपूर्व अलौकिक कदम्बश्रेणी है, वहां एक दिन कृपा कर चलियेगा–ये वचन किसी एक सखी के मुख से सुन कर तत्क्षणात् "चलो–चलो" यह कहकर उत्कण्ठायुक्त एक दूसरे का हाथ ग्रहण करके मुसकराते–मुस्कराते जो

श्रीराधा–कृष्ण का असम्वृत वस्त्रों से जल्दी–जल्दी गमन करना है–वही हमारी रक्षा करे।।७६।।

यत्रोद्वल महारसाब्धिलहरी दोलायितावुन्मदं
श्री राधामुरलीधरौ सह सदा प्रोद्गायतो नृत्यतः।
सख्यस्तर्हि नटन्ति दिव्यतनुभृत्स्त्रीपुंश्चराऽन्यन्नट
त्यावेशाद्बहुदिव्य दुन्दुभिरवे तां नौमि वृन्दाटवीम्।।७७।।

जहां उच्छलित महारस सागर की तरंगों में डोलायमान श्रीराधा–मुरलीधर उन्मत्त होकर इकट्ठे उच्च कण्ठ से गान तथा नृत्य कर रहे हैं एवं फिर सखीगण भी नृत्य कर रही हैं, और दिव्यदेहधारी स्त्री एवं व्यभिचारी पुरुष भी अनेक दिव्य दुन्दुभियों के कलरव के आवेश में नृत्य कर रहे हैं, मैं उसी श्रीवृन्दावन को नमस्कार करता हूं।।७७।।

पूर्ण संकीर्ण नित्योन्मदवर मदनात्मोदितो यत्र कृष्णः
तादृग रत्यैव नानाविह्वतिभिरनिशं राधयारंरमीति।
तादृग् भावोन्मदान्धी भवदखिल महामाधुरीणांधुरीणां
श्रीमद्वृन्दाटवीमाश्रयत ह्वदि सदा तादृशोद्दामभावाः।।७८।।

जहां परिपूर्ण एवं अतिव्याप्त नित्योन्मद श्रेष्ठ मदन–स्वरूप श्रीकृष्ण प्रगट होकर तद्रूप रति स्वरूपिणी श्रीराधा के साथ निरन्तर अनेक विधि विहार व रमण करते हैं, उसी प्रकार भाव में उन्मत्त अंधीभूत अखिल महामाधुरीमय श्रेष्ठा जो श्रीवृन्दाटवी है, उसी का ही उसी उद्दाम भावावेश से ह्वदय में सर्वदा ग्रहण कर।।७८।।

न बहिर्भव रे पुनर्भवाम्बुधि मुत्तीर्य्य तथाऽभवाम्बुधिम्।
रससार निधान राधिका रति लीला वनमेत्य भाग्यतः।।७६।।

अरे! भवसागर तथा अभव सागर (मुक्ति) को उत्तीर्ण करके भाग्यवश इस रस सार निधान श्रीराधिका के रति–लीला वन (श्रीवृन्दावन) में आकर फिर कहीं अन्यत्र नहीं जाना।।७६।।

अपि वन्धसहस्रमस्तु मे वत वृन्दावन नित्य सेविनः।
न तरामति भुक्ति मुक्तयः परतो नापि परेशभक्तयः।।८०।।

श्रीवृन्दावन का नित्य सेवक होने से यदि मुझे हजारों बन्धन हों, तो भले ही हों, अतिशय भुक्ति एवं मुक्ति भी मैं नहीं मांगता हूं। और तो क्या मुझे तो परेश की भक्ति भी श्रीवृन्दावन के दासत्व से श्रेष्ठ नहीं दीखती है।।८०।।

विषयान् विषवत् परित्यजन् न पदालम्ब्य पुनर्भवं भजन्।
दृढ़ सर्व पुमर्थ सारतामति रस्मिन् वसराधिका–वने।।८१।।

विषयों को विषवत् त्याग करके, मुक्ति स्वयं आकर यदि पांव पकड़े तो उसका भी तिरस्कार करके समस्त पुरुषार्थों के सार प्रेम धन की प्राप्ति के लिए दृढ़मति होकर इस श्रीराधिका वन में वास कर।।८१।।

मुदितोऽखिल सत्वसम्पदा रुदितो दैवकृतात्मभूतितः।
उदित प्रणयैकराट् परा विदितस्त्वं भज राधिकावनम्।।८२।।

निखिल प्राणियों की सम्पदा को देखकर आनन्द मानते हुए परन्तु देव द्वारा प्राप्त अपने ऐश्वर्य को देखकर रुदन करते हुए अर्थात् दुःख मानते हुए, प्राप्त हुए प्रेम में ही केवल सुख मानकर अन्तर में अज्ञात भाव से श्रीराधिका–वन में भजन कर।।८२।।

राधाकृष्णौ निरवधि मिथो वर्द्धमानानुरागौ
यत्रोन्मत्तं स्थिरचर महोतदद्वय प्रेममाध्व्या।
आगन्तूनप्यतिरस चिदाकारयेद् यत् स्वयञ्च
नित्यं तत्संगति रसभरं नौमि वृन्दावनन्तत्।।८३।।

जहां श्रीराधा–कृष्ण का एक दूसरे के प्रति अनुराग नित्य ही बढ़ता रहता है, अहो ! जहां युगल सरकार के प्रेम सुधा में स्थावर जंगम सब ही उन्मत्त हो उठते हैं, जहां आगन्तुकों का भी स्वयं अतिशय रस रूप चिद्घनवपु मिल जाता है उसी नित्य श्रीराधाकृष्ण के संगी श्रीवृन्दावन को नमस्कार करता हूं।।८३।।

वृन्दाटव्या अहह सहजा केयमुद्दाम शक्ति
भक्तिर्विष्णोर्बहुविधरसां या विमुक्तिञ्च दत्ते।
यच्चान्यद्दुर्लभमभिमतं प्राप्तमत्यश्रमेण
तच्चाजस्रं किरति सकलान् प्रत्ययोग्यानपीह।।८४।।

अहो ! श्रीवृन्दावन की कैसी सहज उद्दाम शक्ति है कि यह श्रीविष्णु (श्रीकृष्ण) की अनेकविध रसमय भक्ति एवं विमुक्ति (स्वरूप व्यवस्थिति) दान करता है, और जो अति दुर्लभ हैं एवं जिसे सब चाहते हैं, उस वस्तु को बिना परिश्रम ही यह अपने आप प्राप्त करा देती है। एवं उसे बिना चाहने वालों को भी प्रदान करता है तथा अयोग्य मनुष्यों तक को भी प्राप्त करा देता है।।८४।।

गतिः सखि सुमन्थरा किमधुना विपिनश्रयं
कुतोऽमधुमदालसा लसति हन्त दृष्टि स्तव।
कथन्वऽभय कम्पिता स्युपहरीति सख्या गिरा
विनम्रमुख राधिकां हृदि भजामि वृन्दावने।।८५।।

हे सखी ! तुम बहुत धीरे–धीरे चल रही हो, तुम क्या अब निकुञ्जों को जा रही हो ? हाय ! तुम्हारे नेत्र ऐसे दीखते हैं जैसे कि तुम्हारी कोई मधुर वस्तु खो गई हो एवं मद के आलस से भरे हुए हों। और तुम भय से कांप क्यों रही हो ? इस प्रकार श्रीकृष्ण की निकटवर्त्ती सखी के ये वचन सुनकर मुख को झुकाये हुए जो श्रीराधिकाजी हैं, मैं उनका हृदय में भजन करता हूं।।८५।।

असुप्तिरिह चेतनाहरण हेतुरेव ध्रुवं
तथाऽपटल मन्धताकार मनासवो मादकः।
धनं निधनवज्जहत्तदतिदूरतः पूरतः
परेश रस वारिधेर्मुदित आस्व वृन्दावने।।८६।।

यहां जागना ही चेतना के विलोप का निश्चित कारण है यहां नेत्ररोग के बिना भी अन्धत्व होता है, मद्यपान के बिना भी मत्तता होती है, धन भी निर्धन की तरह होता है, अतएव सब कुछ त्यागकर परेश के रस सागर के प्रवाह में आनन्दित होकर श्रीवृन्दावन में वास कर।।८६।।

बद्धुं बन्धुजनः सदैव यतते दुःस्नेहपाशैर्महा
माया काऽपिविमोऽहणी शिशु कलालापः स्त्रिया सौरतम्।
घोरानर्थ निदानमर्थमहह त्वं विद्ध्यपार्थं पर
स्वार्थभ्रंशकरं तदन्यसकलं त्यक्त्वैवहि वृन्दावनम्।।८७।।

बन्धुगण दुस्नेह की पाशों में बांधने के लिए सदा ही यत्न करते हैं, बच्चों की अव्यक्त मधुर ध्वनि और स्त्री के साथ विलासादि तो कोई अनिर्वचनीय

विमोहिनी महामाया ही हैं, अहो ! धन को ही घोरतर अनर्थों के निदान रूप में निष्प्रयोजन तथा परम स्वार्थ को नाश करने वाला ही जान, अतः और सबको त्याग करके तू श्रीवृन्दावन में ही आजा।।८७।।

अद्यश्वो वा त्वं मरिष्यस्यबुद्धे
किं ते कान्ता पुत्र वित्तादि कुर्यात्।
यावद्देहं सर्वतो मृत्यु रस्ति
भ्रातस्तवावद्धाव वृन्दावनाय।।८८।।

हे मूर्ख ! आज या कल तुम्हें मरना ही है, तब तुम्हारे स्त्री पुत्रादि क्या करेंगे ? अहो भाई ! जब तक यह शरीर है, तब तक सब ओर मृत्यु का भय भी तुम्हारे साथ है, तो फिर अभी से ही तू वृन्दावन को क्यों नहीं भाग चलता।।८८।।

योषित् पिण्डे किं न पश्यस्यनन्ध ! प्रत्यक्षं यत् प्रक्षरेच्छिद्रकेभ्यः।
भ्रातः ! कान्तत्वक् चमत्कारमात्राद् वृन्दारण्येऽयत्युपेक्षोऽसि हा धिक् !।।८९।।

तू अन्धा तो नहीं है, अरे ! स्त्री के कुत्सित छिद्रों से क्या निकलता है, उसे क्या तू प्रत्यक्ष में नहीं देखता ? भाई मनोरम चमड़ी के चमत्कार में ही भूलकर श्रीवृन्दावन के वास की भी तू इतनी उपेक्षा कर रहा है ? हाय ! तुझे धिक्कार है।।८९।।

यत्नैर्मिथ्या दुर्ग्रह ग्राहमेतं द्राक् सत्यज्याहं ममेति ग्रसिष्णुम्।
संसाराम्भोराशि मुत्तीर्य्यतीरं गत्वा नन्दं विन्द वृन्दावनन्तत्।।९०।।

अहंकार ममकार"—रूप ग्रासकारी इस विकट ग्राह को यत्न करके शीघ्र ही त्याग कर संसार समुद्र को पार करके किनारे पर उस आनन्दमय श्रीवृन्दावन को प्राप्त कर।।९०।।

कनक मरकताभे दिव्यधाम्नः किशोरे
मिथ उदित मुखेन्दु न्यस्तचक्षुश्चकोरे।
विहरत इह वृन्दाकानने चित्तचोरे
मम तदति विचेष्ये यामि नान्यत्रघोरे।।९१।।

स्वर्ण—नील कान्ति विशिष्ट दिव्य विग्रह युगल किशोर परस्पर उज्ज्वल मुखचन्द्रों पर अपने—अपने नेत्र रूपी चकोर लगाकर मेरे चित्त को चुराते हुए

इस श्रीवृन्दावन में विहार कर रहे हैं, मैं उन्हीं की ही खोज करूंगा, अन्यत्र घोर (संसार) स्थानों पर नहीं जाऊंगा।।६१।।

अहह ! न महतामप्यत्र किं हन्त मोहः
क्षयमयति हठाद् यद् ब्रह्मतामीशताञ्च।
न कलयति स राधानूपुर ध्वनिमुग्धो
हरि रवि रहदार्ढयाः सन्ति वृन्दावने चेत्।।६२।।

अहह ! महापुरुषों का भी क्या यहां मोह क्षय नहीं होता है ? यदि किसी भी प्रकार से श्रीवृन्दावन का त्याग न किया जाय, तब वह श्रीराधा नूपुरध्वनि–मुग्ध श्रीहरिब्रह्मत्व तथा ईशत्व किसी के प्रति भी लक्ष्य नहीं रखते हैं अर्थात् मोह–मूलक ब्रह्मत्व या ईशत्व को चूर्ण कर देते हैं।।६२।।

निरवधि रससिंधुः स्यन्दते यत्रवृन्दा
वनमिदमति सान्द्रानन्द सन्दोहकन्दम्।
कलय कनक चम्पकोत्फुल्लदिन्दीवराभं
मधुर–मधुर धामद्वन्द्वमुन्माद सत्वम्।।६३।।

जहां असीम रससिंधु प्रवाहित हो रहा है, उसी सान्द्रानन्द समूह का मूल बीज जो यह श्रीवृन्दा[illegible] है वहां स्वर्णचम्पक तथा प्रस्फुटित नीलकमल वर्ण विशिष्ट उन्मत्त स्वभाव वाले मधुगति मधुर विग्रह का दर्शन कर।।६३।।

महानिरय नीरधिं हृदि निरूप्य नारीवपु
विलोक्य परमापदांपदमुपागमं सम्पदाम्।
विभाव्य जनरञ्जनं हरिरसात्मता भञ्जनं
भजोपरति भूषणः परमधाम वृन्दावनम्।।६४।।

नारी के शरीर को हृदय में महानरक सागर के समान जान, अनेक विपत्तियों को परम सम्पत्ति प्राप्ति के तुल्य जान, लोगों का रञ्जन करना हरिरस स्वरूपता की हानि करना ही जानकर वैराग्य रूप भूषण को धारण करके परम धाम श्रीवृन्दावन का ही भजन कर।।६४।।

यदीय सुघन द्रुमावलितलाध्वणि द्योमणि।
प्रभा प्रसर वञ्जितेऽन्धतमसैरलक्ष्यीकृता।।

सुनील पट गुण्ठिताखिलतनुः सुखं राधिकाः।
दिवाप्यभिसृता प्रियंस्मर तदेव वृन्दावनम्।।६५।।

जिस श्रीवृन्दावन के घने वृक्ष जिनमें सूर्य की किरणें भी प्रवेश नहीं कर पातीं, उनके नीचे गाढ़ अन्धकारमय पथ पर अत्यन्त नीले वस्त्र से अपने सब अंगों को आच्छादन करती हुई दिन के समय भी छिपकर श्रीराधा प्रियतम के लिये अभिसार करती हैं, इस श्रीवृन्दावन का स्मरण कर।।६५।।

शरद्विमल चन्द्रिकाततिसु चन्दनैश्चर्चिता
दधत्यमल मौक्तिकाभरण मत्यलक्ष्यं सुखम्।
प्रियाभि सरणोद्धुरां धवल धौत पट्टाम्बरां
स्मरामि हृदि राधिकां स्ववन फुल्ल मल्लीवने।।६६।।

जिसका शारदीय विमल ज्योत्स्ना में चन्दन से शरीर चर्चित हो रहा है, जो निर्मल मुक्ताओं के भूषण धारण कर रही हैं, अति अलक्षित भाव से सुखपूर्वक प्रियतम के अभिसार के लिये जो अग्रगण्या हैं, शुभ्र धौतवस्त्र पहिरे हुए वह श्रीराधा अपने वन–श्रीवृन्दावन में प्रस्फुटित मल्लिकावन में विराज रही हैं, मैं उनको हृदय में स्मरण करता हूं।।६६।।

क्वचिन्नव निकुञ्जके मदनमोहनं दुर्द्धर
स्मरोन्केलिकमुन्मदाप्यभि सरत्यहो राधिका।
विचित्र वन वीक्ष्यया पथि विलम्बिनी पादयो
र्मुहुः प्रियसखीधृता हृदि ममास्तु वृन्दावने।।६७।।

अहो ! किसी दिन नवीनकुंज में दुर्धर्ष काम केलि में मत्त मदनमोहन के उद्देश्य में उन्मत्त होकर श्रीराधिका अभिसार करती थीं तो श्रीवृन्दावन के पथ में विचित्र वन के सौन्दर्य दिखाने के लिये बार–बार प्रिय सखियां उनके चरण युगल पकड़ कर देर करा रही थीं–इस प्रकार की छटायुक्त श्रीराधा मेरे हृदय में उदित हों।।६७।।

काऽपेक्षा पितृ मातृ बन्धु सहृदां का स्निग्धता मुग्धकाऽ–
पत्येष्वात्मनि जीवनेति सुभगे का वा कलत्रे रतिः।
का गेह द्रविणादिकेषु ममता देहार्थ चिन्ताऽपि का
छित्वा ग्रंथिमिमां हठात्वमखिलां वृन्दाटवीमाश्रय।।६८।।

पिता–माता बन्धु–बान्धवों की क्या अपेक्षा ? मनोरम सन्तान सन्तति का ही कैसा स्नेह ? अपने जीवन में अति सौभाग्यवती स्त्री में ही कैसी आसक्ति ? घर धन आदिकों में ममता क्यों ? शरीर के लिये कैसी चिन्ता? बलपूर्वक इन समस्त ग्रंथियों को छेदन करके श्रीवृन्दावन का आश्रय कर।।६८।।

दुःखात्म क्षणभंगुर सुखलवाभासेन सन्मोहन
स्त्री पुत्र द्रविणालयादि सकलं त्यक्त्वा हठानिःसृतः।
क्रन्दं क्रन्दममन्द कन्दलित सद्भवांकुरः सत्वरं
वृन्दारण्यविलासिनी पदरजो विन्दन् कृती नन्दतु।।६६।।

दुःख स्वभाव क्षणभंगुर लव मात्र के मोहन करने वाले स्त्री–पुत्र–धन गृहादि समस्त त्यागकर शीघ्र ही उपराम होवो। रोते रोते सात्विक भावों के उत्तम रूप से अंकुरित होने पर श्रीवृन्दावन विलासिनी के कमलों की प्राप्ति करके धन्य धन्यता पूर्वक आनन्द लाभ कर।।६६।।

उल्लसति काऽपि वृन्दाविपिन्याख्या सदनुरागरस खानिः।
यत्र वसन्तं सन्तं विन्दति राधापदारविन्दाशा।।१००।।

श्रीवृन्दावन–नामक कोई एक अनिर्वचनीय उत्कृष्ट अनुरागरस की खानि विराजमान है, वहां वास करने से ही श्रीराधापदारविन्द की प्राप्ति की आशा अपने आप ही जाग उठती है।।१००।।

श्रीप्रबोधानन्द सरस्वती–विरचित श्रीवृन्दावन महिमामृतम् का
त्रयोदश शतक समाप्त हुआ।।१३।।

चतुर्दश–शतकम्

दूरम विद्यासिन्धोर्विद्या सिन्धोर्महाद्भुतं सारम्।
चिरमाराधय राधाकृष्ण विहारोज्ज्वलं विपिनम्।।१।।

अविद्या सागर से बहुत परे, विद्यासागर का महाद्भुत सार स्वरूप श्रीराधाकृष्ण के विहार से उज्ज्वल इस श्रीवृन्दावन विपिन की चिरकाल तक आराधना कर।।१।।

अलमिह वितर्कजालैः सहसैवाच्छिद्य मोहजालानि।
उड्डीयेव विहंगः पत वृन्दाकाननं रुचिरम्।।२।।

कुतर्कों की और अब जरूरत नहीं है, एकदम मोह जाल को काटकर तुम पक्षी की भांति उड़कर मनोरम श्रीवृन्दावन में जाकर पतित हो।।२।।

जहि विषय दुर्विषवनं छिन्दि दुराशा महा पाशान।
अयि मति विहंगि याया अमृतं वृन्दावन समुड्डीय।।३।।

हे मति रूप पक्षिनि ! विषय के जहरीले वन को त्याग कर दुराशाओं के पाशों को काट डाल, अमृत स्वरूप श्रीवृन्दावन में ही उड़ चलना तुम्हें उचित है।।३।।

कुलधन विद्या–गर्व पर्वतमिव दुर्व्वहं समाधिरूढः।
हा हा कदानु विन्द्याद् वृन्दावन माधुरीं मूढ़ः।।४।।

हाय ! हाय !! मूर्ख व्यक्ति पहाड़ के समान कुल–धन एवं विद्या के गर्व पर चढ़े हुए हैं, अहो ! उनको श्रीवृन्दावन माधुरी कैसे प्राप्त हो ?।।४।।

धिग् धिङ् मामति कुमतिं वृन्दावन लब्ध चिद्घनात्मपि।
विड्भाण्डदुरभिमानात् फुल्लोऽसल्लोक मानाद् यत्।।५।।

श्रीवृन्दावन के आश्रित चिद्घन स्वभाव को प्राप्त होकर भी विष्ठापात्र इस शरीर के दुरभिमान वश झूठे लोक मान के लिए मैं जो फूल रहा हूं, मैं अति कुबुद्धि हूं। मेरे लिये धिक्कार है।।५।।

किं रे भ्रमसि दिगन्तर महह निरन्तर वहत् सुधासिन्धुम्।
राधाजीवित बन्धुं वृन्दारण्येन्दुमाश्रय श्यामम्।।६।।

अरे ! देश विदेशों में वृथा क्यों भ्रम रहा है ? निरन्तर सुधासमुद्र प्रवाही श्रीराधा जीवन–बन्धु श्रीवृन्दावनचन्द्र श्रीश्यामसुन्दर का आश्रय कर।।६।।

श्रीराधा नयनेन्दीवर वन्धुं पूर्ण रस सिन्धुम्।
कमपि श्यामलमिन्दुं वृन्दाऽरण्येतिसत् कलंकलय।।७।।

श्रीराधा के नेत्रकमलों के बन्धु पूर्णरससिन्धु कोई एक अनिर्वचनीय पूर्ण कलायुक्त श्यामलचन्द्र का श्रीवृन्दावन में निरीक्षण कर।।७।।

राधाधर दिव्य सुधारस संस्वादैक सम्पदा मत्तः।
कोऽपि प्रेमायत्तश्चकास्ति वृन्दावने महारसिकः।।८।।

श्रीराधा के अधर के दिव्य सुधारस के सम्यक् आस्वादन रूप एकमात्र सम्पत्ति में मत्त, प्रेमाधीन एक महारसिक (श्रीश्याम–सुन्दर) श्रीवृन्दावन में शोभित हो रहा है।।८।।

वृन्दारण्य कदम्बद्रुमकाण्डैर्विनिहित त्रिभंग तनुः।
स्मेराधर मधुरेणुः कृष्णो मे हृदि सह राधया स्फुरतु।।६।।

श्रीवृन्दावन के कदम्ब वृक्ष के नीचे त्रिभंग भंगिम मूर्त्ति से सुशोभित एवं मुसकान युक्त अधरों पर मधुर वेणुधारी श्रीकृष्ण श्रीराधा के सहित मेरे हृदय में स्फुरित हों।।६।।

प्रेमद्रव लिप्तमिथो हृदयपटी लिखित चित्रवन्मूर्ती।
गौर श्याम किशोरौ कावपि वृन्दावने सदा भजत।।१०।।

प्रेमरस द्वारा एक दूसरे के हृदय में परस्पर अंकित चित्रमूर्ति स्वरूप से विराजमान कोई अनिर्वचनीय गौरश्याम युगलकिशोर का श्रीवृन्दावन में सदा भजन कर।।१०।।

सन्तानकल्पद्रुमपारिजात मन्दारकानां हरिचन्दनस्य।
दिव्यै वनैश्चिन्तय चारु वृन्दावनं महाचिद्रसचन्द्रिकौघम्।।११।।

सन्तान, कल्पवृक्ष, पारिजात, मन्दारक, हरिचन्दन आदि के दिव्य वनों से परिभूषित महाचिद्रस चन्द्र–हसित सुचारु श्रीवृन्दावन की चिन्ता कर।।११।।

विचित्र सौवर्णलसल्लतानां विचित्र रत्न प्रसवाद्भुतानाम्।
सुदिव्य नाना द्रुमसंगतानां स्मरामि वृन्दाविपिने विलासम्।।१२।।

श्रीवृन्दावन में विचित्र रत्नमय (पुष्प, किशलय, फलादि के) उत्पन्न करने के कारण अद्भुत एवं अति दिव्य अनेक प्रकार के वृक्षों से सम्मिलित विचित्र स्वर्णमय लताओं के विलास का ही स्मरण करता है।।१२।।

वृन्दावनं शीतलमिन्दु वृन्दानन्दामृत स्यन्दन चन्द्रिकातः।
तत्प्राप्य मन्दा उरुतापकन्दाद्भवाब्दि मुक्ताभजताषु कृष्णम्।।१३।।

अनेक चन्द्रमाओं की आनन्द सुधा की चन्द्रिका के झरने के कारण नित्य सिञ्चित होने से श्रीवृन्दावन अति शीतल हो रहा है, हे मन्दभाग्यगण! अनेक तापों के बीज–स्वरूप संसार से विमुक्त होकर इस श्रीवृन्दावन में आकर शीघ्र ही श्रीकृष्ण का भजन कर।।१३।।

वृन्दावने नन्दित कृष्णचन्द्र निस्तन्द्र कन्दर्पविलास वृन्दे।
श्रीराधिकापादसरोज भृंगी संगीतमभास्यतु मे मनीषा।।१४।।

आनन्दमय श्रीकृष्णचन्द्र की निरालस कामकेलि समूह के प्रधान केन्द्र श्रीवृन्दावन में मेरी बुद्धि श्रीराधा चरण की भ्रमरी के संगीत का अभ्यास करे।।१४।।

किं नः सद्गुरु गौरवेन कुरुतां किं लोकलज्जाद्य नः
किंवा नोपयशो भयं न विषयो धर्मस्य कस्याप्यहम्।
उन्मादीव शृणोम्यहं न शतशः शास्त्रस्य तद्विद्वचः
श्रीवृन्दावन सद्रसेन यद भूदाविष्टमुच्चैर्मनः।।१५।।

हमें सद्गुरुओं के गौरव से क्या प्रयोजन? आज लोक लज्जा हमारा और क्या करेगी? हमें अपयश का भय नहीं है। मैं किसी धर्म का आचरण नहीं हूं, शत शत शास्त्रों के वचन एवं शास्त्रवेत्ताओं के वचन भी मैं उन्मत्त की भांति नहीं सुनता हूं, क्योंकि श्रीवृन्दावन के अति उत्तम रस में मेरा मन अतिशय आविष्ट हो रहा है।।१५।।

धर्मातिक्रम कोटिरस्तु सततं कोटिर्भवत्वापदा
मास्तां लोक विनिन्द कोटि गुणा..........।
....
श्रीवृन्दावनमात्मकोटि परम प्रेष्ठं कथं त्यजताम्।।१६।।

कोटि–कोटि धर्मों का अतिक्रमण हो जाए, कोटि–कोटि विपत्तियां क्यों न आ पड़े, लोक निन्दा भी कितनी ही क्यों न हो, तथापि आत्म प्रियता से भी श्रेष्ठ......श्रीवृन्दावन को क्यों परित्याग करूंगा ?।।१६।।

नमस्कुर्वन् वृन्दावनमहह नम्य स्त्रिजगतां
न सत्कुर्वन् वृन्दावन महह दम्य स्त्रिजगताम्।
गुरुं कुर्वन् वृन्दावनमखिल देवादिक गुरु–
र्लघुं कुर्वन् वृन्दावनमपि तृणं कोऽप्यतिलघुः।।१७।।

अहो ! जो श्रीवृन्दावन को नमस्कार करता है, वह तीन लोकों से नमस्कार किये जाने योग्य है। और जो श्रीवृन्दावन का सम्मान नहीं करता है, वह तीनों लोकों में दण्ड पाने योग्य है। जिसने श्रीवृन्दावन को गुरु बना लिया है वह समस्त देवों का भी गुरु हो गया, परन्तु श्रीवृन्दावन के तृण को भी जिसने छोटा समझ लिया है वह अति छोटा (नीच) ही हो जायगा।।१७।।

नमन् मौलि वृन्दाविपिन दिशि सर्वोन्नततमो
मनाक् प्रीतो वृन्दावनभुवि समस्तः प्रियतमः।
ददत् किञ्चिद् वृन्दावन तनुभृते सर्वभगवद्
विभूतेर्भागीशो भवति जगतां तद्भृतिपरः।।१८।।

श्रीवृन्दावन की दिशा को मस्तक नवाने से लोक सर्वोन्नततम हो जाते हैं श्रीवृन्दावन की भूमि में थोड़ी मात्र भी प्रीति करने वाला सबका प्रियतम हो जाता है, श्रीवृन्दावन के जीव को किञ्चितमात्र दान करने से भगवान् की समस्त विभूतियों को तृप्त करने वाला हो जाता है।।१८।।

वृन्दाटव्यामभव्या विदधति न कथं वासमात्रञ्च नित्यं
ज्ञात्वा सर्वत्र मोक्षावधि न खलु सुखं क्वापि नैवास्तिरम्य।
अत्र त्वानन्दसिन्धोर्मधुतर महासार मूर्त्ति किशोरौ
नित्यान्योन्यामचोरौ स्वनिकट मिलिते वण्टतः स्वं रसौघम्।।१९।।

दुर्भागी व्यक्ति श्रीवृन्दावन में नित्यवास ही केवल क्यों नहीं कर लेते। वे तो जानते ही हैं कि मोक्षपर्यन्त सर्वत्र कहीं भी सुख नहीं है, कहीं भी कोई रमणीय वस्तु नहीं है, यहां किन्तु आनन्द समुद्र की महासागरमूर्त्ति रूप में युगलकिशोर नित्य एक दूसरे के मन की चोरी करते हुए विराजमान हैं, एवं

वे अपने निकटवर्त्ती जनों को अपनी रसराशि दान कर रहे हैं।।१६।।

श्रीवृन्दारण्यवासे भवसि दृढ़तरा चे त्वमाशे तदासे
निश्चिन्तोऽहं शयानः किमपि न गणये दुःखमस्मिन्सुखं वा।
संतापं नेति चेतः कथमपि न किमप्यस्ति सत्कर्ममात्रं
नो वा पापान्निवृत्तिर्नच हरिचरणाम्भोज भक्तिच्छटेति।।२०।।

हे आशे ! श्रीवृन्दावन के वास के लिए तुम यदि दृढ़तर होवो, तब मैं निश्चिन्त होकर सो सकता हूं। इसमें दुःख और सुख को कुछ नहीं गिनता हूं, चित्त किसी प्रकार के संताप को नहीं पायगा, किसी सत्कर्म का लेश भी मुझसे अनुष्ठित नहीं होगा, पापों से भी मेरी निवृत्ति नहीं है, तथा श्रीहरि के चरण कमलों की भक्ति की झलक भी मुझमें नहीं है।।२०।।

श्रीवृन्दारण्य मन्ये तव रजसि लुठच्छादि देहं च धन्यं
नान्यत्राढ्यं चतुर्भिः श्रुति मुखरमुखैः श्रीभुजैर्वा वृणाय।
धन्यासौ या वराकी त्वयि वसति शुनी नाहमन्यत्र मन्ये
लक्ष्मीहस्तावलम्भ प्रणय वरवधूप्यतधूतात्मतत्वाम्।।२१।।

हे श्रीवृन्दारण्य ! मन में आता है कि जो देह तुम्हारी रज में लोटते–लोटते रज से आच्छादित हो जाता है, वही धन्य है, किन्तु अन्य स्थान पर वेद पाठ करने में चतुर चार मुखों युक्त एवं मनोहर अनेक बांहों युक्त होने वाले को मैं तृणवत् भी नहीं मानता हूं। जो क्षुद्र कुतिया तुम्हारे मध्य वास करती है उसको भी मैं धन्य मानता हूं, किन्तु अन्यत्र आत्मतत्वमय लक्ष्मी का हाथ पकड़े हुई प्रणयवती श्रेष्ठ वधू को भी मैं कुछ नहीं समझता हूं।।२१।।

यत्र श्रीकृष्णचन्द्रे स्मितरुचिरुचिरे चक्षुराधाय राधा
वक्त्रेन्द्रौ मन्द मन्दं रणयति मुरलीमुल्लसद् रोमहर्षे।
वैकुण्ठे ध्यानलीनाऽखिल करणगण स्तत्प्रभुः काममूर्च्छा
संप्राप श्रीर्विषादी न मुदमणुमपि प्राप तत्रत्य लोकः।।२२।।

श्रीवृन्दावन में मृदु मधुर हास्य कांति से मनोहर पुलकित शरीर वाले श्रीकृष्णचन्द्र श्रीराधा के मुखचन्द्र की ओर नयन लगाये हुए मन्द–मन्द भाव से जब मुरली बजाते हैं, तब वैकुण्ठ के अधीश्वर जिनकी समस्त इन्द्रियां ध्यान मग्न रहती हैं, उनका ध्यान भी छूट जाता है एवं काम (प्रेम) में मूर्च्छित हो

पड़ते हैं, श्रीलक्ष्मी जी भी अस्थिर हो जाती हैं एवं वहां के निवासियों का आनन्द भंग हो जाता है।।२२।।

राधा चेन्मुखमुन्नमय्य कुरुते मन्दस्मितं किं तदा
पूर्णेन्दोरुदयेन कैरव वनैः किं वा प्रफुल्लैरिह।
सा चेदात्तसखीकरं घनतरं कुञ्जं दिदृक्षाच्छलाद्
यायात्तर्ह्य हरेर मे रसमयी वृन्दावने शर्वरी।।२३।।

यदि श्रीराधा अपने मुख को ऊंचा कर मृदु मधुर मुस्कावें तो फिर पूर्णचन्द्र के उदय होने का कोई प्रयोजन नहीं अथवा विकसित कुमुद वनों की क्या आवश्यकता ? जब जाती हैं, तब दिन के समय में भी श्रीवृन्दावन में रात्रि हो जाती है।।२३।।

कालिन्दीय प्रचुरलहरी दोलित स्वर्णपद्मि
न्युत्फुल्लाब्जे धयति विधुतेऽप्येष भृंगो मधूनि।
किं त्वं राधे हससि मधुपः किं नु वृन्दावनेऽस्मिन्
मध्वादातुं किमपि रचयेन्नैव धार्ष्ट्यं परोऽपि।।२४।।

कालिन्दी की तरंगमाला में आन्दोलित स्वर्ण पद्मिनी के (पद्माकीर्ण स्थान की नायिका विशेष के) प्रस्फुटित पद्मयुगल कांपते रहने पर भी यह भ्रमर (कामुक) वहां मधु–राशि दोहन कर रहा है। हे राधे ! तुम हँस रही हो क्या ? इस श्रीवृन्दावन में मधुप (नायक) पर (पुरुष) होते हुए भी मधु लेने में क्या कोई धृष्टता तो नहीं करता ?।।२४।।

श्रीकालिन्द्या विपुल पुलिने खञ्जरीटं निरीक्ष्य
श्रीराधे त्वज्जघन पुलिनं वष्टि दृक्खञ्जनो मे।
श्रीमत्कृष्ण भ्रमरनिकरे सीधुपे पद्मिनीनां
वृन्दारण्ये तव सुवदनाब्जासवे लालसोऽहम्।।२५।।

हे राधे ! श्रीकालिन्दी के विपुल पुलिनों में खञ्जन पक्षी को देखकर तुम्हारे जघन पुलिन को मेरे नयन–खञ्जन देखने की वाञ्छा करते हैं। श्रीवृन्दावन में सुन्दर कृष्णवर्ण भ्रमर समूह को पद्मिनी–समूह के मधु को पान करते देखकर मैं भी तुम्हारे सुन्दर मुखकमल सुधा का आस्वादन करने के लिये लोलुप हो रहा हूं।।२५।।

नव–नव वृन्दावन वरकुञ्जेमदकल गुंजन्मधुकर पुञ्जे।
विहरति राधा कुसुम विचित्रामधुपतिऽनात्युन्मदन चरित्रा।।२६।।

श्रीवृन्दावन की नवीन श्रेष्ठ कुंजों में मधुकर समूह मदमत्त होकर कल ध्वनि कर रहा है एवं अतिशय उन्मत्त स्वभावा श्रीराधा भी पुष्पों से विचित्र रूप से अलंकृत होकर मधुपति (श्रीकृष्ण) के साथ विहार कर रही हैं।।२६।।

कथमिह वृन्दावन भुवि मन्दा न वसत वृन्दारक गणवन्द्याः।
इह हि पुलिन्दा अपि मुनिवृन्दार्च्चित महिवृन्दा हरिरसवृन्दाः।।२७।।

हे मन्दभागी जीवो ! देवताओं से वन्द्य होकर तुम क्यों इस श्रीवृन्दावन में वास नहीं करते हो? क्योंकि यहां हरिरस राशि के पूर्ण उत्सवादि का अनुष्ठान करने वाले पुलिन्द भी मुनियों से पूजे अथवा प्रशंसा किये जाते हैं।।२७।।

....।
वृन्दावन भुवमत्रा वति रति चित्रा...........।।२८।।

यदधि हरे रति मधुर चरित्रं परमविचित्रं परमपवित्रम्।
तदपि न वृन्दावनमपि मान्याः प्रकटमवन्यां विविदु रधन्याः।।२९।।

जहां श्रीहरि के परम विचित्र, परम पवित्र, अति मधुर, चरित्र पृथ्वी पर हुए हैं उसी श्रीवृन्दावन को जो अभिमानी व्यक्ति नहीं जानते हैं वे दुर्भागे हैं।।२९।।

परम हरिरसेन संप्रलोभ्यत्वम पजहर्थ ममेह लोकधर्मम्।
अहह रसलवं न देहि वृन्दावन तनुषे किमहो मृषैव मोहम्।।३०।।

हे श्रीवृन्दावन ! तुमने परम हरिरस में अच्छी तरह प्रलुब्ध करके मेरे इस लोक के धर्मों को अपहरण कर लिया है। हाय ! अब लेशमात्र भी रस दान नहीं करते हो । अहो ! तो क्यों मिथ्या मोह में मुझे डाल रहे हो ?।।३०।।

द्रुतनव कनकेन्द्रनील रोचिर्द्वयम वियक् कथमप्यहो किशोरम्।
मिथुन मति रसान्धमस्ति वृन्दावन भुवि तत् पदसेवने स्पृहा मे।।३१।।

अहो ! गलित नव स्वर्ण एवं नीलमणि कांति युक्त नित्य मिलित अति रसान्ध युगलकिशोर श्रीवृन्दावन की भूमि पर विराजमान हैं। किसी प्रकार

इनके चरण कमलों की सेवा मैं कर सकूं यही मेरी लालसा है।।३१।।

प्रकृति पर विकुण्ठधाम दूरतरमिदमाद्य रसाद्भुतं रहस्यम्।
इह निजकृपया विरस्ति वृन्दावनमिदमावसतः सतः प्रपद्ये।।३२।।

माया के परे जो वैकुण्ठ धाम है, उसके भी बहुत दूर शृंगार रस का अद्भुत रहस्य रूप यह श्रीवृन्दावन अपनी कृपा से इस पृथिवी पर आविर्भूत हुआ है, यहां जो सत्पुरुष वास करते हैं–मैं उन सबकी शरण लेता हूं।।३२।।

हतहृदय निमज्य हन्त वृन्दा
वनभुवि निर्मल चिद्रसामृताब्धौ।
विषय विषदुराशयाऽनया त्वं
कमिति मृषैव तनोषि दुःख सिन्धुम्।।३३।।

हे दुर्भागे ! हाय ! निर्मल चिद्रसामृत समुद्र रूप श्रीवृन्दावन भूमि में निमज्जन करके भी तू फिर इस विषयों की विषैली दुराशा से अपने दुःख समुद्र की झूंठी वृद्धि क्यों कर रहा है।।३३।।

श्रीराधाचरणारविन्द मधुर प्रेमात्मक प्रस्फुर
च्चिज्ज्योतिर्घन गौर दिव्य नवकैशोराकृतिर्मोहिनी।
तन्वंगी सुकृशोदरी रुचिर वक्षोजद्वया ल्योद्गमा
नव्यामुज्ज्वल शाटिकां कटितटे नव्ये पृथौ विभ्रन्ती।।३४।।

जो श्रीराधा के चरणकमलों के मधुर प्रेमात्मक चिज्ज्योति के दिव्य घन नवकैशोराकृति से युक्ता है। मोहिनी, कृशांगी अति कृशोदरा एवं मनोज्ञ–युगल स्तन रूप सखी से नित्य जो आश्लिष्टा है, नवीन पृथुल कटि में जिसने नव उज्ज्वल साड़ी पहन रखी है।।३४।।

श्रीमन्नाभिग–नीवि–डोरकमणी–मंगोल्लसत्कुंचना
हारालीं पदकंच नूतन कुचद्वन्द्वे वलत्कंचुके।
विभ्राणा मणिनूपुरौ चरणयोः श्रोणीतटे मेखलां
नूत्नद्विस्तवकेव हेमलतिका दिग्व्यापि दिव्यच्छविः।।३५।।

जिसकी नाभिस्थित नीवि बन्धन के डोरे में मणियों के गुच्छे लटक रहे हैं, जिसके कांचुलि से आच्छादित नूतन युगल स्तनों पर हार समूह एवं पदक शोभायमान हो रहे हैं। जिसके युगल चरणों में मणिनूपुर हैं तथा जो कटि

में मेखला धारण कर रही हैं, जो दिशाओं को व्याप्त करने वाली दिव्य कांति युक्त नवीन गात वाली होने से हेमलता की भांति प्रतीत होती है।।३५।।

ग्रैवेयं गलशोभि रत्नखचितं सौवर्णताटंकमा
वीतं मौक्तिकपंक्तिभिः श्रुतियुगे चित्रां मणिचित्रकाम्।
श्रीनासा पुट उज्ज्वलं कनकमण्यावद्ध मुक्ताफलं
शोभाधाम दधात्यथो कुसुमयुग्वेण्यग्रलम्बाम्बुजम्।।३६।।

जिसके गले में रत्नजड़ित कण्ठा शोभित हो रहा है, दोनों कानों में मोतियों से ग्रथित स्वर्ण–बाली पहर रही है, जो अति विचित्र मणिमय भूषणों से सुसज्जित हो रही है, जिसकी सुन्दर नासिका में उज्ज्वल कनकमणि–जड़ित मुक्ताफल डोलायमान है, कुसुम युक्त वेणी के अग्रभाग में कमल लटक रहा है, अहो ! जो इस प्रकार अतीव शोभायुक्त हो रही है।।३६।।

यस्त्वीदृग वृषभानुजा दयित दास्यात्म स्फुरन्नन्मरे
राधाकृष्ण महानुरागविभवानन्देन माद्यन्मुहुः।
हासं हासमशेषतो व्यवहृतीरुच्चावचा वर्त्तयन्
नाशत्त्या हि रतोऽखिलांगपुलकः शश्वत् स्वनाथस्मिते।।३७।।

इस प्रकार श्रीवृषभानुजा के प्राणप्रिय (श्रीश्यामसुन्दर) के दास्यभाव के अन्तर स्फूर्ति होने पर श्रीराधाकृष्ण के महानुराग सम्पत्ति के आनन्द में जो प्रतिक्षण उन्मत्त हो रही है–हंसते–हंसते छोटे–बड़े समस्त व्यावहारिक विषय निष्पन्न रह कर उनके मृदुहास्य में निरन्तर ही जो सर्वांग में पुलकित हो रही है।।३७।।

स्वे साधौ मिलिते शृणोति कथयत्यात्मेशयोर्माधुरीं
श्रीवृन्दावन मावसेन्मम समाराध्यः स सर्वात्मना।
सद्बन्धुः परमः स मे पदगुरुः सर्वस्वभूतः स मे
तत्पादे निपतामि दण्डवदहं सर्वाभिमानोज्झितः।।३८।।

एवं निज (स्वजातीय) साधु के साथ मिलकर अपने प्राणेश युगल की माधुरी सुनती एवं वर्णन करती है, इस प्रकार जो सर्वात्मार्पण द्वारा श्रीवृन्दावन में वास करती है, वह ही मेरी सम्यक् आराध्य है, परम सद्बन्धु है एवं परम

गुरु तथा सर्वस्व है। सब अभिमान को छोड़कर मैं उसके चरण कमलों में दण्डवत् प्रणाम करता हूं।।३८।।

राधाकृष्ण पदाम्बुजे दृढ़रतिस्तत्केलि कुञ्जोज्वलं
यो वृन्दावन मावसेच्च परमाऽभेद्यः स्वसकल्पतः।
तस्माहं यदि यस्यकस्यचिदपि त्यक्ताभिमानावलि
र्धास्ये पादरजांसि मूर्ध्नि भविता स्यात्मेष्ट योग्यस्तदा।।३६।।

जो श्रीराधाकृष्ण के चरण कमलों में दृढ़ रतियुक्त है, जो अपने संकल्प से जरा भी विचलित न होकर श्रीराधाकृष्ण की केलिकुञ्जों से उज्ज्वलीकृत श्रीवृन्दावन में वास करती है, वह कोई भी क्यों न हो यदि उसके पदरज कण को मैं सर्व अभिमान त्याग करके मस्तक पर धारण कर पाऊं तब ही मैं अपने अभीष्ट युगल किशोर की सेवा के योग्य हो सकूंगा।।३६।।

श्रीमद्राधां सुरतसमर श्रांतिभाजं प्रियस्य
सुप्तां वक्षस्थल सवपुषं सेवते प्रेममग्ना।
या काचित्तां य इह मनुते स्वात्मभावेन धन्यः
परोक्षेणाप्ययमति हतोपीन्द्रियैः स्यात् कृतार्थः।।४०।।

सुरत–रण में श्रान्तियुक्ता–श्रीराधा प्रियतम के वक्ष एवं गात पर सो रही हैं, कोई सखी प्रेममग्न होकर उनकी सेवा कर रही है, यदि कोई इस सखी की परोक्ष भाव से अपने चित्त में भावना कर सकता है, तब वह इन्द्रियों से अतिहत (पराजित) होते हुए भी कृतार्थ हो सकता है, इसमें संशय नहीं है।।४०।।

त्वयि रचयति राधिकाऽवनाशा
मतिभय मेत्य पलायितव माया।
हतहृदय कुतोन्विदं तवागाद्
विकृतिशतं गगन प्रसून कल्पम्।।४१।।

"तुम्हारी रक्षा करूंगी"–इस प्रकार श्रीराधा के आश्वासन देते ही माया भयभीत होकर भाग गई है। हे दुष्ट हृदय ! आकाश के फूलों के समान (झूंठे) तुम्हारे सैकड़ों विकार अब कहां रहे हैं ?।।४१।।

कांते मन्मतिहृत सुमंजुल कुचाद्युच्छीरियं सेव्यतां
सैव त्वं यदि सुप्रसीदसि ममप्रीतिः परा गम्यताम्।

तत् कुंजं निमिषं त्वया तु न विना जीवाम्यहो व्याहृती
वृन्दाटव्यनुगा इति स्मर कथाः श्रीराधिका–कृष्णयोः ।।४२।।

हे कांते ! मेरी मति हरण करने वाली तुम्हारे सुमनोहर कुचों की यह उच्चता सेवित हो, यदि तुम सुप्रसन्न होवो तब ही मैं इस सेवा को प्राप्त कर परम प्रीति का लाभ कर सकता हूं (हे कान्ते !) इस कुंज को एवं तुम्हें छोड़कर तो मैं एक निमिष भी बच नहीं सकता हूं। अहो ! श्रीराधिका–कृष्ण की श्रीवृन्दावन सम्बन्धीय इस प्रकार के आलाप आदि की कथा का स्मरण कर।।४२।।

अहो वृन्दारण्ये मदन मद सिन्धुर्मम सुदु–
र्धरोद्वेलो हासादपि रतिषु वाम्यं न सहते।
गृहीत्वातः पादौ मृगयति हरिः सन्तु परतः
सुखं सख्यस्त्वं मां रहसि रमयाभंग रतिभिः।।४३।।

अहो श्रीवृन्दावन में मेरा मदन मद सिन्धु अतिशय उद्वेलित हो रहा है, रति विषय में हास्य छल से भी और वाम्य भाव सहन नहीं होता, "श्रीहरि (श्रीराधा) चरण पकड़कर इस प्रकार रति की भिक्षा कर रहे हैं। सखीगण अन्यत्र सुख पूर्वक रहें, तुम अभी मुझे निर्ज्जन स्थान पर अभंग रति दान कर रमण करो।।४३।।

कदाचिच्छ्रीवृन्दावन उदित तीव्रोन्मदरसा
कृतौ कामपूर्त्या वहलरति खेलाभि रपि तौ।
निजेच्छातोऽनन्तोदित वरतनू तन्नवलता
गृहेऽनन्तेऽनन्त स्मर रसविलासौ व्यहरताम्।।४४।।

किसी दिन बहुत–बहुत रति क्रीड़ा से भी वह दोनों काम की आपूर्ति वश अपनी इच्छा से श्रीवृन्दावन में उदित–तीव्र उन्मद रसाकृति होते हुए भी नवीन लतागृहों में अनन्त भावों से शोभित विग्रह प्रकट करते हैं एवं अनन्त कामरस विलासी युगलकिशोर अनन्त विहार करते हैं।।४४।।

यदा राधाकृष्णौ प्रबल रसतृष्णो द्वयतया
न पूर्णमवानन्त्यं निजमवृणुता मन्यगमपि।

तदैव श्रीवृन्दावन उरुमदोच्छृंखल मनो
भवाखेले खेलारस मतनुतां रास वलये।।४५।।

जब प्रबल रस–तृष्णा श्रीराधा कृष्ण दो रूपों से पूर्ण–काम न हो सके, तब उन्होंने अपने एवं अन्यों के अनेक रूप प्रकट किये अर्थात् अपनी अनेक प्रकाश–मूर्त्तियां प्रकट की एवं अपने परिकर की भी अनेक मूर्त्तियां प्रकट कराईं और तभी श्रीवृन्दावन में सदातिशय वश असीम कामरंग स्थली रास मण्डल में क्रीड़ा रस का विस्तार किया।।४५।।

अहो वृन्दारण्यं मतिमति जहाराखिल मनो
हरस्याप्यानन्दाम्बुधि मपि रसोतृष्णयाति तम्।
किमित्येतद्वंशी स्वपर सकलोन्मादक रवा
प्यभून्मुग्धा तूष्णीं यदधि पिक कीरादि विरुतैः।।४६।।

अहो ! श्रीवृन्दावन ने निखिल विश्व के मनहारियों की भी मति बिल्कुल हर ली है, उसने आनन्द समुद्र को भी अत्यन्त रस तृष्ण कर दिया है। इसके कोयलों एवं शुकादिक की कल–कल ध्वनि सुनकर क्या अपने–पराये सबको उन्मत्तकारी स्वर वाली मुरली भी मुग्ध होकर चुप पड़ गई है।।४६।।

भजन्नुच्चै रुच्चैः प्रतिमुहुरहो वृद्धिमतुलां
स्मरोन्मादो राधामुरलिधरयोः कोऽपि सहजः।
महासौख्याभोधिः प्रसरति सखीनांच परमो
यदेष श्रीवृन्दावन तव महानेष महिमा।।४७।।

अहो ! श्रीराधा मुरलीधर को प्रति महूर्त अति उन्नत व असीम वृद्धि को प्राप्त कोई एक अनिर्वचनीय सहज कामोन्माद हो रहा है, और सखियों को भी यही परम महासुख सागर में निमग्न कर रहा है, हे श्रीवृन्दावन ! यह तुम्हारी ही महिमा है।।४७।।

अये राधापदाम्बुज महह नाराधयति चे
दतुष्टायां तस्यां न खलु सुलभ स्तद्वश हरिः।
बिना वृन्दारण्यश्रयणमपि तस्याः पदयुगं
समाराध्धुं शक्यं कथमपि च नान्यत्र प्रकटम्।।४८।।

अहो ! यदि कोई श्रीराधा के पदकमलों की आराधना न करे, तब उनके

असन्तुष्ट होने से उनके वश में रहने वाले श्रीहरि भी सुलभ न होवेंगे। श्रीवृन्दावन के आश्रय को छोड़ कर श्रीराधा के चरण कमलों की सम्यक् आराधना करना भी दुसाध्य है, कारण कि यह चरणकमल अन्यत्र प्रकट नहीं होते।।४८।।

अत्यानन्दाद् ब्रजजन वधूवृन्द आविष्ट उच्चै
गीतंवाद्यं रचयति चिरं लास्यलीलां विचित्राम्।
वृन्दारण्ये ध्वनति गगने दुन्दुभौ पुष्पवर्षे
राधाकृष्णावपि रसभरान्नृत्यतो गायतश्च।।४९।।

आनन्द के उद्रेक में ब्रज नारियां अतीव आवेश में आकर गाना बजाना करती हैं, अनेक समय तक विचित्र विधान से लास्य लीलाओं की रचना करती हैं, वृन्दावन में आकाश पर दुन्दुभि का शोर सुनायी देता है। पुष्पों की वर्षा होती है, श्रीराधाकृष्ण भी वहां रसपूर्ण नृत्य गीत कर रहे हैं।।४९।।

विपञ्ची किञ्चन्न ध्वनति मुरली रौति न मना
गगम्यं च प्रोदञ्चयति न पिकः पञ्चमरवम्।
सखीवृन्दं मौन्युज्झति प्रणयगोष्ठीमपि हरि–
र्यदा राधा वृन्दावन गुणगणान् गायति मुदा।।५०।।

जब श्रीराधा आनन्दपूर्वक श्रीवृन्दावन के गुणगान करने लगती हैं, तब श्रीराधा का वीणा निस्तब्ध हो जाता है। मुरली भी एकदम नीरव हो जाती है, कोकिल भी अवोध्य पञ्चम स्वर में आलाप नहीं कर पाती सखीवृन्द मौन हो जाती हैं। और श्रीहरि भी प्रेमालाप छोड़ देते हैं।।५०।।

वृन्दारण्ये राधिका माधवश्च सम्वर्द्धेते स्वैर्गुणैः स्पर्द्धयेव।
आलीनाञ्चापार सौख्योन्मदाब्धे रुच्चैर्नित्यवृद्धिं स्मरामि।।५१।।

श्रीवृन्दावन में श्रीराधा तथा श्रीमाधव अपने अपने गुणों की स्पर्धा करके मानो सम्यक् प्रकार से वर्द्धमान हो रहे हैं, एवं सखियों का जो अपार सौख्यरस का उन्मादकारी समुद्र हैं वह भी प्रतिक्षण बढ़ रहा है–मैं उसका स्मरण करता हूं।।५१।।

सर्वाश्चर्यौ राधिकाकृष्णचन्द्रौ विश्वस्यै वा जह्तुर्लीलायाऽन्तः।
श्रीमद्वृन्दाकानने नैतयोरप्यात्मा जह्रे येन केनापि चित्रम्।।५२।।

सर्वश्रेष्ठ श्रीराधिकाकृष्णचन्द्र ने लीला से समस्त विश्व के अन्तःकरण को हर लिया है। किन्तु श्रीमद्वृन्दाकानन ने इन दोनों की आत्मा को जिस सामान्य वस्तु द्वारा हरण कर लिया है—यही आश्चर्य है।।५२।।

कोटि प्राणैरेष नीराजनीयः कान्तेत्याकुलान्योऽस्य वाग्भिः।
राधाकृष्णौ मानयेते यदीयं कंचिद् भावं नौमि वृन्दाटवीं ताम्।।५३।।

"हे प्रिये ! श्रीवृन्दावन के यह भाव (पदार्थ, लीला, विभूति व रति) कोटि प्राणों द्वारा भी आरती उतारने योग्य है" हे प्रिये ! यह भाव भी कोटिप्राणों द्वारा नीराजनीय है। इस प्रकार से परस्पर के प्रेम भरे वाक्यों से जिस किसी भाव का श्रीराधाकृष्ण सम्मान करते हैं, उस श्रीवृन्दाटवी को नमस्कार करता हूं।।५३।।

त्यक्त्वा धर्म्मं चार्थकामौ विमुक्तिमैशीं भक्तिं वाऽथ तत्साधनानि।
राधाकृष्णौ सेवितुं केऽपि धन्या वृन्दारण्यावासमा मृत्यु कुर्य्युः।।५४।।

धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष, ईश्वर की भक्ति तथा उसके जितने साधन हैं उन समस्त को त्यागकर श्रीराधाकृष्ण की सेवा प्राप्ति के उद्देश्य से कोई अति भाग्यवान महापुरुष ही मृत्यु पर्यन्त श्रीवृन्दावन में वास करता है।।५४।।

राधाकृष्णा विहा भगवतो रूप सारैकतत्वे
तद्धाम स्वद्भुत रह इदं श्रीलवृन्दावनाख्यम्।
आस्तां वार्त्ता त्विह धृतवती तारतम्यं ममान्या
स्वाद्य प्रेमोत्सव रस चमत्कारिनी स्यात् परं धीः।।५५।।

यहां श्रीराधाकृष्ण भगवान् के रूपसार का मुख्य तत्व एवं श्रीवृन्दावन नामक उनका धाम भी अति अद्भुत रहस्य वस्तु है। यह तारतम्य की वार्त्ता रहने दो, मेरी किन्तु अन्य प्रकार की बुद्धि भी आस्वाद्य प्रेमोत्सव रस द्वारा ही चमत्कारिणी हो।।५५।।

कामं वासो भवतु नरके चेन्महानन्दकन्दैः
श्रीमद्वृन्दावन गुणगणैः पूर्य्यंते कर्णरन्ध्रः।
गीयन्ते वा स्मृतिपथ मथो यान्ति वा नान्यथा मे
श्रीवैकुण्ठेऽप्यहह रुचिदं श्रीशितुः प्रेथदास्यम्।।५६।।

यदि महानन्दकन्द श्रीवृन्दावन के गुण समूह से कर्णरन्ध्र पूरित हों, तो

नरक में वास करना भी मुझे स्वीकार है, समस्त गुणों का गान हो या मुझे इनकी स्मृति बनी रहे। हाय ! नहीं तो श्रीवैकुण्ठ तथा श्रीनारायण का प्रियतर दास्य भी मुझे रुचिकर नहीं है।।५६।।

प्रेम्णा यत्र शनैः शनैः सुकुसुमान्याचिन्वती राधिका
दासीः शिक्षयते जहात्यलिकुलैराक्रान्तशी धून्यपि।
नोपेक्षामति रूप गन्ध विभवाभावेऽप्यहो तन्वती
तद्वृन्दावन मेकमाद्य प्रणयानन्दाय वन्दामहे।।५७।।

जहां श्रीराधा प्रणयपूर्वक धीरे-धीरे उत्तम उत्तम फूलों का चयन करती है, दासियों को शिक्षा देती है मधुकरों द्वारा आक्रांत मधुराशि को भी त्याग कर देती है, हाय ! अतिशय रूप व गन्धादि सम्पत्ति के अभाव होने पर भी वह किसी भी तरु-लता की उपेक्षा नहीं करती है, उसी श्रीवृन्दावन के केवल आद्य प्रेमानन्द के लिए मैं वन्दना करता हूं।।५७।।

श्रीवृन्दावन पारिजात विटपिच्छाया मणिमण्डपे
रत्नप्रोज्ज्वल कुट्टिमे कुसुम सद्गुच्छैतदुल्लोचिनि।
आसीनं सह राधया सुमिलितं तत्तूल पट्टासने
पुष्पाढ्ये महिताः सखीर्बनकथाः पृच्छन्तमीक्षे हरिम्।।५८।।

श्रीवृन्दावन में पारिजात वृक्ष की छाया के नीचे मणि मण्डप में रत्नजड़ित अति उज्ज्वल चौंतरा है, एवं सुन्दर पुष्पों से निर्मित चन्द्रातप के नीचे पुष्पमय रेशमी गद्दे के आसन पर श्रीराधा के साथ मिलकर बैठे हुए सखियों के निकट जो श्रीहरि सम्माननीय वन-कथा को पूछ रहे हैं उनके दर्शन कर।।५८।।

स्वाद्य प्रेम महारसात्मन बहिर्नोवान्तरा भाति-
च्छ्रीवृन्दाविपिनं तदा स्फुरति नो राधाऽथ तन्नागरः।
अस्फूर्तौ च तयोर्विशुद्ध रस चिन्मूर्त्योः कथं कोटिभि
र्यत्नैरप्यनुराग सौख्यजलधः साराति काष्ठोदयः।।५९।।

आस्वाद्य प्रेम रसात्मक श्रीवृन्दावन यदि अन्तर और बाहर स्फुरित न हो, तब श्रीराधा एवं उसके नागर भी स्फुरित नहीं हो सकते, विशुद्ध रस चिन्मूर्ति युगलकिशोर की स्फूर्ति के बिना क्या अन्य कोटि चेष्टाओं से अनुराग सौख्य सागर के सारातिसार प्रेम का उदय हो सकता है ? अर्थात् नहीं।।५९।।

दिव्यस्रग् गन्ध भूषादिभिरति लसितौ दिव्य ताम्बूलवल्ली
मालीभिर्भोज्यमानौ किमपि नव वनं प्रेक्षितुं गीतवाद्यैः।
राधाकृष्णौ यदा स्तः परमकुतुकिनो तर्हि तद्वक्त्र चन्द्र
संक्रान्ते स्वच्छदीप्ते स्थल जल सकलेऽध्येमि वृन्दावनश्रीः।।६०।।

दिव्य माला गन्ध भूषादि से अतिशय सुसज्जित होकर सखियों द्वारा दी गई ताम्बूल–बीड़ी को चबाते हुए गीत वाद्य के साथ–साथ किसी नवीन वन का दर्शन करके जब श्रीराधा कृष्ण अत्यन्त कौतुहलाक्रांत हो जाते हैं। तब इन युगलकिशोर के मुखचन्द्र से प्रतिबिम्बित स्वच्छ दीप्ति जल पूर्ण स्थलों से सर्वत्र श्रीवृन्दावन की जो सौन्दर्य छटा है मैं उसका स्मरण करता हूं।।६०।।

रे कामक्रोध लोभादय इह सुहृदो मे भवन्तो भवन्तु
त्यज्यानादेहपातं सततमति समालिंगयमानन्दयन्तु।
चेष्टाभिश्चेन्निजाभिः कथमपि परमं वन्धमापाद्य वृन्दा
रण्ये धन्येन केनाप्यतिविरल तमेनाश्रिते माम वस्तु।।६१।।

रे काम–क्रोध लोभादिको ! श्रीवृन्दावन में आप सब मेरे बन्धु बन जाओ। मैं अपने शरीर छोड़ने पर्य्यन्त आपको त्याग न कर सकूंगा। सदा अतिशय आलिंगन करके मुझे आनन्द दान करो। अपनी चेष्टाओं से किसी प्रकार परम बन्धन में बांधकर भी किसी एक विरले भाग्यवान् पुरुष द्वारा आश्रित इस श्रीवृन्दावन में ही मेरी रक्षा कीजिये।।६१।।

नवैः कुसुमपल्लवैर्नव विचित्रवेशं दधन
नवं वसनभूषणं नवसमागम प्रक्रियम्।
अहो नव महोद्वयं नव हरिन्मणी हेमरुङ्
नव स्मर रसाकुलं स्मर सर्वर्त्तु वृन्दावने।।६२।।

नव कुसुम तथा नव पल्लवों द्वारा नवीन वेश जो धारण कर रहे हैं, नव समागम प्रक्रियानुसार नव वसन भूषण जो धारण कर रहे हैं, अहो ! एक दम सर्व ऋतुओं की शोभापूर्ण श्रीवृन्दावन में नवनील कांतमणि तथा नव स्वर्ण–कांतियुक्त और नव स्मररस से व्याकुल नव विग्रह युगलकिशोर का स्मरण कर।।६२।।

विचित्र मृगपक्षिसंकुल विचित्रतामोहितं
विचित्र रस रञ्जितो भज विचित्र कामोत्सवम्।
विचित्र मति राधिका रति विचित्रता मोहितं
विचित्र रस रञ्जितो भज विचित्रवेशं हरिम्।।६३।।

विचित्र मृग पक्षियों से संव्याप्त विचित्रता में मोहित विचित्र कामोत्सवपूर्ण श्रीहरि हैं, उनके विचित्र रस में रंजित होकर (अनुराग युक्त होकर) भजन कर। विचित्र मति श्रीराधिका है, उनकी रति विचित्रता से मोहित जो विचित्र भेषयुक्त श्रीहरि हैं, उनका विचित्र रसानुरक्त होकर भजन कर।।६३।।

विचित्र श्रीवृन्दावन मिह विचित्रं वनलता
निकुंजं तत्रास्ते सुकुसुम विचित्रञ्च शयनम्।
विचित्रौ श्रीराधामुरलिधरणौ तत्र रसिकौ
विचित्रास्तत्क्रीड़ा स्तद्वधि विचित्रो मधुरिमा।।६४।।

यह श्रीवृन्दावन विचित्र है, वन लताओं से निर्मित यह निकुंज भी विचित्र है, वहां जो सुन्दर कुसुममय शय्या है—वह भी विचित्र है। उस पर रसिक श्रीराधामुरलीधर भी विचित्र हैं, उनकी क्रीड़ा भी विचित्र है, उस पर उनका माधुर्य (सुरत माधुर्य) भी विचित्र है।।६४।।

नवाम्भोद श्यामो नव ललित विद्युद् विलसिता
नवानंगक्रीड़ा नवरतिकला कौशल निधिः।
नवानन्दस्यन्दो नवरस भरे ना लस तनुः
स कृष्णः सा राधा नवति नव वृन्दावन रुचिः।।६५।।

नव मेघ श्याम एवं नव ललित विद्युत विलासिनी, नव अनंग क्रीड़ा तथा नव रतिकला कौशल समुद्र, नवानन्द क्षरण शील और नवरस में आलस—तनुयुक्त, वह श्रीकृष्ण एवं वही श्रीराधा ही नव श्रीवृन्दावन की कांति को नवीन रूप से प्रतिभात कराते हैं।।६५।।

वृन्दाटव्यां कलिन्दाचल दुहितृतटे दिव्यपाटीर वाटी
भ्राजन्मल्लीकुटीरे विरचित रुचिरानंग रंग प्रसंगम्।
मत्तल्पे पारिजाताद्युरुविध कुसुमैः कल्पिते पुष्पमालाऽ
लंकारोत्तंसकादि मनसि विहरतां राधिकामाधवौ नः।।६६।।

श्रीवृन्दावन में कालिन्दी तट पर दिव्य चन्दन की वाटिका में विराजित मल्लीकुटीर में पारिजातादि अनेक प्रकार के पुष्पों द्वारा रची हुई उत्तम पुष्पमालाओं के अलंकार शिरोभूषण इत्यादि धारण किये हुये मनोज्ञ अनंग रस प्रसंग विस्तार करते हुये श्रीराधामाधव हमारे मन में विहार करें।।६६।।

स्थाने स्थाने नवीनर्त्यतुल हरिरसादुन्मदं केकीवृन्दं
मल्लीवल्लीञ्च फुल्लामनु मिलति मदान्धालि झंकार धारा।
चूते चूते प्रगाहयन्तहह मदकलं कोकिला यत्र तत्र
श्रीराधा माधवावुन्मदकलौ किशोरौ श्रीलवृन्दावनेस्मिन्।।६७।।

इस श्रीवृन्दावन में स्थान स्थान पर मोर असीम हरिरस में उन्मत्त होकर बार बार नृत्य कर रहे हैं, मदान्ध अलि समूह गुंजार करते करते प्रस्फुटित मल्लिकालता से मिलन करते हैं, एवं जहां तहां कोकिलायें प्रति आम्रमुकुल पर कल–ध्वनि से संगीत कर रही हैं, और यहां श्रीराधामाधव युगलकिशोर भी उन्मत्त होकर विराजमान हैं।।६७।।

राधामाधवयोर्वने विजयिनोः सुस्वच्छदीप्तस्थली
.........ष्वंगेषु मुकुरोदार द्रुवल्लीषुच.........।
सर्वस्मिन्नपि सर्वतः प्रतिफल स्वात्मात्वगान्यान्यगे
शोभाकाऽप्युदितातिविस्मयकरी लोभाय नो भासताम्।।६८।।

मणिवत् दीप्तिमयी वनस्थली में विजय की इच्छावाले श्रीराधामाधव की जो अंगकांति है वह शुद्ध स्फटिक मणि की भांति दर्पण की कांति की भांति वृक्षलता में एवं एक दूसरे के अंगों में विच्छुरित होकर वह फिर और भी सर्वत्र फैल कर अतिशय आश्चर्यमय शोभा प्रगट कर रही है, वह हमारे लिये लोभनीय होवे।।६८।।

इत इत इति राधामाधवौ स्व स्व मान
ग्रहिलरव सखीभिः प्रेष्यमानौ समन्तात्।
पथि पथि वन शोभा वीक्षणायैव यान्तौ
जहसतु रतिलुब्धोल्लासि चेतोऽनवस्थाम्।।६९।।

वन शोभा निरीक्षण करने के लिये अपने अपने मान की वृद्धि के लिये प्रिय सखीगण–"इस ओर, इस ओर, कह कर पथ–पथ पर श्रीराधामाधव को

चारों तरफ से प्रेरणा करतीं रहती हैं वे अति लुब्ध और उल्लसित चित्त होकर किस ओर जावें—यह स्थिर नहीं कर सकने पर वे (युगलकिशोर) हंसने ही लगते हैं।।६६।।

इत डरुतररम्यं स्वामिन्यौ पूर्वमेत–
दनु दयितसख्या ख्यातदेशं भजेथाः।
इति धृतपददासी काकुभि स्तत्रगत्वा
स्मर प्रमुदित राधामाधवौ तत्प्रशंसौ।।७०।।

हे मदीश्वर युगल ! इस ओर ही अनेक रमणीय वस्त्र हैं, पहले इन्हें देखिये उसके बाद प्रिय सखी के बताये हुए स्थान पर जाइयेगा।" इस प्रकार कहकर उस दासी ने दोनों के चरणद्वय पकड़कर विनती की तो श्रीराधामाधव वहां जाकर अति प्रसन्न हुए एवं उसकी प्रशंसा करने लगे। इसका स्मरण कर।।७०।।

विन्यासैः पद पंकजस्य विपिन श्रेणीरलं कुध्वती
सव्रीड़स्मित कन्दलेन विलसत्कुन्दंनभः कुर्व्वती।
भ्रूवल्लीनटनेन मन्मथधनुः खण्ड वृथा कुर्व्वती
राधामाधव संगताऽटति सखीवृन्देनवृन्दाटवीम्।।७१।।

चरणकमलों के विन्यास से वन प्रदेश को अलंकृत कर रहे हैं, लज्जायुक्त मृदु मधुर हास्य की छटा से आकाश के कुन्दराजों की सी शोभा विस्तार करते हैं, भ्रुलता के नृत्य से काम–धनुष को भी व्यर्थ कर रहे हैं, इस प्रकार से श्रीमाधव के सहित श्रीराधा सखीवृन्द के साथ श्रीवृन्दाटवी में विहार कर रही हैं।।७१।।

व्यत्यस्ताभरणाम्वरा मतिजवाद् गण्डोच्चलत् कुण्डला
मालोलायत नेत्र मुक्त कवरच्च्योतत् प्रसूनावलिम्।
कान्ताऽली तदशंकयाऽप्यतिनुते वृन्दावनैकस्थले
तद्वीक्षा रस सम्भ्रमाद्द्रुतगतिं राधामहं राधये।।७२।।

वसन एवं भूषन को उलट फेर कर पहन लिया है, जल्दी के वश गण्डदेश पर ही कुण्डल आन्दोलित हो रहे हैं, नेत्र झूम रहे हैं, एवं कवरी का बन्धन ढीला हो जाने से पुष्प समूह खिसक पड़े हैं, कान्त एवं अलिगणों के

सामने अशंकित होकर सब कुछ कहकर अति प्रशंसनीय श्रीवृन्दावन के एक स्थान के दर्शन के रसगौरव में बहुत शीघ्र गमन करने वाली श्रीराधा की मैं आराधना करता हूं।।७२।।

काप्यागत्य यदैव शंसति वनं वृन्दावने किञ्चन
व्यक्तं तर्ह्यतिकौतुकेन विवशा राधाग्रतो धावति।
केशान् संवृणती न नाऽपि रसनं नामन्त्रितालि प्रिया
त्यक्तोत्संग विपंचिकाऽथ सहधोल्लासैः परेऽप्यन्वयुः।।७३।।

यदि कोई सखी आकर कहे कि श्रीवृन्दावन में कोई एक वन व्यक्त हुआ है, यह सुनते ही तभी अति कौतुक में भरकर श्रीराधा अपने बालों को भी नहीं संवारती हैं, और न ही ढीली मेखला को कसती हैं, सखियों से भी नहीं पूछतीं, एवं अपनी गोदी में धरे हुए वीणा को त्यागकर आगे-२ दौड़ पड़ती हैं, और उल्लास सहित सखीजन पीछे आकर वहां योगदान करती हैं।।७३।।

इदं भगवदर्पणाचरित सर्वसत् कर्म्मणां
फलञ्च भगवत् पदाम्बुज सुभक्तिमत् संगते।
फलात्म भगवत् कथामृतरुचि श्रुतीनां परं
फलं मदनमोहनो यद्वयमैक्षि वृन्दावने।।७४।।

श्रीवृन्दावन में इस श्रीमदनमोहन के दर्शन करते ही समस्त सत्कर्मों को भगवत्-अर्पण करने का फल, एवं भगवत्चरण कमलों में उत्तमा भक्तिशील साधुओं के संग का फल तथा साध्य स्वरूप भगवत् कथामृत में रुचि उत्पन्न करने वाले श्रुति समूह के अध्ययन का परम फल भी प्राप्त हो जाता है।।७४।।

विदग्धललितादिकालिभि रनूत्कण्ठं शिक्षितं
विमुग्ध मृगपक्षिभिः कलकलोज्झितैर्वीक्षितम्।
सुहेम हरिनीलरुग् द्वयमहो महादीक्षितं
स्मर स्मरमहोत्सवे निजवने परालक्षितम्।।७५।।

विदग्धा ललितादि सखीगण के द्वारा बार-बार एक दूसरे की प्रेमोत्कण्ठा वर्द्धित होती है, वे युगलकिशोर को अनेक विषयों में शिक्षा देती है, चुपचाप बैठे हुए विमुग्ध पशु पक्षी जिनको देख रहे हैं, किन्तु और कोई भी जिन्हें नहीं देख सकता, वे स्वर्ण-इन्द्रनील मणि वर्ण युक्त युगल विग्रह निज-वन में

(श्रीवृन्दावन में) स्मर–महोत्सव में महादीक्षित हो रहे हैं इस लीला का स्मरण कर।।७५।।

अनंग रसमादतः क्षुभितदृष्टि वागंगयो–
रभंग रति रंगयोः सुरस पुंज कुंजालिषु।
अलंगलितधैर्य्ययोः स्मरत राधिका कृष्णयो
रसंगत गिरोमिथो विलसितानि वृन्दावने।।७६।।

अनंग रस की मत्तता से जिनकी दृष्टि में, वचनों में एवं अंगों में चञ्चलता दीखती है, श्रीवृन्दावन की उत्कृष्ट रसपूर्ण कुंजों में जो नित्य ही रतिरंग करते हैं, जिनका धीरज बिल्कुल नष्ट हो चुका है, एवं परस्पर असंगत वाक्य प्रयोग कर रहे हैं, उन श्रीराधाकृष्ण की विलासावलि का स्मरण कर।।७६।।

अनंत सतृषोल्लसत्च्छ्रुति रनन्ततृष्णादृक्
तवामृत कथा रस सदन इन्दुवक्त्रेक्षणे।
नवेद महदल्पतां विधिनिषेध वार्त्तालवं
सदा लसति राधया त्रुटितसेतु वृन्दावनम्।।७७।।

अनंत तृष्णा से उल्लसित कान तुम्हारे अमृतमय कथा रससागर में रहते हैं एवं अनन्त पिपासाकुलित नेत्र तुम्हारा चन्द्रमुख निरीक्षण ही करते रहते हैं, वे महत्व तथा अल्पत्व और विधि निषेधादि कुछ भी नहीं जानते हैं, इस प्रकार सकल मर्य्यादा को उल्लंघन करके श्रीश्यामसुन्दर श्रीराधा के साथ हर समय विलास करते हैं।।७७।।

स्वहस्तरचितां प्रिय सुखचमत्कृत प्रीतये
विचित्र परिपाटिकां कुसुमवाटिकामास्थिताम्।
विचित्र नव कुंजकावलि परिष्क्रियादौ रतां
भजाम्यनुग किंकरीमभिसृतां मुदा राधिकाम्।।७८।।

जो प्रियतम के सुख, चमत्कार एवं प्रीति के लिये अपने हाथों से रची हुई विचित्र परिपाटीयुक्त पुष्पवाटिका में जाकर विचित्र नवकुंज समूह परिष्कार करने में लगी रहती है, एवं आनन्द के साथ अनुगता दासीगण के पीछे चलने वाली जो श्रीश्रीराधिका हैं, उनका भजन करता हूं।।७८।।

सानन्दं नवकुंज वासभवनं शिक्षा सुदक्षालिभि
र्नीतौ नव्यवधूवरौ नवरतिक्रीड़ा प्रसंगाकुलौ।
प्रोन्मीलन्नवरंग चित्रसुपटौ नव्यांगरागस्रगा
कल्पौजालगते क्षणालि सुखदौश्रीगौरनीलौ नुमः।।७६।।

शिक्षा देने में सुनिपुण सखियां आनन्द पूर्वक नवकुंज राजगृह में नवरति क्रीड़ा प्रसंग में आकुलित नवीन वर–वधू दोनों को ले गई। अति सुन्दर नवरंग के विचित्र सुन्दर वसन वे पहर रहे हैं। नवीन अंगरागमाला एवं शिरोभूषण से सुसज्जित हो रहे हैं, रन्ध्रों में से दर्शन करके सखिगण सुखी हो रही हैं, इस प्रकार मैं गौरनील वर्ण युगलकिशोर की स्तुति करता हूं।।७६।।

वृन्दारण्य गुणान् प्रगायदनिशं रागैर्विचित्रैर्मिथो
वृन्दारण्य रसाञ्चिताः प्रिय सखीः सन्नायन्नाटिकाम्।
उन्मादोन्नति वीक्ष्य वीक्ष्य मधुरां वृन्दावन श्रीततिं
श्रीवृन्दाविपिनेऽद्भुतं द्वयमहस्तद् गौरनीलं नुमः।।८०।।

वे परस्पर विचित्र रस रागनियों से श्रीवृन्दावन की गुणावली गान करते हैं, श्रीवृन्दावन रस युक्ता प्रिय सखियों को नाटक के अवधान में नृत्य करते हैं, मधुर श्रीवृन्दावन की शोभा देख–देखकर उनकी उन्मत्तता बढ़ती ही बढ़ती जा रही है। इस प्रकार श्रीवृन्दावन के गौरनीलवर्ण अद्भुत युगलकिशोर की मैं स्तुति करता हूं।।८०।।

प्रत्यंगोच्छलदन्तपाररहित श्रीगौरनीलच्छटा
पीयूषाम्बुधि कोटि मन्मथ दुरुन्नेयाति लीलानिधिः।
राधाकृष्ण सुनाम धाम युगलं तद्दिव्य कैशोरकं
श्रीवृन्दावन कुंजवीथिषु सदा खेलन्मनो गाहताम्।।८१।।

जिनके प्रति अंग से अनन्त अपार सुन्दर गौरनील छटामृत का समुद्र उच्छलित हो रहा है। जिनकी निज लीला के समुद्र का कोटि कोटि कामदेव भी पार नहीं पा सकते हैं, वे दिव्य किशोर "श्रीराधाकृष्ण"–इस सुन्दर नाम को धारण करने वाले युगल विग्रह श्रीवृन्दावन के कुंजों के पथ–पथ में सदा क्रीड़ा कर रहे हैं, वे मेरे मन में स्फुरित हों।।८१।।

जाग्रत स्वप्नसुषुप्ति नित्य मिलनो नित्यानुरागोन्नती
नित्याश्चर्य नवीन दिव्यवयसौ नित्यस्मरोन्मादिनौ।
नित्यान्योन्य विचित्र केलिकलनौ नित्यालि वृन्दान्वितौ
श्रीवृन्दावननागरौ भजमन स्तावेव नित्योज्ज्वलौ।।८२।।

हे मन ! जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति में भी जिनका नित्य मिलन है, नित्य ही जिनका अनुराग वर्द्धित होता है, नित्य ही आश्चर्यमय जिनकी नवीन दिव्य वयस है, जो नित्य कामोन्मादी हैं एवं नित्य परस्पर विचित्र–केलि विनोदी हैं, नित्य सखी मण्डली से मण्डित हैं, उन नित्योज्ज्वल रसान्वित श्रीवृन्दावन नागर–युगल का भजन कर।।८२।।

अन्योन्यां सवलन्मिथोऽति पुलक श्रीवृन्ददोः कन्दलौ
हासं हासमनेकदिव्य गतिभिर्लीलालसाभिर्मुदा।
प्राणेशे प्रिय पश्य पश्य शृणुशृन्वित्यादि वाक्सम्भ्रमौ
राधातद्रमणौ स्मराम्यति रसाद्वृन्दाटवी चारिणौ।।८३।।

एक दूसरे के स्कन्धों पर धरी हुई अतिशय पुलक–सौन्दर्य युक्त दोनों की भुजायें शोभित हो रही हैं वे आनन्द पूर्वक हंसते हंसते लीलालस चित्तयुक्त अनेक प्रकार की दिव्यगति भंगी के द्वारा एवं "हे प्रियतमे" "हे प्रिय" "देखो, देखो" "सुनो, सुनो" इस प्रकार के वचन कहकर श्रीराधा एवं उसके रमण श्रीश्यामसुन्दर अति रस पूर्ण होकर श्रीवृन्दावन में विचरण कर रहे हैं, उनका मैं स्मरण करता हूं।।८३।।

समुद्वेलिताशेष सत्प्रेमसिन्धौ सदानन्द वृन्दाटवी श्यामलेन्दौ
न राधादृगिन्दीवरनन्य वन्धौ गतौ दृक्चकोरो तदास्तां महान्धौ।।८४।।

अशेष उत्कृष्ट प्रेम सिन्धु की सम्पूर्ण वृद्धि करने वाले, नित्यानन्दमय श्रीवृन्दावन के श्यामलचन्द्र–जो श्रीराधा नेत्र कमलों के एकमात्र बन्धु हैं–उनकी ओर यदि नयन चकोर नहीं आकृष्ट होते तो महा अन्धा ही रहना ठीक है।।८४।।

सदा राधयाऽगाधया प्रेमसारैः सदा राध्यया साध्यया तद्वनान्यैः।
अविच्छिन्न वृन्दाटवी केलि वृन्दा ममानन्दिनीश्यामला सैव शोभा।।८५।।

अन्यान्य वनसमूह द्वारा नित्य आराध्या एवं साध्या, प्रेम सार की अगाधा मूर्त्ति श्रीराधा द्वारा अनुष्ठिता, श्रीवृन्दावन की निरवच्छिन्न केलिवृन्दों द्वारा परिशोभित वह श्यामल शोभा ही मुझे आनन्द दान कर रही है।।८५।।

महानन्द निस्यन्दिनी विश्वचेतो मृगावन्धिनीं रन्धिनीं बन्धसन्धेः।
रसोन्मत्त वृन्दाटवी वल्गिनीं तां हरेर्दिव्य वशीमहं शीलयामि।।८६।।

महानन्द क्षरणशीला, सबके चित्त रूप मृगों का बन्धन करने वाली, सबके बन्धनों की विनाशक, रसोन्मत्त श्रीवृन्दावन की बहु प्रशंसा करने वाली, श्रीहरि की उस दिव्य वंशी का मैं अनुध्यान करता हूं।।८६।।

कदा वा मदाघूर्णदा कर्णनेत्रा कुलीभूय वृन्दावन श्रीरसेन।
निजांगं मुदा गुण्ठयेत्तद्रजोभिः प्रियाली सुविस्मापिनी भातिराधा।।८७।।

श्रीराधा कभी-कभी श्रीवृन्दावन के रस में आकुलित होकर मद भरे आकर्ण लम्बित नेत्रों को घूर्ण करते करते उसकी रज द्वारा अपने अंगों को आच्छादन करके प्रिय सखियों को भी विस्मित करके सुशोभित होती हैं।।८७।।

सदाराधिकाकृष्ण केलीस्थलीनां विलीनान्तरो दिव्यशोभां विभाव्य।
इहानन्द कन्दे महाश्चर्य वृन्दे निवत्स्याति वृन्दावने विश्ववन्द्यः।।८८।।

श्रीराधाकृष्ण की विलास स्थली की दिव्य शोभा का चिन्तन करते करते उसी में मग्न होकर इस आनन्दकन्द महाश्चर्यपूर्ण श्रीवृन्दावन में विश्ववन्द्य होकर मैं नित्य ही निवास करूंगा।।८८।।

महामोहिनी कोटि दुर्मोह दृष्टिर्महा सिद्धि कोटिषु दुर्गन्ध बुद्धिः।
हृदिव्यक्तराधापदाम्भोजशोभः कदालोभयिष्यामिवृन्दावनेऽन्यान्।।८९।।

कोटि कोटि महामोहिनी स्त्रियों को भी दुर्मोह दृष्टि से देखता हुआ, कोटि महासिद्धियों में भी दुर्गंध बुद्धि करता हुआ और हृदय में श्रीराधा चरणकमलों की शोभा स्मरण करके अन्य सब लोगों को मैं कब श्रीवृन्दावन के प्रति लालसान्वित कर सकूंगा ?।।८९।।

न राधा न राधाप्रियो नापिवृन्दा-वनं नैववृन्दानि तत् प्रेमभाजाम्।
सदा यस्य हृद्गोचरे वाऽथ वाचां प्रचारे कथं तस्य रसश्रीः।।९०।।

श्रीराधा, श्रीश्याम, श्रीवृन्दावन तथा इनके प्रेमी भक्त नित्य जिसके हृदय में गोचर नहीं होते हैं और न ही वाणी द्वारा उनका कथन होता है, उनके लिये

इनके (श्रीराधा–श्रीकृष्ण, एवं श्रीवृन्दावन के) रस–सौन्दर्य का आस्वादन कैसे सम्भव हो सकता है ?।।६०।।

यत्रानन्दच्छवितरु–लता पक्षि सारंग भृंगा
यत्र स्थल्यो विविध मधुर ज्योतिरुद्भूति भाजः
यत्र प्रेमोन्माद रसमय ज्ज्योतिरेकाब्धि मूर्त्ती।
राधाकृष्णवचलविहृती नौमि वृन्दावनन्तत्।।६१।।

जहां तरु, लता, पक्षी, सारंग, (हरिण, मयूर, राजहंस) एवं भ्रमरादि सब ही आनन्दमय मूर्त्तिधारी हैं, जहां की भूमि अनेक मधुर ज्योति को उत्पन्न करने वाली है, जहां प्रेमोन्मद रसमय ज्योति के मुख्य समुद्र–रूप श्रीराधाकृष्ण मूर्त्तिधारी अविचल भाव से विहार करते हैं, उस श्रीवृन्दावन का मैं स्तव गान करता हूं।।६१।।

अनन्तानन्देन्दुद्युति विततयोऽनन्त वैदूर्य्यवर्य्य–
प्रभाभाभिः पूर्णाः शशिमणि हरिद्रत्ना सद्धीरकाभाः।
अनन्ताति स्वच्छच्छवि सुकनकादर्श दीप्यत्तलाभा
द्रुमास्ते ते श्रीवृन्दावनभुवि महाश्चर्य रूपाः स्फुरन्तु।।६२।।

अनन्त आनन्दमय चन्द्र ज्योत्स्ना राशियों से पूर्ण, अनन्त श्रेष्ठ वैदूर्य्य मणियों की प्रभा–आभा से उद्भासित, चन्द्रकांत मरकत एवं उत्कृष्ट हीरों की ज्योति से सम्वलित, अनन्त अति स्वच्छ कांति सुन्दर सुवर्ण शीशे की दीप्तियुक्त छोटे–छोटे वह श्रीवृन्दावन के महाश्चर्यमय वृक्ष समूह मेरे हृदय में स्फुरित हों।।६२।।

एकैकांगीच्छलित मधुरश्याम गौरच्छटौघै
वृन्दारण्यं सुखचितमथ प्रेम माध्वीमदान्धम्।
कुर्वन्ताद्भुत रतिकला वारिधी कृष्णराधे
शुद्ध प्रेमोज्ज्वल रसतनू नित्यन्तश्चकास्ताम्।।६३।।

प्रत्येक अंग से उच्छलित मधुर श्याम गौर कान्ति राशि से श्रीवृन्दावन को सुन्दर रूप से सजाकर एवं प्रेम–मधु मदान्ध करके अद्भुत रतिकला के सागर श्रीराधाकृष्ण शुद्ध प्रेमोज्ज्वल रसमय तनु धारण कर नित्य ही अन्तःकरण में विराजमान हों।।६३।।

वृन्दारण्य कदम्बच्छायायां राधिका कृष्णौ।
गायन्तावति मधुरं मम सेवां मनसि वाञ्छितां दिशताम्।।६४।।

श्रीवृन्दावन में कदम्ब की छाया के नीचे अति मधुर संगीतकारी श्रीराधाकृष्ण मेरी मनोवांछित सेवा दान करें।।६४।।

श्रीवृन्दावन कनकस्थलीषु शिञ्जानं मञ्जु मञ्जीरम्।
सञ्चरदरुणसरोजच्छवि चरणं तत् स्मरामि राधायाः।।६५।।

श्रीवृन्दावन की कनकस्थली समूह पर मनोज्ञ मंजीर शब्द युक्त सञ्चरण शील रक्त कमल कांति वाले वही श्रीराधा चरणों का ही स्मरण करता हूं।।६५।।

हृन्मम राधा नागरचरणं मरणेऽपि नैव विस्मरतु।
तनुरपि न विपत् कोटिषु जीवन वृन्दावनं क्षणंत्यजतु।।६६।।

मेरे हृदय से मरते समय भी श्रीराधानागर के युगल चरण विस्मृत न हों एवं कोटि विपत्ति आने पर भी मेरा शरीर जीवन–स्वरूप श्रीवृन्दावन को एक क्षण के लिए भी त्याग न करे।।६६।।

दृष्टादृष्टान् विषयान् विस्मर हृन्न स्मर स्वभामपि ब्रह्म।
न विमुह्य पर विभूत्या वृन्दारण्येऽद्भुत रसं मृगय।।६७।।

दृष्ट एवं अदृष्ट समस्त विषय भूल जाएं, हे हृदय ! स्वप्रकाश ब्रह्म का विषय भी स्मरण न कर, परम वैभव में भी विमुग्ध न होकर श्रीवृन्दावन में अद्भुत रस का अनुसंधान कर।।६७।।

वृन्दावनभुवि दोषाः कथमपि दोषा नवेह सा विद्या।
दुःखक्षयादि दृष्टि र्भ्रान्तिरपीयं महाभ्रान्तिः।।६८।।

श्रीवृन्दावन भूमि के दोषों में किसी प्रकार का दोष है कि नहीं–इस प्रकार अनुसंधान करना ही "अविद्या" है। दुःख तथा क्षयादि के प्रति दृष्टि देना तो भ्रान्ति है, परन्तु श्रीवृन्दावन से अन्यत्र गमन करना ही महाभ्रान्ति है।।६८।।

नन्दयति हृदय कुमुदं मन्दयति महातमः स्तोमम्।
उच्छलयतिरस सिंधुं वृन्दावन कीर्त्तिचन्द्रिका स्फुरति।।६९।।

श्रीवृन्दावन की कीर्त्ति–ज्योत्स्ना हृदय–कुमुद को आनन्द दान करने वाली एवं महाअंधकार राशि को नाश करने वाली एवं रस–समुद्र उच्छलन करने वाली स्फुरित हो रही है।।६९।।

राधानन्तापराधात् पततां वाधाम्बुधावनुद्धारः।
वृन्दावनमपि मन्दायत इह करुणार्द्रदृक् प्रसारे।।१००।।

श्रीराधा के प्रति अनन्त अपराधों के कारण बाधाओं के समुद्र में पतित व्यक्ति का उद्धार नहीं होता। श्रीवृन्दावन भी उस व्यक्ति के प्रति करुणाभरी दृष्टि नहीं करता है।।१००।।

अहो व्यामोहोऽयं क इव दुरपोहोऽपि महतां
यदेतत् सर्वोच्चैर्ज्वलदपि च वृन्दावन वने।
परं ज्योतिः साक्षादपि मदनगोपाल वपुषा
रसानां सारौघं करिदपि निरीक्ष्यान्यरुचयः।।१०१।।

अहो ! बड़े लोगों (विद्वानों) को यह कैसा कठिन मोह (अज्ञान) है कि इस श्रीवृन्दावन में जो परम ज्योति (ब्रह्म) मदनगोपाल विग्रह से साक्षात् भाव से रस–सार विकीरण करता हुआ सर्वोच्च भाव से प्रकाशित हो रहा है, उसे देखकर भी वे अन्य विषयों को आग्रह पूर्वक स्थापना करते फिरते हैं।।१०१।।

अहो वृन्दारण्योज्ज्वल मदनगोपाल विलस–
न्मुखेन्दोः सौन्दर्यां हरति प्रतिसारं धृतिमताम्।
तदेतस्यैवैकांतिक मधुरदास्येन पदयोः
शरीरं न्यस्येदं विरतकृति नेष्ये जनु रिदं।।१०२।।

अहो ! श्रीवृन्दावन के श्रीमदनगोपाल के मुखचंद्र के सौंदर्य ने समस्त धैर्यशीलों की प्रत्येक सार वस्तु को हरण कर लिया है, तो इसके ही युगल पदों के एकांतिक दास्यभाव में इस शरीर को लगाकर अन्य कर्मत्याग–पूर्वक इस जन्म को बिताऊंगा।।१०२।।

संवीत सत् कनक पीतपटं निवीत–
मालो लसत् कनक चम्पकचारु दाम्ना।
श्रीराधायाः कनक चारुरुचा मुकुन्दं
वृन्दावने कनक भूषण वेणुमीक्षे।।१०३।।

जो सुन्दर पीत पट को धारण कर रहे हैं एवं स्वर्ण चम्पक की सुन्दर माला सहित दुपट्टा धारण कर रहे हैं, जो श्रीराधा की स्वर्णवत् चारु कांति

से समाच्छादित हो रहे हैं स्वर्ण भूषणों से सुसज्जित मुरलीधारी श्रीमुकुन्द के श्रीवृन्दावंन में दर्शन करने की मैं इच्छा करता हूं।।१०३।।

वृन्दावने मदनमोहन वक्त्रचन्द्र
भामृताय मम दृग बहुजात लोभा।
राधा विलोचन विलोल चकोर चारु
चञ्चूत्पुटै श्चुलुकिताऽथ कुतोऽपि नैति।।१०४।।

श्रीवृन्दावन में श्रीमदनमोहन के मुखचन्द्र के शोभामृत को पान करने के लिए हमारी दृष्टिचकोरी बहुत लोभित हो रही है, किंतु श्रीराधा के नेत्र रूप चंचल चकोर की सुन्दर चोंच से तो वह विशेष रूप से पान हो रहा है। अतएव और किसी को प्राप्त नहीं होता।।१०४।।

श्रीप्रबोधानन्द सरस्वती–विरचित श्रीवृन्दावन–महिमामृतम् का चतुर्दश शतक समाप्त हुआ।।१४।।

पञ्चदश–शतकम्

श्रीवृन्दावनकुञ्जपुष्प–शयने वृन्दावनाधीश्वरी
संगा भंगुर कामरंग मधुरो वृन्दावनैकोदयः।
वृन्दारण्य विचित्र पुष्प विलसन्मालादिवेशोज्ज्वलः
श्रीवृन्दावननागरो दिशतु मे वृन्दावने सद्रतिम्।।१।।

श्रीवृन्दावन के कुंजों में पुष्प–शय्या पर श्रीवृन्दावनाधीश्वरी के साथ निरन्तर जो कामरंग का मधुर विलास कर रहे हैं, श्रीवृन्दावन में ही एकमात्र प्रकाशित हो रहे हैं, श्रीवृन्दारण्य के पुष्पों से रचित मालाओं के वेश द्वारा सुसज्जित हैं, वे श्रीवृन्दावननागर मुझे श्रीवृन्दावन के प्रति विशुद्धा प्रीति प्रदान करें।।१।।

वृन्दारण्ये स्वकररचिताश्चर्य सत्पुष्पवाट्यां
नाना पुष्पाद्भुत रचित सन्मन्डपे सत्पथेन।
स्वास्तीर्णाम्भोरुह मृदु दलेनाभिसार्य्याशु राधां
क्रीड़न् कृष्णोऽवतु स भवतो जुष्टवर्त्मोपहारम्।।२।।

श्रीवृन्दारण्य में अपने हाथों से रचित आश्चर्यमय सुन्दर पुष्पवाटिका में नाना प्रकार के पुष्पों से अद्भुत भाव से बनाये हुए सुन्दर मण्डप में कोमल कमलदलों से अति सुन्दर भावों से आच्छादित करके स्वयं जो सुन्दर पथ निर्माण किया है, उस पथ पर श्रीराधा को शीघ्र ही अभिसार कराकर क्रीड़ा परायण जो श्रीकृष्ण हैं वह आपकी रक्षा करें।।२।।

निमर्य्यादाः स्वदमभितः सेवमाना विभूतीः
पश्यद् ब्रह्माभिधमपि पदं नापि नाम्नाय वर्त्म।
वृन्दाटव्यामति रति रसैकाब्धिमग्नं श्रितानां
गौरश्यामं तदुभयमहः कोऽपि पन्था दुरूहः।।३।।

अपने चरणकमलों में विधिपूर्वक सेवा परायण होकर असीम वैभव प्राप्त होने पर भी—उसके प्रति दृष्टिपात भी न करते हुये, ब्रह्म–पद तथा श्रोत मार्ग के प्रति भी न देखते हुये, इस श्रीवृन्दावन में अतिशय रतिरस में ही मग्नचित्त

जो गौरश्याम युगल किशोर हैं, उनके आश्रित जनों का कोई अनिर्वचनीय अति दुर्बोध पन्थ है।।३।।

....अत्यानन्दाद्विवश विवसन स्रग् विभूषादि सेवां।
नारी वृन्दैरवसर कृतां न स्मरन्तौ स्मरामि।।
....।
....।।४।।

माने गाढ़तरेऽपि कर्कश सखीशिक्षाशतैः प्रेयसा
शश्वत् प्रेषितमानदास्पदजनात्यन्तार्थनेनादृते।
भूयः प्रेष्ठ गिरा तदीयवसतौ श्रीवृन्दाटवी कुंजके
सम्यक् श्लाघित एकया स्वयमहोराधां द्रवन्तीं भज।।५।।

सखियों की सैकड़ों कर्कश शिक्षाओं से चाहे मन गाढ़तर हो गया है, किंतु प्रियतम की ओर से बार बार भेजी हुई किसी माननीय सखी द्वारा अत्यन्त प्रार्थना से आदर देने पर एवं प्रियतम के वचनों से सिखाई हुई किसी एक सखी द्वारा उनकी बस्ती श्रीवृन्दावन के कुञ्जों की प्रशंसा सुनते ही अपने आप अति शीघ्र गमन करने वाली श्रीराधा हैं—उनका भजन करो।।५।।

अस्त्राणा मधिदेवता रतिपते रीशार्द्दनेऽपीशितुः
स्वाद्याना मधिदेवताऽति परम प्रोद्दाम भावश्रियाम्।
केलीनामधिदेवता रसभृतां सा काऽपि राधाभिधा
प्राणानामधिदेवता व्रजपतेर्जागर्त्ति वृन्दावने।।६।।

जगदीश्वर का मर्दन करने में भी समर्थ जो कामदेव उसके अस्त्रों का अधिदेवता, अति परम प्रोद्दाम अथच आस्वादन करने योग्य भाव—सौंदर्य का भी अधिदेवता, रसपूर्ण विलास समूह का भी अधिदेवता—वह अनिर्वचनीय "राधा" नामक ब्रजपति के प्राण समूह का भी अधिदेवता—इस श्रीवृन्दावन में जाग्रत है।।६।।

भ्रूभंगया कोटि कोटिः सृजति रतिपतेर्वाग्विलासैः सुधानां
कोटिराविष्करोति स्मितवदन रुचा चंद्रकोटीर्व्यणक्ति।

पंकैकांगच्छटाभिः प्रणय रस महाम्भोधि कोटीः प्रसूते
सा वृन्दारण्य एवं प्रिय सह विहृतिः स्वामिनी राधिका मे।।७।।

श्रीवृन्दावन में प्रियतम के साज विलास करने वाली मेरी स्वामिनी राधिका प्रति भ्रूभंगी से कोटि कोटि कामदेवों की सृष्टि करती है, वाक्य–विन्यास के चातुर्य्य में कोटि कोटि अमृत का आविष्कार करती हैं, मृदु मधुर मुस्कान–युक्त वदनकांति से कोटि कोटि चन्द्रों को प्रकाशित करती हैं, एवं प्रत्येक अंग की लावण्य–छटा कोटि कोटि प्रणय रस के महासिंधुओं को व्यक्त करती हैं।।७।।

श्यामानन्द रसैक सागर ! हरे ! वृन्दाटवी नागर !
श्रीराधामुखपद्म भृंग ! परमा भृंगेरनंगोत्सव !।
वंशीप्राणसखी ! सदा मुखरित श्रीराधिका सद्गुण
प्रेमोद्दाम विलास मोहन ! मनाक् प्रोन्मील मन्मानसे।।८।।

हे श्याम ! हे आनन्द–रसैकसागर ! हे हरि ! हे वृन्दावननागर ! हे श्रीराधिका–मुखकमल– भ्रमर ! हे परम अभंग अनंगोत्सवकारी ! हे वंशी प्राणसखी ! हे नित्य राधा–सद्गुणावलि गायक ! हे प्रेमोद्दाम ! हे विलास मोहन ! मेरे हृदय में कुछ क्षणों के लिए उदित होवो।।८।।

चूढ़ां पुष्पै र्विचित्रैर्मणिभुवि विरचय्यात्र नव्यं शिखण्डं
न्यस्य स्रग्भिर्वतसादिभि रपि च लसन् मेघ आयाति कृष्णे।
दूरा देवालि शिक्षा क्वचन विचलिता क्वापि मौनादि दीक्षा
धावन्त्याश्लिष्य राधा हृदि मम रुदती भाति वृन्दावनेन्दुम्।।९।।

इस मणि भूमि पर विचित्र पुष्पों का चूड़ा रचकर उसमें नवीन मोर पुच्छ लगाये हुए, मालाओं एवं शिरोभूषणों से सुसज्जित मेघ वर्ण श्रीकृष्ण के आने पर सखियों से शिक्षित श्रीराधिका कभी तो विचलित हो जाती हैं, और कभी मौन में दीक्षित हो जाती हैं, और कभी दौड़कर श्रीवृन्दावनचन्द्र को आलिंगनकर रोदन करने लगती हैं। इस प्रकार श्रीराधा मेरे हृदय में प्रतिभात हों।।९।।

चन्द्रवल्याः कुंजवाटी प्रसूनैः।
क्लृप्ताकल्पेऽप्यागते प्राणनाथे।।
नांगामर्द्दै र्नंगुली नेत्रभंगै–।
श्चाल्यालीनां पातुराधाऽतिमुग्धा।।१०।।

चन्द्रावली की कुंजवाटिका के पुष्पों से रचे हुए भूषणों से शोभित होकर भी प्राणनाथ के आने पर सखीगणों के अंग मोटन, अंगुली–नेत्रादि के इशारों के मिलने पर भी अविचल अति मुग्धा जो श्रीराधा हैं, वह हमारा पालन करें।।१०।।

वृन्दारण्यं तव तदखिलं त्वत्पदस्यानुकमयं
चन्द्रावल्याः सकृदपि गृहं यामि चेत् स्यात्तवाज्ञा।
इत्थं कृष्णं वदति रुदतीं संपरिष्वज्य गाढं
राधा मत्याकुलगिरा नहि नहीत्युक्तिधारां स्मरामि।।११।।

"यह श्रीवृन्दावन तुम्हारा ही है एवं यहां की समस्त वस्तुयें तुम्हारे चरणकमलों की दयापात्र हैं, यदि तुम्हारी आज्ञा हो तो चन्द्रावली के घर में भी जा सकता हूं" इस प्रकार श्रीकृष्ण के कहने पर रोते रोते श्रीकृष्ण को गाढ़ आलिंगन पूर्वक जो अतिशय व्याकुल होकर 'ना–ना' ऐसा कह रही हैं। उस श्रीराधा का मैं स्मरण करता हूं।।११।।

द्वार प्राप्ते सकल सुसखीवृन्द आभातिभानौ
विष्वक कोलाहलिनि पतताां वृन्द इन्दौ सुमन्दे।
वृन्दारण्य व्रततिभवने राधिका संचुकोच
ह्रीणां किञ्चिन्न हरि रहहाश्लेषणे स्पन्दिताऽपि।।१२।।

सुसखी वृन्द द्वार पर उपस्थित हैं, सूर्य्य उदित हो चुका है, पक्षि इधर उधर कोलाहल कर रहे हैं, चन्द्र अति क्षीणप्रभ हो गया है, तब श्रीवृन्दावन के लतागृह में प्राणेश्वर के आलिंगन से स्पन्दित होकर भी लज्जायुक्त श्रीराधा संकुचित हो रही हैं, अहह ! हरि किंतु कुछ भी नहीं समझते हैं।।१२।।

श्रीवृन्दावन कुंज भूषण सदा वृन्दावनाविष्टधीः
श्रीवृन्दावन नागरोन्मद महा प्रेमान्ध राधांकग।
श्रीवृन्दावन मोहन स्मर सदा वृन्दाटवीजीवन
श्रीवृन्दावनचन्द्र खेल मम हृद्व्यञ्जन्निकुञ्जेऽनिशम्।।१३।।

हे श्रीवृन्दावन कुञ्ज भूषण ! हे नित्य श्रीवृन्दावनाविष्ट चित्त ! हे श्रीवृन्दावन नागर ! हे उन्मद प्रेमान्ध ! हे श्रीराधा क्रोड़ग ! श्रीवृन्दावन

मोहन–कामदेव ! हे नित्यवृन्दावन जीवन ! हे वृन्दावन चन्द्र ! मेरे हृदय की गूढ़ निकुंज में दिनरात क्रीड़ा कीजिए।।१३।।

क्वनत् कनक किंकनीगण झनज्झनत्कारिणी
रणद् वलय नूपुरा विविध हस्तकै मोहिनी।
विचित्र पटभूषणा कृतविचित्र लास्याद्भुता
विचित्रयति राधिका सहरि सालि वृन्दावनम्।।१४।।

जिनकी सुवर्ण किंकिणी झन् झन् शब्द कर रही है एवं उसके साथ वलय–नूपुर की ध्वनि भी सुनाई देती है, जो विविध हस्त भंगी करके मन को मोहित कर रही हैं जो अनेक रेशमी वस्त्र धारण कर रही हैं, वह विचित्र लास्य (नृत्य) कारिणी अद्भुत श्रीराधा–श्रीहरि एवं सखीगणों के सहित श्रीवृन्दावन को विचित्रित कर रही हैं।।१४।।

विचित्र रत्न चित्रकां विचित्र हार मुद्रिकां
विचित्र पुष्पगुम्फितोच्चलाम्बुजाग्रवेणिकाम्।
स्मरामि रासमण्डले विचित्र वेश राधिकां
विचित्र पिच्छ मौलिना विचित्र नृत्य मोहनीम्।।१५।।

जो विचित्र रत्नों से सुसज्जित एवं विचित्र हार–मुद्रादिकों से भूषिता हैं, विचित्र पुष्पों से ग्रथित एवं जिसके आगे कमल गुंथा हुआ है, ऐसी वेणी जिसकी आन्दोलित हो रही है वह विचित्र नृत्य करने वाली मोहिनी विचित्र वेशधारिणी श्रीराधिका का विचित्र मोरपुच्छधारी सहित रासमण्डल में मैं स्मरण करता हूं।।१५।।

कालिन्दशैल नन्दिनीतटे नटेन्द्र मण्डली
दुरूह सद्रसोल्लसत् सुताण्डवैक पण्डितम्।
सरोमहर्ष मण्डितं स्वयं रसान्धराधया
सुरूप खण्डित स्मरं स्वयं स्मरामि माधवम्।।१६।।

कालिन्दी तट पर नटेन्द्र मण्डली से भी दुरूह अत्यन्त उत्तम रसोल्लासी, उत्कृष्ट ताण्डव के पण्डित, उत्तम रोमांच युक्त एवं अपने रूप माधुर्य से कामदेव के भी गर्व को नाश करने वाले स्वयं माधव को स्वयं रसान्ध श्रीराधा के सहित स्मरण करता हूं।।१६।।

अनन्त योजनोच्छ्रित प्रसारि शाखनीपद्रुमस्य स्मर।
शीतले तले विचित्र राधया विचित्र वेशं माधवम्।।१७।।

अनन्त योजन व्यापी बहुत ऊंचे एवं विस्तृत शाखायुक्त कदम्ब वृक्ष की शीतल छाया में विचित्र श्रीराधा सहित छाया वेषधारी श्रीमाधव को स्मरण कर।।१७।।

स्वर्णाब्जोद्भासि कृष्णातट ललित नव स्वर्णवल्ली गृहाग्रे
संतप्त स्वर्णवर्णाम्बर मुरुमणिसंनद्ध सुस्वर्ण भूषाम्।
मालां सुस्वर्णपुष्पं दधदतिरुचिरां स्वर्णसच्चम्पकाभां
श्रीराधां वीक्ष्य वीक्ष्य क्वणयन् मुदितो माधवः स्वर्णवंशीम्।।१८।।

स्वर्ण पद्मों से उद्भासित कालिन्दी के तट पर उत्कृष्ट नूतन स्वर्णलता गृह के सन्मुख, गलित स्वर्ण वर्ण वस्त्रों को धारण करके एवं अनेक मणियों युक्त उत्तम स्वर्ण भूषा एवं स्वर्णपुष्प निर्मित माला धारण किए हुए श्रीमाधव अति मनोहर स्वर्ण चम्पक प्रभा श्रीराधा को देख देखकर स्वर्ण वंशी बजाकर आनन्दित हो रहे हैं।।१८।।

राका हिमकर कोटिच्छवि वृन्दारण्य शाखिवृन्दाय।
मम मन आनन्दाम्बुधि कन्दाय प्रीत कृष्णचन्द्राय।।१९।।

श्रीवृन्दावन के वृक्ष समूह पूर्णिमा के कोटि कोटि चन्द्रमाओं की कांतियुक्त हैं। एवं आनन्द सागर के मूल स्वरूप हैं तथा श्रीकृष्ण चन्द्र की भी निरतिशय प्रीति प्रदान करने वाले हैं, अतः मेरा मन इन्हीं में ही लगा रहे।।१९।।

गौरश्याम किशोरौ कांचन कुतुकान्मिथो ममश्चोरौ।
प्रेमगुणैः परिबद्धौः वृन्दारण्ये स्मर स्मर क्षुब्धौ।।२०।।

गौरश्यामात्मक किसी जोड़ी ने एक दूसरे का कौतुकवश मन चोरी कर लिया है। वे श्रीवृन्दावन में प्रेम रज्जु के बन्धन में परिबद्ध होकर स्मर–क्षुब्ध हो रहे हैं उनका स्मरण करो।।२०।।

हा काम क्रोध लोभाद्यति वल वहल व्याल संकीर्णमेतत्
संसारारण्य मेतद्दश दिशि विसरद्दुःख दावानलौघम्।
किं कुर्म्मः कुत्र यामो हरि हरि शरणं स्वस्य पश्यामि नान्यत्
श्रीवृन्दारण्य धन्य स्तुत निजकृपया रक्ष मां त्वामुपेतम्।।२१।।

अहो ! यह संसारारण्य काम–क्रोध लोभादि अनेक अति बलवान् हिंसक (पशुओं) से पूर्ण है। इसकी दशों दिशाओं में विस्तृत दुःख की दावानल भड़क रही है, मैं क्या कर सकता हूं ? कहां जाऊं ? हरि ! हरि !! मुझे और भी कोई शरण नहीं दीखती, हे श्रीवृन्दावन ! आप धन्य हैं एवं प्रशंसनीय हैं। अपनी कृपा से मुझ शरणागत की रक्षा कीजिए।।२१।।

कर्णालम्बिलसत् कद्म्बमुकुलः कादम्बिनी श्यामलो
दिव्यः कोऽपि किशोर उज्ज्वलतड़ित् कोटिच्छटां कामपि।
दिव्यामेककिशोरिकां रसमयीमंके सुपंकेरुहो
न्मीलत्पत्र विलोचनां दधदहो वृन्दावने नन्दति।।२२।।

अहो ! कर्णयुगल में अति सुन्दर–कदम्ब–मुकुल–धारण कर मेघ–श्यामल कोई एक किशोर कोटि उज्ज्वल विद्युत–दीप्ति विशिष्ट सुन्दर–पद्मपलाश–नैना किसी एक रसमयी दिव्यकिशोरी को क्रोड़ में लेकर श्रीवृन्दावन में आनन्द ले रहा है।।२२।।

एकं यत्र चकास्ति धाम विलसत् कादम्बिनी श्यामलं
विद्युत् कोटि विड़म्बकद्युति परं नित्यावियुक्तं द्वयम्।
अत्यन्तं रसदुद्दिन निरवधि व्यालुपा देवाध्वनः
सर्वान् भक्तिनदीप्लवेन परितस्तां नौमि वृन्दाटवीम्।।२३।।

जहां मेघ–श्यामल एक विलासी मूर्त्ति एवं कोटि विद्युतों को भी तिरस्कृत करने वाली और एक मूर्त्ति विराजमान है, किंतु ये दोनों ही नित्य मिलित हैं, जहां समस्त देवता का पथ (वैदिक मार्ग) लुप्त करके निरन्तर रस (प्रेम) की वर्षा होती है। जहां भक्ति नदी चारों ओर से तरणी (नौकाओं) से पूर्ण है, उस श्रीवृन्दावन को मैं नमस्कार करता हूं।।२३।।

अपरतः पुरुषार्थचतुष्टय भगवतो भजनञ्च भवेद्वहु।
ध्रुवमिदन्तु विना वृषभानुजावनमहो न महोज्ज्वलं भक्तयः।।२४।।

धर्म–अर्थ–काम–मोक्ष–ये चतुष्टय पुरुषार्थ अन्य अन्य स्थानों पर प्राप्त किये जा सकते हैं एवं भगवान् का बहुविध भजन हो सकता है, किंतु यह निश्चित है कि इस श्रीराधा कानन (श्रीवृन्दावन) को छोड़कर और किसी

स्थान पर भी महा–उज्ज्वल रस अर्थात् शृंगाररस–गर्भित भक्ति नहीं प्राप्त हो सकती।।२४।।

अहह जन्म सहस्र समेधितै र्बहु तपोजप योग समाधिभिः।
असुलभ लभतेऽप्यधि राधिकावनमये नमयेदपि यः शिर।।२५।।

अहह ! हजारों जन्म अनेक तप, जप, योग एवं समाधि आदि साधनों से जिसकी प्राप्ति नहीं होती, वही प्रेम पुरुषार्थ इस श्रीराधिकावन को केवल एक बार शिर झुकाकर प्रणाम करने से ही प्राप्त हो जाता है।।२५।।

कनक नीलमनीयरुङ् नवकिशोर सुनागरयोर्द्वयम्।
उपरिदीप्तवने चिदचिद्वनाद्र समये समये भज।।२६।।

स्वर्ण–नीलकांति वर्णविशिष्ट नवकिशोर नागर युगल का चिदचिदात्मक वन (गोलोक) में एवं उसके ऊपर उज्ज्वल रसमय श्रीवृन्दावन में यथा समय भजन कर।।२६।।

अति सुखाकरमद्भुत माधुरीभर धुरीण मुरीकुरुते यदि।
रस भराधिक वृन्दाकाननं सुरसमाऽपि समापि च तत् कृतिः।।२७।।

अति सुखकर, अद्भुत श्रेष्ठ माधुर्य युक्त रसपूर्ण श्रीवृन्दाकानन यदि किसी को अंगीकार कर ले, तो उसका कार्य देवसाध्य (अति कठिन) होते हुए भी वह पूरा हुआ जानना चाहिए।।२७।।

रहस्यानामेतत् परमसुरहस्यं हरि रसोत्
सवानामाश्चर्योन्मद रस विलासोत्सव मिदम्।
स्व रोचि नित्यानामति परमनित्योज्ज्वलमिदं
यदेतच्छ्रीवृन्दावनमिह दृशौ नन्दयति नः।।२८।।

रहस्यों का भी परम रहस्य, हरि रसोत्सवों का भी आश्चर्य उन्मद रस विशिष्ट विलासोत्सव प्रदाता, एवं स्वयं प्रकाश नित्य वस्तुओं से भी अधिक अति परम नित्य उज्ज्वल यह श्रीवृन्दावन हमारे नेत्रों को आनन्द प्रदान कर रहा है।।२८।।

अये दृष्टिं दूरादति विसृज दुष्टां गुणमयी
तथा ब्रह्मज्योतिर्मय वरदृश नाऽपि विमृश।

न दृष्टिर्निष्ठां ते भजतु भगवज्ज्योतिरुदितां
परं वृन्दारण्योज्ज्वल रस दृगेवास्तु भवतः।।२६।।

अहो ! दूर से ही दुष्ट गुणमयी दृष्टि को त्यागकर एवं ब्रह्म ज्योति पूर्ण श्रेष्ठ दर्शन करने की भी चिन्ता नहीं करना, एवं भगवत्–ज्योति उदित हो रही है–ऐसी निष्ठायुक्त भी नहीं होना किन्तु तुम्हारे नेत्र तो इस श्रीवृन्दावन में उज्ज्वल रस के दर्शनों से पूर्ण रहें।।२६।।

श्रीवृन्दारण्यवीथ्यामपि सखि कलयाश्चर्यं पुन्नागशोभां
लोभादत्रैव नेत्रे मम रस विवशे खेलतोऽन्यत्र नैतः।
एतन्नित्यं मम स्थापय कर निकटेऽनेक सम्यग् गुणं च
प्रेम्ना संग्रथ्य कण्ठादिषु निविदधती स्वेन संमोहिनी स्याम्।।३०।।

हे सखि ! श्रीवृन्दावन के पथ पर आश्चर्यमय पुन्नग (पुष्प–श्रेष्ठ पुरुष) की शोभा निरीक्षण कर, मेरे नेत्र लोभवश रस विवश होकर यहां ही विचरते हैं, अन्यत्र नहीं जाते हैं, इस (पुरुष–श्रेष्ठ) को सदा मेरे हाथ के पास रख एवं अनेक उत्तम गुण (रज्जु) भी रख, जिससे प्रेमपूर्वक माला गूंथ कर स्वयं कंठादि में पहन कर आनन्द प्राप्त कर सकूं।।३०।।

राधे तारल्यमेवं न कुरु हृदि समाधेहि गंभीरभावं
लजां कांचित् सखीभ्यः कुरुपुरुषवर स्त्वत् पादाब्जं दधातु।
क्रूरे पुन्नाग नाम द्रुम कुसुममियं वक्ति तत्रान्यथा ते
शंकास्ता नेति राधा गिरमनु तदिमामुक्ति माल्यां स्मरामि।।३१।।

एक सखी ने कहा–"हे राधे ! इस प्रकार चांचल्य मत दिखाओ, हृदय में गम्भीर भाव धारण करो। सखियों के सामने तो कुछ लज्जा करो, पुरुषवर आपके पादपद्म धारण करते हैं।।" अन्य सखी ने कहा–अरे कुटिल हृदय ! 'पुन्नाग' नामक वृक्ष की कथा ही श्रीराधा ने कही है। अन्यथा होने पर भी तुम्हें कोई शंका नहीं है।" इस प्रकार की परस्पर वार्त्ता रूप माला को मैं स्मरण करता हूं।।३१।।

श्रीवृन्दावन वीथिकासु कुसुमेषूच्चैर्गृहावेशता
राधे त्वं तरलास्यतीव यदहो शश्वत् सखीनां पुरः।

संगृह्य प्रियकं मनोज्ञ तिलकं सद्बन्धुजीवं रह–
स्युत्संगे स्वयमुन्मुदा च परतो भृंगान्विता भ्राम्यसि।।३२।।

हे राधे! श्रीवृन्दावन के पथों पर सुन्दर कुसुमों से सुशोभित मनोहर गृह में आविष्ट होकर तुम अतिशय चंचल हो रही हो, हाय! इसलिए ही तुम सखियों के सामने प्रियक (कुसुम, प्रियतम) मनमोहन तिलक (तिल पुष्प मनोज्ञ तिलकधारी) एवं उत्कृष्ट बन्धु जीव (बान्धुलीपुष्प, प्राणबन्धु) संग्रह करके निर्जन स्थान पर गोद में लेकर स्वयं उन्मत्ता हो रही हो–और एक बात यह भी है कि भृंग (भ्रमर–नायक) का साथ पाकर भ्रमण कर रही हो।।३२।।

मिथ्यावादिनी! किं मुधा प्रलपसि? प्रत्यक्षमेतत् कथं
सख्यः पश्यतकिं तदाह यदियं किंवाऽहह सा पृच्छ्यताम्।
एवं सत्यमिदं कथं प्रकुपितास्येवं सखीनां गिरा
नासाग्रार्पित तर्ज्जनीकम हसद्राधा शिरः कम्पिनी।।३३।।

"मिथ्यावादिनी! क्यों मिथ्या प्रलाप करती हो? यह कैसे प्रत्यक्ष (साबित) करती हो? सखियो! तुम ही देखो न, यह जो कहती है क्या यह सत्य है?" (सखीगण वचन)–"हां यह सत्य है, तुम कोप क्यों करती हो?" सखियों के यह वाक्य सुनकर श्रीराधा सिर हिलाने लगी एवं नासाग्र में तर्जनी रखकर हंसने लगीं–(मैं इस लीला का स्मरण करता हूं)।।३३।।

उपर्य्युपरि संभवन्नव नव विचित्र वल्ली द्रुमा
मुपर्य्युपरि संप्रफुल्लित विचित्र पुष्पोत्कराम्।
उपर्य्युपरि राधिका हरि विचित्र कामोत्सवा
मुपर्योपरि सच्चमत्कृति मुपास्व वृन्दाटवीम्।।३४।।

ऊपर–ऊपर नव विचित्र लता–वृक्षादि से युक्त, ऊपर ऊपर संप्रस्फुटित विचित्र पुष्पों से मण्डित, ऊपर–ऊपर श्रीराधाश्याम के विचित्रं कामोत्सव से भूषित, ऊपर ऊपर सुन्दर चमत्कारी श्रीवृन्दावन की उपासना कर।।३४।।

रसान्ध हरि राधिकं रसप्रफुल्ल वल्लीद्रुमं
रस प्रसर खेलितोत्कल कलः खगैराकुलम्।
रसोल्लसित वल्लवीगण महारसोद्यत्–स्मरं
स्मरामि रसविह्वलं सरलमेव वृन्दावनम्।।३५।।

जहां श्रीराधा एवं श्रीहरि रसान्ध हो रहे हैं, वृक्षलता रस से प्रफुल्लित हो रहे हैं, जहां रस की अनेक क्रीड़ा में मत्त सुन्दर नाद करने वाले पक्षी समूह विचरते हैं, एवं जो रसोल्लसित गोपीगण के महारास की कामक्रीड़ा का व्यञ्जक है, मैं उसी रस विह्वल वस्तुओं से संयुक्त श्रीवृन्दावन का स्मरण करता हूं।।३५।।

निरन्तर दिगन्तर प्रसृमरैः परागोत्करै
निरंकुश विदूरगै रतिमहाद्भुतै सौरभैः।
महातरुवरोज्ज्वलच्छविभरै र्विचित्रैरपि
स्मराम्यति चमत्कृतां चिदमृत्लौघ वृन्दाटवीम्।।३६।।

जहां निरन्तर इधर–उधर पराग उड़ रही है, निरन्तर बड़ी दूर तक जाने वाली महाद्भुत सौरभ से जो युक्त हैं एवं विचित्र महातरुओं की उज्ज्वल कान्ति से अति चमत्कारी चिद्–अमृत के प्रवाह युक्त श्रीवृन्दावन को मैं नमस्कार करता हूं।।३६।।

महोन्मद रसावशे महसि कृष्णराधाभिधे
द्वये सहज संयुजि प्रणय पूरभाजि स्वतः।
असम्वृत कचाम्बरे गुरुतर स्मराड़म्बरे
स्वकृत्य परिमोहितां स्मर सखीषु वृन्दावने।।३७।।

श्रीराधाकृष्ण–नामक विग्रह–युगल महोन्मद–रस में अवश हो रहे हैं, दोनों ही स्वाभाविक सहज मिलन के प्रणय–प्रवाह में बहे जा रहे हैं, अपने केश व वस्त्रादिकों को भी नहीं संभाल सकते हैं, स्मर की अतीव पीड़ा से दोनों ही जर्जरित हो रहे हैं, ये देखकर श्रीवृन्दावन में सखियों में से एक सखी अपने कार्य से परिमोहित हो रही है–उसका स्मरण कर।।३७।।

गत्वा द्वित्रिपदानि तिष्ठति पदे दम्भांकुरेणु क्षते
इत्युक्त्वाथ भवेद्विवृत्तवदना चामोचयन्त्यञ्चलम्।
शाखायाम विषक्तमप्यभिमुखं चेक्षेत किञ्चिन्मृषा
सग्दर्शेति हरौ सुभावौत्यं........................।।३८।।

पदयुगल द्वय के अंकुर से क्षत होने से दो तीन पद आगे चलने पर रुक जाती हैं, एवं किसी शाखा से वस्त्रांचल न इरझने पर भी बार–बार गर्दन

मोड़कर पीछे देखती हैं—इस प्रकार मिथ्या कहकर किसी को कुछ दिखाने के बहाने से बार—बार श्रीश्याम को देखती हैं, इस प्रकार............. ।।३८।।

....

·····वैदग्धीनां रतिषु विततीरद्भुता भाययन्तौ।
आविभ्रानौ प्रतिपद चमत्कारिणी रूपशोभा
लोभान्नो भावयतु हृदति प्रेम वृन्दावनेशौ।।३९।।

...........रति विलासादि की अद्भुत वैदग्धी चेष्टाओं की परस्पर भावना करने वाले, प्रति पद पर चमत्कारकारी रूप शोभा धारण करने वाले, अति प्रेममय श्रीवृन्दावन के ईश्वर युगलकिशोर को हमारा हृदय लोलुप होकर भावना करे।।३९।।

एक प्राणं तदतिमधुरं द्वन्द्वमेकात्मभाव
मेकाक्रीड़ं निरवधि समुन्मीलदेक स्मरार्ति।
एकानन्द प्रणयसुषमाध्येक सर्वैन्द्रियेहं
वृन्दारण्येऽद्भुत रसमयं गौरनीलं स्मरामि।।४०।।

अतिशय मधुर वह युगल एक प्राण, एकात्मभाव, एक ही क्रीड़ापरायण एवं निरन्तर एक ही कामार्ति प्रकाशशील हैं। वे दोनों एक ही आनन्द के प्रणय सुषमात्मक हैं एवं दोनों की सर्व—इन्द्रियों की चेष्टा एक ही प्रकार की है। श्रीवृन्दावन में इस प्रकार अद्भुत रसमय गौरनीलात्मक युगल का स्मरण करता हूं।।४०।।

....
....।
....श्रीमद्वृन्दावन परिवृढ़ौ प्रेममूर्त्यांजलीभि
र्वृन्दोक्तयैवं स्मरसुहसितस्फारनेत्रौ किशोरौ।।४१।।

तद्भावैर्विहित परमोपासनात् प्रेमवृन्दा
रण्येऽद्याति क्षत तनुदृशौ दिव्यतत्तत् स्वरूपैः।
आविर्भूतौ निजरतिवने द्रष्टुमुत्कण्ठ मानौ
वृन्दाविज्ञापनमनु चलौ नौमि वृन्दावनेशौ।।४२।।

आज उसी उसी भाव में प्रेममयवृन्दावन (श्रीवृन्दादेवी से) परम उपासना विहित होने पर अपने रतिवन में उसी उसी दिव्य स्वरूप से आविर्भूत (नखदन्तादि से) क्षत–तनु एवं क्षतनयन (बहु–बहु चुम्बनादि से गलिताञ्जन) एक दूसरे को देखकर वे उत्कण्ठित हो रहे हैं एवं वृन्दादेवी के कहे अनुसार चलने वाले श्रीवृन्दावनेश्वर युगल की मैं स्तुति करता हूं।।४२।।

नव्योद्भुत ब्रतति निलये नूतन व्यक्त वल्ली
वृक्षोदार प्रसर निवहै र्नव्यदास्यालि क्लृप्ताम्।
भूषां विभ्रत्तदुभय महो दर्शयत्युर्व्वलीलां
वृन्दारण्ये चलदनुसरेद् गौरनीलं ममात्मा।।४३।।

नवीन उपन्न लतागृह में नूतन लता–वृक्षादि से उत्कृष्ट पल्लव–पुष्पादिकों से नवीन दासी द्वारा निर्मित अलंकार धारण कर गौरनीलवर्ण युगल किशोर श्रीवृन्दावन में भ्रमण करते करते यथेष्ट लीला दिखा रहे हैं—मेरी आत्मा इनका अनुसरण करे।।४३।।

नव प्रकटवल्लवीः समुपशिक्ष्य मुख्यालिभि
र्निजं निजमनण्य गाद्भुततमं कला कौशलम्।
विचित्र धृत नामिकं समुपहृत्य तत्सेवया
स्मरामि मुदमापितं द्विवर धाम वृन्दावने।।४४।।

मुख्य सखीगण (यूथेश्वरीगण), नवीन नवीन गोपियों को प्रकट करके उन्हें अपनी अपनी अनन्य अद्भुततम कलाओं की कुशलता की शिक्षा देती हैं, उन्हें विचित्र नामों से अपने पास बुलाकर उस सेवा को ग्रहण करने के लिए अति आनन्द में जो युगलकिशोर मग्न हो रहे हैं, श्रीवृन्दावन में उन्हीं का मैं स्मरण करता हूं।।४४।।

अव्याद्दिव्य विचित्र रत्नखचित प्रद्योति पीताम्बरः
काञ्चीनूपुर हार–कुण्डलवर ग्रीवांगलीयोज्ज्वलः।
दिव्यान्यंगद कंकणानि तिलकं रत्नैर्विचित्रं दधत्
पुष्पस्रगयुत वर्हचूड़ उरुधा प्रोत्सर्पदंगच्छविः।।४५।।

दिव्य विचित्र रत्नखचित प्रोज्ज्वल पीताम्बरधारी, कांची नूपुर, हार, सुन्दर कुण्डल, कण्ठहार आदि से उज्ज्वलित, दिव्य अंगद, कंकण एवं रत्नमय

विचित्र तिलकधारी पुष्पों की मालाओं से मण्डित, मोरपुच्छ, मुकुटधारी जिनके प्रति अंग से अनेक कांति प्रसरण हो रही है—ऐसे श्रीश्यामसुन्दर हमारा पालन करें।।४५।।

कालिन्दी—पुलिने सुरद्रुमतले श्रीभाजि दिव्योपरि
भ्राजच्चित्र वितानके मणिमय भ्राजत्प्रदीपे हरिः।
गोपीभिः कृतगीतवादन भरे प्रोत्सारितान्तः पटः
पुष्पाञ्जल्युपहार आत्त मुरलीरंग प्रविष्टौ रसः।।४६।।

कालिन्दी पुलिन में अति सुन्दर कल्पवृक्ष के तले दिव्य विचित्र चन्द्रातप शोभित हो रहा है, मणिमय प्रदीपों की दीप्ति का विकाश हो रहा है, एवं गोपीगण के संगीत वाद्यादि के साथ अतिशय उत्साहित होकर अन्तर पट से पुष्पांजलि उपहार देने पर मुरली ग्रहण किये हुए रस (मूर्तिमान होकर मानो रस राज रूप से) रंग मंच पर उपस्थित हो रहा है।।४६।।

वृन्दयाऽभि पालिताऽति दिव्य केलिकानन
स्वर्ण रत्न दिव्यगन्ध मेदुरावकीतले।
दिव्य सत् प्रसूनरत्न शाखिमण्डलावृते
छाययाऽतिशोभने मुनीन्द्रवृन्द लोभने।।४७।।

श्रीवृन्दादेवी द्वारा सम्यक् प्रकार रक्षित, दिव्य केलि वन में स्वर्णरत्न खचित, दिव्य गन्ध युक्त भूमितल पर दिव्य सुकुसुम युत वृक्षमण्डलावृत छाया के नीचे अति मनोहर एवं मुनीन्द्र वृन्द के मन को भी लुभाने वाली—।।४७।।
(कुलक प्रारम्भ)

मन्द मन्द सत् कलिन्दनन्दिनीय सुन्दरोत्—
फुल्लितारविन्द वृन्द गन्धवन्धु वायुना।
वार्षभानवी नवीन—केलिरंग—संगत
स्वेदविन्दु—कन्द—लेश—वन्द्य पुण्यराशिना।।४८।।

कालिन्दी तट पर प्रस्फुटित सुन्दर कमलों की गन्ध वहन करने वाली मृदु मन्द वायु के द्वारा एवं श्रीराधा के नूतन केलि विलास संगवशतः उत्पन्न हुई स्वेदबिन्दु के बीज लेश की प्राप्ति के लिये जिसकी पुण्य राशि वन्दनीय है—(उस वायु द्वारा सेवित)।।४८।।

सर्ववेदमौलिवर्गं दुर्गमाति वैभवे
नाम मात्र सत्पुमर्थराशिराशिवर्षणे।
सर्वतीर्थ दुर्विभाव्य दिव्य पुष्प पल्लवे–
र्दिव्य जालकेन दिव्य गुच्छकैश्च भूषिते।।४६।।

सर्व वेद शिरोमणि वृन्दों से भी दुर्बोध्य विभूतियों से युक्त, एकमात्र नामोच्चारण करने से समस्त पुरुषार्थ समूहों का वर्षणकारी, सब तीर्थों की भावना से अतीत दिव्य पुष्प–पल्लव, दिव्य कलिका एवं दिव्य गुच्छों से भूषित।।४६।।

दिव्य वल्लीशाखिभिः समुन्मदालि झंकृतै–
र्मत्त दिव्य कीर कोकिलादि दिव्य कूजितै।
दिव्य चित्र सञ्चरन्मृगी स सम्भ्रमेक्षितैः
स्फीत वह्वनर्घ्य रत्न दिव्यभूमिमण्डले।।५०।।

दिव्य लता वृक्षादिकी शोभा से, समुन्मत्त भ्रमरों की झंकार से, मत्त दिव्य शुक–कोकिलादिकों के दिव्य कोलाहल से, एवं दिव्य विचित्र संचरणशील मृगी–समूह के सम्भ्रमयुक्त दृष्टिपात से मनोज्ञ बहुमूल्य अनेक प्रकाण्ड मणि–रत्नों से खचित दिव्य स्थलों से।।५०।।

सत् कवीन्द्र–कोटि–काव्य वर्णनाति दूरगै
र्दिव्य–हेम–निर्मिताऽति दिव्य वैभवैर्नगै।
दिव्य रत्न खानि दिव्य गैरिकादि धातुभि
र्दिव्यकन्दरेऽतिसौभगे च विश्वगार्चितै।।५१।।

उत्तम उत्तम कवीन्द्रों की कोटि कोटि वर्णना से भी अति दूर–दिव्य स्वर्ण निर्मित अति दिव्य सम्पतिशाली पर्वत राजों से शोभित, दिव्य रत्न की खानों से दिव्य गैरिकादि धातुओं से सर्वत्र अति दिव्य पूज्यनीय कन्दराओं से मण्डित।।५१।।

तैलवर्त्तिशून्य दिव्य केलि दीपकौषधै
र्दिव्य सत्सुधातिमिष्ट वारिपूरि पूरितैः।
दिव्य सत्सरोवरैः प्रफुल्लदिव्य पंकजै
र्दिव्य कैरवादि पुष्प नित्य मुग्धषट्पदैः।।५२।।

दिव्य केलि प्रदीपोपयोगी तैल एवं बत्ती रहित औषधियों से युक्त, दिव्य उत्कृष्ट सुधा से भी अति मीठे जल से पूर्ण, दिव्य उत्कृष्ट सरोवरों से सुशोभित–उनमें भी फिर प्रफुल्लित दिव्य कमल विराजते हैं, और दिव्य कैरव आदि पुष्पों पर नित्य ही भ्रमरगण मुग्ध होकर शोभा वृद्धि कर रहे हैं–।।५२।।

दिव्य हंस सारसादि दिव्यनाद शोभितै
र्नित्य शोभितैरतीव शोभिते समन्ततः।
दिव्य हेम–रत्न–वल्लि–कुञ्ज–पुञ्ज मञ्जुले
दिव्य रत्न वेदिकाभिरद्भुताभिरुज्ज्वले।।५३।।

दिव्य हंस सारसादि के दिव्य नाद से शोभित, नित्य शोभामय वस्तुओं से सर्वत्र अति शोभित, दिव्य स्वर्ण रत्नमय लता कुंजों से मनोहर अद्भुत दिव्य रत्न वेदिकाओं से समुज्ज्वल।।५३।।

मन्तु कोटि पात्र जन्तु मात्र मुक्तिदायके
नायकेन गोपसुभ्रुवां सदैव सेविते।
दिव्यभास दिव्यवास कुट्टिमैः सुशोभिते
दिव्य नव्य गोपसुन्दरी विलास मन्दिरे।।५४।।

कोटि अपराधों से युक्त जीवों को भी मुक्ति दायक, गोप–नारीगणों के नायक द्वारा सदा सेवित, दिव्य दीप्तियुक्त दिव्य वास स्थानों से सुशोभित दिव्य नवीना गोपसुन्दरियों के विलास मन्दिरों से–।।५४।।

दिव्य भाव–भेद–भासि दिव्य सल्लतावृते
दिव्य माधुरी धुरीण दिव्य काम कौतुके।
दिव्य सर्व चिद् विलास वैभवाति वैभवे
श्रीवने विहारिणं हरिं स्मरामि नित्यशः।।५५।।

दिव्य भाव भेद में उद्भासित, दिव्य सुन्दर लता वेष्टित दिव्य माधुर्यमय दिव्य काम–कौतुक युक्त, दिव्य चिन्मय विलास पूर्ण, सत्र विभूतियों से पूर्ण ऐसे सुन्दर श्रीवृन्दावन में बिहारी श्रीहरि को नित्य ही स्मरण कर।।५५।। (श्लोक ४७ से ५५ तक कुलक समाप्त हुआ)।

दिव्यलीला यातिवेल मुल्लसन्तमद्भुतं
दिव्य वेश राधया रसान्धयाऽनिशं युतम्।

दिव्यवेदिका चतुष्क मण्डलेऽनु खेलिनं
कन्दुकादि खेलया तयैव सार्द्ध मुद्धतम्।।५६।।

दिव्य लीला द्वारा मर्यादा से विहीन उल्लास परायण, अद्भुत दिव्य वेश रसान्ध श्रीराधा जहां नित्य विराजती हैं, दिव्य वेदिका के चतुष्क (चौंतरे) पर खेल परायण श्रीराधा के ही सहित कन्दुकादि (गेंद) खेलने में उद्धत–(यहां से कुलक आरम्भ है)।।५६।।

तं किशोरचन्द्रमेक दिव्यरूपसौभगं
दिव्यहास्य दिव्यलास्य दिव्यनर्म्मकौशलम्।
दिव्य लोचन त्रिभाग दिव्यभंगि वीक्षकं
दिव्य मण्डनादि भूषितांगभंगि लोभनम्।।५७।।

अति दिव्य रूप–सौभाग्य युक्त, दिव्य हास्य दिव्य लास्य, दिव्य नर्म्म–कुशल दिव्य लोचनों के तीनों भागों से दिव्य भंगी क्रम से देखने वाले एवं दिव्य अलंकारादि से भूषित अंग भंगी से भी अति लोभनीय उस किशोर चन्द्र को मैं स्मरण करता हूं–।।५७।।

भ्रूविलास मुग्ध दिव्य कामराज कार्म्मुकं
दिव्य दृष्टि दिग्धमात्र विद्ध मुग्ध यौवनम्।
उल्लसत् कुरंगभृंग–मीन हीनताकरं
राधिका मुखेन्दु दृष्टिवर्द्धि लोभसागरम्।।५८।।

जिसके भ्रूविलास से दिव्य कामराज भी मुग्ध हो जाते हैं, जो दिव्य दृष्टि रूप विषाक्त वाण के प्रयोग मात्र से ही मुग्धा (सुन्दरियों) के यौवन का बींधने वाला है, जो उल्लसित हरिण को (चकित दृष्टि से), भ्रमर को (काली अलकावलि से) एवं मत्स्य को (अनिमिष दृष्टि से) पराजित करने वाला है एवं जिसका लोकसागर श्रीराधामुखचन्द्र को देखकर वर्द्धित होता है।।५८।।

राधिकाकटाक्ष–वाणविद्ध मर्म विह्वलं
राधिकाधरामृता शनैकतान् मानसम्।
खंजनाति गर्वभंजनाति चारुलोचनं
विभ्रतं सुजातपद्मसद्मकान्ति मोचनम्।।५६।।

श्रीराधिका के कटाक्ष–वाण द्वारा जिसका मर्म बिंधता है, जो विह्वल हो

जाते हैं, श्रीराधिका के अधरामृत पान के लिए जिसका मन एकतान हो जाता है। जिसके चारु लोचन खंजन पक्षि के गर्व को नाश करने वाले हैं, सुजात पद्म ही जिसकी निवास स्थली है—ऐसी जो लक्ष्मी है, उसके भी कान्ति गर्व का जो नाश करने वाले हैं।।५६।।

पूर्णचन्द्रविम्वकोटि चारुवक्त्रमण्डलं
मन्द मन्द चारुहास निन्द्य कुन्द कुट्मलम्।
दिव्य कुंकमागुरु प्रलेपलिप्त दोलतं
दिव्य रत्न कंकणादि भूषणौघ भूषितम्।।६०।।

जिसका सुचारु मुखमण्डल कोटि पूर्णचन्द्रविम्ब से भी अधिक मनोहर है, जो मधुर मुसकान की शोभा से कुन्दकलिका की निन्दा करते हैं, दिव्य कुंकुम–अगर आदि के प्रलेप द्वारा जिनकी बाहुलताएं सुशोभित हो रही हैं, जो दिव्य रत्नमय कंकणादि विविध भूषणों से भूषित हो रहे हैं–।।६०।।

क्षिप्त दिव्य हार निष्क कौस्तुभादि चन्द्रिकं
गन्धलिप्त वक्ष आत्त राधिकांघ्रि पल्लवम्।
राधिका विचित्र वेशभूषणादि तत्परं
राधया भिलिंगनोद् गतांचि रोम विग्रहम्।।६१।।

अपने अंगों में धारण किये हुए दिव्य हार, कठला एवं कौस्तुभादि की चन्द्रिका को जो उच्छलित कर रहे हैं, जो गन्ध लिप्त वक्षस्थल पर श्रीराधिका का पदपल्लव धारण किये हुये हैं, श्रीराधिका की विचित्र वेशभूषा रचने में जो तत्पर हैं एवं श्रीराधा के आलिंगन में जिनके सर्वांगों में पुलकावलि शोभित हो रही है–।।६१।।

राधयाऽतिरत्यगाधया स्मरोन्मदान्धया
नव्य काम केलि कल्पया कलाविदग्धया।
तंविदग्ध शेखरं महास्मरोत्सवे रतं
प्रेम विह्वलालिवृन्द सन्तताशिषा भृतम्।।६२।।

अति प्रणय शीला स्मरोन्मदान्ध नवीन काम–विलास–चेष्टा–परायण कलाविदग्धा श्रीराधा के साथ महा कामोत्सव में रत उस विदग्ध शेखर का मैं स्मरण करता हूं, वह प्रेम विह्वल सखियों की नित्य आशिषा के पात्र हैं–।।६२।।

स्वर्णवर्णकुंकमाक्त चन्दनेन चर्चितं
स्वर्णयूथिकादि दिव्य पुष्पमाल्य मण्डितम्।
स्वर्णहार–नूपुरादि दिव्य रत्न भूषणं
स्वर्ण दिव्य नव्य सूक्ष्म चित्रर्भगिवासमम्।।६३।।

स्वर्णवर्ण कुंकुम युक्त चन्दन द्वारा चर्चित देह जिनका स्वर्णयूथिका आदि दिव्य पुष्पमालाओं से शोभित है, जो स्वर्ण हार–नूपुरादि एवं दिव्य रत्नों से विभूषित हैं, जो स्वर्णवर्ण दिव्य नूतन सूक्ष्म चित्र तरंग युक्त वस्त्र परिधानकारी हैं।।६३।।

रत्नराजि राजिताद्भुतांग लीयकं लसत्
स्वर्णसूत्रगद्ध दिव्यनादि किंकणीसितम्।
स्वर्णवेणु रन्ध्रदत्त चारु पल्लवाधरं
स्वर्णपुष्पमञ्जरीषु मंजु कर्णपूरकम्।।६४।।

रत्न समूह द्वारा जिनकी अद्भुत अंगुलियां शोभित हो रही हैं, स्वर्ण के तागे में गुंथी हुई दिव्य ध्वनि करने वाली किंकणी बन्ध रही है, स्वर्ण वेणु छिद्रों पर मनोहर पल्लवाधर जो रखे हुए हैं, स्वर्ण पुष्प मंजरी समूह से निर्मित मनोहर जिनका कर्णपूरक शोभा दे रहा है–।।६४।।

कोटि चंचलाभ दिव्य सुन्दरीभिरुन्मदा
नंगकेलि संग खेलि रूपराशि राधिकाम्।
नागरीगरिष्ठ रत्यवाप्ति मन्दहासिनं
राधिका रसाल कुंज पुंज नित्यवासिनम्।।६५।।

कोटि कोटि विद्युद्वर्णा सुन्दरियों से वेष्टित, उन्मद कामकेलि में क्रीड़ा परायण अति रूपवती नागरि–शिरोमणि की रति (प्रणय) प्राप्त होने के कारण मन्द मुस्कान से शोभित श्रीराधिका की रसाल कुंजों में निवास करने वाले–।।६५।।

साम्बुनील नीरदच्छविं तड़ित् प्रियाति रुचिं
क्षणाप्त राधिका रतांतराभिलाषिणम्।
प्रेममादकतातिमत्त मन्दवर्ण भाषिणं
वार्षभानवी रतं सदा स्मराम्यहर्निशम्।।६६।।

सजल–नील–जलद–कांतियुक्त, विद्युद्वर्णा प्रेयसी को रुचिप्रद, क्षण क्षण में श्रीराधिका के सहित विविध सुरत सम्भोग, अभिलाषाकारी, प्रेम मदिरा में अति विकल होकर मन्द मन्द बोलने वाले एवं श्रीवृषभानुनन्दिनी से अनुरक्त श्रीश्यामसुन्दर को मैं दिन रात स्मरण करता हूं। (यहां कुलक समाप्त हुआ है)।।६६।।

प्रेष्ठ चित्त नन्दनेन कल्पितं विचित्रकं
हारिणा सुचारु भालचन्द्रसीम्नि विभ्रता।
प्रेयसी प्रसाद दत्तकुन्ददाम हारिणा
राधिका चकास्ति कुञ्जवीथिका विहारिणा।।६७।।

अपने सुन्दर ललाट पर अंकित तिलकादि धारण करने वाली प्रेयसी के प्रसाद स्वरूप से प्राप्त हुई कुन्दमाल को धारण करने वाले एवं कुंजवीथिका विहारी–चित्र विनोदन मनमोहन प्रियतम के साथ श्रीराधिका सुशोभित हो रही हैं।।६७।।

रचित रुचिर वेशः कान्तया स्निग्धकेशः
स्वयमपि मणिपुष्पैः कल्पितस्तत्र वेशः।
क्वचिदपि नव वृन्दाकानने मंजुवीथ्यां
समुदित रस तन्त्रः कृष्णचन्द्रोऽवताद्वः।।६८।।

अति काले केशों को धारण करने वाले श्रीकृष्णचन्द्र कान्ता द्वारा किये गये मनोहर वेश– भूषा से शोभित हो रहे हैं, एवं अपने ही हाथ से मणिमय पुष्पों से उनका शृंगार करके श्रीवृन्दावन के किसी एक नवीन वन के मनोहर पथ पर समुज्ज्वल रस के वशीभूत होकर तुम्हारी रक्षा करें।।६८।।

स्वयमुपहृत पुष्पैः क्लृप्तवेश विचित्रै
र्मिथ उदित सुहात्सं प्रौढ़ि गूढ़ प्रहर्षम्।
तदुमितमुभयत्रा नर्घ्य वैदग्धसारं
हि परमह उपासेऽन्योन्य चुम्ब प्रसादम्।।६६।।

स्वयं पुष्पों को तोड़ कर विचित्र भाव से वेश रचना करके परस्पर अति रहस्यमय आनन्दकारी हास्य करते हैं, दोनों ही महार्घ्य वैदग्धी सार भूत एक

दूसरे को चुम्बन देते हुए जो प्रसन्न–मुख युगल–विग्रह हैं, उनकी उपासना कर।।६६।।

संयोगावेशतोऽन्तर्निजदयिततमां सन्निवेशत्याति हर्षोत
कर्षोत्फुल्लांखिलागोविविध वर शुभैर्गुम्फिता मन्दकेशः।
काश्मीरालेप पत्रावलि वर तिलकादिन्य पूर्वानि कृत्वा
देशे देशे विमृग्यन् हरिरवतु वनस्यालिपुञ्जे निकुञ्जे।।७०।।

मिलन के आवेश में अपनी प्रियतमा श्रीराधा को अन्दर ले जाकर अनेक प्रकार के श्रेष्ठ मंगलकारी चिन्हों से सर्व अंगों को पुलकित करके सुन्दर केश विन्यास करते हुये सखियों ने कुंकुम लेपन, पत्रावलि, सुन्दर तिलकादि की अपूर्व भाव से रचना की। श्रीवृन्दावन में जहां तहां सब स्थलों पर सखियों से शोभित निकुंजों में उसकी (श्रीराधा की) खोज करने वाले श्रीहरि हमारी रक्षा करें।।७०।।

आस्ते वृन्दावन वन इहैकत्र गूढ़ं निकुञ्जे
काचिद्देवी मधुरप्रकृतिर्दुर्वितर्क्यानुभावा।
कृत्वांजल्या नति सुविनयं दिव्य गन्ध प्रसूनैः
श्यामामैवं परिचर परिकम्य भूयो नमत्वम्।।७१।।

इस श्रीवृन्दावन की एक निकुंज में निगूढ़ भाव से कोई एक मधुर–स्वभाव दुर्वितर्क्यानुभावयुक्ता देवी विराजमान हैं, तुम उसको हाथ जोड़ कर नमस्कार करो एवं विनय करके श्याम–वर्ण दिव्य गन्ध युक्त पुष्प द्वारा उनकी सेवा करो। परिक्रमा करके एक बार फिर उसे नमस्कार करो।।७१।।

लब्धानन्वं भजन विभवं चैकचारो निशीथे
नित्यं चेदाचरसि परमं तत्पदैकान्त भावः।
तच्छ्रीराधा स्वमति रसात् प्राप्त दोर्बल्लिबन्धं
कण्ठे कृत्वा नहि नहि जिहीतेति सत्यं ब्रवीमि।।७२।।

यदि उसके चरणों में एकान्त भावाश्रय करके आधी रात को अकेले इस आनन्द जनक परम भजन–सम्पत्ति का तुम नित्य ही अनुष्ठान करते रहो, तो मैं सत्य ही कहता हूं कि श्रीराधा स्वयं वरवश आकर बाहुलता पाशों में बद्ध करके तुम्हें कण्ठ से लगा लेंगी और कभी नहीं छोड़ेंगी।।७२।।

मन्त्रं ह्यस्या अखिल निगमागम्यमेव ब्रवीमि
यत् प्राकट्यं क्वचिदपि कृतं नो रहस्यागमेषु।
पादप्रान्ते विलुठति महासिद्धिसंघोऽर्नजप्तुः
श्रीमद्भावा अपि भगवतो यत्प्रभावत् करस्थाः।।७३।।

उसका मन्त्र भी समस्त शास्त्रों से अगम्य है, तो भी मैं उसे कहता हूं, जिसके प्राकट्य का निगूढ़ विषय शास्त्रों में कहीं भी नहीं कहा गया है, (जो इस मन्त्र का जप करता है) उसके चरणों में महासिद्धियां लोटती हैं। एवं श्रीभगवान् के सुन्दर सुन्दर भाव समूह उसके प्रभाव से मानो करतलों में आ जाते हैं।।७३।।

नित्यं यज्जापिनि ननु जने नो विधिर्नो नियेध
स्तत्पादाम्भोरुह युगरजो वेद तज्ज्ञान पुनाति।
यत् पीयूषाद्यति सुमधुरं मंगलं मंगलानां
सर्वाश्चर्यामित महिम यत् साधकं साधकानाम्।।७४।।

उस मन्त्र का जो नित्य ही जप करता है उसके लिये कोई भी विधि निषेध नहीं है, क्योंकि उसके पादपद्मद्वय का रजकण वेद एवं वेदज्ञगणों को पवित्र करने वाला है, जो अमृतादि से भी अति सुमधुर है, मंगलों का भी मंगलकारी है एवं साधकों के लिये सर्वाश्चर्यमय असीम महिमा युक्त साधन है।।७४।।

साध्यानां यत्परम परमं साध्यमत्युन्मदाना
मानन्दानामपि च परम प्रोन्मदानन्दमाहुः।
सर्वासां यत् परम सुरहस्यावलीनां रहस्यं
(धारेत्येव) राधेत्येवं जप तदनिश सार्थसंस्मृत्यनन्य।।७५।।

साध्य वस्तुओं का भी वह अति परमसाध्य है, अत्युन्मद आनन्दराशि का भी परम मत्तताजनक आनन्द उसे कहा गया है, परम रहस्यों का भी वह अति रहस्य है वह मन्त्र है–"राधा"–नाम। इसका अर्थ जाने बिना दिन रात इस मन्त्र का अनन्य भाव से जपकर।।७५।। (धारा–पाठान्तर होने से धारा–शब्द का अर्थ अगले श्लोकों में है।)

सा पीयूषादिक मथित सन्माधुरी सार धारा
प्रेमानन्दोन्मद रस चमत्कार सर्वस्व धारा।
अस्माकं वा सुभग तव वा वेद कोऽन्यस्य वा स्यात्
कस्याप्येषा परम हृदयोल्लासि धारेत्यदोऽर्थः।।७६।।

यह अमृतादि के मन्थन से उत्पन्न हुई उत्कृष्ट माधुर्य–सार की धारा है, प्रेमानन्द उन्मद रस चमत्कार की सर्वस्व धारा है, कौन जानता है कि यह हमारी, अथवा सौभाग्यशाली तुम्हारी अथवा किसी और की भी परमोल्लासमयी धारा है ! यही इस मन्त्र का अर्थ है।।७६।।

श्रीवृन्दावन कुञ्ज देव्यनुनिशं गोपाधिराजात्मजे
नाभ्यर्च्यातदिमं रहस्युपगतं प्रेक्ष्यत्वमात्मावृतेः।
तिष्ठेः स्थावर वन्निकुंज निलयस्याभ्यन्तरे प्रेयसः
सख्यस्त्वत्सविधे वयं स्म उरु चेत् कार्य्यं तदाऽयंविधिः।।७७।।

हे श्रीवृन्दावन–कुञ्जदेवी ! तुम यदि प्रति रात्रि में श्रीगोपाधिराजात्मज के द्वारा आदृता होने की इच्छा करती हो, तो उसे अकेला आया हुआ देखकर अपने को छिपाने के लिए निकुञ्ज निलय में स्थावर की भांति अवस्थान करो। विशेष काम होने पर तब हम सखीगण भी पास आ जायेंगी–यही विधि (कर्त्तव्य) है।।७७।।

....
....।
तेनाऽऽसं तव देवतामतिरसौ त्वत् कामवाधाकुलोऽ–
प्येकान्तेऽपि करिष्यते न किमपीत्यावेदितं ते प्रियम्।।७८।।

इत्यन्योन्य सुशिक्षणं सुनिपुणं कृत्वा सखीमण्डले
तत्रैवच्छलतो निलीय हसति प्रेष्ठे निशीथे हरेः।
आगत्या चरतस्तथाति मदन क्षुब्धस्य हासोद्गमे
राधायाश्च धृति क्षयाद्रति कला जीयात सुरत्यद्भुता।।७६।।

इस प्रकार से प्रियतम सखी मण्डल एक दूसरे को सुशिक्षा देकर सुनिपुण करके वहीं रात्रि में बहाने से छिपकर हंसी करते हुए रहीं, उसके बाद

श्रीहरि भी वहां आकर इधर उधर घूमते हुए काम–विह्वल चित्त से हंसने लगे एवं श्रीराधा ने भी अधीरता से सुरतोद्भूत अद्भुत रति–कलादिकों का जो संघटन हुआ–उसकी जय हो।।७६।।

श्रीवृन्दावन कुञ्ज मण्डलमिदं यावत् समानीयथा
स्तावद्दुर्ग्रह देवतार्द्दिततनोः सन्धूक्षणं ते मनाक्।
स्वप्नेनागर शेखरेण रमिता केनापि संलक्ष्यसेऽ
पश्यन्त्याः परपुरुषं स्थितिमतः पृच्छे तव स्वाग्रतः।।८०।।

ऐसा प्रतीत होता है कि जब तुम इस श्रीवृन्दावन के कुञ्ज मण्डल में आती हो तभी किसी दुष्ट ग्रह देवता द्वारा तुम्हारा देह आक्रान्त होता है, एवं तुम्हारे भावों में कुछ कुछ उद्दीपन भी दिखाई देता है, और फिर स्वप्न में नागर शेखर के साथ रमण की गई हो ऐसा भी लक्षित होता है, किन्तु तुम तो कभी परपुरुष को देखती भी नहीं हो, तो भी तुम्हारी ऐसी अवस्था क्यों है–यह बात मैं तुमसे पूछती हूं।।८०।।

धृष्टाः सख्य इमां निकुञ्ज निलय छिद्राब्धि दत्ते क्षणाः
पश्यन्ति प्रिय सर्वनागरगुरौ नाति त्वरा माचर।
सर्वा आवृणु रत्नदीप वितती स्त्वन्मन्निचोलै वृतिं
कुर्य्यश्चेन्न धृतिंहर श्रुतितले ताः पान्तु राधागिरः।।८१।।

"हे प्रिय ! हे सर्वनागर गुरो ! ये सखीगण धृष्ट हैं एवं निकुञ्ज मन्दिर में छिद्रों से दृष्टि डालकर सब कुछ देखती हैं जल्दी मत करना, समस्त रत्न दीपों को अपने और मेरे वस्त्रों द्वारा ढक दीजिए, यदि आवरण नहीं करना है तो इनके धीरज को हरण करिये।"–श्रीराधा की यह वाक्यावली तुम्हारे कानों में प्रवेश करके सबकी पालना करे।।८१।।

अयि मयि रतिदानं वर्षराधेऽत्युदारे
वयं गमनिकुञ्जे याम सख्योऽत्र सन्तु।
इति निरवधि वृन्दारण्य कुंजेषु राधां
प्रति मुरभिदु रस्याभ्यर्थनानि स्मरामि।।८२।।

"अयि अत्युदार–चरित्र राधे ! मेरे लिये रतिदान रूप वर्षा कर। चलो, हम सखियों द्वारा–अगम्य–निकुंज में चलते हैं, सखीगण यहां ही रही आवें।

इस प्रकार निरन्तर श्रीवृन्दावन के निकुंजों में श्रीराधा के प्रति मुरारि श्रीकृष्ण को अभ्यर्थनार्थ स्मरण करता हूं।।८२।।

मदन–कदन नित्य क्लान्त पारे स कान्तो
विदधति ललिताद्याः शिक्षण चान्यनार्यः।
अनुचरि शुभशीले ब्रूहि मे किं नु कृत्यं
तदिह जयति राधा मन्त्रितं कुंजवीथ्याम्।।८३।

"वही कान्त मदन–युद्ध में नित्य ही सुनिपुण है और ललितादि अन्य नारीगण भी उसे शिक्षा देती हैं, हे शुभशीले दासी! कहो तो मेरा क्या कर्तव्य है? इस प्रकार कुंज–पथ पर श्रीराधा का परामर्श जय युक्त हो रहा है।।८३।।

कथित विथतमाना प्रेष्ठमाश्वास्य वल्ली
गृहमद उपनीय स्थापयिष्याम्य लक्ष्यम्।
त्वमपशरितु मन्त्रैवातिरोषादवेया
इति समशुचस्माया श्लेषिणीं पश्य राधाम्।।८४।।

सखी ने कहा–"मिथ्या मान की बात कहकर प्रियतम को आश्वासन देखकर अलक्ष्य लतागृह में लाकर बैठा दूंगी। तुम यहां से अति कुपित होकर दूसरे स्थान पर जाने की चेष्टा करना।" इस प्रकार समान व्यथाशालिनी प्रिय सखी के मुख से मुख लगा कर अवस्थान करने वाली श्रीराधा का दर्शन कर।।८४।।

वनमिदमति कामोद्वर्द्धकैक स्वभावं
वपुरपि च वयः श्रीरूपलावण्यसीमा।
स इह मदनकोटि मोहनो नित्यखेलो
भवतु घनवने मे संस्थिते यान्तु सख्यः।।८५।।

यह श्रीवृन्दावन अतिशय कामवर्धक स्वभाव विशिष्ट है, देह एवं वयस–सौन्दर्य रूप–लावण्यादि की सीमा है, इसलिये यहां वह कोटि मदनमोहन नित्य क्रीड़ा परायण हों एवं सखीगण वन में निकुञ्ज गृह में प्रयाण करें।।८५।।

इह कुसुमित वृन्दाकानने कोकिलानां
कलरव इह मन्द वात्यसौ गन्धवाहः।

प्रियमपि परमर्मा विज्ञ सख्याः कुशिक्षा
कृदह महह छिन्ना केन तार्य्योऽद्य दुःखम्।।८६।।

इस कुसुमित श्रीवृन्दावन में कोकिलाओं का कलरव हो रहा है, यहां मृदुमन्द सुगन्धित वायु प्रवाहित हो रही है, हाय ! इन सब मंगल कारणों के होते हुए भी मैं परम निभिज्ञ सखी की कुशिक्षा पर चलकर विरहिणी हो रही हूं। हाय ! कौन आज मुझे इस दुःख से बचाएगा ?।।८६।।

अयि मधुकर यूथाः सन्ति वृन्दावनेऽस्मिन
बहव इह न संख्यावन्ति पुष्पानि सन्ति।
धनु रिषु गुणकोटी निर्म्मिमानोऽत्र भीमः
प्रभवति ननु कामस्तत्र का मानवार्त्ता ?।।८७।।

अरे मधुकर ! इस श्रीवृन्दावन में अनेक यूथिका वृक्ष (नायिका दल) हैं एवं उन पर असंख्य पुष्प भी हैं, यहां धनुष बाण कोटि रज्जु–निर्माण–दक्ष प्रचण्ड कामदेव भी आविर्भूत हैं, यहां फिर क्या मान की कोई बात हो सकती है ?।।८७।।

न पुनरिति कुशिक्षास्तादृशी श्रृणोमि
प्रणयिनि गुणधाम्न्यप्यूह मानापराधम्।
मम पुरुष गिरा गत्यात्रवृन्दावनोद्यत्
पिक कलविकलीभूतोऽगमज्जीवयन्माम्।।८८।।

(मैं प्रतिज्ञा करती हूं कि) और इस प्रकार की कुशिक्षा प्रियजनों के विषय में सुनूंगी भी नहीं, क्योंकि प्रियतम में निखिल गुण रहते हुए भी उनके अपराध की आशंका हुई है। मेरे निष्ठुर वचनों के कहने पर भी वह यहां आकर मुझे जीवित कर श्रीवृन्दावन में गुंजारित पिकस्वर से विकल होकर फिर चले गये हैं।।८८।।

अयि जगति सुधन्या सैव या मानिनी स्यात्
प्रणयिनि सखि तादृश्योमदाद्या स्त्वधन्याः।
अपि दयित सखीभ्यो मानवर्णेऽपि कर्णे
विशति हृदि विहन्त्यो वेपथुं प्रोद्वहन्ति।।८९।।

हे सखि ! प्रियतम के साथ जो मान कर सकती है वही नारी ही जगत् में अति धन्य है, किन्तु उसी प्रकार अगर्विता नारी भी दुर्भागिनी है, जो प्रियतम की सखियों के मुख से मान के अक्षरों को कान में पड़ते ही हृदय में चोट खाती है एवं कांपने लगती है।।८६।।

सख्यो मानं रसालं नियतमहम वैम्यत्र वृन्दावने तु
प्रोदेत्यत्यद्भुतो येन कृतनिजपति स्त्रीकृतान्तो वसन्तः।
भृंगी संगीत काल्यन्नव मदनधनुः शिंजनीनामिवोच्चै
ष्टंकारा वज्र शंकामिह च विदधते कोकिला कूजितानि।।६०।।

हे सखीगण ! इस श्रीवृन्दावन में मैं नियत ही रसमय मान को प्राप्त होती हूं, क्योंकि यहां अत्यद्भुत अपने अपने पति–पत्नी का यमस्वरूप वसन्त विराजता है। भृंगों का संगीत–समूह नव मदन के धनुर्गुणों के उच्च टंकारों की भांति है एवं कोकिलाओं का कूजन वज्र निर्घोषवत शंका उत्पन्न करने वाला है।।६०।।

स्त्रीरूपा मेघ्यपिण्डे मुहरमृतधिया नित्यलोलुभ्यमानं
चक्षुर्न क्षुद्रजीवैरपि विहित मृषा माननाऽत्यन्तमग्नः।
जिह्वामिष्टान्न निष्ठा विरमति न मनाग् वित्तसंगृध्नुचित्तं
हा वृन्दारण्य कान्याभवति मम गतिश्चेदहं त्वत्स्थिष्तोऽपि।।६१।।

स्त्रीरूप अपवित्र देह पिण्ड में अमृत जानकर मेरे नेत्र बार बार लोलुप हो रहे हैं, क्षुद्र जीवों द्वारा प्रदत्त मिथ्या सन्मान में मैं अति मग्न हो रहा हूं। जिह्वा मिठाई में ही आसक्त हो रही है, और चित्त धन–सम्पत्ति में समासक्त है, किसी इन्द्रिय को कैसे भी वैराग्य नहीं होता, अतएव हा श्रीवृन्दावन ! मैं आपमें वास करके भी यदि अन्यगति (दुर्गति) को प्राप्त होऊं, तो फिर मैं कर ही क्या सकता हूं ?।।६१।।

श्रीराधा परदेवता नव लतागेहेषु नित्य स्थिता
श्यामांकेक विभूषणा ललितया स्वीयैः सदा सेविता।
वृन्दाटव्यति दुर्ग मोहन पुर तस्याखिलं सैनिकं
यस्यासौ वरदः श्रियाप्यकलितः श्रीभावराजोऽस्तु नः।।६२।।

परदेवता श्रीराधा नवलताओं के गृहों में नित्य ही अवस्थान करती हैं, श्रीश्यामसुन्दर का क्रोड़ ही इनका विशेष भूषण है, एवं ललिता प्रेरित अपनी दासियों द्वारा नित्य सेवित हो रही हैं, श्रीवृन्दावन ही इनकी दुर्ग से भी अति सुरक्षित मोहनपुरी है। वहां की समस्त वस्तुएं वहां की सैनिक हैं, एवं श्रीलक्ष्मी के भी अदृश्य श्रीभावराज (महाभाव) हमें वरदान देने वाला हो।।६२।।

गुंजा मंजुल हारिणं मुरलिकानादैर्मनोहारिणं
गोपी ह्रीधन हारिणं व्रज विषाग्नयादि व्यतीहारिणम्।
नित्यन्चानुरतं स्वया दयितया शोभा समाहारिणं
वृन्दारण्य विसारिणं भज सखे भक्ताघसहारिणम्।।६३।।

गुंजाओं की मनोहर मालाधारी मुरली नाद से मनोहारी, गोपियों की लज्जारूप धन को हरण करने ब्रज की विषवाग्नि आदिकों को शमन करने वाले, अपनी प्रियतमा के प्रति नित्य अनुरक्त, तथा अतुलनीय आभाधारी श्रीवृन्दावन विहारी और भक्तों के पापों के संहारी श्रीहरि का—हे सखे! भजन कर।।६३।।

वृन्दानि द्युतिमल्लता विटपिनां वृन्दारके विन्दयन्
वृन्दारण्य—लतागृहे व्रजवधू वृन्दारिकाऽऽनन्दयन्।
कन्दर्पोत्सवकं वेणुविवरात् सान्द्रामृतं स्यन्दय
न्नानन्दं हरि रद्य कन्दलयान्मुक्तिं च नो नन्दयत्।।६४।।

ज्योतिर्मय वृक्ष लताओं के मनोज्ञत्व प्राप्त कराकर, श्रीवृन्दावनीय लतागृह में व्रजबंधुओं को आनन्द दान करके, वेणु छिद्रोंसे सान्द्रामृत कन्दर्पोत्सव प्लावित करके आज श्रीहरि मुक्ति के आनन्द को भी त्यागकर आनन्द—ध्वनि करें।।६४।।

श्रीवृन्दावन फुल्लमल्लिविलसद् वल्लीकुटीरे रवत्
कीरे धीरसमीरे सूरतयातीर तमालच्छविः।
कोऽपि क्रीड़ति मंजु गुंज दलिनी पुंज स्वयं गुंजया
निर्म्मायोज्ज्वल हारमादधदति प्रेम्ना च राधौरसि।।६५।।

शब्दायमान—शुक पक्षियों से शोभित मन्द समीर युक्त यमुना तीर पर मनमोहक गुंजनकारी भ्रमरी पुंजों से भूषित श्रीवृन्दावन के प्रस्फुटित मल्लिका

से सुवासित लता कुटीर में तमालवर्ण कोई एक अपने हाथों से गुंजाओं का उज्ज्वल हार बनाकर धारण कर रहा है एवं प्रेमपूर्वक श्रीराधिका के वक्ष पर क्रीड़ा कर रहा है।।६५।।

श्रीवृन्दावन–नव कुंज–मन्दिरेषु
स्वानन्दामृत रससिन्धु बन्धुरेषु।
श्रीराधामुरलिधरौ मिथो हसन्तौ
गायन्तौ स्मर सततं स्मरोन्मदांधौ।।६६।।

हे बन्धु ! स्वानन्दामृत रस सागरवत् मनोहर श्रीवृन्दावन के नव कुंज मन्दिरों में श्रीराधा मुरलीधर परस्पर स्मरमदान्ध होकर हास्य कर रहे हैं एवं गान कर रहे हैं—उनका नित्य स्मरण कर।।६६।।

श्रीवृन्दाविपिन–विचित्र पुष्प वाट्यां
श्रीकृष्णोरसि निहिताढ्य नूपुरादिः।
श्रीराधाद्भुत रतिकेलि नाट्यलीला
दृष्ट्यो मे किरतु महारसाब्धि वर्षम्।।६७।।

श्रीवृन्दारण्य की विचित्र पुष्पवाटी में श्रीकृष्ण–वक्ष–स्थल पर बहुमूल्य नूपुरादि से भूषित चरणों से श्रीराधा की अद्भुत रति–केलि नाट्यलीला मेरे नेत्रों पर महारस समुद्र की वर्षा करे।।६७।।

कालिन्दी पुलिन उरु प्रसूनवृन्दा
वण्योच्चैः प्रवर कदम्ब–शाखिमूले।
गायन्तौ मदकल मत्युदार गौर
श्यामं तन्मधुर–महोद्वयं स्मरामि।।६८।।

कालिन्दी पुलिन में अनेक पुष्प मण्डित श्रीवृन्दावन के उच्च सुमहान कदम्ब वृक्ष के नीचे संगीत परायण मदकल अति उदार श्रीगौरश्याम मधुर–विग्रह युगल का मैं स्मरण करता हूं।।६८।।

वृन्दाटव्यभिनवय कुंज खेलनोत्का
वालाभिः कृत नव पुष्प चित्र वेशौ।
श्रीराधा मुरलिधरौ मुदा चरन्तौ
सद्वीथ्यां भजत कयाऽपि नीयमाणौ।।६९।।

श्रीवृन्दावन के अभिनव कुंजों में खेलनोत्सुक, सखियों द्वारा किये गये नव पुष्पों के विचित्र वेशभूषा से सुसज्जित, किसी सखी द्वारा उत्तम पथ पर ले जाये गये एवं आनन्द सहित इधर उधर संचरणशील श्रीराधा मुरलीधर का तुम भजन करो।।९९।।

किमिन्दुनां कोट्या यदि वदनमानन्द मदनं
सुधासारैः किं वा यदि सुमुखि बिम्बाधरमिदम्।
कटाक्षा जीयासु स्तव किमिह कन्दर्प विशिखै
प्रसन्ना त्वं राधे यदि क इह धन्यो मदऽपरः।।१००।।

कोटि चन्द्रों के उदय से क्या प्रयोजन, यदि आनन्दमदन जनक आपका वदन चन्द्र उदित है? सुधासार से क्या प्रयोजन, यदि तुम्हारे इस बिम्बाधर का रस प्राप्त हो? तुम्हारे कटाक्ष पात होने पर फिर और कन्दर्प बाण का क्या प्रयोजन ? हे राधे ! यदि तुम प्रसन्न हो तो जगत् में मेरे समान और कौन धन्य है ?।।१००।।

अलिन्दे कालिन्दी–पुलिन–नव मन्दार–लतिका
निकुञ्जस्यानन्दामृत मधुर–मन्दानिलयुते।
मिथोऽति प्रेमोच्छृंखल–मदन–खेलौ सुमधुरं
हसन्तौ गायन्तौ भजत हृदि राधा–मधुपती।।१०१।।

यमुना पुलिन में नव मन्दार लतानिकुंज के आनन्दामृत युक्त मधुर मन्द वायु सेवित बरामदे में अति प्रेमपूर्वक अनन्त मदन–क्रीड़ा परायण श्रीराधा एवं मधुपति दोनों सुमधुर हास्य गानादि कर रहे हैं, उनका हृदय में भजन कर।।१०१।।

अकस्मात् सिंदूरं तव सुमुखि किं दूरमगम
द्विशेषः किं वान्यादृश इव दृशोस्तेऽन्जनरुचः।
अहो सं वृत्यांगं मुखमपि समायाति बनतो
नतग्रीवं यैव ध्रुवमिह तदुक्तार्थयसि नः।।१०२।।

हे सुमुखि ! क्या अकस्मात तुम्हारा सिंदूर छूट गया है ? या तुम्हारा तिलक किसी और प्रकार का हो गया है ? तुम्हारे नैनों के अंजन की शोभा भी

कुछ और है। अहो ! जो अंग एवं मुख को ढककर वन से ग्रीवा झुकाए हुए आते हैं, वही तुम्हारी और मेरी उक्तियों की ठीक सार्थकता सम्पादन करते हैं।।१०२।।

कालिन्दी फुल्लादिन्दीवर वन पवनेनाञ्चिते मन्दमन्दं
श्रीवृन्दारण्य वृन्दारक विटपि लता मन्दिरालिन्द इन्दुः।
जीयात् कोऽपीन्द्रनीलद्युति मति मधुरैः कन्दलैरंग भाषा
विन्दन् वन्दारु वृन्दारकगण कुसुमासारवर्षैः प्रमोदम्।।१०३।।

कालिन्दी के प्रस्फुटित कमलवन की वायु द्वारा मन्द मन्द सेवित श्रीवृन्दावन के मनोहर वृक्षलता मन्दिर के बरामदे में कोई इन्द्रनीलमणि की कांति विशिष्ट चन्द्र जय युक्त हो रहा है, वह अति मधुर स्फुरित अंग ज्योति द्वारा भी वन्दनशील देवगण के द्वारा की गई कुसुमधारा वर्षा से प्रमुदित होकर विराज रहा है।।१०३।।

श्रीमद्वृन्दावनेन्दुः स परम मधुरः प्रेमपीयूषसार।
स्यन्दी संदीप्त कामानल विकल हृदा गाढ़राधा सुधाब्धिः।।१०३।।

यह श्रीमद्वृन्दावनचंद्र अतीव मधुर एवं प्रेमामृत सार क्षरणशील है, किंतु वह जब सम्यक् उद्दीप्त कामाग्नि में विकल हृदय होता है तब श्रीराधा ही उसको अगाध सुधासिन्धु रूप से शांति प्रदान करती हैं।।१०३ क ।।

सिन्दुरेण प्रणय तिलकं विन्दुभिश्चंदनानां
वीतं भाले रचय कुचयोः पत्रकं कुंकुमेन।
रम्यं सम्यग् विदध्यामधर मधुरे तच्च सर्वपुरावत्
तीब्रालिभ्यः सदा मे च भयमथ ह्रियं भिन्धि वृन्दावनेन्दो।।१०४।।

जलबिंदुओं के द्वारा नष्ट हुआ तिलक फिर चंदन बिंदु एवं सिंदूर द्वारा मेरे कपोलों पर रचना करो। कुसुम द्वारा कुचयुगल पर पत्रक रचना करो। मेरे मधुर अधरों पर पूर्ववत् सुन्दर भाव से उसी प्रकार चित्रकादि ठीक–ठीक विन्यास करो। मुझे सखियों से सदा भय लगा रहता है। अतएव हे वृन्दावनचंद्र ! मेरी लज्जा को दूर करो।।१०४।।

सं चार्य्येत इतस्ततः प्रियसखैः श्रीदाम मुख्यैः समं
श्रीवृन्दावन वीथिकासु सततं राधैक वार्त्तापरः।

धैर्य्ये धावति मंत्रयन्त मन घोपायञ्च तत् संगतौ
कंचित् कामरसैक सार सुभगं श्यामं किशोरं।।१०५।।

श्रीदाम प्रमुख प्रिय सखागणों के साथ जो एकमात्र श्रीराधा के कथा–परायण होकर जहां तहां विचरते हुए वृन्दारण्य की वीथिकाओं में उपस्थित रहते हैं, और फिर अधीर होकर श्रीराधा के साथ मिलने का उत्तम उपाय उनके साथ सोचते हैं, ऐसा जो कामरस का एकमात्र सार रूप सुन्दर श्याम किशोर हैं। उसका भजन करता हूं।।१०५।।

श्रीप्रबोधानन्द सरस्वती–विरचित श्रीवृन्दावन महिमामृतम् का
पञ्चदश शतक समाप्त हुआ।।१५।।

षोड़श–शतकम्

राधावक्त्र सरोज दिव्यमधुपं राधादृशो रञ्जनं
राधावक्षसि दिव्य नीलवसनं राधामनः शृंखलम्।
राधानाभि सुधासरः कुवलयं राधापद श्रीनखे–
न्दुनां लाञ्छनमेव वाञ्छत वने राधक खेलामृगम्।।१।।

श्रीराधा मुखकमल के दिव्य मधुकर, श्रीराधा के नेत्रों के अंजन, श्रीराधावक्षस्थल के दिव्य नीलवसन, श्रीराधा के मन के शृंखल, श्रीराधा की नाभि रूप अमृत सरोवर के नील पद्म श्रीराधा के चरणों के सुन्दर नखचन्द्रों के (श्यामता रूप) लांछन एवं श्रीराधा के ही एकमात्र क्रीड़ा मृग जो (श्रीश्यामसुन्दर) हैं। उनके इस श्रीवृन्दावन में पाने की वाञ्छा कर।।१।।

एकान्त कुंजभवनेऽनुनयेन राधा
मंके निधाय करजैरलकान् विविच्य।
चुम्बुन्मुहुः कनक पंकज कान्ति वक्त्रं
सोऽयं हरि पुलक पूर्णवपुः प्रियो मे।।२।।

निर्ज्जन कुंजगृह में अनुनय पूर्वक श्रीराधा को क्रोड़ में लिए हुए अपनी अंगुलियों से उनकी अलकों को संवारते हुए बार–बार उसके कनक पद्म

शोभायुक्त मुख को जो चुम्बन करते हैं, वही पुलकावलि युक्त श्रीहरि ही मेरे प्रिय हैं।।२।।

कस्यापि गोपरमणीय रमणीय मूर्त्तेः
कादम्बिनीरुचि कदम्ब करम्बितस्य।
विद्युत् पिशंग वसनस्य निशम्य राधा
नामादिमक्षरमपि क्षरदास्यमीक्षे।।३।।

जो गोप रमणियों के लिए रमणीय–मूर्त्ति मेघमाला की भांति कांतियुक्त हैं एवं बिजली की भांति पीताम्बरधारी हैं एवं राधा नाम के अक्षर मात्र को सुनते ही जिनके मुखचंद्र से अश्रु आदि क्षरण होने लगते हैं, मैं उनके मुखचन्द्र के दर्शन करने की इच्छा करता हूं।।३।।

परस्पर सुसम्मुखं मुखमुदार नर्मस्मितं
परस्परं वपुष्य शत्पुरु मिषेण पाणिद्वयम्।
परस्परं रसोल्लसत् पुलक गौरनीलाकृती
दधद् वयमहः परस्पर धृतात्मभावं भजे।।४।।

जो एक दूसरे के सम्मुख ही विराजमान हैं, एवं उदार नर्म्महास्ययुक्त हैं, एक दूसरे के अंगों को परस्पर अनेक छलों से हस्त द्वारा स्पर्श कर रहे हैं, परस्पर रसोल्लसित एवं पुलकांचित गौरनीलाकृति धारण कर रहे हैं एवं एक दूसरे के स्वभाव को परस्पर ग्रहण कर रहे हैं, इस प्रकार युगल विग्रह का भजन कर।।४।।

कदापि चिदचिन्मयादुपरि चेत् स्पृहा रोहणे
रीतं मदनमोहने विदधतां तदेकान्तिकीम्।
न सन्तुजनतापने प्रतिवसन्तु वृन्दावने
नमन्तु ननु जन्तु कानिह न मन्तु रस्तु क्वचित्।।५।।

यदि कभी चिन्मय अचिन्मय जगत् के ऊपर जाने की तुम्हारी इच्छा हो, तब श्रीमनमोहन में एकान्तिकी रति विधान कर, जनपूर्ण स्थान में नहीं रहना, श्रीवृन्दावन में वास करो एवं यहां के समस्त प्राणियों को नमस्कार करो, जिससे किसी को कोई अपराध न हो जाये।।५।।

महाद्भुत चमत्कृति प्रकट सर्व सद्वैभवम्
भवन्नव नवं सदामधुर पूर्ण शोभार्णवम्।
अतीव सुचमत्कृती जन कृपा क्षमाद्यैर्गुणै–
र्महो मदन मोहनाकृति भजन्तु वृन्दावने।।६।।

जो महा अद्भुत चमत्कारी हैं, जिनसे समस्त उत्तम वैभव प्रकट होते हैं, जो सदा नवीन माधुर्यपूर्ण सौन्दर्य के सिन्धु हैं, एवं जनों के प्रति अति कृपा क्षमा आदि गुणों द्वारा महाद्भुत हैं, उस ज्योतिर्मय श्रीमदनमोहन मूर्त्ति का श्रीवृन्दावन में भजन कर।।६।।

अनन्य रस भावतो मधुर भाव सारोत्करे
करे निपतितं स्वतोऽखिल पूमर्थमातन्वति।
विरज्य भगवत् पदादपि मुदात्र वृन्दावने
महोज्ज्वल महामहो मदनगोपरसं भज।।७।।

अपने अनन्य रस स्वभाव वश केवल मधुर भाव सार राशिपूर्ण, हाथों में स्थित निखिल पुरुषार्थों को दान करने वाले इस श्रीवृन्दावन में सारूप्यादि मुक्ति को त्यागते हुए आनन्द सहित महोज्ज्वल मदनगोपाल वेशधारी महाज्योतिर्मय विग्रह का भजन करो।।७।।

आनन्द रस कन्दली परमकन्द वृन्दाटवीं
करुद्र–कृत वर्णनातिग विचित्र शोभानिधिम्।
नवीन तड़िदम्बुद द्युति महोदयैक स्थितिं
प्रवीणमतयो हरे भजन वर्त्मसु ध्यायत।।८।।

हे मनीषिगण! आप हरिभजन पथों में अत्युन्नत रस समुद्र के परम मूल स्वरूप इस श्रीवृन्दाटवी का ध्यान करो। यह ब्रह्मा शिवादिकों के लिए भी अनिर्वचनीय विचित्र शोभानिधिस्वरूपा है एवं नवीन तड़ित और मेघ वर्ण दोनों के स्वरूप में ही स्थित है।।८।।

कर्णाभ्यर्णाऽस्पर्शिनः स्त्रीति वर्णा दप्युत्रस्ताः संगमात्राद्विहस्ताः।
न्यस्तात्मानः श्रीलवृन्दावने ये क स्तान राधा पादगान्न स्तुवीत।।६।।

"स्त्री" यह वर्ण जिसके कानों में नहीं आता है, इस अक्षर के सुनने मात्र से ही जो भयभीत होते हैं, उसके संगमात्र से ही जो अति व्याकुल हो उठते

हैं, जिसने श्रीवृन्दावन को ही आत्मसमर्पण कर दिया है उस श्रीराधाचरणागत भाग्यवान् की कौन नहीं प्रशंसा करता है?।।६।।

अत्यामृष्ट प्रेममाध्वीक माद्य द्राधा कृष्णोच्छ्रंखलानंग खेला।
अत्याश्चर्यानन्दसन्दोह सान्द्रा वृन्दाटव्यां सेव्यतां रे सुभव्याः।।१०।।

अहो भद्रमहोदयगण ! इस श्रीवृन्दावन में अति विशुद्ध प्रेम मधुर मत्त श्रीराधा–कृष्ण की असीम काम–क्रीड़ा हो रही है, वे अत्याश्चर्य आनन्द–राशिधन स्वरूप हैं, उनकी सेवा कर।।१०।।

कालिन्दी पुलिनं विचित्र षड़ऋतु श्रीसेव्य वृन्दावनं
नित्याश्चर्यगुणो मरुत्पुरु कलश्चन्द्रो निशा शारदी।
इत्यद्भुत दीपनो गुणनिधि श्रीराधिका माधवा–
लम्बीकोऽपि महाद्भुतो हृदिरसश्चित्तानुभावोऽस्तुनः।।११।।

कालिन्दी पुलिन, विचित्र छः ऋतुओं की शोभा सेवित श्रीवृन्दावन, नित्याश्चर्यमय गुण सम्वलित वायु पूर्णकला विशिष्ट चन्द्र एवं शारदीय रजनी इत्यादि अत्यद्भुत उद्दीपनमय कोई एक महाद्भुत रस और चित्तानुभाव हमारे हृदय में गुणनिधि श्रीराधामाधव का आश्रय लेकर उदित हो।।११।।

कालिन्दीपुलिने स्वच्छ्रुकपिके मत्तालिझंकारिणि
नृत्यत् केकिनि पुष्पितद्रुमलता वृन्दौघ वृन्दावने।
गौरश्यामकिशोरयोरति रति पत्योर्निजैकान्तयोः
कञ्चिद् दिव्य महारसं रसयितुं मच्चित्तमुत्कण्ठते।।१२।।

कालिन्दी पुलिन शोभित, शुक कोकिलादि मुखरित मत्त–मधुकर निनादित, मयूर–ताण्डवनृत्य मण्डित, पुष्पित वृक्ष–लताओं से वेष्टित श्रीवृन्दावन में रतिकामरूप अपने एकांत प्रियतम श्रीगौरश्याम युगलकिशोर के किसी दिव्य महारस आस्वादन करने के लिए मेरा चित्त उत्कण्ठित हो रहा है।।१२।।

कलिन्दतनयातटे मधुर माधवी मण्डपे
मिलन्मलय मारुते मधुप झंकृतालंकृते।
पिकालिकुल कूजिते व्रजकलावती पूजिते
किशोर सहसी सदा स्मर गौर नीलाकृती।।१३।।

कालिन्दी तट पर मलय वायु प्रवाहित, मधुकर झंकृत एवं कोकिल–भ्रमर

कूजित मधुर माध्वी मण्डप में व्रज की चतुष्टि कला विद्या में चतुर गोपीगणों से पूजित गौरनीलाकृति युगलकिशोर का सदा स्मरण कर।।१३।।

अतिस्वच्छैरंगच्छवि नव सुधाम्भोधिलहरी–
परीवाहैर्वृन्दावन वलय माप्लावयदिदम्।
अहो गौरश्यामं मधुर मधुरं धामयुगलं
सदा कैशोरं मे हृदि मदन मुग्धं विहरतु।।१४।।

अति स्वच्छ अंग कांति के नवीन सुधा समुद्र की तरंगों के प्रवास में समग्र श्रीवृन्दावन भूमि को प्लावन करने वाले नित्य किशोर ये गौरश्याम मधुर–मधुर मदनमोहनकारी युगल विग्रह हमारे हृदय में विहार करें।।१४।।

मिथः सान्मुख्येन व्रततिभवनद्वारि रुचिराऽऽ
स्तरासीना वक्षैरति सरस खेला विदधतौ।
सखीभि स्तौ बालव्यजन कृतसेवा रति मुदा
भजे राधाकृष्णौ रतिकलह कुण्ठत्वहृदयौ।।१५।।

लतागृह के द्वार पर एक दूसरे की ओर मुख करके मनोरम शैय्या पर बैठ रहे हैं, अति सरस पासा खेल रहे हैं, सखीगण चामर व्यजनपूर्वक उनकी सेवा कर रही हैं, इस प्रकार रतिकलह–कुण्ठ–हृदय श्रीराधाकृष्ण का मैं आनन्दपूर्वक भजन करता हूं।।१५।।

नव हेमहरिन्मणिप्रभं मधुराणां मधुरं महोद्वयम्।
तदहं रससार विग्रहं नव वृन्दाविपिने भजेऽन्वहम्।।१६।।

नव हेम एवं इन्द्रकांतमणि तुल्य प्रभायुक्त मधुर से भी अति सुमधुर रससार युगल विग्रह का मैं नव श्रीवृन्दावन में नित्य भजन करता हूं।।१६।।

विलसन्नव हेम चम्पकद्युति कैशोर मनोहरं महः।
तदहं मृगये मुहुः श्रितं हृदि वृन्दावन पुष्पकेतुना।।१७।।

नव स्वर्ण चम्पक कान्ति विशिष्ट एक कैशोर मनोहर विग्रह ने वृन्दावनीय कामदेव का हृदय में आश्रय ले लिया है। मैं उसका बार–बार अनुसन्धान करता हूं।।१७।।

हरिणायत लोचनेन हि क्षणमात्रं न विधातुमिष्यते।
अपि तल्पवरेऽपि याऽनिशं हृदि राधा ममास्त्वधीश्वरी।।१८।।

विशाल–लोचन श्रीहरि एक भी क्षण के लिए सुन्दर शय्या पर भी जिसको विराजमान करना नहीं चाहते हैं, वह मेरी अधीश्वरी श्रीराधा दिन रात मेरे हृदय में विराजित रहें।।१८।।

अति दोलितमूर्म्मि मालया सततोद्वेल महारसाम्बुधेः।
तदह नव गौरनीलरुङ् मिथुनं कुंजकुटीषु लालये।।१६।।

निरन्तर उद्वेलित महारस समुद्र की तरंगों में आन्दोलित वह गौरनीलकान्तिमय जोड़ी का मैं कुंजकुटीर में लालन करता हूं।।१६।।

स्पृहये रसपुंज राधिका रतिकुंजे लतिकौघवीवद्धधीः।
भवितुं कवि तुण्ड मण्डली कुमुदानन्दक कीर्ति चन्द्रिका।।२०।।

महारसवती श्रीराधिका का रतिकुंज में, लताओं में मैं बद्धमति होकर कवि मुख–समूह रूप कुमुदों के आनन्ददायक चन्द्र की कीर्तिरूप ज्योत्स्ना होने की इच्छा करता हूं।।२०।।

मदकेकि शिखण्ड मण्डलं नव गुंजाफल मंजु हारिणम्।
मुरलिध्वनि मोहिताखिलं भज वृन्दावन नागरीविटम्।।२१।।

मत्त मयूर पुच्छ का चूड़ा धारण करने वाले, नवगुंजाओं की मनोहर माला को धारण करने वाले, मुरलि ध्वनि से जगत् को मोहन करने वाले श्रीवृन्दावन–नागरि–लम्पट का भजन करो।।२१।।

मधुरं मधुरं बने बने कल कूजन्नव कोकिलाकुलम्।
अखिलर्त्तूलसल्लताद्रुमं श्रय वृन्दावन नाम तद्वनम्।।२२।।

प्रति वन में मधुर से भी अति सुमधुर, अव्यक्त मधुर ध्वनि द्वारा नव कोकिलाकुल–मुखरित, सर्व ऋतु उपयोगी वृक्षलतादि युक्त श्रीवृन्दावन नामक इस वन का आश्रय कर।।२२।।

मदनोन्माद घूर्णितारुणक्षण मुद्यत्पुलकं क्षणे क्षणे।
परिचुम्बित राधिकामुखं भज वृन्दावन कुंजनागरम्।।२३।।

क्षण क्षण में मदनोन्माद वश जिसके अरुण नेत्र घूर्णित होते हैं, जिसका सर्वांग पुलकित हो रहा है, एवं जो श्रीराधिका का मुख चुम्बन कर रहा है, उसी श्रीवृन्दावन–कुंज–नागर का ही भजन कर।।२३।।

मुरलि कलगीत तोषित प्रियराधार्पित कण्ठमाल्यभृत।
पुलकोज्ज्वल फुल्ल विग्रहो हसितास्यः स हरिर्नमस्यताम्।।२४।।

जो मुरलिनाद से तोषिता प्रेयसी श्रीराधा से अपूर्ण की गयी माला को कण्ठ में धारण करते हैं, जो पुलक से उज्ज्वल प्रफुल्लित देह कान्ति युक्त हैं, जिनके मुख पर मुस्कान शोभित हो रही है, वह श्रीहरि नमस्कार करने योग्य हैं।।२४।।

रति मन्मथ कोटि मोहनं–विहरत् पूर्ण रसैक सागरम्।
नव काञ्चन नीलरत्नरुग्द्विमहस्तद्भज कुंजवीथिषु।।२५।।

कोटि रतिकाम मोहनकारी, निरन्तर विहारशील, पूर्ण रससागर, नव हेम एवं नीलमणि कांतिधारी युगलविग्रह का कुंजों के पथ पर भजन कर।।२५।।

हसत् परिहसन्मुहुर्वहुमिषान्मिथोऽङ्गस्पृशत्
प्रगायदथ वादयत् किमपि नृत्यदत्यद्भुतम्।
सुहेम हरिनीलरुक तदुभयं किशोरं महः
स्मराम्यति विचित्र सद्रस कथालि वृन्दावने।।२६।।

जो बार–बार हास–परिहास परायण हैं, बहुछलों से जो आपस में अंग स्पर्श कर रहे हैं, गान, वाद्य करते हुये भी जो अनिर्वचनीय मधुर नृत्य करते हैं, इस प्रकार सुहेम–इन्द्रनील कांतिधारी वह युगलकिशोर अति विचित्र रसीली सखियों से वेष्टित होकर श्रीवृन्दावन में विराजते हैं, मैं उनका स्मरण करता हूं।।२६।।

अनंगरस वारिधौ महति कुलशून्ये महा
महान्ध नव नागरौ प्रणय केलि कल्लोलिनी।
स्मरानवधि खेलिनौ ललित गौर नीलद्युति
न भंगुर सुसंगती मधुरधाम्नि वृन्दावने।।२७।।

पारावार विहीन महा अनंग रस समुद्र में महामदान्ध नागर युगल प्रणयकेलि महातरंगों में निमग्न होकर निरन्तर क्रीड़ा कर रहे हैं, उनकी सुन्दर गौरनीलकांति है। मधुर धाम श्रीवृन्दावन में उनका संग अबाधभाव से ही नित्य घनिष्ट हो रहा है, उनका स्मरण करो।।२७।।

क्वचिन्नव निकुंज के कपट् सुप्तकृष्णोरसि
स्फुरन्मुरलिका ह्रतिं निजसखी गिरा कुर्व्वती।
विधृत्य रमिता रुदत्यधिवलात् कलाशालिना
समेत्यहसदालि—निर्धूतशुगस्तु राधाह्रदि।।२८।।

किसी नवनिकुंज में बहाना करके सोये हुये श्रीकृष्ण के वक्षस्थल से अपनी सखी के कहने पर मुरलिका चोरी कर लेने पर कलाशाली श्रीहरि के सामने आकर उनको वरवश रमण कराने से जो क्रन्दन करती हैं और हंसती हुई सखी उनका फिर शोक दूर करती हैं—इस प्रकार श्रीराधा मेरे ह्रदय में उदित हों।।२८।।

उरः पुरट सम्पुट द्वितययुक् स्फुट लक्ष्यते
व्यनक्ति मुखमध्यतः शिखर पंक्तिमीषत् स्मितम्।
स्फुरत्यध्व—विद्रुमः करपदोर्मणिश्रेणयो—
र्वपुः सकलमेव ते कनकसारसारैः कृतम्।।२६।।

स्पष्ट ही दीखता है कि तुम्हारे वक्षस्थल दो स्वर्ण की पेटिकाएं हैं, तुम्हारी मृदु मधुर हास्य तुम्हारे मुख से पके हुए दाड़िम की आभायुक्त मणिमय पंक्ति को प्रकाशित कर रही हैं, अधरों पर प्रवाल स्फुरित हो रहा है, और हाथों—चरणों में (नख) मणियां दीप्ति विस्तार कर रही हैं तुम्हारा तो समस्त देह ही स्वर्णादि महासार वस्तुओं द्वारा रचा हुआ है।।२६।।

सहोद्वर्त्त्यस्नातौ सह रचित भूषौ सहभुजौ
सहाचाम्यासीनौ सह विरचिताऽऽरात्रिकविधी।
सहैव श्रीराधामुरलिधरनौ कुंजशयने
सुखं सुप्तौ विश्रामय मृदु मृदुन्मर्दित पदेः।।३०।।

दोनों का उद्वर्त्तन एवं स्नान एक संग ही होता है, एक साथ ही भूषण विन्यास, एक साथ ही आहार, आचमन एवं उपवेशन होता है, आरात्रिक भी दोनों का एक साथ होता है, एवं श्रीराधा मुरलीधर एक साथ ही कुंजशय्या पर सुख निद्रा में शयन करना चाहते हैं, मृदु मधुर पाद संवाहन करके उनको विश्राम कराओ।।३०।।

कदाचित् कालिन्दीतट भुवि कदाचित्तरुतले
कदाचित् कुञ्जात् गहन विपिने कर्हिचिदहो।
अभंगैः संगीतोत्तर मधुर कन्दर्प ललितैः
सदा वृन्दारण्ये मम हृदय बन्धू विहरतः।।३१।।

कभी तो कालिन्दी तट पर, और कभी वृक्ष के नीचे, एवं कभी कुंजों में तथा कभी घने वन में, कभी उत्तरोत्तर विवर्द्धित संगीतादि के समाप्त होने पर मधुर कामविलासादि द्वारा मेरे प्राणबन्धु युगलकिशोर नित्य ही वृन्दारण्य में विहार करते हैं।।३१।।

अहो मायाविद्यामयमखिल भेदं नहि मनाग्
विदन्तौ कन्दर्पोत्सव सहजवृती कथमपि।
महाविद्यानन्दात्मक विमल मूर्त्ति विहरतो
मम प्राणौ वृन्दावन भुवि सुगौरासित रुचि।।३२।।

अहो ! मायामय वा विद्यामय समस्त वस्तुओं का भेद कुछ भी जो नहीं जानते, एवं किसी भी तरह कामोत्सव में ही स्वाभाविक वृत्ति निर्द्धारण करके महाविद्यात्म एवं आनन्दस्वभाव विमल मूर्त्ति युगल सुन्दर गौरश्याम कांतिशाली मेरे प्राणधन श्रीवृन्दावन भूमि में नित्य ही विहार करते हैं।।३२।।

अये गौरश्यामद्वय मधुरधाम श्रुति शिरो
रहस्यानां सारं समुदयति वृन्दावन बने।
सदा भंगोत्तुंगस्मर समररंगं नवनवो
ल्लसत् कैशोरं तत्किमिति न रसेनानुसरति।।३३।।

अहो ! गौरश्याम विग्रह युगल वेदों एवं श्रेष्ठगणों के रहस्यों का सारस्वरूप होकर भी श्रीवृन्दावन में समुदित हो रहे हैं, वे नित्यवर्द्धनशील उन्नत स्मर–समर रंग में नव नवायमान किशोर धर्मावलंबी हैं, तो तुम रस पूर्वक उनका क्यों अनुसरण नहीं करते हो ?।।३३।।

शृणु भ्रातस्त्वं मे ननु शपथपूर्वं वच इदं
हरेः पादौ जानन्नहि नहि किमप्यति मधुरम्।
चमत्कार स्तवाप्यति मधुरतायः परतरः
परागे श्रीवृन्दाविपिन वर–कन्दर्प पदयोः।।३४।।

हे भ्रातः ! मैं शपथपूर्वक कहता हूं, तू सुन, श्रीहरि के पादपद्म युगल का ज्ञान हो जाने से कुछ विशेष मधुरता की प्राप्ति नहीं होती, क्योंकि श्रीवृन्दावनीय श्रेष्ठ कामदेव के चरण कमलों की पराग (रेणु) में ही उससे अधिकतर माधुर्य का चमत्कार है।।३४।।

अद्यत्वद्वहुशिक्षया सखि ! मया मानः समालम्बितः
तत्राभूद् यदसह्यदुःखमपि तत्कथ्येत कस्याग्रतः।
श्रीवृन्दावन पुष्पमण्डित वपुर्वंशीधरः सेन्द्रियं
देहं कर्षत एकतस्तव गिरायद गौरवाच्चैकतः।।३५।।

अरी सखी ! आज तुम्हारी बहु शिक्षा से तो मैंने मान किया था, किन्तु उससे जो दुःसह दुख हुआ है, उसे और किसे सुनाऊं ? एक ओर तो श्रीवृन्दावन के पुष्पों से शोभित विग्रह वंशीधारी इन्द्रियों सहित मेरे शरीर को आकर्षण कर रहा था और दूसरी ओर तुम्हारे बन्धनों के गौरव ने मुझे आकर्षित कर रखा था।।३५।।

वृन्दारण्यं मनसिजमयं तत्र नित्यं वसन्त–
स्तत्रोत्फुल्ला नव तरु तलास्तत्र गुंजति भृंगाः।
मत्ताश्चूतांकुरकवलनैः कोकिलाः सं रुवन्ति
श्यामः साक्षाद् वर मनसिजस्तत्र का मानवार्त्ता ?।।३६।।

श्रीवृन्दावन काममय हो रहा है, उस पर भी यहां नित्य बसन्त है, और फिर सब तरु लता यहां प्रफुल्लित हो रहे हैं, हर भ्रमरों की गुंजार, आम्र मुकुलों पर आस्वादन मत्त कोकिलायें निनाद कर रही हैं, और सर्वोपरि श्याम भी साक्षात् श्रेष्ठ काम रूप से अवतीर्ण हो रहे हैं, तो क्या फिर यहां मान की कोई बात चल सकती है ?।।३६।।

सख्याद्य प्रतिवाधिताऽस्मि न भवान् भूयोऽभिभाष्यः शठो
नेक्ष्वश्चत्वमतो न संशयमतो मा किञ्च नो वाचया।
किञ्चालोक कृतानुरागक मुधा स्पर्शव्रततत्त्वद्धृता
मत्कण्ठे स्वमर्पिता परमियं गुञ्जावली नीयताम्।।३७।।

हे शठ ! आपसे बोलने एवं आपके दर्शन करने तक को भी आज सखियों ने मुझे मना कर दिया है। अब मुझे कुछ कह कर संशय में मत डालो।

परन्तु झूठे अनुराग के छल से वृथा स्पर्श करना तो तुम्हारा व्रत और स्वभाव ही है इसलिए अपने आप जो आपने मुझे माला पहिराई है—उस श्रेष्ठ गुंजामाला को वापिस ले लो।।३७।।

राधाया इति भाषितेन परमानन्द प्रवाहानहं
यानद्य प्रतिलब्धवान्न खलुते वाक् चेतसोर्गोचराः।
सख्यः प्रेक्ष्यमिथः स्मितं कुरुत किं युष्मत् कुचेष्टासु मे
जीवातुर्वनराज वैभवमथो दाक्षिण्य मेनीदृशः।।३८।।

श्रीराधा के इस वाक्य से आज मैंने जिस परमानन्द प्रवाह को प्राप्त किया है, वह निश्चय ही वाणी और चित्त से अगोचर है, हे सखीगण ! तुम आपस में देखकर क्यों हंस रही हो तुम्हारी कुचेष्टाओं (प्रतिकूलताओं) के बीच ही श्रीवृन्दावन के वैभव एवं हरिणनयना श्रीराधा का दाहिने होना अर्थात् अनुकूल रहना ही मेरे लिए जीवनमूरि है।।३८।।

....
....।
चूड़ां दिव्य विचित्र पुष्परचितां विधाय स्वयं
खेलति कोऽपि गोपकुसुमेष्वासोऽत्र वृन्दावने।।३६।।

.........स्वयं दिव्य विचित्र पुष्प द्वारा चूड़ा बना कर कोई गोप जातीय कुसुम धनु (कामदेव) इस वृन्दावन में लीला कर रहा है।।३६।।

श्रीवृन्दावन भूरिय मधुपतिः सर्वत्र धत्ते रसान्
सर्वस्थावर जंगमस्य हृदयं चाक्रम्य सोऽत्रस्थितिः।
अन्यत् किं सखी ! सोऽगमंगमपि मेऽवष्टभ्य कामोन्मदं
चेष्टावानल मक्षरोधमपि तन्मानन्य कः सम्भवः।।४०।।

एक तो यह श्रीवृन्दावनभूमि, उस पर फिर मधुपति सर्वत्र रस वर्षा कर रहा है, और यहां के स्थावर जंगम सब ही के हृदय में श्रीश्यामसुन्दर अवस्थान करते हैं और तो क्या सखि, वह मेरे प्रति अंग में कामोन्मद चेष्टा करते हैं, इन्द्रियों को रोकना भी तो मेरे लिए असम्भव हो गया है, बोलो, फिर मैं किस तरह मान करूं ?।।४०।।

संस्यूतात्म मिथो नवैरति दृढैः सत्प्रेम सूत्रैः सदा
हृद्वागिन्द्रियदेह तुल्यविषयाशेषेण सत्सुन्दरम्।
श्रीवृन्दावन नित्यकेलि विलसत् कैशोर नित्योदयं
गौरश्याम महोद्वयं मदकलं तत्स्वात्मभावेऽस्तु नः।।४१।।

नवीन अतिदृढ़ सुन्दर प्रेम सूत्र द्वारा सदा एक दूसरे के हृदय वाक्य, इन्द्रिय देह एवं इस प्रकार के सब विषयों में मिलित आत्म हैं, और सुन्दर श्रीवृन्दावन में नित्य केलि विलासवान् नित्य कैशोर वे गौरश्यामात्मक मदकल विग्रह युगल हमारे हृदय में स्व–स्वरूप से उदित हों।।४१।।

विन्दानः सततं किमेतदखिलं कोऽहं क ईशोन्विति
छिन्दानः सदुपासनच्छुरिकयादुस्नेह पाशं दृढम्।
रुन्धानः सततं कदिन्द्रियगणं विन्दानवाप्यं परं
वृन्दारण्य निषेवयैव सुसखे ! किं दान यज्ञादिकैः।।४२।।

हे प्रियोत्तम ! निखिल दृश्यमान वस्तुयें क्या हैं ? मैं कौन हूं ? ईश्वर क्या है ? इत्यादि तत्व सदा विचार करते–करते सदुपासना रूप छुरी से दृढ़ स्नेहपाश काट–काटकर, सर्वदा दुष्ट इन्द्रियों को निरोध करते करते एवं श्रीवृन्दावन की सेवा करते करते ही अप्राप्य वस्तु प्रेम को लाभ कर। दान वा यज्ञादिकों का कोई प्रयोजन नहीं।।४२।।

अन्योन्यांसार्पितोद्यत् पुलक मृदुभुजं सर्वतश्चारुहासो
दारालोकं सुमञ्जु क्वणित नवतुला कोटिकाञ्चि कलापम्।
आलिभिः स्वोत्तरीयेः कृतशिर उपरिच्छाय माभोज्यमान्
ताम्बूलध्याय वृन्दावनमतदुभयं धाम तद् गौरनीलम्।।४३।।

एक दूसरे के स्कन्धों पर मृदु बाहु अर्पित करने से पुलकित हो रहे हैं, सर्वत्र मनोमद हास्य का उदार आलोक विस्तार है, सुमनोहर शब्दायमान नवीन नूपुर, कांची आदि आभरण धारण कर रहे हैं, सखीगण अपनी अपनी ओढ़नी द्वारा उनके मस्तक पर छाया करके ताम्बूल भोजन कराती हैं–इस प्रकार श्रीवृन्दावन विहारी गौरनील युगल जोड़ी का ध्यान कर।।४३।।

कृष्ण प्रेम मयंक निर्मल चिदानन्दात्म श्रीवृन्दावने
तद्रूपादभुत वैभवै सुमधुरे तद्वर्द्धि तौर्य्यत्रि के।

श्रीकृष्णैक रसाभिमग्न पुरु रुग्देहेन्द्रियै सुन्दरे

.... ।।४४।।

....

.... ।

गोपीमण्डल उन्मद स्मरकला रंगेन नृत्यन्मुदा

निःसीम स्मर वाधया विहरति श्रीराधया माधवः।।४५।।

एकमात्र श्रीकृष्णरस में मग्न, अत्यन्त कांतिमय देह इन्द्रिय सुन्दर जानाकीर्ण श्रीकृष्ण रूप के आश्चर्य वैभव के सुमधुर भाव वर्द्धक, नृत्य गीत वाद्य विशिष्ट श्रीकृष्ण प्रेममय निर्मल चिदात्मक श्रीवृन्दावन में.........गोपी मण्डल में उन्मद स्मर कलारंग में नृत्यपरायण माधव असीम स्मर व्याकुल श्रीराधा के सहित विहार कर रहे हैं।।४४–४५।।

श्रीवृन्दावन मंजु कुंज भवन्वेष्वद्रीन्द्र सत्कन्दरे

कालिन्दी पुलिने कदम्ब विटपिच्छाया स्वति स्नेहतः।

नित्यं श्रीवृषभानुजाचरणयोर्दास्यैक लास्योद्वहे

स्वान्तस्यान्त रुदेतु मे मधुपतावाद्यरतिः पावनी।।४६।।

श्रीवृन्दावन के मनोहर कुंजों में, गिरिराज के सुन्दर कन्दरों में कालिन्दी पुलिन में, कदम्ब वृक्षों की छाया तले अति स्नेह पूर्वक नित्य ही जो श्रीवृषभानुनन्दिनी के युगल चरणों के दास्य मूलक लास्य परायण हो रहे हैं, उसी मधुपति में अति पवित्र आद्य रति (शृंगार भाव) मेरे अन्तःस्थल में उदित हो–यही प्रार्थना है।।४६।।

या गोवर्द्धन घटदान विषया या श्रीकलिन्दात्मजा

मध्यस्नानकला विकल्पित दुरु तारातरच्छद्मतः।

या वृन्दावन वाटिकासु कुसुमस्तेयस्य लीला परा

राधामाधवयोर्विनोदलहरी सा मे हृदि स्फुर्ज्जतु।।४७।।

गोवर्धन की जो घटदान लीला है वह, एवं यमुना में स्नान–केलि विलासादि एवं यमुना पार जाने के कर चुकाने के बहाने जो लीला हुई थी, वे

एवं और श्रीवृन्दावन के वृक्ष वाटिकादि के कुसुम चोरी आदि की जो लीलाएं—वे समस्त श्रीराधामाधव की विनोद लहरी मेरे हृदय में स्फुरित हो।।४७।।

मा याहि वृन्दाविपिनं विहाय भा याहि वृन्दाधि भय समन्तात।
सा राधिका तां नव कुंजवाटीं साराधिकां पूर्ण रसोत्सवेन।।४८।।

श्रीवृन्दावन को छोड़कर मत जाओ। जनसंगादि में भी मत जाओ क्योंकि सर्वत्र ही भय है। वही राधिका वही सार—राधिका अर्थात् पूर्णतम सार वस्तु नव वाटिका को पूर्ण रसोत्सव से शोभित कर रही हैं।।४८।।

नित्यं मन्द सुगन्ध शीतल मरुत सं सेविते सर्वतो
दिव्यामोद मिलज्जल स्थलभवाऽनेक प्रसूनोद्गमे।
कालिन्दीतट नीपराजि सुतले खेलत् किशोरद्वय
नाना काम कला रसेन सततं तद् गौरनीलं भजे।।४६।।

नित्य मन्द सुगन्धित वायु द्वारा सेवित, जल में एवं स्थल पर होने वाले अनेक प्रकार के कुसुमों के प्रस्फुटित होने से चारों तरफ दिव्य गन्धपूर्ण जो कालिन्दी तट के नीपवृक्षों की सुन्दर छाया में अनेक विध कामकलारस से सदा क्रीड़ा करते हैं, उन गौरनीलात्मक युगलकिशोर का भजन कर।।४६।।

कालिन्दीपुलिने कदम्बविटपिच्छायासु रत्नोल्लसद्
वल्लीमण्डप उज्ज्वले मरकतोन्मीलत् प्रदीपालिनि।
मुक्ताकुट्मल गुच्छहीर कुसुमे वैदूर्य्य सत् पल्लवे
ध्यायामि स्मरकेलि नर्मनिरत श्रीराधिकामाधवम्।।५०।।

मरकत मणिमय प्रदीपावलि से शोभित, मुक्ता कुट्मल स्तवक से रचे हुए हीरों के कुसुमों से भूषित, वैदूर्य मणिमय सुन्दर पल्लवों युक्त वृक्षों से मण्डित कालिन्दी के पुलिन में कदम्ब वृक्षों की छाया में रत्नों से बने हुए उज्ज्वल लता मण्डप में काम केलि नर्म-निरत श्रीराधामाधव का मैं ध्यान करता हूं।।५०।।

कदाचिद चिरप्रभा घन इव क्षणोद्घाटिता
खिलस्मर वशाकृतिः प्रियतमो रसा खेलति।
कदा च नव काञ्चन व्रतति सत्तमालायितं
हरिरं वलयते लसत् स्व वपुषा—सुगौर—त्विषा।।५१।।

कभी तो मेघ की गोद में बिजली की भांति क्षणकाल में कामवशाकृति सर्वभाव प्रकट करके प्रीतम के वक्षस्थल पर क्रीड़ा करती है और कभी नव स्वर्णलता सुन्दर श्याम तमाल की भांति श्रीराधा अपने सुन्दर गौर वर्ण उज्ज्वल देह द्वारा श्रीहरि को वेष्टित करती है।।५१।।

कदापि मदनोन्मदा पुलकपूर्णदोः कन्दली
द्वयेन दयितोल्लसत् पुलक कण्ठमाश्लिष्यति।
कदाप्यगुरु सौरभ प्रियभुजेन कण्ठं निजं
प्रवेष्टयति तत् कराम्बुज–तल निधत्ते हृदि।।५२।।

कभी तो मदनोन्मत्त होकर पुलक पूर्ण युगल बाहुलताओं से प्रीतम के उल्लसित पुलकित कण्ठ को आलिंगन करती है, और कभी प्रीतम की अगुरु सौरभयुक्त बाहु द्वारा श्रीराधा अपने कण्ठ को वेष्टित करती हैं, एवं उनके कर पद्म तल को अपने हृदय पर स्थापन करती हैं।।५२।।

कदापि कलिताञ्चला रति कलोर्मिभिश्चञ्चला
विकर्षति निज प्रियं नव निकुंजवीक्षाच्छलात्।
कदाप्यतितृषा मृषा वदन पद्म जिघ्रांसया
मुहुर्मुरलि मोहन स्मित मुखाम्बुज चुम्बति।।५३।।

कभी तो आंचल पकड़ कर एवं रति विलास की तरंगों में चंचला होकर नव निकुंज दर्शन के छल से अपने प्रीतम को श्रीराधा आकर्षण करती हैं, और कभी अति तृष्णातुर होकर मुखकमल को सूंघने के बहाने की लालसा प्रकाश करती हुई बार–बार मुरलिमोहन के मृदु मधुर हास्य शोभित मुखकमल को चुम्बन करती हैं।।५३।।

अदक्षिण कराम्बुजान्नमित वर्हचूड़ हरेः
प्रगृह्य चिबुकं मनोहरमवामहस्तेन तु।
कदापि पुलकावलि वलित चारुगण्डस्थलं
महा रभस चुम्बनैरधर शीधु निष्कर्षति।।५४।।

वाम हस्त कमल से श्रीहरि का मोरपुच्छ निर्मित चूड़ा झुकाकर एवं दक्षिण हाथ से उनकी मनोहर चिबुक पकड़कर कभी उस पुलकावलि मण्डित

गण्डस्थल को महाप्रेमपूर्वक चुम्बन करके श्रीराधा अधर सुधा को निष्कासित करती है।।५४।।

कदापि निजभूषणैर्मदन मोहनं भूषयेत्
स्वमेव परिमण्डयेत् क्व च मुदापि तन्मण्डनैः।
कदापि कुरुते निज प्रियतमांग रागांचितं
स्वकं स्वकुच कुंकुमादिभिरथ प्रियं लिम्पति।।५५।।

कभी अपने अलंकारों से मदन मोहन को सजाती हैं, कभी उनके भूषण लेकर अपने को सजाती हैं, कभी अपने प्रीतम का अंगराग लेकर अपना देह मार्जन करती हैं, और कभी फिर अपने कुच कुंकुमादि से श्रीराधा प्रीतम के शरीर को लेपन करती हैं।।५५।।

कदापि हरिकण्ठग स्रजमसौ स्वकण्ठेऽर्पय–
त्यमुष्य च सुकण्ठगां रचयति स्वकण्ठस्रजम्।
कदापि बहु निन्दयति प्रणयते कदाचित् स्तुतिं
कदापि रुषिता कदाप्यति गभीरधी स्तुष्यति।।५६।।

कभी तो श्रीहरि की कण्ठमाला (श्रीराधा) अपने कण्ठ में अर्पण करती हैं, और कभी अपनी ही सुन्दर (कण्ठ) माला को अपने कण्ठ में धारण करती हैं, कभी बहु निन्दा करती हैं, और कभी अनेक स्तुति करने लगती हैं, कभी क्रोधित होती हैं, और कभी अति गम्भीर चिन्ता में पड़कर सन्तुष्ट हो जाती हैं।।५६।।

कदाचिदतिदूरतः स्मरभरार्दिता रोदिति
क्षिपन्त्यपि सखीजन चलति कुंज मेकासितम्।
अलक्ष्य नयनेङ्गितैः वपुषि चांगुलीघट्टनै
र्लतागृहमनुप्रियं दिशति पक्षकेनागमम्।।५७।।

कभी बहुत दूर से ही कामपीड़िता होकर रोने लगती हैं, सखियों को भी वर्ज्जन करके अकेली ही उनको (श्रीश्यामसुन्दर को) पकड़ने के लिये कुञ्ज में चली जाती हैं दूसरों से छिपाकर नेत्रों के इशारों से सिर एवं अंगुली चलाकर प्रीतम को लतागृह की खिड़की से अन्दर आने को कहती हैं।।५७।।

रमादि वरवर्णिनी निकररूप विप्रङ्महा
सुरूप सुषमार्णवे नवकिशोर गोपीगणे।
विचित्रतर तारकास्विव सुचन्द्रलेखामहं
स्मरामि वृषभानुजायं मधुरभानुजा कानने।।५८।।

लक्ष्मी आदि रूपवती के रूपबिंदुओं के महा सुन्दर लावण्य की समुद्र स्वरूप नवकिशोर गोपियों के समाज में विचित्रतम ताराओं में सुन्दर चन्द्रलेखा की भांति वृषभानुनन्दिनी का मधुर–कालिन्दीतटवर्ती श्रीवृन्दावन में स्मरण करता हूं।।५८।।

अनंग रस माधुरीभर धुरीण लीलानिधिः
स्फुरत् कनकचम्पक प्रकर गौर गात्रच्छटा।
अहो मदनमोहन स्फुरदुरः स्थलालंकृति–
र्नवांकुरित यौवना जयति मे निज स्वामिनी।।५६।।

अहो कामरस माधुर्यमय श्रेष्ठ लीलासागर, स्वर्णचम्पक की भांति गौरगात्र छटा से दीप्तिमती, मदनमोहन के सुमनोहर वक्षस्थल की अलंकार स्वरूपा नवांकुरित यौवना मेरी स्वामिनी की जय हो।।५६।।

कमप्यखिल सुन्दरं दरदलन्नवेन्दीवर
स्फुरन्मुदिर मेदुर द्युतिमुदार लीलानिधिम्।
किशोरमति मोहनं स्मर रसैकमूर्त्ति वशं
विधाय पदयोर्वनक्षितिषु राधिका खेलति।।६०।।

कोई एक अनिर्वचनीय निखिल सुन्दर, ईषद् विकसित नवनील पद्म की भांति मेघघन कांति, उदार लीलासागर, अति मोहन एवं स्मर–रसैक मूर्त्ति किशोर को अपने वशीभूत करके श्रीराधिका श्रीवृन्दावन भूमि पर पैदल विचर रही हैं।।६०।।

प्रतिक्षण महाद्भुत स्मरकलामयं बिभ्रती
वपुः प्रतिपदात्भुत प्रकट कांति वन्याप्लुतम्।
निरन्तर निरंकुशोच्छलित कृष्णभावाम्बुधि
र्गुणैरसदृशाधिका विजयते मम स्वामिनी।।६१।।

प्रति क्षण ही महाद्भुत काम–कला–प्राचुर्य एवं प्रतिपद पर अद्भुत भावों में प्रकाशित होने वाले कांति–वन्यामय विग्रह को धारण करने वाली निरन्तर अबाध गति से उच्छलित कृष्णभाव–समुद्र–रूपिणी एवं गुण गरिमा असमोर्द्धा मेरी स्वामिनी की जय हो।।६१।।

रसोज्ज्वल निजेश्वरींगित तरंग रंग रिंगद्धियः
परिस्फुरदुपर्युपर्य्यधिक सत्कला कौशलाः।
महाप्रणय दोलितोत्पुलक चारुगात्र श्रियो
नव व्रज किशोरिकाः स्मरत राधिता किंकरीः।।६२।।

रसोज्ज्वला निजेश्वरी के इंगित तरंग रंग से चलने वाली बुद्धि युक्ता, ऊपर ऊपर सुन्दर कला कौशलादि की स्फूर्ति विशिष्टा, महाप्रणय से आन्दोलित पुलकित मनोरम गात्र सौन्दर्ययुक्ता नव ब्रज किशोरी श्रीराधिका की दासियों का स्मरण कर।।६२।।

निरन्तर रसामित प्रणयवीचि हिन्दोलने
श्चलन्मनसिजाम्बुधौ विविधकार्य पर्याकुलम्।
प्रधान ललितादिकं प्रिय सखी निदेशोत्सवं
स्मरामि वृषभानुजा चरण–किंकरी मण्डलम्।।६३।।

निरन्तर रस और असीम प्रणय तरंगों के आन्दोलन से चञ्चल काम समुद्र में विविध कार्यों में परिव्याकुल ललितादि प्रधान प्रिय सखियों के निर्देश से ही उत्सव मनाने वाली, श्रीवृषभानुनन्दिनी की दासियों को मैं स्मरण करता हूं।।६३।।

अमन्द रस तुन्दिले मधुरगुञ्जदिन्दीवरे
विरज्य निज मन्दिरे लसति सानुरागेन्दिरे।
सदा मदनमोहन प्रणय सम्पदासुन्दरे
रति वितनु राधिका मधुर माधवी मन्दिरे।।६४।।

अतिशय रस से विशाल, मधुरों की गुंजार से पूरित कमलों से शोभित, अपने मन्दिर को छोड़कर अनुराग वश जहां लक्ष्मी विचरण करती हैं, ऐसे मदनमोहन के प्रणय सम्पद से नित्य सुन्दर श्रीराधिका के मधुर माधवी मन्दिर में अनुराग वर्द्धन कर।।६४।।

असंख्य वर किंकरी–कलित मंजु–कुंचावली
निषेवन रसोत्सवे शुकपिकालि कोलाहले।
सुपुष्पितलताद्रुमे सुरभिशीत मन्दानिले
ममद्वितय जीवनं विहरतीह वृन्दावने।।६५।।

जहां असंख्य श्रेष्ठा दासीगण मनोहर कुंजावलि के सेवा रसोत्सव में मग्न हो रही हैं, शुक–पिक–भ्रमरादि पक्षी जहां कोलाहल कर रहे हैं, लता–वृक्षादि सुन्दर भाव से पुष्पों से शोभित हो रहे हैं, सुगन्धित शीतल मृदु मन्द वायु जहां प्रवाहित हो रही है, ऐसे इस श्रीवृन्दावन में मेरे जीवन युगलकिशोर विहार कर रहे हैं।।६५।।

अहो मदनमोहनोरसि रसेन दोलायितं
महः कनक चम्पक प्रकर गौरदिव्याकृति।
विचित्र रुचिवीचिभिः खचित चारु वृन्दाटवी
निकुंजवर मन्दिरे किमपि सुन्दरं खेलति।।६६।।

अहो ! मदन मोहन के वक्षस्थल पर रसपूर्ण डोलायमान स्वर्णचम्पकराज की भांति गौर वर्ण दिव्याकृति विशिष्ट एक अनिर्वचनीय ज्योति विचित्र कांति तरंगमाला द्वारा श्रीवृन्दावन को सुचारु भाव से शोभित कर सुन्दर निकुंज मन्दिर में क्रीड़ा कर रही है।।६६।।

महाप्रीति ज्योतिरस जलनिधौ पूर्णविमले
स्फुरद्वृन्दाटव्यां नवतरुलता मन्दिरवरे।
किशोरद्वन्द्वं तत्सहजनवकन्दर्प ललितं
ममान्तः सद्भावे कनकहरिनीलार्च्चि रुदियात्।।६७।।

पूर्ण विमल रस समुद्र में महाप्रीतिमान् ज्योति युगल श्रीवृन्दावन में नव तरुलता निर्मित मन्दिरों में स्फुरित हो रही हैं, वे सहज नव कन्दर्प ललित स्वर्ण इन्द्र नीलमणि कान्तिधारी युगल किशोर मेरे अन्तःकरण में सद्भाव से उदित हों।।६७।।

विशुद्धाद्य प्रेमात्मकं परमचिज्ज्योतिरमृता
म्बुधिद्वीपस्यान्तः स्फुरतु हृदि वृन्दावनम्।

कदम्बच्छाया सामध मधुर राधा मधुपती
रहो दृष्ट्यावेशे स्फुरतु मम साश्रादिव ततः।।६८।।

विशुद्ध शृंगाररस प्रेमात्मक परम चिज्ज्योति के अमृतमय समुद्र दीप में स्थित श्रीवृन्दावन नामक वन मेरे हृदय में स्फुरित हो, फिर कदम्ब वृक्ष की छाया तले निभृत–स्थान पर परस्पर दर्शनावेश में बैठे हुए श्रीराधामाधव साक्षात् देखने की भांति मेरे मन में स्फुरित हों।।६८।।

महास्थेयः प्रेमा भरतु मम हेमाम्बुजवरो
दरोद्भासे ज्योतिष्युरसि किल ते श्याम विधो।
महानन्दे वृन्दावन नवनिकुंज स्मरपुरे
रफुरत्युन्मर्यादां वहति रस साम्राज्यलहरीम्।।६९।।

हे श्यामचन्द्र ! हमारी हेमकमलिनी तुम्हारे हृदय में ज्योति रूप से ईषत् उदय होकर उसे निश्चल महाप्रेम में पूरित करे, एवं महानन्दमय श्रीवृन्दावन के नव निकुंज रूप मदन मन्दिर में असीम रस साम्राज्य लहरों को विस्तार करते हुए स्फुरित हों।।६९।।

अनन्त श्रीराकावर कनकचन्द्रच्छविरसो
तरंग प्रत्यंग प्रसरदति सौन्दर्यजलधिः।
अहो भ्रकुट्यैरुन्मद मदन कोटिः प्रकटय
न्त्यजस्रं श्यामांके मम विहरते जीवनकला।।७०।।

अहो, अनन्त सौन्दर्य पूर्ण पूर्णिमा के श्रेष्ठ चन्द्र कान्ति समूह के रस में उच्छलित प्रति अंग से जो अति सौन्दर्य सागर प्रसरित कर रही हैं, एवं प्रति भ्रकुटि चालन में निरन्तर उन्मत्त कोटि मदन को प्रकाशित कर रही हैं, वह मेरी जीवन कला श्रीराधा श्रीश्यामसुन्दर की गोद में विहार कर रही हैं।।७०।।

अहो वृन्दारण्ये प्रति नव निकुंजं प्रतिनव
द्रुमोद्यानं–प्रत्युज्ज्वल–नव विलास स्थलवरम्।
मम प्राणद्वन्द्व सहस नव कन्दर्प ललितं
सदा खेलावृन्दै र्मधुर र्मधुरां विन्दतिरतिम्।।७१।।

अहो ! श्रीवृन्दावन के प्रति निकुंज में, प्रति नव वृक्ष उद्यान में, प्रति उज्ज्वल नव विलास स्थलि पर सहज नव काम चेष्टा परायण मेरे प्राण

स्वरूपद्वय नित्य अनेक विध क्रीड़ा द्वारा मधुर से भी अति मधुर रति सुख लाभ कर रहे हैं।।७१।।

कदाचित् कालिन्दी कनकनलिनी भृंगरचनौ
कदाचित् कालिन्दी कमलवन हंस द्वयगती।
कदाचित् कालिन्दी तट कनकवल्लीवलित सत्
तमाल प्रोन्मीलन्नव मिलन लीलौ विलसतः।।७२।।

कभी वे कालिन्दी की स्वर्ण नलिनी तथा भ्रमर के दृश्य की रचना करते हैं, कभी कालिन्दी के कमलवन के हंस युगल की गति का अनुकरण करते हैं, और किसी समय कालिन्दी तट स्थित स्वर्ण लता से जड़ित तमाल वृक्ष की भांति नवमिलन प्रकाश कर दोनों विलास करते हैं।।७२।।

कदाचिद् गायन्तौ मधुर मधुर शारिशुकवत्
कदाचित् कूजन्तौ मदकल कुहुकण्ठ युगवत्।
कदाचिन्नृत्यन्तौ सपदि शिखिनी–मत्त–शिखीवत्
कदाचित् पश्यन्तौ सचकित कुरंगी हरिणवत्।।७३।।

कभी तो शुक–शारि की भांति मधुर मधुर गान करते हैं, और कभी मस्त कोकिलों के कंठ स्वर से दोनों "कुहु–कुहु" ध्वनि करते हैं, कभी मोरनी एवं मतवाले मोर की तरह अतिद्रुत नृत्य करते हैं, और कभी चकित हरिणी एवं हरिण की तरह देखते रहते हैं।।७३।।

सदा राधाकृष्ण प्रणय–पुलकाश्रुद्गमभृतः
किशोरीः कन्दर्पाकुल कनक गौरांग लतिकाः।
प्रसाद स्रगवस्त्राभरण कृत भूषाः प्रणयिनोः
प्रपद्ये श्रीवृन्दावनभुविविचित्राखिल कलाः।।७४।।

श्रीराधाकृष्ण के प्रणय में नित्य पुलकाश्रुओं से शोभित देह वाली कन्दर्प रसाकुलित स्वर्ण गौर देह लतिका धारण करने वाली, प्रियतम युगल के प्रसादी मालावस्त्र अलंकारादि से अपने अपने अंगों को सजाने वाली विचित्र समस्त कलाओं को जानने वाली किशोरीगणों का इस श्रीवृन्दावन भूमि में मैं आश्रय लेता हूं।।७४।।

महाप्रेमानन्दात्मक परमविस्तीर्ण जलधौ
महाज्ज्योतिर्दीपे मधुरतर वृन्दावन वनम्।
विचित्रां तत्रापि स्मर कुसुमवाटीं नव नवै–
र्निकुंजेश्रीराधासुघनरसपुञ्जैरिव वृताम्।।७५।।

महाप्रेमानन्दात्मक परमविस्तीर्ण समुद्र के महाज्योतिर्मय द्वीप में मधुरतर वृन्दावन नामक यह वन विराजता है, उसमें नव नवनिकुंज परिशोभित श्रीराधा की सुघन रस पुंज से आवृत प्रकाश्यमान जो विचित्र कुसुम वाटिका है उसको स्मरण कर।।७५।।

महानिःसंगानां सहजमधुरात्म प्रिय कथा
प्रसंगानां प्रेमोत्पुलक गलदस्रा कुलगिराम्।
अपारे श्रीवृन्दावन रस महाब्धौ विहरतां
शिरो मे सोल्लासं वहतु महतां श्रीपदरजः।।७६।।

जो महानिसंग हो रहे हैं, जो सहज मधुर स्वभाव प्रियतम की कथा प्रसंग में लगे हुए हैं, जिनके वाक्य प्रेम, उच्च पुलक एवं गलदश्रु आदि से गद्‌गद हो रहे हैं, जो श्रीवृन्दावन के अपार रस महासमुद्र में विहार कर रहे हैं, उन महापुरुषों की श्रीपादरज मैं अपने मस्तक पर आनन्द सहित धारण करता हूं।।७६।।

सुधा सध्र चीनैः शिशिर मृदुहासति मधुरै
र्वचोभिः श्रीवृन्दावन रस सुवासै स्तनुभृताम्।
तदेवान्त र्येषां चकितांगी प्रति मुहु
र्दशोर्भंगी संगीकृत रसतरंगा विदधती।
प्रणय रस पूरोत्तरलिता किशोरी
काश्मीर द्रव कनक गौरी मम गतिः।।७८।।

अमृत से भी श्रेष्ठ सुशीतल एवं मृदुहास्य युक्त अति मधुर श्रीवृन्दावन रस सुवासित वाक्य द्वारा जो प्राण धारण करते हैं, उनके हृदय में चकित चकितांगी बार बार रस तरंगमयी नयन भंगी विस्तार करते हैं, इस प्रकार प्रणय रस प्रवाह में चंचल कुंकुम द्रववत् हेम गौरी किशोरी ही एक मात्र मेरी गति हैं।।७७।।७८।।

अनन्ताभिनर्हेमामृत सुरुचि वीचिर्भिरखिलं
नयन्ती श्रीवृन्दावनमखिल वृन्दारक नूतम्।
सदा निर्म्मर्यादोच्छलदतुल माधुर्य जलधिः
परो मे सा काऽपि स्फुरित वृषभाणोः कुलमणि।।७६।।

जिन्होंने समस्त श्रीवृन्दावन को अनन्त हेमामृत सुन्दर कान्ति तरंगों से अखिल देवगणों का भी वन्दनीय बना रखा है, जो नित्य उच्छलित असीम अतुलनीय माधुर्य समुद्र विशेष हैं, एवं श्रीवृषभानु महाराज की परम कुलमणि हैं, वही कोई एक अनिर्वचनीय मूर्त्ति मेरे हृदय में स्फुरित हो रही है।।७६।।

विदूरे त्रैगुण्यादथ विमल विद्यामय परे
महानन्दे वृन्दावन भुवि सुकन्दे रसतरो।
अमर्यादा राधा चरणपरिचर्य्या–रस महा
महोदिद्वन्दवा हृदि परम धन्या स्फुरतु वः।।८०।।

तीन गुणों से अति परे एवं विमल विद्यामय जगत् से भी बहुत दूर परमानन्द जनक रस वृक्ष के सुकन्द स्वरूप यह श्रीवृन्दावन–भूमि पर परम धन्य है, असीम श्रीराधाचरण सेवारस के महासागर की वन्या तुम्हारे हृदय में स्फुरित हो।।८०।।

पुमर्थाश्चत्वारो दिशिदिशि विधायाञ्जलिपुटं
स्थिताः सेवोत्सुक्याद् भजति च विभूतिर्भगवतः।
अमन्दानन्दाब्धि प्लुत मधुर वृन्दावन वने
सदा राधाकृष्णौ स्मरति रतिसारेन सुकृती।।८१।।

निरतिशय आनन्द समुद्र में निमग्न मधुर श्रीवृन्दावन में जो पुण्यात्मा प्रेमपूर्वक श्रीराधाकृष्ण का स्मरण करता है, तब धर्म–अर्थ–काम–मोक्ष ये चारों पुरुषार्थ हाथ जोड़कर चारों ओर से उसकी सेवा करने के लिए उत्साहित होकर खड़े रहते हैं एवं भगवान् की विभूतियां भी उसका भजन (आश्रय) करती हैं।।८१।।

....
....।

स्मरन् काञ्चित सेवामखिल जनसंगं परिहरन्
सदा राधाराधेत्यमल सुकृती कोऽपि जयति।।८२।।

.........कोई सेवा विशेष स्मरण करके जनसंग परित्याग कर निरन्तर "राधा"–"राधा" रटकर कोई विशुद्ध सुकृतिशाली यहां सर्वोत्कर्ष से विराजमान है।।८२।।

महाश्चर्य ज्योतिर्वपुषि नवकैशोर ललिते
महोवृन्दं निन्दद्रुचिर कनकेन्दो रुदयतः।
स्मरामि श्रीराधे किमपि मुरलीमोहनमनो
हर वृन्दारण्ये तव सुरस सिन्धूच्छलनकृत्।।८३।।

हे राधे ! श्रीवृन्दावन में सुरस सागर के उच्छलनकारी, मुरलीमोहन के मनोमोहन कारी, सुन्दर स्वर्ण चन्द्र के (मुखचन्द्र के) उदय होने पर अपरापर तेजस्क (सूर्य–चन्द्रादि) को निन्दित करने वाली तुम्हारे नव किशोर सुललित देह में जो अनिर्वचनीय महाश्चर्यमय ज्योति है, उसको मैं स्मरण करता हूं।।८३।।

महावेशाद्राधा मुरलिधरयोः पुष्पनिकरं
प्रदत्तं भूवल्लीवर विटपिनोऽधो रभसकृत्।
निदेशात् संप्राप्तं वरयुवतियुग्मं प्रियवहु
प्रसूनान्यारोप्य प्रणतमनु हासैः कुरुमतिम्।।८४।।

श्रीवृन्दावन भूमि के श्रेष्ठ वृक्ष लताओं के नीचे महा आवेश में स्थित श्रीराधामुरलीधर के ऊपर कौतुक वश पुष्प समूह झर रहे हैं, फिर वृन्दादेवी के इशारे से श्रेष्ठ दो सखियों ने मुस्कराकर प्यारे–प्यारे अनेक पुष्प अर्पण करके प्रणाम किया, इस लीला में मन को लगा।।८४।।

समुत्फुल्लद् वल्लीतरूषु उपगायच्छुक पिकं
समुद्योतद् भूमिप्रमद सुनटद्वर्हि नटनम्।
सरिच्छैला द्येत्युल्लसित मणिझंकार ललितं
ध्रुवं वृन्दारण्यं हरिरस महाविह्वलमिदम्।।८५।।

सम्यक् प्रस्फुटित तरु लताओं पर शुक कोकिलादि सुसंगीत करते हैं, समुज्ज्वल भूमि पर प्रमोद परायण सुनाट्यकारी मोर नृत्य कर रहे हैं, नदी

पर्वतों पर अतिशय शोभायुक्त मणियों की ललित झलमल—झलमल ज्योति चमक रही है, यह श्रीवृन्दावन निश्चय ही हरिरस में विह्वल हो रहा है।।८५।।

त्वदंगच्छायायाः प्रसरमपि वीक्ष्योदित महा
.....स्मरावेश भ्राम्यन्मुरलिधर मौलौ विहरतः।
परागान् श्रीराधे तव निभृत दासीचरणयो
श्चिरं वन्दे श्रीवृन्दावन नवनिकुंजेश्वरि मुदा।।८६।।

हे राधे ! श्रीवृन्दावन निकुञ्जेश्वरी ! तुम्हारे अंगों की कांति को देखकर श्रीमुरलीधर का कामावेश से मस्तक चक्कर खाता रहता है वह उसे एवं तुम्हारी एकान्तिक दासियों की चरण—पराग में विहार कराते हैं, मैं सुचिरकाल तक आनन्द पूर्वक उसकी ही वन्दना करता हूं।।८६।।

प्रिये त्वं मामंगीकुरु च पुरु—चन्द्राभवदने
दृढ़ीयो निर्म्माणा भवतु रसनाद्या तव गुणै।
सदा स्थातुं कांखे विपिनवर कुंजे च नवयोः
सुखं पश्ये क्रीड़ां प्रणयरसयुक्तां हि युवयोः।।८७।।

हे प्रिये ! हे बहु चन्द्र कांति वदने ! तुम मुझे अंगीकार करो। तुम्हारे गुणों का गान करने में मेरी जिह्वा अतिदृढ़ भाव से संलग्न एवं सम्पत्तिशाली हो। मैं सर्वदा वन श्रेष्ठ श्रीवृन्दावन कुंजों में निवास करने की आकांक्षा करता हूं जिससे तुम दोनों नवयुगलकिशोर की प्रणय रस लीला को देख सकूं।।८७।।

अहो गौरश्यामं किमपि नव वृन्दावन लता
निकुंजे क्रीडन्तं मधुरं मधुभारेण सुभगे।
भज श्रीकालिन्दी स्फुटित तरुतीरे नव वयो
र्नवानंगासक्तं परमरस भावैक निरतम्।।८८।।

अहो ! श्रीकालिन्दी के पुष्पित वृक्षों से मण्डित तीर पर मधुर भार के सौभाग्ययुक्त नव वृन्दावन के लतानिकुंजों में नववयस्क, नवानंगासक्त, परमरसभाव में ही एक मात्र निरत, मधुर क्रीड़ा—परायण गौर श्याम युगल का भजन कर।।८८।।

प्रवीना संगीते कर कलित—वीणा सपुलकं
प्रगायन्ती श्यामं परम सुकवीनां वर रतिः।

नवीना सर्वांगे द्रुतकनक वत् स्निग्धसुरुचि
च्छवीनां स्वच्छन्दप्रभवखनि रास्तां मम हृदि।।८६।।

संगीत में निपुणा, हाथों में वीणा धारण करने वाली, पुलक मण्डित गात से श्याम सविध में संगीत करने वाली परम सुकवियों की श्रेष्ठरति की आस्पदे, नवीना वयसंयुक्ता, गलित सुवर्ण की भांति स्निग्ध–सुकान्ति विशिष्टा एवं सर्वविध कान्ति की एकमात्र प्रभवस्थली (श्रीराधा) मेरे हृदय में विराजमान हों।।८६।।

नमो वृन्दारण्ये रसिकवररंगी भगवते
नमो वृन्दारण्येश्वरि ! तव पदाम्भोजरजसे।
नमस्ते तद्द्वन्द्व प्रणय ललिते श्रीललिते
नमः श्रीमद्वृन्दाटवि ! सुबहुकृत्वस्त्वयि मम।।६०।।

श्रीवृन्दारण्य के रसिकवर रंगी भगवान को मेरा नमस्कार है, हे वृन्दावनेश्वरी ! तुम्हारे चरणकमलों की रज को नमस्कार ! युगलकिशोर की प्रणय स्वरूपा अति सुन्दरी श्रीललितादेवी ! तुम्हें नमस्कार है, हे श्रीवृन्दाटवि ! तुम्हें बहुत नमस्कार है।।६०।।

अनन्तब्रह्माण्डावलि–वलित मूल प्रकृतितः
परे ब्रह्मज्योतिष्यति रुचिर–वैकुण्ठ भवनम्।
तदन्त विभ्राजन्मधुर मथुरामण्डलमहो
रहस्यं तत्रापि स्फुरति मम वृन्दावनवनम्।।६१।।

अनन्त ब्रह्माण्डों को वेष्टित करने वाली मूल प्रकृति उससे परे ब्रह्मज्योति से अति मनोरम वैकुण्ठधाम है। अहो ! उसमें मधुर मथुरा मण्डल विराजित है, उसमें भी रहस्य (अति गुप्त) यह श्रीवृन्दावन मेरे हृदय में स्फुरित हो रहा है।।६१।।

न वैकुण्ठऽप्युत्कण्ठित मतिरहं मुक्तिपरमां
हरेः सर्वैर्देवादिभिरसुलभां प्रत्यपि सदा।
परं श्रीगान्धर्वामुरलिधरयो श्चारुचरणा
र्पणस्थल्यां वृन्दावन भुवि भरेयं तृणतनुः।।६२।।

वैकुण्ठ की प्राप्ति के लिए भी मेरी उत्कण्ठा नहीं है, सर्व देवों के लिए

दुर्लभ जो श्रीहरि मुक्ति दान करते हैं, उसको भी मैं नहीं चाहता हूं, किन्तु श्रीगान्धर्वा (श्रीराधा) और श्रीमुरलीधर के चारुचरणों की छाप युक्त जो यह श्रीवृन्दावन भूमि है इसमें जैसे भी मुझे तृण जन्म प्राप्ति का सौभाग्य मिले—यही प्रार्थना है।।६२।।

ददाना ताम्बूलं प्रियतम मुखेन्दौ सपुलकं
मुदा प्रेयोदत्तं मधुर मदती चर्वितमपि।
ततः किञ्चिद्दावाप्यति दयित दासी विवशय
न्त्यसौ वृन्दारण्य लसति मम जीवस्य वसतिः।।६३।।

पुलकित देह से प्रियतम के मुखचन्द्र में ताम्बूल अर्पण करती हुई, एवं प्रियतम से दिये हुये मधुर चर्वित ताम्बूल को आनन्द पूर्वक भक्षण करती हुई और उसमें थोड़ा अपनी अतिप्रिय दासीगण को देकर उन्हें विवश करती हैं, इस प्रकार मेरे जीवन की रक्षा वसतिस्थलि श्रीराधा श्रीवृन्दारण्य में विलास कर रही हैं।।६३।।

अनन्य श्रीराधापदकमल दास्यैक रसधी
र्हरे संगेरंग स्नपन समयेनाऽपि दधती।
वलात् कृष्णे कूर्पासकभिदि किमप्याचरति का
प्युदश्रुर्मेवेति प्रलपति ममात्मा च हसति।।६४।।

एकमात्र श्रीराधा के चरणकमलों के दास्य में ही अनन्य चिन्ता, निद्रा में भी श्रीहरि के साथ रंगकारिणी किसी सखी के प्रति बलपूर्वक श्रीकृष्ण ने उसकी कञ्चुकी को छिन्न–भिन्न कर कुछ आचरण किया जिस पर वह रोती हुई सेवा कर रही हैं एवं प्रलाप भी कर रही हैं, उसे देखकर मेरी आत्मा (प्राणेश्वरीराधा) हंसती है।।६४।।

अजस्रं स्रग्गन्धैर्व्यजनवर ताम्बूल मृदुपत्
सुसम्वाहैर्दिव्याभरण वसनाद्यैः प्रणयिनोः।
महाप्रेमावेशोत्पुलक रस घूर्णायित तनुः
सदाराधादासीः स्मर हृदय सेवां विदधतीः।।६५।।

हे मन ! प्रणयि युगलकिशोर नित्य माल्य, गन्ध, चामर व्यजन, ताम्बूलदान, मृदु मधुर पाद संवाहन, दिव्य वसन भूषण आदि पहराने से महाप्रेमावेश के

कारण पुलक रस में जिसका देह आन्दोलित हो रहा है, वह सेवा परायणा श्रीराधा दासियों को स्मरण कर।।९५।।

स्मर श्रीमद्वृन्दावनमति महानन्द रसदं
सदाति प्रेमार्द्रे हृदि नव किशोरौ परिचर।
कृपादृष्टिर्दासे हरि हरि कदा स्यान्मयि तयो
रिह प्राप्यैकान्तं प्रतिदिन मुदश्रु र्विलप भोः।।९६।।

अहो ! अति महानन्ददानकारी श्रीवृन्दावन का नित्य स्मरण कर। अति प्रेमार्द्र हृदय से श्रीनवयुगलकिशोर की परिचर्या कर। अहो ! कब इस दास पर युगल–कृपा दृष्टि होगी ? यही कहते हुए श्रीवृन्दावन के निर्जन प्रदेश में प्रतिदिन अश्रुपात करते–करते विलपते रहो।।९६।।

कदा यामो दामोदर परम कामोत्सव वनं
भवामो वामोरुप्रमुख विषयाऽमोहमनसः।
न यामोऽसच्छायाः पथमपि न यामो वनफला
दिभिः कालं नामोज्ज्वल हृदि भजामौ रसनिधी।।९७।।

मैं कब श्रीदामोदर के परम कामोत्सव वन में जाऊंगा और कब सुन्दरी कामिनी प्रभृति विषय में अमोहित चित्त होऊंगा ? कब मैं असत्कल्पित पथों पर न जाकर वन्यफलादिकों पर ही काल व्यतीत करूंगा एवं कब नाम ग्रहण के लिए उज्ज्वल हृदय से उस रस समुद्र युगलकिशोर का भजन करूंगा।।९७।।

का तव कान्ता क स्तव तनयः स्थिरमति रेतन्मृतिमनु गणयः।
अहह किमद्य न पश्यसि मरणं तव पर वृन्दावनमिहशरणम्।।९८।।

तुम्हारी कौन स्त्री है और कौन सा पुत्र है ? बुद्धि को स्थिर करके अपनी मृत्यु के बाकी दिनों की तो गणना कर। अहो ! आज ही क्यों तू अपनी मृत्यु को सन्मुख नहीं देखता है यदि देखे, तो एकमात्र श्रीवृन्दावन ही तुम्हारा परम आश्रय स्थल है।।९८।।

श्रीप्रबोधानन्द सरस्वती–विरचिते श्रीवृन्दावन–महिमामृतम् का
षोड़श शतक समाप्त हुआ।।१६।।

सप्तदश–शतकम्

नमस्तस्मै कस्मैचिदपि पुरुषायाद्भुत महा
महिम्ने विभ्राजत् कनकरुचिधाम्ने स्वकृपया।
असंकोचेनैवाश्वपचमखिलेभ्यः स्वयमहो
ददौ यः सद्भक्तिं विमलतर नाना रसमयीम्।।१।।

छन्द–प्रणवो पुरुषमहा महिमाद्भुत काञ्चन तप्त स्वरूप
करुणावश अति कृपा अहैतुक उपजी ह्रदय अनूप।
ताते अखिलश्वपच आदि कौ कियो स्वयं ही दान
सद्भक्ति जो मधुर विमलतर नानारस की खान।।१।।

अहो ! जिन्होंने अपनी कृपा से चाण्डाल पर्यन्त संकोच त्यागकर विमलतर विशुद्धा रसमयी भक्ति को दान किया है, अति उज्ज्वल स्वर्णकांति–धारी अद्भुत महिमा–युक्त अनिर्वचनीय पुरुष–प्रवर उन (श्रीकृष्णचैतन्यमहाप्रभु) को मैं प्रणाम करता हूं।।१।।

यस्मिन्न प्रविषेन्मनोऽपि महतां का तत्र वार्त्ता पुनः
शास्त्राणां ज्ञपितञ्च यद्भगवता भंग्यैव भक्तोद्धवे।
तद् वृन्दावनमुन्मदेन रसिक द्वन्द्वेन केनाप्यहो
नित्यक्रीडतया गृहीतमिह के विद्युर्न गौराश्रयाः।।२।।

छन्द–सन्तन हूं कौ नहि प्रवेश शास्त्रों की कौन चलावै
भगवत् हूं संकेत मात्र उद्धव को तनिक लखावै।
(श्री) गौर कृपा के आश्रित कोई लखै विपिन को सार
उन्मद रसिक रसिकनी नितजहां रसमय करत विहार।।२।।

(ज्ञान–योगादि साधनों द्वारा लब्ध सूक्ष्मबुद्धि) महापुरुषों का मन भी जब श्रीवृन्दावन के महा महिमासागर की थाह को नहीं पा सकता, तब शास्त्र इस बारे में क्या जान सकते हैं ? भगवान् (श्रीवासुदेव) ने इशारे से भक्त उद्धव को इस श्रीवृन्दावन की बात कही थी। अहो ! रसोन्मद् श्रीयुगलकिशोर ने इस श्रीवृन्दावन को अपनी नित्य क्रीड़ास्थली के रूप में ग्रहण किया है इसके निगूढ़

तत्व को श्रीगौरांग महाप्रभु के आश्रय ग्रहण किये बिना कोई भी जानने को समर्थ नहीं है।।२।।

गुणैः सर्वैहीनोऽप्यहमखिल जीवाधम तमोऽ—
प्यशेषैर्दोषः स्वैरपि च वलितोदुर्मतिरपि।
प्रसादाद् यस्यैवावि दमहोह राधां व्रजपतेः
कुमारं वृन्दावनमपि स गौरो मम गतिः।।३।।

छन्द—सर्व गुणों से हीन अखिल जीवों में अधम कहावों
दोष अशेष युक्त दुर्मति हों तिनकों पार न पावौं।
गौर कृपा से मैं कछु जान्यो श्रीवन—धाम प्रभाव
श्रीराधा व्रजपति कुमार को क्रीड़ा रसमय भाव।।३।।

अहो ! सर्वगुणहीन होते हुए भी, समस्त जीवों में अधम होते हुए भी समस्त दोषों की खान होते हुए भी एवं महादुर्बुद्धि होकर भी जिनकी कृपा से मैंने श्रीराधा; श्रीब्रजेन्द्रकुमार एवं श्रीवृन्दावन आदि को प्राप्त किया है, वही श्रीगौरांग महाप्रभु ही मेरी एकमात्र गति हैं।।३।।

श्रीवृन्दावन केलि रंग सहजं सौन्दर्य शोभावयो
वैदग्ध्यादि चमत्कृतेः परतरं विश्रान्ति धामाद्भुतम्।
तन्मे मोहन दिव्य नागर वर द्वन्द्वं मिथोजीवनं
गौर श्यामलमुज्ज्वलोन्मदरसाविष्टं हृदि स्फुर्जतु।।४।।

छन्द—श्रीवन केलि—रस रसिक, वयसुकुमार निधान
चमत्कार वैदग्धी परतर विश्रान्ती अस्थान।
मोहन नागर दिव्य परस्पर जीवन के आधार
गौर श्याम उज्ज्वल रस उन्मद हृदय फुरें इक बार।।४।।

श्रीवृन्दावन में सहजकेलि रंग परायण, सौन्दर्य—शोभा वयस वैदग्ध्य आदि चमत्कार के सर्वोत्कृष्ट विश्राम स्थल स्वरूप एक दूसरे के परस्पर जीवन मूल स्वरूप, उज्ज्वल उन्मद् रस में विभोर चित्त जो गौर श्याम वर्ण अद्भुत मोहन दिव्य नागरवर श्रीयुगलकिशोर हैं वे मेरे हृदय में स्फुरित हों।।४।।

इहभ्रामं भ्रामं जगति नहि गन्धोऽपि कलितो
यदीयस्तत्रैवाखिल—निगम—दुर्लक्ष्य—सरणौ।

छन्द—पूर्णकाम उद्धव भगवद पद सेवा सों सम्पन्न
अभिलाषी तृण गुल्म जन्म के रज पावन वृन्दावन।
वाको वंदन करौ दीन है जो मेरे आधार
श्रीराधा को विपिन कहावै रसमय जहां विहार।।१०।।

श्रीहरि के चरणकमलों के संवाहन रस का अनुभव कर लेने पर पूर्ण मनोरथ होकर उद्धवजी ने जिस स्थान पर तृण जन्म लेने की प्रार्थना की है, उस श्रीराधिका–कानन (श्रीवृन्दावन) को नमस्कार करता हूं।।१०।।

राधावल्लभ पादपल्लवजुषां सद्धर्मनीतायुषां
नित्य सेवितवैष्णवांघ्रिरजसां वैराग्य सीमास्पृशां।
हन्तैकान्तरस प्रविष्ट मनसामप्यस्ति यद्दूरत
स्तद्राधाकरुणावलोक मचिराद् विन्दतु वृन्दावने।।११।।

छन्द—(श्री) राधावल्लभ पाद पद्म की सेवा में तल्लीन
धर्म वैष्णवन् के जेते हैं पालन में परवीन।
भक्त चरण रज ही है जिनके साधन को आधार।
वैरागी, मुनि, यती, तपस्वी, वन सीमा के पार
जो नहिं पावैं, जाको तनकहु सूझि पड़ै नहि तत्त्व।
सो श्रीराधा कृपा दृष्टि श्रीवन को सुगम महत्व।।११।।

(श्रीवृन्दावन के बाहर) श्रीराधावल्लभ चरण कमल के सेवकों के सद्धर्मों में (विशुद्ध वैष्णव–धर्म में) सारी आयु व्यतीत कर देने वालों से, नित्य वैष्णवों की पद रज सेवन करने वालों से, वैराब्य की पराकाष्ठा प्राप्त त्यागीजनों से एवं और अधिक क्या कहूं, एकांत रस में (परमानन्द विशेष में) प्रतिष्ठित मन वाले महामनस्वीजनों से भी अति दूर (अगम्य) है, वह श्रीराधाजी की कृपादृष्टि श्रीवृन्दावन में अति थोड़े समय में ही प्राप्त हो जाती है।।११।।

राधानन्द किशोरौ निरवधि रस सागर निमग्नौ !।
निज केलि धाम वृन्दाविपिन मुद्वीक्ष्यैव सांख्यमाप्नुतः।।१२।।

छन्द—राधा–नन्द किशोर युगलनित रस सागर उन्मत्त
केलि धाम निज दूरिते देखि होत मदमत्त।

वाको दर्शन ध्यान सुमरि नित भक्तन को सुख होय
कहै प्रबोधानन्द पाद, मन वामें सदा समोय ।।१२।।

असीम रस सागर में निमग्न श्रीराधानंदकिशोर के निजकेलि धाम श्रीवृन्दावन के दूर से भी दर्शन करने से (अतुलनीय) सुख की प्राप्ति होती है।।१२।।

उद्दाम प्रमोदोज्वलैक रसया भक्त्या विधूतावृते
व्यक्तं कस्यचिदेव चित्तमुकुरे तत्तद्दिगाभोगवत्।
स्वमस्मिन् दिव्यविचित्र केलिमिथुनं तत् श्यामगौरविधु
ज्योत्स्नावत् परिचारयेत्तदिह किं विंदेऽथ वृन्दावनम्।।१३।।

छन्द—अति उद्दाम रसद भक्ति सों जिनके चित्त विधूत
भए मुकुट सम उज्ज्वल प्रकटी युगल केलि रस पूत।
ज्यों असीम दिक् दीखै सीमित कर दर्पण के बीच
तदवत् दुर्लभ वास करौं वन जों लौ आवै मीच।।१३।।

उद्दाम परमानन्द प्रद अद्वितीय उज्ज्वल रसपूर्ण भक्ति के द्वारा निज महाभाग्यवान पुरुषों की मलीनता का आवरण दूर हुआ है, उनके चित्त दर्पण में दिग्वलय (क्षितिज) की सीमा की भांति प्रकाशित होने वाले श्रीगौरश्याम–दिव्यविचित्र–केलि–मिथुन की जो श्रीवृन्दावन अपने देह में अवस्थान कर चन्द्रज्योत्स्नावत् सेवा करके प्रकाशित करता है, उस श्रीवृन्दावन को क्या मैं प्राप्त कर सकूंगा।।१३।।

विशुद्धाद्वैतैक प्रणय पीयूष जलधौ
घनीभूतद्वीपे समुदयति वृन्दावन महो।
मिथः प्रेमोद्घूर्णद्रसिक मिथुनाक्रीड़मनिशं
तदेवाध्यासीनः प्रविशति पदेक्वाऽपि मधुरे।।१४।।

छन्द—परम विशुद्ध अतुल्य प्रणय रस प्रेमामृत रस घनमय
सागर ते उद्भूत भयो है वृन्दावन सद् चिन्मय।
तहां वसत जे तिन महं ते कोऊ प्राप्त करें बड़भागी
तो पद मधुर, युगल रस केलि मिथुन दास्य अनुरागी।।१४।।

अहो विशुद्ध, अद्वितीय सर्वोत्तम प्रणय रस समुद्र का एक घनीभूत द्वीप श्रीवृन्दावन समुदित हुआ है, वहां एक दूसरे के प्रेम में उद्घूर्ण हुए रसिक युगलकिशोर का नित्यकेलिविलास सम्पादित होता है, अतएव श्रीवृन्दावन के आश्रितजनों का मन अनुपम मधुर पद (श्रीराधा दास्य) में प्रवेश होता है।।१४।।

नाहं वेद्मि कथं नु माधवपदाम्भोजद्वयीं ध्यायति
का वा श्रीशुक नारदाद्य कलिते मार्गेस्ति मे योग्यता।
तस्माद् भद्रमभद्रमेव यदिनामास्तां ममैकं परम
राधा केलि निकुंजमंजुलतर वृन्दावनं जीवनम्।।१५।।

छन्द—नहिं जानौं कमलापति के पद कैसे ध्यान लगाऊं
शुक नारद की भजन पद्धति योग नहीं कर पाऊं।
भद्र अभद्र होय जो हो सो मेरे इक आधार
राधा केलि पुंज वृन्दावन परम सार कौ सार।।१५।।

अहो लक्ष्मीपति के चरणकमलों की ध्यान–पद्धति को भी मैं नहीं जानता हूं, शुक नारदादिकों के धर्म–मार्ग (ऐश्वर्यज्ञान मिश्रित भजन) में भी मेरी क्या योग्यता है ? अतएव भला हो या बुरा मेरा तो केवल श्रेष्ठ श्रीराधा–केलि निकुंज पुंजों से सुशोभित श्रीवृन्दावन ही जीवन स्वरूप है।।१५।।

यत्सीमान मपि स्पृशेन्न निगमो दूरात् परं लक्ष्यते
किंचिद् गूढ़तया यदेव परमानन्दोत्सवैकावधि।
यन्माधुर्यकणोप्यवेदि न शिवस्वायम्भुवाद्यैरहं
तद् वृन्दावन नाम धाम रसदं वन्दामि राधा पतेः।।१६।।

छन्द—परस सकैं नहि वेद दूरि ते लक्ष्य कहत हैं
ब्रह्मा शंकर आदि योग युत नहि लहत हैं।
जाकै कण माधुर्य प्रेम उत्सव कूं तरसैं
अति रहस्य की अवधि गूढ़ तम कैसे परसें।
(श्री) राधामधुपति धाम नाम रसदा वृन्दावन
ताकों नमन करौं नित जो सद चिद् आनन्द घन।।१६।।

वेद भी जिसकी सीमा का स्पर्श नहीं कर सकते, केवल दूर से ही निर्देश करते रहते हैं, जिस धाम में केवल अति रहस्यमय परमानन्दोत्सव आदिकों की

चरम सीमा है, जिसके माधुर्य कण के लिये शिव सनकादि भी तरसते रहते हैं, उसी श्रीवृन्दावन–नामक श्रीराधापति श्रीकृष्ण को रस दान करने वाले धाम की मैं आराधना करता हूं।।१६।।

कदानुवृन्दावन कुञ्ज मण्डले भ्रमन् भ्रमन् हेम हरिन्मणि प्रभम्।
संस्मृत्य संस्मृत्य तदद्भुत प्रियद्वयं द्वयं विस्मृति मेतु मेऽखिलम्।।१७।।

छन्द–कब वृन्दावन कुञ्ज–कुञ्ज महि लीला चिन्तन डोलूं
नील हेममणि युगलनाम सुमिरण ते हिय को घोलूं।
इह विधि शुद्ध होइ जो अन्तः भूलै सब संसार
छहों ऊरमी देह जनित चिन्ता से होवों पार।।१७।।

ऐसा भाग्य मेरा कब होगा कि श्रीवृन्दावन कुंजों में पुनः पुनः भ्रमण करते हुए उस हेम मणि प्रभा श्रीराधा का एवं इन्द्रनीलमणिप्रभा श्रीगोविन्द का निरन्तर स्मरण करते हुए अपने समस्त व्यावहारिक कार्यकलापों को भूल जाऊँगा।।१७।।

छिद्येत खडशः इदं यदि मे शरीरं
घोरा विपद्विततयो यदि वा पतन्ति।
हा हन्त ! हन्त ! न तथापि न भूयाद्
वृन्दावनादितर तुच्छपदे पिपासा।।१८।।

छन्द–सबल स्वस्थ यह देह यदि मम टूक टूक ह्वै जाए
श्रेणीबद्ध विपद हूं श्रीवन–वास समय पै भाए।
जो कछु होवो हन्त ! हन्त ! मेरे मन यहि अभिलाषा
तब हूं अनन्त तुच्छ धामन मह तनिक न होय पिपासा।।१८।।

मेरा यह शरीर यदि खण्ड खण्ड होकर छिन्न–भिन्न हो घोर–विपद समूह मुझ पर आ पड़े, हाय ! हाय !! तो भी कभी श्रीवृन्दावन को छोड़कर अन्य तुच्छ स्थानों पर मेरे जाने की इच्छा नहीं।।१८।।

स्वयं पतित पत्रकाण्यमृत वत् क्षुधा भक्षयन्
तृषाः मिहिरनन्दिनी शुचि पयोऽञ्जलीभिः पिवन।
कदा मधुरराधिकारमणरास केलिस्थली
विलोक्य रसमग्नधी रधिवसामि वृन्दावनम्।।१६।।

छन्द—तरु लतन सों स्वयं गिरे हों सूखे पात चबाऊं
लगै पिपासा अंजुलि भर भर यमुना जल नित पाऊं।
देह अवसान काल लगि दुःखसहि करौं विपिन महि बास
युगल लाल केलि वन निरखों फुरै जु मधुर विलास।।१६।।

भूख में अपने आप गिरे हुए सूखे पत्तों को अमृत जान कर खा लूंगा, प्यास लगने पर कालिन्दी का पवित्र जल अंजुली भरकर पान कर लूंगा, इस प्रकार श्रीराधिकारमण की मधुर रास केलि—स्थली, समूह का दर्शन करते करते कब मग्न होकर मैं श्रीवृन्दावन में (आमरण) वास करूंगा ?।।१६।।

भूमिर्यत्र सुकोमला बहुविधप्रद्योतिरत्नच्छटा
नाना चित्रमनोहरा खगमृगाद्याश्चर्यरावादिमत्।
वल्लीभूरुहजातयोऽद्भुततमा यत्रप्रसूनादिभि
स्तन्मे मन्दकिशोरकेलिभवनं वृन्दावनं जीवनम्।।२०।।

छन्द—भूमि सुकोमल मृदुल रेणु अरु पद्मराग मणि कान्ति
खग मृग दिव्य मधुर शब्दावलि सुनियत जहं बहुभांति।
वल्लिलता तरु बहु समूह जहं सुरभित विकसित फूल
राधा नन्दकिशोर केलिवन मम जीवन को मूल।।२०।।

जिस धाम की भूमि अति कोमल है, जो नानाविध मणियों की छटा से परम उज्ज्वल एवं अनेक विचित्र भावों से मनोहारी है, जिस धाम के पशु—पक्षी भी आश्चर्यमय कलकल ध्वनि परायण हैं, जहां के लता वृक्षादि पुष्प फलादि से अद्भुत तम हो रहे हैं, श्रीराधानन्दकिशोर का केलिभवन वही श्रीवृन्दावन ही मेरा जीवन प्राण है।।२०।।

साक्षात् पुरौ श्रीपुरुषोत्तमाङ्घ्रि—सेवारसादप्यधिको रसौघः।
स्यन्देत वृन्दाविपिनेऽप्यदृष्टे—राधाप्रियेऽत्रोद्धव एव साक्षी।।२१।।

छन्द—परम पुरुष पद पंकज सेवा अन्य पुरिन विख्यात
पै तहं प्रेम रसास्वादन की नांहिन तनकहु बात।
सो तो गुप्त निधि केवल इक श्रीवृन्दावन आहि
प्रगट न हों जब कृष्ण तथापि, उद्धव दीन्ह गवाही।।२१।।

मथुरादि पुरियों में श्रीपुरुषोत्तम–वासुदेव के साक्षात् चरणकमलों का जो सेवारस है उससे भी अधिकतर (प्रेमानन्द) रस प्रवाह श्रीराधाप्रिय श्रीकृष्ण के साक्षात् दर्शन न प्राप्त होने पर भी इसी श्रीवृन्दावन में प्रवाहित होता रहता है–श्रीउद्धव जी इस बात के साक्षी हैं।।२१।।

जागर्ति दुन्दभिरवः परमोऽत्र "राधा
वृन्दावने वन" इति प्रकटः पुराणे।
तस्या विधेयमसमोर्द्ध महानुराग
मूर्त्ते स्तदंगनमपोह्य हरिं क्वपश्येः।।२२।।

छन्द—घोष दुन्दुभि करके बोलैं इक स्वर सबै पुरान
श्रीवन कृष्णास्वादन के हित राधा निधि महान।
शिरोमणि सब ही रमणिन मंह मूरति प्रेमल गात
इक पल छांड़ि इहै प्रिय–आंगन कृष्ण कहूं नहिं जात।।२२।।

"श्रीराधा श्रीवृन्दावन में हैं" यह परम वाक्य रूप नगाड़ा पुराणों में बज रहा है–असमोर्द्ध अनुराग मूर्त्ति श्रीराधा के उस प्रसिद्ध आंगन (श्रीवृन्दावन) को छोड़कर श्रीराधा वाक्य वशवर्ती श्रीहरि को फिर तू कहां पायेगा ?।।२२।।

मिलन्ति चिन्तामणि कोटि कोटयः
स्वयं बहिर्दृष्टि मुपैति वा हरिः।
तथापि वृन्दावन धूलिधूसरं
न देहमन्यत्र कदापि यातु मे।।२३।।

छन्द—मिलैं कोटि चिन्तामणि अन्यत् हरि हू दरस दिखावैं।
श्रीवन धूलि धूसरित यह तन अनत नहिं कहूँ जावैं।।२३।।

यदि कोटि कोटि चिन्तामणि स्वयं ही आकर प्राप्त हों और यदि श्रीहरि भी स्वयं नेत्रों के सामने दर्शन दें, तथापि श्रीवृन्दावन धूल–धूसरित यह मेरा शरीर (श्रीवृन्दावन की सीमा के बाहर) अन्यत्र न जाए–यही मेरी प्रार्थना है।।२३।।

कृपयतु मयि वृन्दारण्यराज्ञी मनाग
प्यति बहुल कृपोरु स्नेह भारादुदश्रुः।
फलतु तदनुकम्पाकल्पवल्ली फलं त्व
द्भुत मधि वसतिर्मे तत्प्रियाराम सीम्नि।।२४।।

छन्द—सर्व स्वतंत्र स्नेह परिपूरण प्रेमाश्रुयुत लोचन
वनाधीश्वरी एक बार करि कृपा निहारैं मोतन।
वाकै फल स्वरूप कानन सीमा में दृढ़तर वास
मो सम अधम जीव की फलवती है है वल्ली आस।।२४।।

अतिशय कृपा से एवं महास्नेहातिशय से सहलोचना श्रीवृन्दावनाधीश्वरी एक बार भी मेरे प्रति कृपा दृष्टिपात करें जिससे उनके प्रिय कानन (श्रीवृन्दावन) की सीमा में ही निरन्तर वास रूपी उनकी करुणा–कल्पलता का अद्‌भुत फल फलीभूत हो।।२४।।

तेनाऽकारि समस्त एव भगवद्धर्मोऽपि तेनाद्‌भुतः
सर्वस्मात् पुरुषार्थतोऽपिपरमः कश्चित् करस्थीकृतः।
तेनाधायि समस्तमूर्द्धनिपदं ब्रह्मादयस्तं नम–
न्त्यादेहान्तमधारि येन वसतौ श्रीवृन्दावने निश्चयं।।२५।।

छन्द—दृढ़ संकल्प वास वन जिनकौ धर्म भागवत साधै
उन पायो पंचम पुरुषारथ प्रेमावेश अगाधै।
सबै सुखों की करी उपेक्षा नमन करें चतुरानन
चहहिं देव उनकी पदरज जो वास करैं श्रीकानन।।२५।।

जिन्होंने मरण पर्यन्त श्रीवृन्दावन में वास करने का निश्चय कर लिया है, उन्होंने ही समस्त भगवद्धर्म कर लिये हैं उनके हाथ में समस्त पुरुषार्थों से बढ़कर एक अद्‌भुत परम पुरुषार्थ प्रेम आ गया है। वे मानों सब सुखादिकों के माथे पर सवार हुए हैं, उन भाग्यवान् पुरुषों को ब्रह्मादि देवता भी नमस्कार करते हैं।।२५।।

पुलिने पुलिने कलिंदजाया विचरंश्चापि तले तले तरुणम्।
प्रणयाद्‌भुत सौख्य कंद वृन्दाविपिने हंत कदा दिनानिनेष्ये ?।।२६।।

छन्द—पुलिन कालिन्दी के तट तरु तरु तल घूमौं
सुख के कन्द प्रेमघन श्रीबन की रज मुख सूं चूमौं।
कब सौभाग्य उदय ऐसा हो जीवन सफल बनाऊं
बसि वृन्दावन युगल नाम भजि युगल चरण रज पाऊं।।२६।।

अहो ! कालिन्दी के पुलिन पुलिन में एवं वृक्षों के तले तले विचरण करते करते अद्भुत प्रणय–सुखकन्द श्रीवृन्दावन में कब मैं अपने दिन बिताऊंगा ?।।२६।।

गौर श्यामल मिथुनं खेलति कन्दर्प लीला यत्र।
राधामाधवनाम्ना प्रथित–तन्नौमि कानन किमपि।।२७।।

छन्द–श्यामल गौर श्रीराधामाधव मनसिज लीलाधारी।
बन्दौं बार बार क्रीड़ास्थल वृन्दावन सुखकारी।।२७।।

जिस धाम में गौरश्याम श्रीराधा–माधव नामक युगल किशोर कन्दर्प लीला कर रहे हैं, उसी अनिर्वचनीय कानन श्रीवृन्दावन को मैं नमस्कार करता हूं।।२७।।

खगवृन्दं पशुवृन्दं द्रुमवल्लीवृन्द मुन्मद प्रेम्ना।
प्रीणयदमृतरसेन शान्त वृन्दावन नमत।।२८।।

छन्द–खग अनन्त पशु द्रुमवल्ली कहं उनमद् प्रेम प्रदायी।
सदा शांतरस अमृत वर्षी नमो श्रीवन सुखदायी।।२८।।

उन्मद् प्रेमपूर्वक अमृतरसदान करते हुए जो खग, पशु एवं वृक्षलताओं को भी प्रीति प्रदान करता है उसी शांत (राधा कृष्णनिष्ठ) श्रीवृन्दावन को तुम नमस्कार करो।।२८।।

ऊषरमपि हरिभक्तेर्नाना दुर्मार्ग निष्ठमप्यधमं।
वृन्दाविपिनमचिंत्य प्रभाव मुन्मादयेत् प्रेम्ना।।२६।।

छन्द–परम अयोग्य विमुख हरि भक्ति ऊसर हृदय कुगामी।
श्रीवन का अचिंत्य महिमा सों बनैं प्रेम पथ कामी।।२६।।

हरि भक्ति के उदय–विषय में ऊसर भूमिवत् अयोग्य हृदय को भी, एवं नानाविध दुष्ट मार्ग पर चलने वाले व्यक्तियों को भी, तथा अति अधम पुरुषों को भी अपने अचिन्त्य प्रभाव से श्रीवृन्दावन प्रेमदान करके उन्मादित किये रहता है।।२६।।

भक्त्यैकयाऽन्यत्र कृतार्थ मानिनो–धीरास्तदेतन्न वयं विदामः।
श्रीराधिकामाधव वल्लभं नः–परन्तु वृन्दावन मेव संश्रयः।।३०।।

छन्द—अन्य धाम महँ सिद्ध भक्तियुत धीर नहीं बन पाते।
ताते राधामाधव वल्लभ श्रीवन हमें सुहाते।।३०।।

अन्यत्र (श्रीवृन्दावन से अन्यत्र और तीर्थों में) एकान्त भक्ति—योग में जो अपने आपको कृतार्थ मानते हैं, उनको "धीर" कहकर हम विवेचना नहीं करते हैं, परन्तु श्रीराधा माधव का प्रियतम श्रीवृन्दावन ही एक मात्र हमारी गति है।।३०।।

दोषाकरोऽहं गुणलेशहीनः—सर्वाधमो दुर्लभ वस्तु कांक्षी।
वृन्दाटवी मुज्ज्वल भक्ति सार बीज कदा प्राप्य भवामि पूर्णः।।३१।।

छन्द—कवन दोष जो किये न मैंने लेशहुं गुण नहिं पाऊं
सर्वाधम अच्छत किन्तु मैं वस्तु दुर्लभ चाहूं।
अहो कभी परमोज्वल भक्ति रसमय पद अभिराम
बीज प्राप्त कर श्रीवृन्दावन ह्वै हों पूरण काम।।३१।।

मैं निखिल दोषों की खान हूं, गुणलेश हीन एवं सर्वाधम हूं, तो भी मैं दुर्लभ वस्तु की आकांक्षा करता हूं। मैं उज्ज्वल भक्ति के सार बीज रूप श्रीवृन्दावन का आश्रय कर कब पूर्णकाम होऊंगा ?।।३१।।

शुद्धोज्ज्वल प्रेमरसामृताब्धे—रनन्त पारस्य किमप्युदारं।
राधामिधं यत्र चकास्तिः सारं—तदेव वृन्दाविपिन गतिर्मे।।३२।।

छन्द—शुद्धोज्ज्वल रस प्रेम सुधानिधि परम उदार अपार।
मो गति वृन्दाविपिन उदित जहं राधानाम सुखसार।।३२।।

अनन्त अपार शुद्ध उज्ज्वल प्रेमरस समुद्र का सार रूप अनिर्वचनीय परम दानशील श्रीराधानाम जहां प्रकाशित होता है, वह श्रीवृन्दावन ही मेरी गति है।।३२।।

सर्वसाधन हीनोऽपि वृन्दारण्यैक संश्रयः।
यः कोऽपि प्राप्नुयादेव राधाप्रिय रसोत्सवम्।।३३।।

छन्द—हीन अखिल साधन ते अन अधिकारी हौं बन आश्रित।
प्राप्त होय राधा प्रिय रस उत्सव फल है यह निश्चित।।३३।।

सर्व साधन—हीन होते हुए भी यदि एकान्त भाव से श्रीवृन्दावन का ही कोई सम्यक् आश्रय कर सकता है तो वह कोई भी क्यों न हो, उसे श्रीराधाप्रिय रसोत्सव (रासकेलि— आनन्द) की प्राप्ति होगी।।३३।।

त्यजन्तु स्वजनाः कामं देह वृत्तिश्चमाऽस्तुवा।
न वृन्दावन सीमातः पदं मे चलतु क्वचित्।।३४।।

छन्द—पुत्र बन्धु पत्नी तज दें यहि दैहिक वृत्ति नहिं पाऊं।
एकहुं मनकामना यही श्रीवन तजि कहूं नहीं जाऊं।।३४।।

अपने सम्बन्धी अच्छी प्रकार मुझे त्याग करें अथवा जीविका का कोई उपाय न रहे, परन्तु श्रीवृन्दावन की सीमा के बाहर मैं एक पगमात्र भी न जाऊं।।३४।।

सा मे न माता स च मे पिता न — स मे न बन्धुः स च मे सखा न।
स मे न मित्रं सच मे गुरुर्न—यो मे न वृन्दावन वास मादिशेत्।।३५।।

छन्द—वे नहिं माता पिता बन्धु गुरु वे नहिं मित्र सखा जन।
जो नहिं यह आदेश करैं कि वास करहुं वृन्दावन।।३५।।

जो मुझे श्रीवृन्दावन वास की आज्ञा नहीं देते हैं, अर्थात् मेरे श्रीवृन्दावन वास में सहमत नहीं हैं, वे माता, पिता, बन्धु सखा, मित्र और तो क्या यदि गुरु भी हों, तो भी मैं उन्हें कुछ नहीं मानता।।३५।।

तच्छास्त्रं मम कर्णमूलमपि न स्वप्नेऽपि यायादहो
श्रीवृन्दाविपिनस्य यत्र महिमा नात्यद्भुतः श्रूयते।
ते मे दृष्टि पथं न यान्तु नितरां सम्भाष्यता माप्नुयुः
ये वृन्दावन वैभवे श्रुतिगते नोल्लासिन स्ते खलाः।।३६।।

छन्द—स्वप्न हूं में कर्णरंध्र नहिं मेरे करैं प्रवेश
शास्त्र—वचन जिसमें नहिं वर्णन श्रीबन महिमा लेश।
जो खल बन—महिमा सुनि प्रेमानन्द न होंहि विभोर
उनसों बात करौं नहिं कबहुं देखौं नहिं तिन ओर।।३६।।

अहो! जिस शास्त्र में श्रीवृन्दाविपिन की अति अद्भुत महिमा की कीर्त्ति नहीं गान की गई है, वह शास्त्र स्वप्न में भी मेरे कानों में प्रविष्ट न हो, एवं जो समस्त दुष्ट लोग श्रीवृन्दावन के वैभव को सुनकर प्रेमपूर्वक उल्लसित नहीं होते, उन्हें तो मैं देखना नहीं चाहता, और उनसे कभी मैं बोलना भी नहीं चाहता हूं।।३६।।

अलमलमिह योषिदगर्दभी संग रंगै
रलमलमिह वित्तापत्य विद्यायशोभिः।
अलमलमिह नाना साधनायास दुःखै–
र्भवत भवत वृन्दारण्य माश्रितधन्याः।।३७।।

छन्द–संग गर्दभी नारी सम जो तुष्ट होय मति मन्द
पुत्र वित्त विद्या यश इनसों हमरो नाता बन्द।
कहा प्रयोजन दुःखमूल आयास देत बहु साधन
श्रीबन आश्रय ले केवल हम जनम करेंगे धन धन।।३७।।

इस संसार में योषित रूप गर्दभी के संग आनन्द में कुछ भी प्रयोजन नहीं है, धन–पुत्र विद्या कीर्त्ति आदि की भी आवश्यकता नहीं है, नानाविध साधनों में दुख उठाने से भी क्या होगा ? ओहो ! तुम तो श्रीवृन्दारण्य का आश्रय लेकर धन्य हो जाओ।।३७।।

वैकुण्ठ कोटि कोटि प्रगुणित मपि नोयद्रजो लेशमात्रं
प्रोन्मीलत् सौभगर्द्धे र्लव मपि लभते शुद्ध भावोज्वलायाः।
कुर्वीरन् भक्ति कोटि भगवति न तथाप्यद्भुत प्रेम मूर्त्तेः
श्रीराधायाऽभक्तैः किमपि न कलितां नौमि वृन्दाटवीम्।।३८।।

छन्द–कोटि कोटि वैकुण्ठ तुलै नहिं ब्रज रज के कण शेष
नहिं तहँ वर्द्धनशील विभव सुख शुद्ध प्रेम को लेश।
भक्ति वैकुण्ठ परायण जे–पै राधा–भक्ति विहीन
तिन कहं सुलभ नहीं श्रीबन यह नमन करौं है दीन।।३८।।

अहो कोटि कोटि संवर्धित वैकुण्ठ इस श्रीवन धाम के रज कण के लवलेश तुल्य भी नहीं हैं, अतः ऐसे वैकुण्ठ में शुद्ध भावपूर्ण उज्ज्वल वृन्दाटवि की निरन्तर वर्द्धनशील शोभा सम्पत्ति भी नहीं है, अद्भुत प्रेममूर्त्ति श्रीराधिका की भक्ति न करके यदि कोई भगवान् वैकुण्ठनाथ में कोटि भक्ति का आचरण करता है तो भी उसे यह श्रीवृन्दाटवी प्राप्त नहीं हो सकती ऐसी श्रीवृन्दाटवी को मैं नमस्कार करता हूं।।३८।।

इदमपि भविता किं ? यत्र कुत्रापि वृन्दा
पदमपि मम यातं श्रोत्रवीथीमकस्मात्।

मधुर मधुर राधा माधवानंग खेला
वन मुपनयदन्तर्दास्यति प्रेममूर्च्छाम्।।३६।।

छन्द—'वृन्दा' इतना मात्र शब्द जो पड़ै अचानक कान
मधुर मधुर तर राधा—माधव रस केलि—प्रस्थान।
फुरै हृदय आवेश तभी मैं प्रेम—मूर्च्छा खाऊं
कब ऐसा सौभाग्य उदय हो मन मन यही मनाऊं।।३६।।

श्रीवृन्दावन में रहते हुए 'वृन्दा'—यह शब्द मेरे कानों में अकस्मात् पड़ने मात्र से ही श्रीराधामाधव के अनंग क्रीड़ा वन (श्रीवृन्दावन) के भावों से मेरा मन प्रेम—मूर्च्छित हो जाय, इस प्रकार सौभाग्य मेरा कब होगा ?।।३६।।

कदानुवृन्दावन वीथिकास्वहं परिभ्रमन् श्यामलगौरमद्भुतं।
किशोरमूर्त्तिद्वयमेक जीवनं—पुरः स्फुरद् वीक्ष्य पतानि मूर्च्छितः।।४०।।

छन्द—कब वृन्दावन मार्ग समुत्कट प्रेम भरा विचरूंगा
अद्भुत श्यामल गौर इष्ट की विह्वल खोज करूंगा।
वय कैशोर युगल मूरति पै अन्तः जीवन एक।
दरशन करके गिरौं मूर्च्छित विसरे देह विवेक।।४०।।

हाय ! कब मैं श्रीवृन्दावन वीथिकाओं में जहां तहां विचरण करते करते अद्भुत गौरश्याम अभिन्न—प्राण श्रीयुगल को अपने आगे देखकर मूर्च्छित होकर भूमि पर गिर जाऊंगा।।४०।।

किमेताभादृग् भाग्यं मम कलुष मूर्त्ते रपि भवे
न्निवासो देहान्तावधि यदिह श्रीवृन्दावन भुवि।
तयोः श्रीदम्पतयोर्नवनव विलासैर्विहरतोः
पदज्योतिः पूरे रपितु मम संगोऽनुभविता।।४१।।

छन्द—वृन्दावन भुवि वास करौंगो दृढ़ता सो युत राग
जीवन के पर्यन्त अधममति तब है ऐसो भाग्य।
कब पाऊंगो दरश दम्पती राधा श्यामविलास
नव नव लीला नित्य चरण ज्योति का करत प्रकाश।।४१।।

इसी श्रीवृन्दावन भूमि में आमरण वास रूप सौभाग्य क्या मुझ जैसे कलुषमूर्त्ति को प्राप्त हो सकेगा? नित्य नवनवायमान केलिरंग में विहारपरायण

उन श्रीराधाश्याम युगलकिशोर की चरण कांतिपुञ्ज की प्राप्ति भी क्या कभी मेरे भाग्यों में होगी ?।।४१।।

भूतं स्थावर जंगमात्मकमहो यत्र प्रविष्टं किम—
प्यानन्दैकघनाकृतिस्व महसानित्योत्सवं भासते।
मायान्धीकृत दृष्टिभिस्तु कलितं नानाविकल्पात्मना
तत्वृन्दाविपिनं कदाऽधिवसतः स्मान्मे तनुश्चिन्मयी।।४२।।

छन्द—पशु पक्षि कृमि कीट पतंग अरु लता वृक्ष भूत—आदि
बन प्रवेश पावैं रस उत्सव नित्यानन्द अनादि।
ग्रसित अविद्या जड़ दृष्टि जे जड़ बुद्धि करि मानैं
श्रीवन को जो प्रगट जगत में चिन्मय नहीं पहिचानैं।
कब सौं जड़मति तजकर श्रीवन चिन्मय सदा निहारौं
हे श्रीवृन्दावन ! सो करुणा करहु मैं दीन पुकारों।।४२।।

जिस धाम में स्थावर—जंगम समस्त प्राणिमात्र ही किसी अनिर्वचनीय आनन्दैकघनाकृति निज तेज में नित्यानन्दमय होकर विराजते हैं, किंतु मायामय अन्ध (दिव्य दृष्टिविहीन) पुरुषों को वे सब विविध विकृत रूपों में ही दीखते हैं, उसी श्रीवृन्दावन में वास करते करते कब मेरा शरीर चिन्मय होगा।।४२।।

यत्र प्रविष्टः सकलोऽपि जन्तुः सर्व पदार्थोऽप्यबुधैरदृश्य।
स्वानन्द सच्चिद् घनतामुपैति तदेव वृन्दावन माश्रयन्तु।।४३।।

छन्द—उत्तम अधम समस्त जीव जब श्रीवन करे प्रवेश
जड़ जंगम सब वस्तु मात्र लह चिन्मयता आवेश।
यद्यपि देख सकैं नहिं जड़मति सद् चिद घन वह रूप
हे साधोजन ! उस श्रीवन का आश्रय करो अनूप।।४३।।

जिस धाम में प्रविष्ट होकर समस्त जीव, समस्त पदार्थ ही अज्ञव्यक्तियों से अदृश्य स्वानन्द सच्चिदानन्दघनता को प्राप्त हो रहे हैं, उस श्रीवृन्दावन का तुम समाश्रय करो।।४३।।

वृन्दावनस्थेष्वपियेऽत्र दोषा—नारोपयन्ति स्थिर जंगमेषु।
आनन्दमूर्तिष्वपराधीनस्ते—श्रीराधिका माधवयोः कथं स्युः।।४४।।

छन्द—स्थिर जंगम सब दिव्य पदारथ वृन्दावन के मानव
दोषारोपण करैं जो तिन में सदा मानिये दानव।
सत् चिद् आनन्द इष्ट युगल के अपराधी बन जावें
अपराधी ब्रजवासिन के जो उनको नहिं सुहावें।।४४।।

जो व्यक्ति इस श्रीवृन्दावन के स्थावर जंगम प्राणियों में मिथ्या दोषारोपण करते हैं वे इस समस्त आनन्दघन विग्रह धारी (श्रीवृन्दावन वासियों) के प्रति अपराधी होकर श्रीराधा माधव के भक्त कैसे हो सकते हैं ?।।४४।।

ये वृन्दावनवासी निन्दनरता ये वा न वृन्दावनं
श्लाघन्ते तुलयन्ति ये च कुधियो केनापि वृन्दावनं।
ये वृन्दावनमत्र नित्य सुखचिद्रूपं सहन्ते न वा
तैः पापिष्ठ नराधमे भवतु स्वप्नेऽपि मे संगतिः।।४५।।

छन्द—श्रीवृन्दावन वासिन की निन्दा में रत में जे प्राणी
नहीं प्रशंसहि श्रीवन तोलहि अन्य धाम सम मानी।
सत् चिद् आनन्द सुखस्वरूप नित करें नहीं स्वीकार
स्वप्ने हूं में इन पापिन सों रहै न मो व्यवहार।।४५।।

जो व्यक्ति श्रीवृन्दावन वासियों की निन्दा में लगे हुए हैं एवं श्रीवृन्दावन की प्रशंसा नहीं करते हैं और जो मन्द बुद्धि अन्य स्थानों के साथ श्रीवृन्दावन की तुलना करते हैं तथा इस भौम वृन्दावन के नित्य सच्चिदानन्दमयत्व को स्वीकार नहीं करते हैं, उन समस्त पापिष्ठ नीच पुरुषों के साथ स्वप्न में भी मेरा मिलन न हो।।४५।।

असह्य बहु दुर्वचो यदि वदन्ति साक्षात् स्त्रियं
बलादपहरन्ति चेत् प्रियसुतादिकं घ्नन्ति वा।
धनाद्यपि च जीवनं यदि हरन्ति वृन्दावन—
स्थितास्तदपि ते प्रिया मम भवन्ति वन्द्याः सदा।।४६।।

छन्द—श्रीवन वासी सन्मुख बोलैं कटुक वचन दै गारी
ध्वंस करैं सम्पद पत्नि सुत कन्या मारें प्यारी।
प्राण हरें मेरे हिंसक बन करहुं न कछुक विचार
तिन को परम पूज्य हिय मानौं नमन करहुं शत बार।।४६।।

यदि श्रीवृन्दावनवासी लोग मुझे अति असह्य दुर्वचन भी कहें, मेरे सामने जबर्दस्ती करके यदि मेरी स्त्री को भी हरण कर लें किम्वा प्रियपुत्रादि की हत्या भी कर डालें अथवा धनादि का अपहरण कर मेरे जीवन नाश की भी चेष्टाएं करें, तो भी वे मेरे प्रिय एवं नित्य वन्दनीय हैं।।४६।।

परस्वस्तेयैकव्यसनमपि नित्यं पर वधू
प्रसक्तं विश्वेषामहह बहुधा हिंसक मपि।
दुराचारं लोभाद्यून्पहतमपि भ्राततरुणं
दिवान्धस्तं वृन्दावन गत जनं नावगणयेः।।४७।।

छन्द—तस्कर व्यसनी पर दारा रत हिंसक अखिल परानी
लोभी दुराचार युत पै श्रीवनसों जब रति मानी।
हे भ्रातः ! नहिं करहुं उपेक्षा वे सब दिव्य विलास
पेचक कूं सूझत नहिं तनकहुं उज्ज्वल अर्क—प्रकाश।।४७।।

हे भ्रातः ! श्रीवृन्दावनवासी पराया माल हरें अथवा नित्य परस्त्री में आसक्त रहें—अहो ! निखिल जगत् के अनेक प्रकार हिंसा करने वाले भी क्यों न हों, किंवा लोभादि में अंधे ही हो रहे हों, किंतु तुम दुराचार बुद्धि से उनका भी निरादर नहीं करना। श्रीवृन्दावनवासी बाल सूर्य की भांति हैं—ऐसा जानकर तुम दिवान्ध होकर रहना अर्थात् पेचक (उल्लू) की भांति तू ही उनके गुण समूह रूपी सूर्य को देखने में असमर्थ है।।४७।।

परधनपरदार द्वेषमात्सर्यलोभा
नृतपरुषपराभिद्रोहमिथ्याभिलापान्।
त्यजतिय इह भक्तो राधिका प्राणनाथे
न खलु भवति वन्ध्या तस्य वृन्दावन।।४८।।

छन्द—परधन द्वारा द्वेष अरु मत्सर झूठ निठुर व्यापार
तजहिं वार्त्तालाप अनर्गल अनहित द्रोहाचार।
अन्य दोष सब छांड़ि करैं दृढ़ श्रीवृन्दावन वास
होंहि युगल भक्ति युत निश्चय विफल न कबहूं आस।।४८।।

जो व्यक्ति श्रीवृन्दावन के वास में निष्ठा करके श्रीराधिकाप्राणनाथ के भक्त होकर परधन, परस्त्री आदि की आसक्ति त्याग कर देते हैं, एवं द्वेष,

मात्सर्य्य, लोभ, असत्य, निष्ठुरता, पर–द्रोहाचरण व मिथ्या वाक्य कहना छोड़ देते हैं, उनकी श्रीवृन्दावन की आशा कभी वन्ध्या (निष्फल) नहीं होती।।४८।।

कुरु सकलधर्म मुञ्च सर्व स्वधर्म–
त्यज–गुरुमपि वृन्दारण्य वासानुरोधात्।
स तव परम धर्मः सा च भक्ति र्गुरुणां
स किल कलुशराशिर्यद्धि वासान्तरायः।।४६।।

छन्द–सर्व धर्म पथ त्याग यदि तुम पाप मार्ग अपनावो
छांड़ि मातु पितु गुरु विपिन सों नेह बढ़ावो।
एते सब अपराध तिन्हें शुभ गुण कर गनिये
विघ्न करैं व्रजवास पुण्य अघराशि मनिये।।४६।।

श्रीवृन्दावन के वास के अनुरोध में समस्त अधर्मों का आचरण कर, सब वर्णाश्रम धर्मों का भी त्याग कर, और तो क्या पिता मातादि का भी त्याग कर, यही तुम्हारा परम धर्म है एवं परम गुरु–भक्ति है। श्रीवृन्दावन वास में विघ्नोत्पादक और जितने भी धर्म–आचरण हैं, उन सबको पापराशि जान।।४६।।

निर्मर्यादाश्चर्य कारुण्य पूर्णौ–
राधाकृष्णौपश्यतश्चेत् कदाचित्।
यः कोऽप्यस्मिन् यादृशास्तादृशोवा
देहस्यान्ते प्राप्नुयादेव सिद्धिम्।।५०।।

छन्द–करुणापूर्ण अनन्त युगल अति विस्मयकारी
क्या जानैं कब कृपा कोर ते लेत निहारी।
जैसो तैसो दृष्टिपात से व्रजरज पावैं
सर्व साधना सिद्धि लाभ नित्य धाम सिधावे।।५०।।

असीम आश्चर्यमय करुणामय श्रीराधाकृष्ण यदि किसी दिन किसी व्यक्ति के प्रति एक बार भी देख लें, चाहे वह कोई भी क्यों न हों वह श्रीवृन्दावन में देह त्याग कर सिद्धि को प्राप्त होगा।।५०।।

राधा मधुपति पादाम्बुज–भक्ति–रस पूर दूर मुक्तस्य।
अजितेन्द्रियस्य कृपया मम वृन्दारण्यमाश्रयो भवतु।।५१।।

छन्द—युगलकिशोर मधुर रस सरवस रसिकन के आधार
तिनके पाद पद्म मंजुल में जिन भक्तन को प्यार।
उनसों त्यक्त, अधम विषयी, मुखिया गन लीजै
श्रीवृन्दावन धाम कृपाकरि आश्रय दीजै।।५१।।

श्रीराधामाधव के पादपद्मों के प्रेमिक भक्तजनों से दूर से ही मैं त्यागा हुआ हूं तो भी मुझ अजितेन्द्रिय को श्रीवृन्दावन ही अपनी कृपा से आश्रय प्रदान करेंगे।।५१।।

राधामाधव पादपंकजरजः प्रेमोन्मादेतत्प्रिय
क्रीड़ाकानन वासिषु स्थिरचरप्राणिष्वपि द्रोहिषु।
प्रद्वेषं परमापराध महहो त्यक्तवेतरैरप्यधै
र्युक्तोप्यामरणान्त लब्धवसति वृन्दावने स्यात्कृती।।५२।।

छन्द—राधामाधव पाद पद्म रज प्रेमाह्लादित
विह्वल चित कन्दर्प केलि प्रिय क्रिया अबाधित।
ऐसो स्थल श्रीधाम वसत चर अचर जे प्रानी
दंषक विषमय अन्य कष्टकारक हूं जानी।
उनसों द्वेष विहीन शुद्ध चित्त धाम वसत जे
देह अवसान पाये होहिंगे कृत्त कृत्य ते।।५२।।

अहह ! श्रीराधामाधव के चरणकमल के पराग में प्रेमोन्मत्त हो इस प्रिय-क्रीड़ा-कानन श्रीवृन्दावन में नित्य सत्यतापरायण स्थावर जंगमात्म प्राणी यदि किसी के साथ द्रोह करें तो उनके द्वेष बुद्धि रूप महापराध को छोड़कर अन्य कैसा भी पाप करते हुए यदि कोई प्राणी आमरण श्रीवृन्दावन में वास करे, तो उसको पुण्यात्मा ही कहा जायेगा।।५२।।

न लोक वेदोद्धृत मार्ग भेदैराविश्य संक्लिश्यत रे विमूढ़ाः।
हठेन सर्व परिहृत्य वृन्दावनान्तरे पर्णकुटीं कुरुध्वं।।५३।।

छन्द—काहे क्लेशावह धर्म निगमन के ढोता
रे मन मूरख ! लोक लाज में अवसर खोता।
हठ करि तज सब धर्म बुद्धि गत भेद मिटाकर
दृढ़ता सों कर वास धाम में कुटी बनाकर।।५३।।

हे विमूढ़ मनुष्यो ! लोक–वेद के मार्ग में आविष्ट होकर और अधिक दुख मत पावो–इन सबको हठपूर्वक छोड़कर श्रीवृन्दावन में पर्णकुटी का निर्माण करो।।५३।।

यत्तद् वल्गन्तु शास्त्राण्यहहो जनतया गृह्यतां यत्तदेव
स्वं स्वं यत्तन्मतं स्थापयतु लघुमतिस्तर्कमात्र प्रवीणः।
अस्माकन्तूज्ज्वलैकोन्मदविमल रस प्रेम पीयूष मूर्त्तेः
श्रीराधायाः विहाराटविमिहन विनाऽन्यत्र निर्यातिचेतः।।५४।।

छन्द–शास्त्र वेद जो कछु व्यवस्था धर्म बतावें
जन समूह मन चाह्यौ तिनको भाव लगावैं।
दक्ष वितण्डा अल्प बुद्धि सिद्धान्त बखानैं
सबै भले पै हम तो तिनकी एक न मानें।
हमरे तो उन्मत्त प्रेम पीयूष की मूरति
श्रीराधा के धाम बिना चित अन्य न सूरति।।५४।।

शास्त्र समुदाय जिसकी व्यवस्था देते हैं, लोगों की यदि इच्छा हो तो उसको ग्रहण करें, अल्पबुद्धि जो तर्क करने में प्रवीण हैं, वे भी अपने मत के सिद्धान्त संस्थापन करें, किंतु मेरा मन उन्मद विमल रसमय प्रेमपीयूष मूर्त्ति श्रीराधाविहारवन (श्रीवृन्दावन) को छोड़कर कहीं भी नहीं लगता।।५४।।

स्निग्धश्यामाभिरामच्छवि मृदुमसृणोत्तप्तहेमावदातं
ज्योतिर्द्वन्द्वं किशोराकृति मधुरमहोद् घूर्णमानं रसेन।
नित्यं यत्रैव खेलायति मदनकला कौतुकेनात्युदारं
सारं सारादशेषादपि तदिह धनं श्रील वृन्दावनं नः।।५५।।

छन्द–प्रेम आर्द्र श्रीकृष्ण मनोहर श्याम छवीमय
कोमल चिक्कन गौर किशोरी कनक आभामय।
ज्योति उभय रस पूर्ण मधुर अनुराग सने जहं
क्रीड़त नित्य उदार कला कौतुकप्रवीन तहं।
सो सब सिद्धी–प्रद भगवत–धामनि शिरमौर
श्रीवन धन सर्वस्व बिना नहिं मो कहं ठौर।।५५।।

अहो ! एक तो स्निग्ध श्यामल मनोहारी कांतिधारी है और दूसरा कोमल–मसृण– सुतप्त–स्वर्णवत् गौर वर्ण विशिष्ट किशोराकृति है, मधुर एवं रसवश विघूर्णित ये विग्रह–ज्योति युगल मदन–कला–कौतुक में अति मनोहर भाव से जिस धाम में नित्य क्रीड़ा करते हैं, वही निखिल भगवद्धामों का सारात्सार (परम सिद्धि दायक) यह श्रीवृन्दावन ही मेरा सर्वस्व है।।५५।।

अपार करुणाकरं व्रजविलासिनी नागरं
मुहुः सुबहुकाकुभिर्नतिभि रेतदभ्यर्थये।
अनर्गलवहन्महाप्रणय सीधु सिन्धौ मम
क्वचिज्जनुषि जायतां रतिरिहैव वृन्दावने।।५६।।

छन्द—कृपा निधान अपार कृष्ण व्रज युवतिन नागर
उनसों कातर विनय नमन मैं करौं निरन्तर।
कब है हों रतिनिष्ठ—धाम श्री—परम प्रेममय
रस सिंधु जो प्रलय बीच हूं होत नहीं लय।।५६।।

अपार करुणाकर व्रजविलासिनी–श्रीराधानागर–श्रीकृष्ण को बारम्बार अतिशय विनय पूर्वक प्रणाम करते हुए मैं यही प्रार्थना करता हूं कि निरन्तर महाप्रणयामृत समुद्र प्रवाही इस (भौम) श्रीवृन्दावन में किसी भी जन्म में मुझे (प्रेमलक्षणा) रति ही प्राप्त हो।।५६।।

नानामार्गरतोऽपि दुर्मतिरपि त्यक्तस्वधर्मोऽपि हि
स्वच्छन्दाचरितोऽपि दूरभगवत्सम्बन्ध गन्धोऽपि च।
कुर्व्वन् यत्र च काम लोभ वशतो वासं समस्तोत्तमं
या यादेव रसात्मकं पदमहं तन्नौमि वृन्दावनम्।।५७।।

छन्द—नाना पथ रत मन्द बुद्धि निज धर्महुं त्यागी
स्वेच्छाचारी विमुखहरि—हरिभक्ति अभागी।
करे वास श्रीधाम लोभ कामादि के वश
मिलैं रसात्मक प्रेम नमन करि गावत हौं यश।।५७।।

अनेक मार्गों में रत होने पर भी, दुर्मति होते हुए भी, स्वधर्म परित्यागी होते हुए भी, स्वेच्छाचारी होते हुए भी, श्रीभगवत् सम्बन्ध के लवलेश को न पाते हुए भी काम एवं लोभ के वशीभूत होते हुए भी जिस धाम में वास करते

करते सर्वोत्तम पद की (श्रीराधादास्य)की प्राप्ति होती है—उसी रसात्मक (प्रेममय) धाम श्रीवृन्दावन को मैं नमस्कार करता हूं।।५७।।

इह सकल सुखेभ्यः सूत्तमं भक्तिसौख्यं
तदपि परमकाष्ठां सम्यगाप्नोप्रोतियत्र।
तदिह परम पुंसो धाम वृन्दावनाख्यं
निखिल निगम गूढ़ं मूढ़ बुद्धिर्न वेद।।५८।।

छन्द—अखिल जगत सुख सार एक भक्ति सुख उत्तम
परा भक्ति उत्कर्ष पाइये धाम महातम।
सो श्रीवृन्दाविपिन कृष्ण को धाम विमलतर
जानत नहिं नर मूढ़ वेद को तत्त्व गूढ़तर।।५८।।

इस संसार में भक्ति सुख ही समस्त सुखों से अतिशय उत्कृष्ट है, जिस धाम में उसी भक्ति को भी फिर पराकाष्ठा (पूर्णतमता) सम्यक् प्रकार प्राप्त होती है, वह श्रीवृन्दावन नामक सर्व–वेद–निगूढ़–पुरुषोत्तम का धाम मानुषी बुद्धि से परे है।।५८।।

भजन्तमपि देवतान्तरं यथाक्षरे ब्रह्मणि
स्थितं पशुवदेव वा विषय भोग मात्रे रतम्।
अचिन्त्य निज शक्तितः स्वगतराधिकामाधव
प्रगाढ़रस दुर्गमं कुरुत एव वृन्दावनम्।।५९।।

छन्द—अक्षर ब्रह्म में निष्ठ अन्य देवन को भजते
पशुवत् इन्द्रिय भोग रमण जग नाहिंन तजते।
श्रीवन आय सबै गाढ़ रस पावैं दुर्गम
श्रीराधामाधव केलि शक्ति बन अकथ अनागम।।५९।।

अन्यान्य देव देवियों के उपासकों को निर्विशेष ब्रह्म में निष्ठावान पुरुषों को भी, किम्वा बुद्धिहीन विषय भोग मात्र में ही संलग्न लोगों को भी श्रीवृन्दावन अपनी अचिन्त्य शक्ति बल से अपने में (श्रीवृन्दावन में नित्यलीला परायण) श्रीराधा माधव के प्रगाढ़ रस के दान करने में अन्य लोकों से सुदुर्बोध्य व्यवस्था करते रहते हैं।।५९।।

यत्कोट्यंशमपि स्पृशेन्न निगमो यन्नो विदुर्योगिनः
श्रीशब्रह्म शुकार्जुनोद्धव मुखाः पश्यन्ति यन्न क्वचित्।
अन्यत् किं वृजवासिनामपि न यद्दृश्य कदालोकये
श्रीवृन्दावनरूपमद्भुतमहं राधा पदैकाश्रयः।।६०।।

छन्द—कोटि अंश को अंश निगम नहिं परस सके हैं
पार न पायौ योगिन साधन साध थके हैं।
लक्ष्मी अर्जुन शंकर ब्रह्म शुक उद्धव से
मुख्य भागवत ब्रजवासी हुं नन्द आदि से।
प्राकृत प्रगट स्वरूप धाम को केवल देखा
कब होगा सौभाग्य मुझे श्रीपद आश्रय का।
जाके अतुल प्रभाव धाम सौ अद्भुत देखौं
वाही के फल जनम सुफल अपनो करि लेखौं।।६०।।

वेद जिस श्रीवृन्दावन के रूप में कोटि भागों के एक भाग का भी स्पर्श नहीं कर सकते (वर्णन नहीं कर सकते)। योगीगण जिसका पता नहीं पा सकते, लक्ष्मी, महादेव, ब्रह्मा, शुक, अर्जुन, एवं उद्धवादि ने भी जिसे कभी नहीं देखा है, और तो क्या किसी किसी ब्रजवासी ने भी जिसे नहीं देखा, वह श्रीवृन्दावन का अद्भुत रूप मैं कब श्रीराधा के चरणाश्रित होकर सम्यक् अवलोकन करूंगा ?।।६०।।

विस्मृत्यद्वैत मात्रं प्रणयमयमहा ज्योतिरेकावर्णवान्तः
श्रीवृन्दारण्यमत्युज्ज्वलदतुलरसाम्बोधि तस्मिन् सखेत्वम्।
वेशोकिंचिद् गृहीत्वोज्ज्वल मखिल कला कोमलाभीर वाला
प्राणश्रीराधिकायाः किमपि रसनिधेश्चाटुकारं भजेथाः।।६१।।

छन्द—हे मन! संशय विभ्रम दुविधा सभी छोड़कर
अतुल प्रेमसागर श्रीवन सों नेह जोड़कर।
जो है पूर्ण प्रेम आर्णव में अतिशय उज्ज्वल
उसमें दासी वेश गोपिका धारि के निर्मल।
अखिल कला में चतुर सभी की जीवन राधे
ताके रस निधि कृष्ण मोदकर सरस अगाधे।

वृन्दावन बसि कृष्ण प्रेम आश्रय को भज तू
निश्चय उर धर नहिं प्रेम को मार्ग तज तू।।६१।।

हे सखे ! सब द्वैत वस्तुओं अथवा द्विधा संशयादि को त्यागकर प्रणयमय महाज्योतिरूप महासमुद्र के बीच अत्युज्ज्वल अतुलनीय रससागर श्रीवृन्दावन में किसी दासी भावोपयुक्त उज्ज्वल वेश को धारण करके समस्त कलाविद्या में सकुशला गोपबालाओं की प्राणस्वरूपा रस निधि श्रीराधा के मोदकारी श्रीकृष्ण का भजन कर।।६१।।

दुर्वासना सुदृढ़ रज्जुशतैर्निबद्ध–
माकृष्य सर्वत इदं स्वबलेन कृष्ण।
वृन्दावने विहरतः सह राधयाते
पादारविन्द सविधं नयन मानसं मे।।६२।।

छन्द—हे श्रीकृष्ण ! मुक्ति भुक्ति के शत शत बन्धन
करुणा बलहिं छुड़ाय करहु मम अपनोही जन।
यातें श्रीवन तजै न राधा सहित मुरारे
उभय कमल पद धरै ध्यान रस रास तिहारे।।६२।।

हे कृष्ण ! दुर्वासना रूप सुदृढ़ शत–शत रज्जुओं द्वारा बन्धे हुए मेरे मन को अपनी कृपा के बल से सब विषयों से खींचकर श्रीवृन्दावन में श्रीराधा सहित विहार परायण आप अपने चरणकमलों की समीपता प्रदान कीजिये।।६२।।

वशीकर्त्तुं शक्यो नहि नहि मनागिन्द्रियगणो
गुणोऽभून्नैकोऽपि प्रविशति सदा दोषनिचयः।
क्व यामः किम् कुर्मो हरि हरि ! मयीऽशोप्यकरुणः
स्ववासं श्रीवृन्दावन वितर मानऽन्यगतिकम्।।६३।।

छन्द—नहीं तनक सामर्थ्य इन्द्रियन वश करिवे की
लेश नहीं गुण एक, टेव दुर्गुण गहिवे की।
हा हरि ! कहां जाऊं ? करौं क्या वाम विधाता
हे वृन्दावन ! राख लीजिये, मम गति दाता।।६३।।

इन्द्रियों को किसी प्रकार भी मैं वश नहीं कर सकता हू मेरे में एक गुण भी नहीं है, अनेक दोष मुझमें नित्य ही प्रवेश कर रहे हैं, हरि ! हरि !! मैं कहां

जाऊं ? क्या करूं ? विधाता भी मेरे प्रति निष्ठुर हो रहा है, अतएव हे श्रीवृन्दावन अनन्य गति मुझको अपने में वास करने का अधिकार रूप अनुग्रह प्रदान करो।।६३।।

जाति प्राण धनानि यान्तु सुयशोराशिः परिक्षीयतां
सद्धर्मा विलयं प्रयान्तु सततं सर्वैश्चनिर्भर्त्स्यताम्।
आधि व्याधिशतेन जीर्यतु वपुर्लुप्तप्रतीकारतः
श्रीवृन्दाविपिनं तथापि न मनाक् त्यक्तुं ममास्तां मतिः।।६४।।

छन्द—भले जाति अभिमान प्राण धन सकल विनाशैं
सुयश राशि हो क्षीण धर्म सद सब ही हारैं।
करैं भर्त्सना लोक रोग मन दैहिक पावौ
प्रतीकार ते रहित जीर्ण देही है जावौ
तब हूं मेरे मन बुद्धि यह तनिक न आवै
श्रीवृन्दावन वास तजौं स्वप्ने न सुहावै।।६४।।

जाति, प्राण, धनादि नष्ट हो जायें, सब सुयश नष्ट हो जाए, सद्धर्म भी विशेष रूप से नष्ट हो, समस्त लोग मेरा निरन्तर तिरस्कार करें, मेरा शरीर भी सैकड़ों सन्तापों से एवं व्याधियों से जीर्णता को प्राप्त हो तथापि मेरी बुद्धि में श्रीवृन्दावन को त्याग करने की लेशमात्र भी इच्छा उत्पन्न न हो।।६४।।

रक्षति संसार भयात्सदोष मप्यशेष देहभृद्वृन्दं।
वृन्दावनमिति तेन प्रथितं तन्नौमि काननं किमपि।।६५।।

छन्द—सब दोषों से युक्तहूं प्राणी वृन्द जिते हैं
रक्षा कारण अर्थ शब्द भव रोग किते हैं।
तातें नाम प्रसिद्ध जगत श्रीवृन्दावन है
कानन अती अकथ्य उसी को सदा नमन है।।६५।।

अनेक दोषयुक्त भी सर्वप्राणियों का संसार भय से रक्षक जो श्रीवृन्दावन है, (वृन्द प्राणीवृन्द+अवन = रक्षक) उस अनिर्वचनीय कानन को मैं नमस्कार करता हूं।।६५।।

वृन्दारण्यादन्यत् प्रकृतेरन्तर्बहिर्वापि।
नैवास्ति मधुर वस्त्वित्यवकलितं यैर्नमस्तेभ्यः।।६६।।

छन्द—प्राकृत सृष्टि के बाहर भीतर एकै साधन
प्रीति करै प्रदान एक श्रीवृन्दावन वन।
जिन सन्तन की विमल बुद्धि यह निश्चय धार्यौ
तिनके पावन चरननि में परणाम हमारौ।।६६।।

प्राकृत एवं अप्राकृत जगत में श्रीवृन्दारण्य के बिना और कोई मधुर वस्तु नहीं है, यही निर्णय जो व्यक्ति कर पाते हैं, उनको मैं नमस्कार करता हूं।।६६।।

विभ्राजत्तिलका कलिन्दतनयानीरौधनीलाम्बरो
दञ्चत्काञ्चन् चम्पकच्छविरहो नाना रसोल्लासिनी।
श्रीकृष्णप्रेम पयोधरेण रसदेनात्यन्त सम्मोहिनी
गोपेन्द्रात्मज वल्लभा विजयते राधेव वृन्दाटवी।।६७।।

छन्द—तिलक पुष्प पुष्पान्वित शोभित श्रीवृन्दावन
नील यमुन जल उज्ज्वल वस्त्र मनो आच्छादन
काञ्चन चम्पक पुष्प मनो विकसित तनु कांति।
सुरभित रसमय गन्ध चहूं दिश है बहु भांति
युगल प्रेमरसपूर्ण सरोवर तहं बहु रंजक
राधाकृष्ण वन की जय हो राधा गुण व्यञ्जक।।६७।।

श्रीराधा जिस प्रकार माथे पर "कामयन्त्र"—नामक तिलक से शोभित हो रही हैं, श्रीवृन्दाटवी भी उसी प्रकार तिलक (वृक्षों) से भूषित हो रही हैं, श्रीराधा जैसे कालिन्दी के जल की भांति नील वसन धारण करती हैं, श्रीवृन्दाटवी इसी प्रकार यमुना जल राशि रूप नील वसन धारण कर रही हैं श्रीराधा की कनक चम्पकवत् अंग कांति की भांति श्रीवृन्दाटवी भी स्वर्ण चम्पक की कांतियुक्त है, श्रीराधा विविध विकास रस उल्लासिनी हैं, श्रीवृन्दाटवी भी फल फूल मुकुलादि के रस में विराजमान है। श्रीराधा जैसे श्रीकृष्ण को प्रेमरसदायक युगल वक्षोज से अत्यन्त सम्मोहिनी है, उसी प्रकार श्रीवृन्दाटवी भी कृष्ण प्रेमवर्धन श्रीराधाकुण्डादि सरोवरों से आनन्द मोह विस्तार कर रही हैं, इस प्रकार श्रीराधा की भांति श्रीवृन्दाटवी भी गोपेन्द्रनन्दन श्रीश्यामसुन्दर की कांतिवत् प्रीति विधान करती हैं।।६७।।

यस्मिन् कोटि सुरद्रुवैभवयुता भूसीरुहाः पोषकाः
भक्तिः सद् वनिता महारसमयी यत्र स्वयं श्लिष्यति।
यत्र श्रीहरिदासवर्यगणिताः खट्टायमानाः शिला
स्तद् वृन्दावनमद्भुतं सुखमयं को नाम नालम्बते।।६८।।

छन्द—कोटि कल्पद्रुम सम शोभित तरु वर जहं पोषैं
सद् भक्ति वनिता रस मय निज कर सों श्लेषैं।
सर्वश्रेष्ठ हरिदास जहां गोवर्धन विकसें
जिनकी कोमल शिला पर्यंकन के सम विकसैं।
लोक सुदुर्लभ सुख सम्पन्न एक श्रीधाम
आश्रय कौन नहीं लेगा तहं मति अभिराम।।६८।।

श्रीवृन्दावन में कोटि कल्प वृक्षों के वैभवयुक्त वृक्ष हैं जो सबकी पालना करते हैं, जहां महारसमयी साध्वीनारीरूपा भक्ति स्वयं आलिंगन करती है, जहां श्रीहरिदास वर्य्य (स्वयं गिरिराज) गणों सहित विराजते हैं, जिनकी शिला ही पलंग की भांति शय्या का काम करती है, अद्भुत सुखमय उस श्रीवृन्दावन का कौन न आश्रय ग्रहण करेगा ?।।६८।।

विन्दन्ति यावत् प्रणयं न मन्दा—वृन्दावने प्रेम विलास कन्दे।
तावन्न गोविन्द पदारविन्द—स्वच्छन्द सद् भक्ति रहस्य लाभः।।६९।।

छन्द—मूढ़ नहीं जानैं राधा माधव कौं धाम
कल्प तरु सम पोषक वर्धक सकलै धाम।
करैं न जो लौं प्रेम पाएं क्यों भक्ति परापद
मानस सेवा स्वाद परम रस गूढ़ निरापद।।६९।।

मूढ़ व्यक्ति प्रेमविलास कन्द श्रीवृन्दावन में जब तक प्रेम की प्राप्ति नहीं करते, तब तक वे श्रीगोविन्द चरणकमलों में निःसंकोच विशुद्ध भक्ति का रहस्य (प्रेम भक्ति—आस्वाद) भी नहीं प्राप्त कर सकते।।६९।।

स्मारं स्मारं नवजलधर श्यामलं धाम विद्युत्
कोटि ज्योति स्तनुलतिकया राधया श्लिष्यमानम्।
उच्चैरुच्चैः सरस सरसं प्रोज्ज्वलीजृम्भमाण
प्रेम्णाविष्टो भ्रमति सुकृती कोऽपि वृन्दावनान्तः।।७०।।

छन्द—सुमरि सुमरि नव जलधर श्यामल मोहन लाला
तड़ित लता सम उज्ज्वल चमकत राधा—वाला।
आलिंगत भुज पाश, भजैं जो सो बड़ भागी
भ्रमण करैं श्रीधाम समुज्वल रस मति पागी।।७०।।

कोई विरला पुण्यात्मा ही कोटि विद्युत लताओं को निन्दन करने वाली देहलता धारी श्रीराधा के साथ आलिंगन करते हुए नवजलधर श्यामल श्रीकृष्ण को स्मरण करता है, सु—रसाल से भी सु—रसाल अत्युन्नत, अत्युत्कृष्ट उज्ज्वल रसपूर्ण सुप्रकाशमान प्रेमपूर्वक श्रीवृन्दावन में वह ही जहां तहां पर्य्यटन करता रहता है।।७०।।

राधापदांकभूषित वृन्दारण्यं स्थलीषु निर्भर प्रेम्णा।
हरि हरि ! कदा लुठामि प्रतिपदं गलदश्रुरुल्लसत् पुलकः।।७१।।

छन्द—हाय ! हाय ! हरि ! श्रीवन राधा पद चिह्नों से
अंकित थल रस परम प्रगाढ़ प्रेम नयनों से।
अश्रु बहैं प्रवाह और उल्लास हिये में
कब लोटौंगो धूल धूसरित देह किये मैं ?।।७१।।

हरि ! हरि !! श्रीराधा के चरणकमलों से भूषित श्रीवृन्दारण्य के स्थलों पर प्रगाढ़ प्रेमरस में प्रतिपद पर आंसू बहाते हुए पुलकित शरीर से कब मैं धूलि में लुण्ठन करूंगा ?।।७१।।

पूर्णोज्ज्वल प्रेम रसैकमूर्त्तिर्यत्रैव राधा विजयीहरीति।
तदेववृन्दावनमाश्रितानां भवेत् परं भक्ति रहस्यलाभः।।७२।।

छन्द—पूर्ण परम उज्ज्वल रस घन मूरति श्रीराधा
सहित कृष्ण भगवान् लसै उत्कर्ष अगाधा।
वा श्रीवन की लेत शरण जे मीन समाना
उत्तम प्रेम लक्षणा भक्ति रस तिन जाना।।७२।।

परिपूर्ण उज्ज्वल प्रेमरस की अद्वितीय मूर्त्ति श्रीराधा एवं विजयी श्रीहरि जिस धाम में निरन्तर ही विराजमान हैं, उस श्रीवृन्दावन के आश्रित मनुष्यों को परमा (प्रेम लक्षणा) भक्ति का निगूढ़ भाव अवश्य ही प्राप्त होता है।।७२।।

सर्वं त्यक्त्वा सरसविशद प्रेम पीयूष सान्द्रे
वृन्दारण्यऽद्भुत तरुलता गुल्मकाद्यैर्मनोज्ञे।
राधाकृष्णोज्ज्वल गुणगणोद् गान मत्तालिकीरै
र्नीरेणापि स्थितिमिह तनोरध्यवस्यावसन्तु।।७३।।

छन्द—निर्मल प्रेम मधुर अमृत मय गति विशद टुक
करैं युगल यश गान उच्च तरु लता भ्रमर शुक।
इह विधि परम सुशोभित इस श्रीवन को भजकर
आजीवन करूं वास सकल जग इच्छा तजकर।।७३।।

विशुद्ध रसाल प्रणयामृत घन श्रीराधाकृष्ण के उज्ज्वल गुणों के उच्चगान में भ्रमर–शुक जहां विराजते हैं, अद्भुत तरु–लता गुल्मादि मण्डित इस मनोहर श्रीवृन्दावन में सर्व त्याग करके पानी से ही देह निर्वाह करते हुए वास करो।।७३।।

श्रीराधायाः कनक रुचिर ज्योति रंगच्छटौघैः
शुद्ध प्रेमोज्ज्वल रसमयैः सेव्यमानं समन्तात्।
गोविन्दस्याम्बुदरुचितनोर्ज्योतिरम्भोधि पूरः
सान्द्रानन्दात्मभिरापिचित नौमि वृन्दावनं तत्।।७४।।

छन्द—तप्त कनक दुति छटा मनोहर अंगनि विकसैं
स्वसुख गन्ध से रहित प्रेम रस धारा निकसै।
ऐसी राधा करैं अलंकृत धाम निरन्तर
नीलवर्ण दुति कृष्ण कमल नव भुजा दिये गर।
युगल रँगीले जहां विलासैं रंग बिहार
नमन करौं वा वृन्दावन को बारम्बार।।७४।।

श्रीवृन्दावन श्रीराधाके विशुद्ध उज्ज्वल प्रेमरसमय गलित स्वर्णवत् मनोहर कांति विशिष्ट अंग छटा–समूह से निरन्तर सेवित हो रहा है एवं श्रीगोविन्द की सान्द्रानन्दात्मक नवीन नीरदवत् नीलवर्ण ज्योति के सागर की प्रवाह की राशि द्वारा भी परिव्याप्त है, उस श्रीवृन्दावन को नमस्कार करता हूं।

निन्दावा तुतिरेव वा बहुविपत् सम्पत्तिरेवास्तु वा
पाण्डित्यं वत मूर्खताऽपि यदि वा विरागोऽथवा।

यत् किंचिद्भुवतु श्रुतेरपि मनाग् लक्ष्यं न यद वैभवं
तद्वृन्दाविपिनं न जीवनमिदं स्वप्नेऽपि हातुं क्षमः।।७५।।

छन्द–निन्दा अथवा होय प्रशंसा विपद मिलैं या संपद
पण्डित अथवा मूर्ख कहैं जन राग विराग निरापद।
श्रीवन वास हेत जो कछु भी भलो बुरो सब सहिये
निगमातीत धाम पग बाहिर स्वप्ने में नहिं रहिये।।७५।।

निन्दा व स्तुति अथवा अनेक विपदाओं या संपत्तियों की प्राप्ति हो, पण्डिताई हो या मूर्खता, राग हो या विराग, जो कुछ भी हो–होने दो, जिसकी महिमा को वेद बिन्दु मात्र भी नहीं जानते हैं, उस जीवन स्वरूप श्रीवृन्दावन को मैं स्वप्न में भी त्याग नहीं कर सकता हूँ।।७५।।

चण्डाल–श्वखरादिवद् यदि जनाः कुर्वन्ति सर्वेतिर–
स्कारं दुर्विषहञ्च तेन नहि मे खेदस्तनीयानपि।
देवादेव्य इमे च भूतनिवहाः प्राणाश्चदद्युर्महा
स्नेहात्तुष्टिमतो न मे गुरु तृषो श्रीवृन्दावनीये रसे।।७६।।

छन्द–धुर धुर करै सकल जन मुझको स्वपच स्वखर की नाईं
खेद तनिक उपजै नहिं जिय महँ वृन्दाविपिन वसाईं।
कबहुंक देवी देव भूत प्रानी जड़ सहित स्नेह
जानि तृषित मो अतिशय वर्षहि वृन्दावन–रस मेह।।७६।।

यदि समस्त लोग मेरा चण्डाल, कुत्ते, गर्दभादिवत् बुरी तरह तिरस्कार करें, उसमें मुझे थोड़ा भी दुःख नहीं होगा, यहीं गोपेश्वरादि, देवगण, वृन्दादि, देवीगण एवं दृश्यमान पशु–पक्षी–आदि श्रीवृन्दावन वासीगण, महा स्नेह युक्त होकर श्रीवृन्दावन रस की प्राप्ति के लिए अतिशय तृष्णाशील मुझको क्या सन्तोष विधान नहीं करेंगे?।।७६।।

भ्रातः समस्तान्य साधनानि विहाय वृन्दावनम स्वाश्रयस्व।
यथा तथा प्राक्तन वासनावशाच्छरीरं वाणी हृदयं विचेष्टताम्।।७७।।

छन्द–भ्रातः! तजि सब कर साधन तू सब सूं होय निराशा
मन इन्द्रिय प्रारब्ध विवश जो करत रहि बहुआशा।
भले बुरे से बेपरवाह हो मन में दृढ़ व्रत करिकै

श्रीवृन्दावन को ले आश्रय आजीवन हिय धरिकै।।७७।।

हे भ्रातः! समस्त साधनों का परित्याग करके श्रीवृन्दावन का आश्रय ग्रहण कर, प्रारब्ध वासना वशीभूत शरीर, वाणी एवं हृदय अच्छा बुरा जिसकी इच्छा करे करने दे।(तुम उनकी उपेक्षा नहीं करना)।।७७।।

तादृक् कामो भवतु भगवन् येन कस्याञ्चिदेणी
दृश्यासक्तोऽप्यहह न वहिर्यामि वृन्दाटवीतः।
तादृग् दम्भोऽच्युदयतु तथाऽहङ् कृतिश्चापि मे स्यात्
येनाप्यस्मिन् रसमयवने रोचये नित्यवासम्।।७८।।

छन्द–हे गुरुदेव ! एक हो मन महँ तीव्र कामना
(श्री) राधा पद रत श्रीवनसों अन्यत्र गा मना।
भले दम्भ अभिमान छिपा हो इसी चाह में
पै वनवास सहज हो जाए इसी राह में।।७८।।

हे भगवान् ! मुझे कोई ऐसा काम दीजिये जिससे अनिर्वचनीय मृगनयनी (श्रीराधा के चरणकमल में) आसक्त होकर श्री वृन्दावन से मैं अन्यत्र न जाऊं चाहे मुझमें ऐसा दम्भ भी उदय हो, अहंकार भी आ जावे कि जिससे इस रसमय वन में नित्यवास की ही रुचि रही आवे।।७८।।

वरं वृन्दारण्ये हरि हरि करे खर्परभृतो
भ्रमामो भैक्ष्यार्थं श्वपचगृह वीथिषु दिनशः।
तथापि प्राचीनैः परम सुकृतैरत्रमिलितं
न नेव्यामोऽन्यत्र क्वचिदपि कथञ्चिद् वपुरिदम्।।७९।।

छन्द–वृन्दा वीथिन भली मुझे श्वपचन की भिक्षा
अनुदिन माटी पात्र लिये करि जीवन रक्षा।
पूर्व पुण्य सों जो अब श्रीबन वास मिलो है
हे हरि अनत न जाऊं कहूं यहि धाम भलो है।।७९।।

हरि ! हरि !! श्रीवृन्दारण्य में हाथ में खापरा लेकर प्रतिदिन चण्डाल के घर में भिक्षा कर लेना मैं अच्छा समझता हूं परन्तु पूर्वकृत महापुण्यों के फल से इस श्रीवृन्दावन में आये हुए शरीर को किसी प्रकार भी वृन्दावन से बाहर न ले जाऊंगा।।७९।।

जरत्कन्थामेकां दधदपि च कौपीन मनिशं
प्रगायन् श्रीराधामधु–पतिरहः केलिलहरीम्।
फलं वा मूलं वा किमपि दिवसान्ते कवलयन्
कदा नेष्ये वृन्दावन भुवि दशां जीवनमयीम्।।८०।।

छन्द–सर्व ऋतुन कौपीन जीर्ण कन्था धारण कर
राधा मधुपति सुयश केलि रस उच्चारण कर।
गान करूं सब काल विचरता श्रीवन मांहि
दिवस अन्त फल मूल मिलैं जो किछु सो खांहि।
श्रीवन भौम प्रभाव उदित रस प्रेम प्रसादी
कृष्ण विरह में निशिदिन जीवन हो उन्मादी।।८०।।

एक मात्र जीर्ण कन्थाओं को एवं कौपीन को धारण करते हुए भी निरन्तर श्रीराधामाधव के गुप्त केलि रस तरंगों का उच्च भाव से कीर्त्तन करते करते सन्ध्या समय थोड़े से फल, मूलादि खाकर कब मैं इस श्रीवृन्दावन भूमि में जीवन व्यतीत करूंगा?।।८०।।

प्रकृत्युपरिकेवले सुखनिधौ पर ब्रह्मणि
श्रुति प्रथित वैभवं पर पदं विकुण्ठाभिधम्।
तदन्तरखिलोज्वलं जयति माथुरं मण्डलं
महारसमयं सखे ! कलय तत्र वृन्दावनम्।।८१।।

छन्द–प्रकृति सृष्टि सों–दूर, ब्रह्म पर सुख वैभव सों
परम धाम वैकुण्ठ कथित श्रुति पथ सम्भव सों।
दूर दुरूह अगोचर उज्ज्वल मथुरा मण्डल
परम प्रेम परिपूर्ण तहां वृन्दावन को थल।
हे मन मित्र ! करौं आश्रय अब उसी धाम को
रसमय क्रीड़ा वन है उन्मत गौर श्याम को।।८१।।

प्रकृति के परे शुद्ध पर–ब्रह्मानुभूतिमय सुख समुद्र में वेद–प्रसिद्ध महिमायुक्त वैकुण्ठ नामक परमपद स्थित है, उसके ऊपर सर्वोज्ज्वल मथुरा मण्डल जययुक्त विराजता है, हे सखे ! वहां अवस्थित महारसमय श्रीवृन्दावन का ध्यान कर।।८१।।

कदा वृन्दारण्यं श्रवणरसनस्पर्शननिरी–
क्षण घ्राणाद्यैर्मे भवति रस सिंधु स्रवदिव।
कदा वा तल्लोकोत्तररसमदान्धो मधुपते–
र्गुणानुच्चैरुच्चैः सरसमिह गास्यामि परितः।।८२।।

छन्द–श्रवण स्पर्श दृष्टि रसना अरु घ्राण द्वार सों
बनरस करैं प्रवेश सिंधु रस बहै धार सों।
होकर कब रस मत्त विचरिहों श्रीवन मांही
करता मधुपति सुयश गान लोकोत्तर थांही।।८२।।

श्रीवृन्दावन– श्रवण, रसन, स्पर्शन, दर्शन एवं घ्राणदि द्वारा कब मेरे लिये रस समुद्र वर्षण करेंगे? और कब मैं उसके लोकोत्तर रसमें मदान्ध होकर श्रीराधापति के गुणों का उच्च स्वर से सर्वत्र गान करता फिरूंगा?।।८२।।

स्वानन्दसच्चिद्घनरूपतामति–र्यावन्न वृन्दावन वासिजन्तुषु।
तावत् प्रविष्टोऽपि न तत्र विन्दते–ततोऽपराधात् पदवीं परात्पराम्।।८३।।

छन्द–जो लौं मति महं सत् चित आनन्द प्रेम भाव नहिं निष्ट
अखिल जन्तुअन में जोही है वृन्दाविपिन प्रविष्ट।
इसी एक अपराध कुफल सों मिलै न दासी भाव
यद्यपि साधक वन प्रविष्ट हो भर्यो राग अरु चाव।।८३।।

श्रीवृन्दावन वासी प्राणियों में जब तक स्वानन्द सच्चिद्घन रूपता की बुद्धि नहीं होती है, तब तक श्रीवृन्दावन में प्राप्त होने पर भी उसी अपराध से परात्पर पदवी (श्रीराधा दास्यपद) की प्राप्ति नहीं होती।।८३।।

यदैव सच्चिद्रसरूप बुद्धिवृन्दावनस्थस्थिरजंगमेषु।
स्यान्निर्व्यलीकं पुरुषस्तदैव चकास्ति राधाप्रिय सेविरूपः।।८४।।

छन्द–सच्चिद् रसमय श्रद्धा बुद्धि श्रीवन स्थिर जंगम में
उपजत ही साधक हो प्रियदासी स्वरूप संगम में।
श्री राधा के चरण कमल में कीनो गोप किशोरी
तैसो भाव प्राप्त श्रीवन में वास करौ वर जोरी।।८४।।

जब भी श्रीवृन्दावन में स्थिर जंगमात्मक प्राणियों में सत्य एवं निष्कपट रूप से सच्चिदानन्द घन बुद्धि होती है, तब ही मनुष्य को श्री राधा के प्रिय सेवा योग्य (गोपी) रूप की प्राप्ति होती है।।८४।।

सकल विभव सारं सर्व धर्मैक सारं—
सकल भजन सारं सर्वसिद्धैक सारम्।
सकल महिम सारं वस्तु वृन्दावनान्तः
सकल मधुरिमाम्भो राशि सारं विहारम्।।८५।।

छन्द—भगवत् विभव समस्त धर्म सब निगमागम को
सार सकल भजनन को सिद्धिन महातम को।
अन्य मधुर सब वस्तुन को जो सार एक है
(श्री) वृन्दावन में सार सु नित्य विहार एक है।।८५।।

(श्री) वृन्दावन का विहार (भ्रमण) सब संपदाओं का सार है, एवं समस्त धर्मों का समस्त भजन का सार है एवं समस्त सिद्धियों का सार, समस्त महिमा तथा समस्त माधुर्य समुद्र की सार वस्तु है।।८५।।

दैवीवाक् प्रतिषेधिनी भवतु मे स्याद् वा गुरुणां गिरां
श्रेणी शास्त्र विदामहास्तु बहुधाः यः कोऽपि कोलाहलः।
त्यक्त्वा साध्य साधन जातमखिलं लग्नन्तुमे राधिका—
क्रीड़ाकानन वास सम्पदि मनाग् व्यावर्तन्ते नो मनः।।८६।।

छन्द—भलेदिव्य नभ वाणी मोकौं करे निवारण
अथवा श्रीगुरु कहैं स्वर्ग में करौं न धारण।
धाम वास प्रतिषेध शास्त्र बहु करै तर्कना
इनकी कहनी मेरे मन में जचें तनिक ना।
साधन साध्य समस्त छोड़ क्रीड़ाकानन में
राधे ! इक रस बास भाव हो मो प्रानन में।।८६।।

श्री वृन्दावन वास को निषेध करने वाली यदि देववाणी ही हो किंवा गुरुजनों को वाणी हो अथवा शास्त्रज्ञों का इस श्रीवृन्दावन वास के विषय में अनेक प्रकार का कोलाहल ही कानों में पड़े तथापि निखिल साध्य साधन समूह को परित्याग करके श्रीराधा क्रीड़ा कानन की सम्पदा में लगा हुआ मेरा मन बिन्दुमात्र भी इससे निवृत्त नहीं होता।।८६।।

प्रगायन नटन्नुद्धसन् वा लुठन वा
प्रदायन् रुदन सम्पतन् मूर्च्छितो वा।

कदा वा महा प्रेम माध्वी मदान्ध–
श्चरिश्यामि वृन्दावने लोकबाह्यः ।।८७।।

छन्द–कब सब तजकर लोक लाज अरु प्रेम बिवश है
उच्च स्वरन सों गान करौंगो रस परवश है।
कभी हँसों रोवौं नाचौं लौटौं अरु धावौं
क्रन्दन करि करि हा हा हा मूर्च्छित ह्वै जावौ।
इह विध श्रीवृन्दावन मांही वास होइ है
भ्रमण करौंगो कब यहि पूरण आस होइ है।।८७।।

लोक लज्जा को छोड़कर महाप्रेम रूप मकरन्द को पान करके मदान्ध होकर उच्चस्वर से गान,नृत्य एवं अट्टहासादि करते करते कब मैं ब्रज भूमि पर लुण्ठन करूंगा? एवं कब मैं दौड़ते–दौड़ते रोते रोते पृथ्वी पर गिरकर मूर्च्छित पड़ा रहूंगा हाय कब मैं इस प्रकार के भावों में श्रीवृन्दावन में जहाँ तहां विचरण करूंगा?।।८७।।

न लोकं न धर्मं न गेहं न देहं
न निन्दां न स्तुतिं नापि सौख्यं न दुःखम्।
विजानन् किमप्युन्मदः प्रेममाध्व्या
ग्रह ग्रस्तवत् कर्हि वृन्दावने स्याम्।।८८।।

छन्द–कब मैं लोकाचार धर्म गृह देह अरु निन्दा
अस्तुत सुख दुख सबै भूल हों धाम वसिन्दा।
अद्भुत प्रेम सुधा रस मादक पियूं अघाहिं
ग्रह ग्रस्त उन्मत्त वत विचरत मन मांहि।।८८।।

लोक लज्जा, गृह, देह, निन्दा–स्तुति सुख एवं दुखादि सब कुछ की भी परवाह न करके मैं कब श्रीवृन्दावन में किसी अनिर्वचनीय प्रेम मधु का पान करके उन्मत्तवत् और ग्रहग्रस्त व्यक्ति की भांति विचरूंगा।।८८।।

हरे कृष्ण कृष्णेति कृष्णेति मुख्यान् महाश्चर्यनामावलीसिद्ध मंत्रान।
कृपामूर्ति चैतन्यदेवोपगोतान् कदाभ्यस्य वृन्दावने स्यां कृतार्थः।।८९।।

छन्द–श्री चैतन्य प्रभु परिकीर्त्तित सब सिद्धिन को दाता
महामन्त्र श्री हरे कृष्ण नामादि सर्वदा गाता।

कब मैं वास करौंगो निश्चित श्रीवृन्दावन मांहि
फल स्वरूप करि जन्म कृतार्थ या में संशय नाहीं।।८६।।

करुणावतार श्रीचैतन्यदेव द्वारा उपगान किया हुआ "हरे कृष्ण हरे कृष्ण"–इत्यादि महाश्चर्य नामावलि रूप सिद्ध मन्त्र का अभ्यास करते करते कब श्रीवृन्दावन में मैं कृतकृत्य होऊँगा।।८६।।

हेमस्फाटितपद्मरागरचितै र्माहेन्द्रनीलद्रुमै–
नानारत्नमयस्थलीभिरलिझंकारैः स्फुटद्वल्लिभिः।
चित्रैः कीरमयूर कोकिलमुखैर्नाना विङ्गैर्लसत्
पद्माद्यैश्च सरोभिरद्भुतमहं ध्यायामि वृन्दावनम्।।६०।।

छन्द–हेम फटिक मणि पद्मराग अरु इन्द्रनीलमणि संयुत
नाना रत्न थली अरुद्रुम से निर्मित अतिहि अद्भुत।
कुसुमित और प्रफुल्लित वल्ली भ्रमर करैं झंकार
शुक पिक मोर मनोहरपक्षी चहकैं विविध प्रकार।
कमल समूह भरे बहुसरवर अद्भुत श्रीवृन्दावन में
निशिदिन ताको ध्यान रहै वह रसमय मेरे मन में।।६०।।

हेम स्फटिक एवं पद्मराग आदि द्वारा विरचित एवं महेन्द्रनील–मणि जटित वृक्षों से शोभित नाना रत्नमय स्थलियों से सुसज्जित, अलिगणों से झंकारित पुष्पित लताओंसे विभूषित एवं विचित्र शुक–मोर–कोकिल आदि पक्षियों से गुंजारित तथा विकसित कमलों से सुवासित सरोवरों से मण्डित अद्भुत श्रीवृन्दावन का ही मैं ध्यान करता हूं।।६०।।

ताम्बूल पानक मनोहर मोदकादि
रम्ये लसन्मृदुलपल्लव चारुतल्पे।
द्वारस्थितालिभि रहो सुहृदाववेक्ष्य
वृन्दावनं स्मर निकुंजगृहेर्मनोज्ञम्।।६१।।

छन्द–लड्डू पान मनोहर शरबत और द्रव्य अनुकूल
मृदुल पल्लवित शय्या रचदी चित्रित सुरभित फूल।
सखी किंकरी गण बहु निरखें लता झरोखों में से
(श्री) राधा कृष्ण रहः रसकेलि कुञ्जन मोखों में से।

उसी भाव की दासी बसि कै वृन्दाविपिन महान्
ताको निज सुख गन्ध रहित हो– करत रहूं मैं ध्यान।।६१।।

जो धाम–ताम्बूल, शरबत, मनोहर मोदकादि खाद्य पदार्थों से सुसज्जित है। अति उत्तम कोमल पल्लवों से रची हुई शय्या पर लीला परायण सुहृदय युगल श्रीराधाकृष्ण का द्वारस्थित सखीगण झरोखों से दर्शन करती है, ऐसे निकुञ्जों से मनोहर श्रीवृन्दावन का स्मरण कर।।६१।।

क्वचिद्रति विमर्दित प्रसवतल्पकैः कुत्रचिद्।
रतोपकरणान्वित प्रियमृदुप्रसूनास्तरैः।।
क्वचित् प्रमदराधिकामधुपति प्रवृत्तोत्सवैः।
सदा नव निकुंजकैः स्मर सुमञ्जु वृन्दावनम्।।६२।।

छन्द–अस्त व्यस्त शैय्या पुष्पन की क्रीड़ा के उपरान्त
कहूं नवीन विलास हेत शैय्या तैयार नितान्त।
मृदुल कुसुम के आसन सज्जित भिन्न–भिन्न कुंजों में
क्रीड़ा उत्सव राधा मधुपति होय रहा दोनों में।
मंजुल नव नव है निकुंजजहँ ऐसो श्रीवृन्दावन
ताको नित्य निरन्तर रसमय करत रहूं मैं ध्यावन।।६२।।

कहीं सुरत विमद्दित पुष्प शय्या है, कहीं रति–विलासोपयोगी सामग्री युक्त प्रीतिदायक कोमल कोमल फूलों के बिछौने बिछ रहे हैं और कहीं प्रमोदित युगल श्रीराधाकृष्ण का क्रीड़ा उत्सव हो रहा है, इस प्रकार नित्य नव नवायमानकुंजों द्वारा अति मंजुल श्रीवृन्दावन का नित्य स्मरण कर।

राधाकृष्णरहः सुहृत् क्षितिधरस्योपत्यकासु स्फुरन्
नाना केलि निकुंजवीथिषु नवोन्मीलत्कदम्बालिषु।
भ्रामं भ्राममहर्निशं ननु परं श्रीरासकेलिस्थली–
रम्यास्वेव कदा प्रकाशितरहः प्रेमा भवेयं कृती।।६३।।

छन्द–(श्री) राधाकृष्ण दिव्य लीला के साधन में हितकारी
श्री गिरिराज समीप भूमि बहु केलि कुंज सुखकारी।
नव नव पुष्पित तरु कदम्ब की शोभित हैं जहँ पान्त
रासस्थली उन्मादी विचरूं कब सौभाग्य नितान्त?।।६३।।

हाय ! श्रीराधाकृष्णकी गुप्त लीला साधन के हितकारी गिरिराज की तलहटी में स्थित नव विकसित कदम्ब कुसुमादि द्वारा सुवासित अनेक केलि निकुंजों में दिन रात भ्रमण करते–करते परम रम्य केलि स्थली श्रीवृन्दावन में युगलकिशोर की गुप्तलीला की प्रेम पूर्वक स्फूर्ति से मैं कब धन्य–धन्य होऊँ।।६३।।

अलं क्षयीसुखप्रदैर्युवति पुत्रवित्तादिकै–
र्विमुक्ति कथयाप्यलं मम नमो विकुण्ठश्रिये।
परं त्विहभवे भवे भवतु वार्षभाणव्यथ
ब्रजेन्द्र तनयो वने लसति यत्र तस्मिन् रतः।।६४।।

छन्द–नहीं प्रयोजनीय नश्वर सुख प्रद धन सुत अरु जाया
मोक्ष निरर्थक वैकुण्ठ हूं को दूरिसों सीस नवाया।
एक मात्र श्रीराधामाधव के रस क्रीड़ा श्रीवन में
जन्म जन्म अनुराग रहै बस आस यही मो मन में।।६४।।

नश्वर सुख देने वाले स्त्री–पुत्र, धनादि का क्या प्रयोजन मुक्ति की चर्चा करने का क्या फल? श्रीवैकुण्ठधाम के महा ऐश्वर्य–सम्पदाओं को भी मेरा नमस्कार है–वृषभानुनन्दिनी श्रीराधा एवं श्रीब्रजेन्द्र नन्दन जहां नित्य क्रीड़ा करते हैं, केवल उसी श्रीवृन्दावन में ही जन्म जन्म मेरी रति हो ।।६४।।

नमामि वृन्दावन मेवमूद्र्ध्ना वदामि वृन्दावनमेववाचा।
स्मरामि वृन्दावनमेव बुद्ध्या वृन्दावनादन्यदहं न जाने।।६५।।

छन्द–नमस्कार हो प्रणत शीश युत मेरा श्रीकानन को
वाणी पै चसका उस ही के मीठे गुण गानन को।
बुद्धिगत सुमिरण हो पावन श्रीवन को महातम
सब कछु ही है मोरे मन श्रीवृन्दाविपिन मधुरतम।।६५।।

मस्तक से मैं श्रीवृन्दावन को ही प्रणाम करता हूं, वाणी द्वारा श्रीवृन्दावन का ही कीर्तन करता हूं, बुद्धि द्वारा श्रीवृन्दावन का ही स्मरण करता हूं एवं श्रीवृन्दावन के बिना और कुछ भी नहीं जानता हूं।।६५।।

राधापति रति कंद वृन्दावनमेव जीवनं येषाम्।
तच्चारणाम्बुजरेणोराशामेवाहमाशासे ।।६६।।

छन्द— राधापति श्रीकृष्णचन्द्र आनन्द कन्द का प्यारा
रति रूप तरु पोषण—उद्गम और करै विस्तारा।
ऐसो वृन्दावन धन जो अपनाते हैं जीवन में
उनके पाद पद्म की रज की आशा मेरे मन में।।६६।।

श्रीराधा—प्राणपति श्रीकृष्ण का रति कन्द रूप श्रीवृन्दावन ही जिनका जीवनाधार है, मैं उनके चरणकमलों के पराग की प्राप्ति की आशा की प्रार्थना करता हूं।६६।।

गुणन्ति शुक शारिकाः सुचरितानि राधापते—
स्तदेक परितुष्टये तरुलताः सदोत्फुल्लिताः।
सरांसि कमलोत्पलादिभिरधुश्च यत्रश्रियं
तदुत्सवकृते मनः स्मर तदेव वृन्दावनम्।।६७।।

छन्द—शुक शारिका गुण चरित बखानै कृष्ण कान्त राधा के
नव नव पल्लव पुष्प लता द्रुम प्रगटें तोष उहां के।
सर सरिता कमलोत्पादन करि शोभा उनहिं लखावैं
हे ! ऐसे मन श्रीवृन्दावन सुमिरत समय बितावैं।।६७।।

जहां शुक—शारिकाएं श्रीराधाकांत के प्रेमाख्यान का उच्चारण करते हैं, जहां तरु लताएं केवल उसी (श्रीकृष्ण के) परितुष्टि मात्र के लिये नव नव पुष्पों से उत्फुल्लित होती हैं, जहां सरोवरादि श्रीराधाकान्त को आनन्दोत्सव प्रदान करने के लिए ही कमल उत्पलादि के महासौन्दर्य को धारण करते हैं, रे मन ! उसी श्रीवृन्दावन का ही स्मरण कर।।६७।।

नाना केलि निकुंजमण्डपयुते नाना सरोवापिका—
रम्ये गुल्मलताद्रुमैश्च परितो नाना विधैः शोभिते।
नाना जाति समुल्लसत् खग मृगैर्नाना विलास स्थली
प्रोन्मीलन्मणि—रोचिषि प्रियकदा ध्येयोऽसि वृन्दावने।।६८।।

छन्द—नाना केलि निकुंज गृहों से जो है सदा विराजित
नाना वापी कूप विविध खग मृग कलरव सों नादित।
गुल्म लता आदी उल्लासित थली विलास सुवासित
जिनमें महामूल्य मणियों की उज्ज्वल ज्योति प्रकाशित।

ऐसो श्रीवन कृष्णचन्द्र की कब तुम आश धरोगे
परम सुखद रसमय पदवी का चिन्तन ध्यान करोगे।।६८।।

हे प्रिय (श्रीकृष्ण)! अनेक प्रकार के क्रीड़ा निकुंज मण्डपों से मण्डित, अनेक सरोवर बावड़ी, आदि से रमणीय,जहां तहां नाना गुल्म–लता वृक्षों से शोभित, नानाविध आनन्द मय खग–मृग कूलों से व्याप्त एवं नाना प्रकार की विलास स्थली समूहों से महान मणिमय ज्योति प्रसरणशील श्रीवृन्दावनमें कब मैं तुम्हारा ध्यान कर पाऊँगा? ।।६८।।

यत्रैवातिरसोन्मदं विहरते मत्प्रेष्ठवस्तुद्वयं
भक्तिः क्वापि महारसोत्सवमयी यत्रैव निःस्यन्दते।
यत्रैव प्रविशन्ति नैव निगमश्रेणीगिरां भंगय
स्तस्मिन्नेव ममास्तु धीः प्रणयिनी वृन्दावने पावने।।६६।।

छन्द–*युगल प्रेष्ठतम तत्व जहां पर रस उन्मत्त बिहारी*
उज्ज्वल रस घन स्वसुख हीन भक्ति प्रवाह है जारी।
मूक भए उपनिषद वाक्य अरु कियौ न कछुक बखान
जा श्रीवन के इस रहस्य को परम गूढ़तम ज्ञान।
तजिकै शुष्क ज्ञान चर्चा अब मो मन ऐसो भावै
वा रस घनमय वृन्दावन की प्रीतिहि सदा सुहावै।।६६।।

जहां अति रस में उन्मत्त मेरे प्रियतम युगल नित्य विहार करते हैं, जहां महारसमय उत्सवमयी भक्ति निरन्तर प्रवाहित हो रही है, जहां वेद उपनिषत् की वाणियां प्रवेश नहीं प्राप्त कर सकतीं, उसी पावन श्रीवृन्दावन में मेरी बुद्धि प्रीति रस में निमग्न हो ।।६६।।

वाण्यागद्गदया कदा मधुपतेर्नामानि संकीर्त्तये
धाराभिर्नयनाम्भसां तरुतल क्षौणीं कदा पंकये।
दृष्ट्वा भावनया पुरो मिलदिव स्वान्तैकभोग्यं महो
द्वन्द्व हेम हरिन्मणिच्छवि कदा नंस्ये मुहुर्विह्वलः।।१००।।

छन्द–*कब मैं गद्गद् स्वर से मीठे नाम लाल के गाऊँ*
अश्रु धार विरह से तरुतल भूमि सिक्त बनाऊँ।
सुमिरन तन्मयता से ऐसौ भाव उदय हो आवे

युगल नीलमणि कांचन शोभा दरस फुरित ह्वै जावे।
रसिकनजीवन समुझि सामने पुनि पुनि करौं प्रणाम
ऐसो चित्त रहे अनुरागी श्रीवृन्दावन धाम।।१००।।

हाय! मैं कब गद्गद् वाणी से मधुपति श्रीकृष्ण की नामावलि का संकीर्तन करूंगा ? कब नैन जल से वृक्षों के नीचे की भूमि को पंकिल कर दूंगा ? कब तीव्र भावनावेश से अपने आगे विद्यमानवत् शुद्ध अन्तःकरण युक्त (अनुरागी) भक्तों के भोग्य (आस्वादनीय) स्वर्ण नीलमणि प्रभा विशिष्ट नवज्योतिर्मय युगलकिशोर का दर्शन करके प्रेम विवश होकर मैं बार–बार वन्दना करूंगा ? १००।।

वृन्दारण्यनिकुंजसीमनि वसन् प्रेमातुरश्चिन्तयन
स्वप्राणैकधनं किशोर मिथुनं द्रक्ष्याम्यकस्मात् कदा।
श्यामाः कंचन चन्द्रिकारसमयीगौरीश्च काश्चिच्छटाः
पश्यामि श्रृणुयाञ्च शीतमधुराः कश्चिन्मिथोवाक् सुधाः।।१०१।।

छन्द–कब श्री वृन्दाविपिन निकुञ्जनि चित व्यथाकुल होकर
अपने प्रेष्ट इष्ट सुमिरन माला में हृदय पिरोकर।
सहसा अपने जीवन धन श्रीयुगलकिशोर निहारौं
प्रेम छटा रसगौर मनोहर ज्योति सरस उर धारों।
लाल लाड़िली स्निग्ध मधुर संलाप परस्पर होवैं
वा अमृत के पान करन में मेरे श्रवण समोवैं।।१०१।।

श्रीवृन्दावन निकुंज सीमा में वास करते हुए प्रेमातुर होकर सेवा की चिन्ता करते करते कब अकस्मात् अपने जीवनाधार श्रीयुगल किशोर का दर्शन करूंगा? कब किसी घनश्याम वर्ण मधुर छटा एवं किसी रसमयी गौरवर्ण छटा को देख पाऊँगा? और कब मैं उनकी शीतल मधुर परस्पर वाणी सुधा का श्रवण करूंगा ? ।।१०१।।

वृन्दारण्येकिमपि जनतादुष्प्रवेशं प्रदेशं
गत्वा प्रोच्चैर्निजदयितयोर्नामजल्पन्नु दश्रुः।
अत्यन्तात्यां विकलविकलो दिव्यमूर्त्या कयाऽपि
श्रीश्वर्याज्ञाकर मृगदृशा वाक्यसुधा स्वासितः स्याम।।१०२।।

छन्द–श्रीवृन्दावन जन दुर्गम थल में प्रवेश हो मेरा
प्रेमानन्द अश्रु अन लोचन हृदय विरह ने घेरा।
युगल इष्ट के नाम कीरतन में हो चित्त विभोर
ऐसे अवसर दिव्य किंकरी पहुँचे मेरी ओर।
श्रीराधा मृगनयनीदासी देखे मुझे बिहाल
वचनामृत से दे आश्वासन करदे मुझे निहाल।।१०२।।

श्री वृन्दावन में जन प्रवेश वर्जित किसी प्रदेश में जाकर आनन्द–अश्रुमोचन करते करते, अपने प्रियतम युगल का नाम प्रकृष्ट भाव से उच्च स्वर से कीर्तन करते करते, अत्यन्त विनम्रता से अतिशय विह्वल होकर मैं श्रीईश्वरी (श्रीराधा) की किसी दिव्य मूर्ति मृगनयनी दासी की वाक्य सुधा से आश्वासन पाऊँगा।।१०२।।

एतत् कारुण्य पुञ्जं कति–दिन–कलितस्वाश्रयप्रौढ़राधा–
कृष्णाङ्घ्रिद्वन्द्वगूढ़प्रणयभव–रसाभ्यञ्जितोदारदृष्टम्।
श्रीमद्वृन्दावनं मे निज परम–चमत्कारिरूपेण सान्द्रा
नन्दौघ स्यन्दि–वप्रोच्छलित–मधुरिमैकार्णवेनाविरास्ताम्।।१०३।।

छन्द–सान्द्रानन्द महारससागर श्रीकानन सुखकारी
मुनिजन, वेद–पुराण अगोचर ईशन विस्मयकारी।
करुणा करि निजवास दिये जिन युगलचरण रति देहु
तुम्हरो रूप अनूप, अगोचर केवल जानत तेहु।
सो स्वरूप माधुर्यसीम आनन्द सीम मनहारी
आविर्भूत करहु मो हिये में करि करुणा अति भारी।।१०३।।

इस प्रकार करुणामय जो श्रीमद्वृन्दावन कुछ समय अवस्थान देने के बाद श्रीराधाकृष्ण के चरणकमलों के निगूढ़ स्नेह से अभिषिक्त उदार मति व्यक्तियों को ही दृष्टिगोचर होता है, हाय ! श्रीवृन्दावन सान्द्रानन्द प्रवाहित करने वाले अतुल असीम महामाधुर्यसागर तुल्य अपने परम चमत्कारी रूप को मेरे हृदय में आविर्भूत करे ।।१०३।।

कदा सुदृढ़भावनोदित निजेष्टरूपं मना–
गपिस्मृतशरीरकेनिह रसे प्रविष्टोद्भुते।।

क्षणं किम् मुहूर्त्तकं किमथ याम मेवास्थितो।
बहिर्दृगपि मुग्धवत् व्यवहरामि श्रीवृन्दावने।।१०४।।

छन्द—कभी सुदृढ़ एकाग्र भावना ह्रदय उदय हो जावै
मुझको इच्छित रूप मंजरी की जो स्मृति करावै।
तब मैं राधा दास्य भाव रस में प्रवेश क्षण पाऊँ
सकल बाह्यकूं भूलि विपिन में मोहित काल बिताऊँ।।१०४।।

सुदृढ़ भावनाबल से उदित हुए अपने इष्ट (मंजरी) रूप का थोड़ा सा स्मरण होने पर उसी छोटे से (मंजरी) शरीर द्वारा अद्भुत (राधादास्य) में प्रविष्ट होकर एक क्षण या एक मुहूर्त्त अथवा एकप्रहर तक बाह्य दृष्टि होकर एक अवस्था में कब मैं श्रीवृन्दावन में अवस्थान करूंगा? ।।१०४।।

नान्यद् वदामि न शृणोमि न चिन्तयामि
नान्यद् ब्रजामि न भजामि न चाश्रयामि।
पश्यामि जाग्रति तथा स्वप्नेऽपि नान्यत्
श्रीराधिका रति विनोदवनं विनाहम्।।१०५।।

छन्द— श्रीवन महिमा बिना अन्य चरचा न कभी सुहावै
श्रवण अन्य गाथा व चिन्तन मनमें नहिं समावै।
भजन अन्य अथवा यात्रा आश्रय नहिं कभी गहोंगो
जाग्रत स्वप्ने राधामाधव श्रीवन परस चहोंगो।।१०५।।

श्री राधा रति–विलास के विनोद बन के व्यतीत और कोई बात नहीं बोलूंगा, और न कुछ सुनूंगा भी न ही अन्य किसी विषय की चिन्ता भी नहीं करूंगा, न ही कहीं जाऊँगा और किसी का न ही भजन करूंगा, अन्यान्य देवी देवता का आश्रय भी नहीं करूंगा, जाग्रत एवं स्वप्न में भी और किसी का दर्शन नहीं करूंगा।। १०५।।

किं मां खेदयसे विमुंच वसनं तल्पोत्तमेऽस्मिन सुखे
नागत्य स्वपिहि त्यजत्यजभुजं श्लिष्यामि कान्ते! सकृत।
आः किं निर्दय मुंच मुंच न किमप्या पीड़ये राधिका–
कृष्णालाप मिमं कदा नु शृणुयां वृन्दाटवी कीरतः।।१०६।।

छन्द—काहे कान्त कष्ट देते हो वस्त्र छोड़ दो मेरा—
प्यारी शयन करो शैया पै प्यारे ने कहि घेरा।
भुजा पाश महँ आलिंगन को प्रीतम जभी दबाया
हे हे निर्दय पीड़ा मत दो प्रिय ने उन्हें हटाया।
इस प्रकार प्यारी प्यारे की क्रीड़ा कबैं निहारी
श्रीवन शुक उच्चरित सुनूं कब मैं अतिहि सुखकारी।।१०६।।

नागरि ने कहा—मुझे तुम क्यों तंग कर रहे हो, मेरे दामन को छोड़ो" नागर ने कहा— 'इस उत्तम शय्या पर सुखपूर्वक आगमन करो एवं थोड़ी देर के लिए शयन करो।' नागरि ने कहा—"मेरा हाथ छोड़ दो—छोड़ दो" तब नागर ने कहा—हे कान्ते ! एक बार तो आलिंगन करो।" नागर ने कहा—मैंने आपको कुछ पीड़ा तो नहीं दी। श्रीराधाकृष्ण के इस प्रकार के परस्पर प्रेमालाप को श्रीवृन्दावन के शुक के मुख से सुनने का कब मेरा सौभाग्य होगा ? ।।१०६।।

कदा वा स्वच्छन्दं दिनरजनि वृन्दावन वने
चरन्नेकः स्वस्त्यद्भुत नव निकुञ्जालिषु विशन्।
अकस्मादेवालौकिक मधुर कैशोर सुवयाः
"इतो न त्वं याया" इति मृदुगिरा वारयति माम्।।१०७।।

छन्द—कब निशिदिन श्रीवृन्दावन में भ्रमण करौं स्वच्छन्द
सहसा अनदेखी कुंजन में जा निकसौं निर्द्वन्द्व।
तहां मनोहर ललित किशोरी मीठे बोल पुकारै
"जनि प्रवेश करहु या कुञ्जन" ऐसौ कहत निवारै।।१०७।।

दिन रात श्रीवृन्दावन के द्वादश बनों में स्वच्छन्द भ्रमण करते करते एक अद्भुत अदृष्टपूर्व निकुंज में एकाकी प्रवेश करते ही कब मेरे एक मंगल सौभाग्य का उदय होगा ? अकस्मात ही कोई अलौकिक मधुर किशोरी इस मधुर वाक्य से—"इस कुंज में तुम मत जाना।" मुझे कब वरण करोगी ?

कदा वा तूष्णीकः शिथिलित समस्त व्यौहृति—
स्त्यजन दीर्घश्वासं कथमपि गृहीतैककवलः।
सदा जाग्रत्प्रायः क्षणमुदित तन्द्रोऽति मधुरं
तदा लोके वृन्दावन भुवि निज प्राणमिथुनम्।।१०८।।

छन्द—कब श्रीधाम मौनधारी बन तजकर सब व्यौहार
शोकाकुल निश्वास छोड़ता करता हृदय पुकार।
मिलै कभी इक ग्रास मात्र सो खाकर भूख मिटाऊँ
जाग अहर्निश फिरूं एकाकी तन्द्रा वश ह्वै जाऊँ।
स्वप्ने हूं में कभी तो दर्शन युगल इष्ट के पाऊँ
मधुर निकुंज विलास विलोकत अपना भाग्य मनाऊँ।।१०८।।

श्रीवृन्दावन भूमि में मौन धारण करते हुए समस्त वाह्य व्यापार को छोड़कर रहूंगा, दीर्घ श्वास लेते लेते अति कष्ट पूर्वक एकग्रास मात्र भोजन करूंगा। इसीप्रकार प्रायः जाग्रत रहते हुये थोड़े समय के लिये जरा तन्द्रा आने पर अति मधुर उस प्राणनाथ युगल किशोर के कब मैं दर्शन करूंगा? ।।१०८।।

अकस्मादेकस्मान्नवललित कुंजाद् वत बहि—
र्भवत् स्मित्वा नव्यं तरुण मिथुनं लौकिकमिव।
गतोदूरं दृष्ट्वा पुनरथ निवृत्य स्वदयित्तौ
विलोक्यस्यां वृन्दावन भुवि महाप्रेम विकलः।।१०६।।

छन्द—प्रकट विपिन श्रीबन मँह कबहुक डोलत फिरत इकाकी
कुंजन सहसा निरखहुँ कबहुँ युगल हंसन की झांकी।
चर्म चक्षुअन दोष दृष्टि सामान्य युगल हिय आनौं
करि उपेक्षा दूरि गमन करि पुनि संभ्रम सों मानौं।
तिनहिं जान निज इष्ट प्रेम वश लौट दरश को धावौं
कब ह्वै है सौभाग्य इतौ तहँ श्रीवन महिमा गावौं।।१०६।।

इस श्रीवृन्दावन में सहसा एक नव ललित निकुंज से हँसते हँसते निकलते हुए लौकिकवत् प्रतीयमान नवीन युगलकिशोर को देखकर मैं संकुचित हो जाऊँ एवं कुछ दूर जाकर फिर लौटकर अपने प्रियतम युगलकिशोर का दर्शन करके महाप्रेम से विकल हो जाऊँ—ऐसा कभी मेरा सौभाग्य होगा ?।।१०६।।

कदा पूर्ण ज्योत्स्नारजति धवले रासवलये
चरन्नेको वृन्दावन पतिविलास स्मृति परः।
अकस्मादानन्दाम्बुधि लहरि कोलाहल मिव
ध्वनिं दिव्य वेणोर्वलय रसनादेशश्च शृणुयाम्।।११०।।

छन्द —पूर्ण प्रकाशित शुभ्र निशा मह रासमण्डली मांहीं
ध्यान धरौं वृन्दावन पति को प्रिया दिये गलबांही।
ऐसे रासविलास युगल के सुमिरण करता डोलौं
विपिन सदा एकान्त हिये में भाव तरंग झकोलौं।
उसी भाव गत दिव्य ध्वनित मुरली नूपुर वलयादि
सुनों रास परिकर की कलकल प्रेम मगन उन्मादी।।११०।।

मैं कब पूर्ण चन्द्रकांति से, उद्भासित रात्रि को श्रीरासमण्डल में श्रीवृन्दावन–पति श्रीकृष्ण के विलासादि के स्मरण में निविष्ट चित्तहोकर एकाकी घूमते अकस्मात् आनन्द सागर की तरंगों के कोलाहलवत् वेणु–वलय एवं किंकणी आदि की अलौकिक ध्वनि को श्रवण करूंगा? ।।११०।।

कदा वा कस्यापि स्फुटनव कदम्बस्य विटपे
स्फुरद् गोपी भर्तुः किमपि कलये स्मर वदनम्।
कदा श्रीराधायाः कुसुमचय लोलञ्च ललितं
करं वीक्षे वृन्दावनभुवि लतौघे क्वचिदपि।।१११।।

छन्द—कभी विपिन मह नव पुष्पित सुठ तरु कदम्बनि छाईं
जीवन प्राण गोपिका गण के कृष्ण मन्द मुस्क्याईं।
अथवा होवे दरसन कबहुँक चयन करत कुसुमन को
लता समूह बीच श्रीवन में राधा सुभग करन को।।१११।।

कब मैं इस श्रीभौम वृन्दावन में किसी प्रफुल्लित नव कदम्ब की शाखा पर विराजमान गोपीजन वल्लभ के अनिर्वचनीय मृदु मधुर हास्यमय मुख का अवलोकन करूंगा ? और कब किसी स्थान पर लताओं से कुसुम तोड़ते में श्रीराधा के चञ्चल ललित कर कमल का वीक्षण करूंगा? ।।१११।।

इदं मे किम्भावि! द्रुतकनकगौरच्छबि हरि–
न्मणिश्यामं धाम द्वयमिह मिथोऽसार्पित भुजम्।
निरीक्षेतत स्मेरं मम बहुविध प्रेमविसृतं
सुखं पश्चाच्छाया द्वयमथ पुरोमूर्च्छयति माम्।।११२।।

छन्द—द्रवित स्वर्ण सम गौरलली अरु मरकत मणि सम श्याम
युगल हसित मुख प्रेम मुग्ध अरु गलबैयां अभिराम।

फिरैं विपिन महं आगे पीछे करत सुखद निज छाया
होय दरश मोहित ह्वै जाऊँ करहु विपिन जो दाया।।११२।।

हाय! मेरा कभी ऐसा सौभाग्य होगा? गलित स्वर्णवत् गौरकांति एवं इन्द्रनील मणिवत् श्याम कांति युगल विग्रह को इस श्रीवृन्दावन में एक दूसरे के स्कन्धों पर हाथ रखे हुए देखूंगा ? जब वे मृदु मुस्कानयुक्त प्रेमपूर्वक सुन्दर मुख मण्डल उद्भासित करते हुए एक दूसरे के आगे पीछे बैठे हुए मुझे मोहित करेंगे।।११२।।

अति प्रेमौत्कण्ट्यात् क्षितिषु विलुठत मे वपुरिदं
करेण स्पृष्ट्वा मांविलुठयति राधा प्रिय युता।
अहो वृन्दारण्येऽद्भुत महिम सीमन्यपि सुदु–
र्घटाशा काऽप्येका समुदयति हा किं न भविता।।११३।।

छन्द–अमित विचित्र प्रभाव विपिनको जानि हिये महँ आशा
दुर्घट उदय होत है सहसा मानौ खेल तमाशा।
आर्त्त कभी आवेश प्रेम के लुठै देह भूरी पै
राधा वल्लभ सहसा देखैं परसै करन अमी द्वै।
अपनी मानी किंकरी मो कहं दै हैं चरण सुपास
हे श्रीवन इक तुम्हरी किरपा सुफल होय यह आस।।११३।।

अहो ! अद्भुत महिमा की सीमा श्रीवृन्दावन में एक अनिर्वचनीय अति असम्भव आशा मेरे मन में उदित हो रही है। प्रियतम के साथ मिलकर श्रीराधा अतिशय प्रेमोत्कण्ठा सहित मुझको पृथ्वी पर लुण्ठन करते हुए देखकर अपने श्रीकर–कमल से उठाकर क्या अपने चरणकमलों में डाल देंगी–हाय ! मेरी यह आशा क्या सफल होगी ? ।।११३।।

कदा वा कालिन्दी तटनिकट वृन्दावनलता–
निकुञ्जान्तं सुप्तं तदतिसरसं प्रेष्ठ मिथुनं।
मिथो गाढ़श्लिष्टं मृदु मृदु मया लालितपदं
मुदा वीक्ष्ये स्वप्नेऽप्यहह सुख निद्रां गतमहम्।।११४।।

छन्द–यमुना तीर कुञ्ज के मांही लीला के अवसान
अलसाने आनन्द गाढ़ आलिंगित मिथुन सुजान।

मृदुल मृदुल पद संवाहन को सुख पाऊँ
स्वपने हूँ ऐसो सुख पाऊँ अपनो भाग्य मनाऊँ।।११४।।

कब कालिन्दी तट के निकट श्रीवृन्दावन निकुञ्ज में सोये हुए सरसतम प्रियतम युगलकिशोर परस्पर गाढ़ाश्लेषबद्ध होंगे एवं मैं मृदु भाव से पद संवाहन करके उन्हें अति सुखनिद्रा में सुलाऊँगा ? – हाय ! स्वप्न में भी क्या कभी मेरा ऐसा सौभाग्य (मंजरीभाव) उदय होगा ? ।।११४।।

महाश्चर्य्यानन्त स्वमहिम बलादेव सकला–
धामस्याप्याशानां व्यतिकरमसम्भाव्य मपिमे।
कदा वृन्दारण्यम् स्ववसतिकथामात्रप्रवहत्
कृपापूरं संपूरयतु परतोऽप्यर्बुदजनेः।।११५।।

छन्द–*विपिन वास को भव धरैं जिय तिन पै दया महान*
करत तुरत बन भाव मात्र लखि प्राणिन को कल्यान।
इसी भरोसे मन्द अधम मैं दुर्घट आशा धारी
अर्बुद जन्म भले पाऊँ पै धाम वास इक बारी।।११५।।

जिस धाम में निवास करने की प्रार्थना का संकल्प मात्र ही प्रचुरतर कृपा राशि का वर्षण करता है, वह श्रीवृन्दावन मुझ अधमतम की असम्भावनीय आशाओं को महा अनन्त अपनी महिमा के बल से अर्बुद अर्बुद जन्म पीछे भी पूर्ण करें–यही प्रार्थना है।।११५।।

स्वकर्म स्रोतोभिः सततमभि तश्चालितममुं
प्रभो ! जीवं यत्र क्वचिदपि नयात्यन्त विवशम्।
परन्त्वेतावन्मे भवतु भवदुःखार्दित हृदोऽ–
प्यविश्रान्तं वृन्दावनपदपरैवास्तु रसना।।११६।।

छन्द–*हे श्री गौर ! कर्म परवश हूं भ्रमित फिरौं बहु योनी*
भलै यातना जितनी आवें संसारी अनहोनी।
इतने कष्ट सहौं पै तुम सों इतनी विनय सुनाऊं
जिह्वा श्रीवन के गुण गावैं भूलेहूं भूल न जाऊं।।११६।।

हे प्रभो ! अपने कर्मों के स्रोत से निरन्तर जहां तहां बहते हुये मुझ जैसे जीव आयत्न अवश हो रहे हैं, अतएव तुम अपनी इच्छानुसार जहाँ चाहो ले

जाओ, परन्तु संसार दुख से पीड़ित होते हुए भी मेरी यह प्रार्थना पूर्ण कीजिए, जिससे मेरी जिह्वा निरन्तर 'श्रीवृन्दावन'–नाम का किम्वा श्रीवृन्दावन के गुणों का कीर्त्तन करती रहे।।११६।।

न सत्याख्ये लोके स्पृहयति मनो ब्रह्म पदवीं
न वैकुण्ठे विष्णोरपि मृगयते पार्षदतनुम्।
परं श्रीमद्वृन्दावन–सरस–भावोत्सव–वतां
निवासे धन्यानां सुबहुकृमिजन्मापि मृगयते।।११७।।

छन्द–चाहौं नहिं ब्रह्म पदवी नहिं सत्यलोक की इच्छा
चहौं नहीं बैकुण्ठ धाम की देह पारषद कक्षा।
इनते तौ सुभाग्य बड़ौ मैं कीट भृंग वन जाऊं
रसमय ब्रज महतनके गृह मंहि ऐसी योनी पाऊं।।११७।।

मेरा मन सत्य लोक में ब्रह्म पदवी का भी स्पर्श न करे, वैकुण्ठ में श्री विष्णु के पार्षद शरीर की भी अभिलाषा नहीं करे, किन्तु केवल श्रीवृन्दावन में प्रेम रसमय भाव के उत्सव परायण महा भाग्यवान् व्यक्तियों के घर में बार–बार कृमि जन्म की भी आकांक्षा करे।।११७।।

श्रीमद्वृन्दाविपिनकुसुमामोदवाही समीरो
यस्मिन् देशे सरति तदवच्छिन्न कृष्णाप्लुतो वा।
येषां वृन्दावनमनु सकृद् ग्रीवया सन्नतं वा
तत्रैवास्तां मम खलु जनिर्हन्त तेषां गृहेऽपि।।११८।।

छन्द–श्रीवन परसित सुरभित वायु जित को होय प्रवाहित
अथवा यमुना सलिल कणों से सिञ्चित हो संवाहित।
अथवा जे बड़ भागी वन को नमन करैं इक बार
तिन के गृह में जन्म हो भलें वन सीमा के पार।।११८।।

जिस देश में श्रीवृन्दावन की पुष्प सौरभ युक्त अथवा यमुना के जलकणों से युक्त वायुं प्रवाहित होता है, एवं जिस देश में श्रीवृन्दावन के लिए एक बार भी किसी का शिर झुकता है, उसी देश में उसके घर में ही मेरा जन्म हो।।११८।।

ममापि स्यादेता दृशिमिह दिनं किन्तु परमं
यदा वृन्दाटव्याः कथमपि कृतस्पर्शनमपि।
अहो देहं दूरादपि समवलोक्यान्त जनुषां
महुर्धन्यं मन्ये धरणि पतितः स्यां कृत नतिः।।११६।।

छन्द—आहा ! कब सौभाग्य उदय हो मोसे मन्द मती का
इसी जन्म में परस करै तनु वृन्दावन भूमी का।
दरस दूर ते होय धाम को कृत्य कृत्य है जाऊं
भूमी पति प्रणाम करूं तब अपना जन्म सराहूँ।।११६।।

अहो ! मुझ जैसे अधम व्यक्ति के इस जन्म में ऐसे किस दिन भाग्य उदय होंगे कि श्रीवृन्दावन की किसी भी वस्तु का स्पर्श प्राप्त करूँगा, और दूर से भी श्रीवृन्दावन के दर्शन कर अपने को परम धन्य–धन्य मान कर पृथ्वी पर लोटकर प्रणाम करूंगा।।११६।।

यदपि च मम नास्ति श्रीलवृन्दावनीये
महिमनि न समोसर्वे हन्त विश्वास गन्धः।
यदपि च मम तस्मिन्नास्ति वासैषणापि
प्रसरतु मम तादृश्येव वाणी तथापि।।१२०।।

छन्द—वृन्दावन–महिमा विश्वासी गन्ध नहीं हैं तो भी
करौं वास श्रीधाम हिये महं भाव नहीं है तो भी।
पै रसना पे कथन मात्र ही फुरणा फुरै तहां की
यही भीख श्रीवन सों चाहों आशा रहै उहाँ की।।१२०।।

यद्यपि सर्वोत्कृष्ट श्रीवृन्दावन के माहात्म्यके विश्वासकी गन्ध भी मुझ में नहीं है और वहां वास करने की वासना भी नहीं है, हाय ! हाय ! ! श्रीवृन्दावन की महिमा एवं वहां वास करने की इच्छा युक्त वाणी तो मेरी स्फुरित हो।।१२०।।

अचैतन्य प्रायं जगदिदमहो सर्वविदपि
प्रथीयः श्रीवृन्दावन महिमवीथीजड़मतिः।
अहो भ्राम्यद् दृष्ट्या विधि सदसद् वर्त्मसु तथा
न पूर्ण तस्यैव ध्रुवमिह निषेव पदरजः।।१२१।।

छन्द—श्रीचैतन्य चरण आश्रय से विमुख रहैं जे प्रानी

तिन महं मैं हूं एक बड़ो ही शास्त्र ज्ञान अभिमानी।
संग दोष वश श्रीवन महिमा भई न हृदय प्रवेश
वाद विवाद असत् पथ जीवन भटक्यो भरि आवेश।
हाय हाय! अब तो नहीं है है पूर्ण कामना मोरी
ताते सेवन करूँ सदा ही श्रीवन पद रज घोरी।।१२१।।

अहो इस जगत् के व्यक्ति अधिकतर अचैतन्य प्राय हैं अर्थात् श्रीचैतन्यमहाप्रभु के चरणाश्रय से रहित हैं, अतः वे सर्व शास्त्रों के ज्ञाता होते हुए भी महान् श्रीवृन्दावन की महिमा रूपी वीथियों में जड़मति हैं अर्थात् श्रीवन–महिमा–मार्ग को नहीं जानते हैं। अहो! मैं भी उन्हीं मायावाद–आदि सद्–असद् मार्गों में भटकता हुआ अपने मनोरथों को पूर्ण न कर पाऊंगा अतः मैं श्रीवृन्दावन के चरणों की रज का ही सेवन करता हूं।

हा वृन्दावन ! हा महारस मय–प्रेमैक सम्पन्निध
हा राधा रति नागर स्मर कला साक्षिन मदेक प्रिय।
हा रासेश्वर! विश्व मूर्च्छन! लतावल्ली खगाद्यद्भुत
श्रीमन्! हा प्रकृते परादपिपर! त्वं मे गतिस्त्वं गतिः।।१२२।।

छन्द–हा वृन्दावन! हा हा रसमय! प्रेम सुधा आगार
हा श्रीराधा रमण कृष्ण नागर क्रीड़ा आधार।
हा हा! मेरे एकमात्र प्रीति भोजन रस रूप
हा रासेश्वर रास सहायक संपद रचै अनूप।
हा हा! जगतविमोहन वल्ली लता समूह निधान
अद्भुत खग गण करत कलोलैं सुन्दर कलरव गान।
हा श्रीमन श्रीवन हो दूर ब्रह्मा रचित सृष्टि सों
एकमात्र हो गति हमारी कृपा करो दृष्टि सों।।१२२।।

हे श्रीवृन्दावन! हे एकमात्र महारसमय–प्रेम–सम्पत्ति के सागर! हे श्रीराधा–रतिनागर (श्रीकृष्ण) की स्मर कलाओं के साक्षी! मेरे एकमात्र प्रिय! हे रासेश्वर! हे विश्वविमोहन! लता–वल्ली, खगादिकों की अद्भुत सम्पतियुक्त! हे प्रकृति के परे (वैकुण्ठादि–परिव्योम से भी परे) श्रीधाम–वृन्दावन! आप ही एकमात्र मेरी गति हैं, आप ही एक मात्र मेरे आश्रय हैं।

नमोऽस्तु वृन्दावन सुन्दराभ्यां–नमोऽस्तु वृन्दावन विभ्रमाभ्यां।
नमोऽस्तु वृन्दावन जीवनाभ्यां–नमोऽस्तु वृन्दावन नागराभ्याम्।।१२३।।

छन्द–नमो नमो श्रीवृन्दावन के युगलकिशोर स्वरूप
नमो नमो श्रीवृन्दावन के रसमय विभ्रम रूप।
नमो नमो श्रीवृन्दावन के जीवन धन आधार
नमो नमो श्रीवृन्दावन के रसिकनरस सरकार।।१२३।।

मैं श्रीवृन्दावन के सुन्दर युगलकिशोर को नमस्कार करता हूँ। श्रीवृन्दावन–बिहारी युगल को नमस्कार करता हूं। श्रीवृन्दावन के जीवन प्राण–युगल को नमस्कार है एवं श्रीवृन्दावन के नागर युगल को मेरी बारम्बार नमस्कार है।।१२३।।

नमोऽस्तु वृन्दावन सत्कृपाभ्यां–नमोऽस्तु वृन्दावन सद्रसाभ्याम्।
नमोऽस्तु वृन्दावन पूर्ण ताभ्यां–नमोऽस्तु वृन्दावन गोचराभ्याम्।१२४।।

छन्द–नमो नमो हो युगल एक रस श्रीवन कृपा प्रसारी
नमो नमो हो युगल माधुरी रस रास सदा विस्तारी।
नमो नमो हो युगल पूर्ण तम अखिल गुणन सरसाए
नमो नमो हो युगल–प्रकट श्रीवन में दरस दिखाए।।१२४।।

श्रीवृन्दावन में जिनकी सत्–कृपा सदैव विराजमान रहती है, जिनका माधुर्य रस सदा श्रीवृन्दावन में उच्छलित हो रहा है, जिनकी, रूप–गुण–लीला–करुणा–माधुरी श्रीवृन्दावन में ही पूर्णता को प्राप्त है, जिनके श्रीवृन्दावन में साक्षात् दर्शन होते हैं–उन श्रीयुगलकिशोर को मेरी नमस्कार है, नमस्कार है, उनको मेरी बार–बार प्रणाम है।।१२४।।

वृन्दारण्योत्तमं नास्ति–नास्ति मत्तोऽधमं क्वचित्।
राधा नाम्नः प्रभावेण–यदि स्यान्मेलनं तयोः।।१२५।।

छन्द–श्रीवृन्दावन सम नहिं उत्तम आश्रय सदा नवीन
मो सम अधमिन अधम जीव नहिं जग में महा मलीन।
(श्री) राधा नाम महा महिमा सों होवे उभय मिलाप
वास पाऊं श्रीवनमें मेरी करै हृदय संताप।।१२५।।

श्रीवृन्दावन से अधिक श्रेष्ठ (अधम–उद्धारक) और कोई नहीं है, एवं मेरे समान अधम और कोई नहीं है। 'श्रीराधा श्रीराधा' नाम रटने के प्रभाव से यदि इन दोनों का (श्रीवृन्दावन और मेरा) संयोग हो जाय (तो हो सकता है अन्यथा) श्रीराधा नाम के बिना श्रीवृन्दावन का संयोग वा वास कदापि नहीं हो सकता।।१२५।।

श्रीमद्वृन्दावनेश्वर्य्याः सकृन्नामैक मंगलम्।
सर्वाश्चर्यानन्त शक्तिमुखे विजयतां मम्।।१२६।।

छन्द–एकहुँ बार परम मंगल मय राधा नाम तिहारो
जाग उठे रसना पर मेरी रसमय बन आधारो।
श्रीवन सकल मधुरता का वह है माधुर्य निधान
प्रेम पूत स्वर लहरी सौं मैं करौं निरन्तर गान।।१२६।।

श्रीमद्वृन्दावनेश्वरी (श्रीराधाजी) का एक बार ही श्रीराधा–नाम लेने से समस्त मंगल प्राप्त होते हैं, एवं समस्त अनन्त शक्तियों का विकाश होता है। वह श्रीराधा–नाम सदा मेरी जिह्वा पर जय युक्त होकर विराजमान् रहे।।१२६।।

श्रीप्रबोधानन्द सरस्वती–विरचित श्रीवृन्दावन महिमामृतम् का
सप्तदश शतक समाप्त हुआ।।१७।।

इस प्रकार श्रीवृन्दावन महिमामृतान्तर्गत प्रथम से सप्तदश शतकों का
श्रीश्यामदास कृत हिन्दी अनुवाद समाप्त हुआ।

• क्या पता प्रभु किस रूप में कब कृपा कर दें ? •

मासिक–पत्र

श्रीहरिनाम

लागत से भी कम मूल्य पर
सत्शास्त्र प्रचारार्थ पूरे भारत में पाठकों को
घर बैठे भेजा जाता है

सुहृदवर !

हमारा साग्रह अनुरोध है कि

३६ वर्षों से अनवरत प्रकाशित–प्रमुख पुरुषार्थ परिचायक
महाप्रभु श्रीचैतन्य साहित्य का प्रसारक–प्रचारक
मानव मात्र के कल्याण का पथ–प्रदर्शक

'श्रीहरिनाम'

आपकी सेवा में भी प्रस्तुत हो

भोजन पेट की खुराक है तो सत्साहित्य आत्मा को तृप्त करता है
इसका अध्ययन सदैव के लिये दिव्य आनन्द की अनुभूति प्रदान करता है

नियमित एवं
36 वर्षों से अनवरत प्रकाशित

मासिक–पत्र

श्रीहरिनाम

इसके मुख्यपृष्ठ पर आकर्षक एवं दुर्लभ चित्र प्रकाशित होते हैं।

●

प्रत्येक माह में आने वाले एकादशी
एवं अन्य व्रत और उत्सवों का विवरण प्रकाशित होता है

●

नवीन ग्रन्थों के बारे में सूचना
एवं श्रीहरिनाम के पाठकों हेतु विशेष छूट की घोषणा होती है

●

माह में होने वाले उत्सवों पर विद्वान्–मनीषी लेखकों द्वारा
खोजपूर्ण प्रामाणिक विशेष सामग्री का परिवेशन होता है

●

भावपूर्ण पद्यमय कविता एवं पद–पदान्तर का प्रकाशन होता है

●

व्रज के प्रसिद्ध एवं लुप्त मन्दिरों का विवरण प्रकाशित
होता है–चित्र होता है

●

विभिन्न अप्रकाशित ग्रन्थों का
क्रमशः प्रकाशन सानुवाद, सटीक होता है

और होता है
आपकी अनेक शंकाओं का समाधान

आज ही हमारे पते पर लिखिये